का सोवै दिन रैन

अनुक्रम

1. सत्संग पारस है...2
2. जागो--अभी और यहीं..24
3. प्रेम पाठ है--विद्रोह का..46
4. मुझे एक झरोखा बना लो...72
5. जीवन--ध्यान-मंदिर का सोपान..96
6. सत्संग की कलाः संन्यास..120
7. प्रेम नाव है..142
8. चित्त की आठ अवस्थाएं..164
9. सत्संग की मधुशाला...187 10...अथक श्रम चाहिए .... 211 11..मूल में ही विश्राम है 237

का सोवै दिन रैन
पहला प्रवचन

सत्संग पारस है

का सोवै दिन रैन विरहिनी जाग रे।
काम क्रोध मद लोभ, छांड़ सब दुंद रे।
का सोवै दिन रैन विरहिनी जाग रे।।
भवसागर की आस, छांड़ सब फंद रे।
फिरि चलु आपन देस, यही भल रंग रे।।
सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे।।
फूलन सेज संवार, पुरुष बैठे जहां।
ढुरै अग्र के चंवर, हंस राजै जहां।।
कोटिन भानु अंजोर, रोम एक में कहां।
उगे चंद्र अपार, भूमि सोभा जहां।।
सेत बरन वह देस, सिंहासन सेत है।
सेत छत्र सिर धरे, अभय पद देत है।।
करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइए।
मिलो सखी सत पीव, तो मंगल गाइए।।
जुगन जुगन अहिवात, अखंड सो राज है।
पिय मिले प्रेमानंद, तो हंस समाज है।।
कहै कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो।।
धनुष-बाण लिए ठाढ़, योगिनी एक माया हो।
छिनहिं में करत विगार, तनिक नहिं दाया हो।।
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।।
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो।
पिय बिन सून मंदिलवा, बोलन लागे कागा हो।।
कागा हो तुम का रे, कियो बटवारा हो।
पिया मिलन की आस, बहुरि न छूटहि हो।।
कहै कबीर धरमदास, गुरु संग चेला हो।
हिलिमिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो।।

उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश के हुजूमे-खार में गुलहाए-तर तलाश करें लवाए-अब्र में ढूंढें फरोगे-माहो-नजूम रिदाए-खाक में लालो-गुहर तलाश करें हरीमे-जहन के सब झिलमिला रहे हैं चिराग चलो तअल्लिए-शम्मो-कमर तलाश करें रबाबे-वक्त पै छेड़ें तराने-अबदी
दयारे-मर्ग में उम्रे-खिजर तलाश करें
फिर आओ तनतने-खुसरवी की डालें तरह
फिर आओ ताविशे-ताजो-कमर तलाश करें
तवहम्मात की अफसुर्दा वादियों में "शमीम"
दमागे-गर्मे-दिले मअतबर तलाश करें।

उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश करें! जागो! रात में सुबह छिपी है, उसकी खोज करें।
हुजूमे-खार में गुलहाए-तर तलाश करें! जागो! कांटो की झाड़ी में फूल छिपा है, उसकी तलाश करें।

लवाए-अब्र में ढूंढें फरोगे-माहो-नजूम! बादलों की अंधेरी घटाओं में चांद नक्षत्र छिपे हैं। उठो! उसकी तलाश करें।
रिदाए-खाक में लालो-गुहर तलाश करें! धूल में हीरे दबे हैं। उठो! उसकी तलाश करें।
हरीमे-जहन के सब झिलमिला रहे हैं चिराग! बुद्धि तो बड़ा छोटा सा चिराग है। वह भी झिलमिलाता-झिलमिलाता सा, अब बुझा तब बुझा। उसका बहुत भरोसा मत करो। उस पर ही जो भरोसा करके बैठ गए, भटक गए।
हरीमे-जहन के सब झिलमिला रहे हैं चिराग
चलो तजल्लिए-शम्मो-कमर तलाश करें।
इस विराट अस्तित्व में चांद-सूरज छिपे हैं। वे तुम्हारे लिए हैं, उनकी रोशनी तुम्हारे लिए है। वे तुम्हारे रास्ते को रोशन कर सकते हैं पर खोज करोगे तो मिलेंगे। जागोगे तो मिलेंगे। सोया आदमी बस अपनी छोटी सी बुद्धि की टिमटिमाती रोशनी में जीता है। उस रोशनी से कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। उस रोशनी का कोई विस्तार भी नहीं है। उस रोशनी से बस दो-चार कदम जिंदगी के उठ जाते हैं, लेकिन सत्य तक कोई पहुंचना नहीं हो पाता। और यहां चांद-सूरज भी छिपे हैं।
मनुष्य के भीतर बड़े प्रकाश की संभावनाएं छिपी हैं। अनंत प्रकाश के स्रोत से तुम आए हो।.जरा चोट करने की बात है, और झरने फूट पड़ेंगे।.जरा चोट करने की बात है और वीणा तरंगित हो उठेगी, स्पंदित हो उठेगी।
रबाबे-वक्त पै छेड़ें तरानए-अबदी! यह जो समय का वाद्य है, यह जो समय की वीणा है, इस पर अमरत्व का गीत छेड़ें।
यहां समय के नीचे ही छिपा है अमरत्व। काल के पीछे ही अकाल छिपा है। दयारे-मर्ग में उर्मे-खिजर तलाश करें! मृत्यु के इस जीवन-पथ पर जो खोजते हैं, उन्हें अमृत के स्रोत भी मिल जाते हैं।
उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश करें
हुजूमे-खार में गुलहाए-तर तलाश करें
तलाश की बात है। और जो जगे, जो उठे, जो नींद को तोड़े, वही तलाश कर पाएगा। धर्म का इतना ही अर्थ है।
जिंदगी मिलती है--अवसर की तरह, चुनौती की तरह। जो चुनौती को स्वीकार
कर लेता है, जो इस अवसर का उपयोग कर लेता है, उसे परम जीवन मिल जाता है।
यह जिंदगी तो उस परम जीवन का द्वार है। इस पर ही मत अटक जाना। यह तो उस राजमहल का द्वार है। इस द्वार पर ही मत बैठे रह जाना, नहीं तो भिखमंगे ही रह जाओगे। तुम सम्राट होने को पैदा हुए हो, उससे कम पर राजी मत होना। लेकिन सम्राट होने के लिए बड़ी धूल-धवांस चित्त से झाड़नी होगी। नींद और सपने छोड़ देने होंगे।
मैं भी तुमसे कुछ छोड़ने को कहता हूं। संसार छोड़ने को नहीं कहता, स्वप्न छोड़ने को कहता हूं। मैं भी तुमसे कुछ छोड़ने को कहता हूं। पत्नी, बच्चे, परिवार छोड़ने को नहीं कहता। यह मन के पास, मन के दर्पण के पास जो गर्द-गुबार जम गई है, जो स्वभावतः जम जाती है... । यात्रा कर रहे हैं हम जन्मों-जन्मों से, सदियों-सदियों से। यात्रा में यात्री के कपड़ों पर धूल जम ही जाएगी। यह स्वाभाविक है। इस धूल-धवांस को झाड़ दो। और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर छिपा है कोहिनूर। तुम्हारे भीतर मालिक छिपा है। जिसको तुम खोज रहे हो, तुम्हारे भीतर छिपा है। खोजने वाले में छिपा है। और तुम भागे चले जाते हो। और तुमने कभी आंख खोलकर अपने भीतर जरा भी टटोला नहीं।
इसके पहले कि तुम जगत में खोजने निकलो, एक बार अपने भीतर तो झांक कर देख लो। धर्म उस झांकने की कला का नाम है। इसलिए धर्म का प्रारंभ श्रद्धा से होता है, और अंत भी श्रद्धा पर।
श्रद्धा का क्या अर्थ है? श्रद्धा का अर्थ हैः जो दिखाई नहीं पड़ता, उसकी खोज की हिम्मत। श्रद्धा का अर्थ हैः बीज को बोने की हिम्मत। बीज में अभी फूल तो दिखाई पड़ते नहीं। श्रद्धा का अर्थ हैः भरोसा, कि बीज टूटेगा, कि बीज कंकड़ नहीं है। मगर ऐसे तो बीज और कंकड़ में क्या फर्क दिखाई पड़ता है? फर्क तो भविष्य में तय होगा। भविष्य अभी आया नहीं है।

बीज को जब कोई बोता है तो भरोसे की सूचना देता है। श्रद्धा का इशारा
हो रहा है। श्रद्धा की भाव भंगिमा है, बीज को बोने में बड़ी श्रद्धा है। इस बात की श्रद्धा है कि बीज टूटेगा, कंकड़ नहीं है। इस बात की श्रद्धा है कि बीज में फूल छिपे हैं, जो प्रकट होंगे। अभी दिखाई नहीं पड़ते कोई फिकर नहीं। कभी दिखाई पड़ेंगे। जो अभी अदृश्य है, वह दृश्य होगा।
फिर बीज को पानी देता है माली। अब तो बीज दिखाई भी नहीं पड़ता। फूल तो दूर, फूल का दिखाई पड़ना तो दूर, अब तो बीज भी जमीन में खो गया है और बीज भी दिखाई नहीं पड़ता। बड़ी श्रद्धा चाहिए। बीज भी गया, फूलों का कुछ पता नहीं है। देता है पानी, देता है खाद -- और प्रतीक्षा करता है, और प्रार्थना करता है।
श्रद्धा का अर्थ होता हैः शून्य से वार्तालाप। आकाश शून्य है। जब कोई श्रद्धालु हाथ उठा कर आकाश की तरफ प्रार्थना करता है, श्रद्धा की खबर दे रहा है। शून्य उत्तर देगा भी? वहां कोई है जो उत्तर देगा? उत्तर कभी आएगा? लेकिन प्रश्न का बीज डाल रहा है-- इस भरोसे में, कि उत्तर का फूल आएगा। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर हो सकती है, अंधेर नहीं होगा। धीरज रखेगा, भरोसा रखेगा। आता होगा। आना ही चाहिए।
श्रद्धा कभी निष्फल नहीं गई है। और अगर निष्फल गई हो, तो जानना नपुंसक थी। रही ही न होगी। ऊपर-ऊपर थी, झूठी थी, थोथी थी। विश्वास रहा होगा, श्रद्धा न रही होगी। विश्वास और श्रद्धा का वही भेद है। विश्वास का अर्थ होता है--मान लिया। कौन झंझट करे न मानने की, इसलिए मान लिया। लोग कहते हैं, ईश्वर है। अब कौन विवाद करे, किसको फुरसत पड़ी है विवाद करने की? समय किसके पास है? व्यर्थ की बातों में पड़ने के लिए और व्यर्थ की बातों में समय गंवाने के लिए सुविधा किसके पास है? चलो लोग कहते हैं कि ईश्वर है, तो होगा; हम भी विश्वास कर लेते हैं। जब इतने लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।
विश्वास उधार है, झूठा है, बेईमान है।
श्रद्धा का अर्थ होता है, दुनिया कहती हो कि ईश्वर नहीं है, सारी दुनिया कहती हो कि ईश्वर न कभी था न कभी होगा, सब झूठ है, सब कल्पना है, सब अफीम का नशा है, सब मनगढ़ंत है, सब चालबाजों की ईजाद है, सब धोखा-धड़ी है, सब पाखंड है--सारी दुनिया कहती हो, तब भी श्रद्धा नहीं कंपती। श्रद्धा कहती हैः मैं तलाशूं, मैं खोजूं।
उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश करें! रात दिखाई पड़ रही है, सुबह का कुछ पता नहीं है। और तुमने देखा, सुबह जैसे-जैसे करीब आती है, रात और गहन और घनी होती जाती है। सुबह होने के ठीक पहले रात सबसे ज्यादा अंधेरी हो जाती है। उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश करें
हुजूमे-खार में गुलहाए-तर तलाश करें
कांटों की झाड़ी में खोजने जाओगे, चुभेंगे कांटे, हाथ लहू-लुहान भी होंगे। फूल इतनी आसानी से न तो दिखाई पड़ते हैं और न मिलते हैं। फूल उनके हैं, जो खोजते हैं। फूल कीमत मांगते हैं और सबसे बड़ी कीमत श्रद्धा है। श्रद्धा का अर्थ होता हैः जो मुझे नहीं दिखाई पड़ता, उस पर भी मेरे भीतर, कोई अंतरम में कोई कह रहा है--कि है, खोजो, मिलेगा। यही कहीं होगा। होना ही चाहिए।
श्रद्धा का अर्थ हैः प्यास है तो जलधार होनी ही चाहिए। जब मेरे भीतर परमात्मा को पाने की आकांक्षा है तो परमात्मा होना ही चाहिए। क्योंकि बिना परमात्मा के हुए, इस आकांक्षा का कोई स्रोत नहीं हो सकता था।
इस अस्तित्व में ऐसा है ही नहीं कि प्यास हो और पानी न हो; भूख हो और भोजन न हो। भूख के पहले भोजन निर्मित हो जाता है। देखते हैं, मां के गर्भ में बच्चा आता है, और स्तन दूध से भर जाते हैं। अभी बच्चा आया भी नहीं है। अभी बच्चे के आने में देर है। लेकिन स्तन तैयार होने लगे, दूध से भरने लगे।
कोई अपूर्व शक्ति, कोई छिपे हाथ, स्तन तैयार करने लगे--बच्चा आएगा! अभी बच्चा ही नहीं आया, अभी बच्चे की भूख का तो सवाल ही नहीं है। लेकिन भूख के बहुत पहले, दूध की धार निर्मित होने लगी।

पक्षियों को घोंसला बनाते देखा है? वह श्रद्धा है। पक्षियों को कुछ पता भी नहीं है कि अब समय आ गया अंडे रखने का। बस घोंसले बनने लगे। वैज्ञानिक भी चकित हैं, क्योंकि घोंसला बनाना इन पक्षियों को कोई सिखाता नहीं। वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं कि जैसे ही अंडे से बच्चा निकला, उसको उसके माता-पिता से अलग कर लिया और उसे अलग ही बड़ा किया, ताकि कोई सिखाने का अवसर ही न रहे। लेकिन जब मादा गर्भवती होगी, तत्क्षण घोंसला बनाना शुरू कर देगी। बच्चे आते होंगे। उनके लिए घर तो बनाना ही होगा। उनके लिए नीड़ तो बसाना ही होगा। अभी बच्चे आए नहीं हैं। आएंगे भी या नहीं, कुछ पता नहीं है। लेकिन नीड़ बनने लगा।
अगर तुम जीवन को गौर से देखोगे, तो तुम हर जगह श्रद्धा के प्रमाण पाओगे। ऐसे ही मनुष्य के हृदय में परमात्मा की प्यास है।
मुझसे कभी लोग आकर पूछ लेते हैं कि परमात्मा का प्रमाण क्या है? मैं उनसे कहता हूं, तुम्हारे भीतर अगर परमात्मा को पाने की प्यास है तो पर्याप्त प्रमाण है। प्यास प्रमाण है। प्यास को प्रमाण मान लेना श्रद्धा है। अंधेरी रात में सुबह की जो अभीप्सा है वही प्रमाण है कि सुबह होगी। जरा हम तलाश करें।
उठो कि शब में जमाले-सहर तलाश करें
हुजूमें-खार में गुलहाए-तर तलाश करें
लवाए-अब्र में ढूंढें फरोगे-माहो-नजूम
रिदाए-खाक में लालो-गुहर तलाश करें
यहीं-कहीं धूल में ही हीरे-जवाहरात पड़े हैं। अगर हीरे-जवाहरात को खोजने की आकांक्षा पैदा हो गई है तो हीरे-जवाहरात होने ही चाहिए। इस भरोसे का नाम श्रद्धा है।
यहां जो भी हो रहा है, उसमें एक अपूर्व संगति है। कोई विराट आयोजन है। असंबद्ध नहीं हैं घटनाएं। अस्तित्व असंगत नहीं है। अस्तित्व के भीतर चलता हुआ एक तारतम्य है, एक लयबद्धता है। अराजक नहीं है अस्तित्व, अनुशासित है। इसके अनुशासन को देख कर जिसे ख्याल आ जाता है कि कहीं वे अदृश्य हाथ जरूर छिपे होंगे--जो इन पत्तों को रंग जाते हैं, फूलों को रस से भर जाते हैं, गंध से भर जाते हैं, चांद-तारों में रोशनी डाल देते हैं। बच्चा पैदा होता है, एक चमत्कार घटता है। कुछ सेकेंड तक मां-बाप, चिकित्सक, दाई, एक ही आकांक्षा से भरे रहते हैं--बच्चा किसी तरह रो दे, क्योंकि रो दे तो श्वास चल जाए। मां के पेट से पैदा होने के बाद वे दो-चार-दस क्षण, सर्वाधिक मूल्यवान क्षण हैं। उन्हीं पर निर्भर है--जीवन आएगा कि नहीं, बच्चा जागेगा कि नहीं, जीएगा कि नहीं। और कोई हमारे बस में, हाथ में हमारे बात नहीं है कि हम बच्चे को समझा सकें कि श्वास ले पागल, रुक मत! कोई उपाय नहीं है। लेगा तो लेगा, नहीं लेगा तो नहीं लेगा। और बच्चे ने कभी पहले श्वास ली नहीं है। मां के पेट में मां ही बच्चे के लिए श्वास लेने का काम कर रही थी। मां के पेट से बच्चा अलग हो गया है। उसकी नाल भी काट दी गई है। अब बच्चा बिल्कुल स्वतंत्र है। अब उसे श्वास लेना है। और किसी पाठशाला में उसे सिखाया नहीं गया, वह कैसे श्वास ले? लेकिन श्वास आ जाती है। कौन डाल देता है इस श्वास को?
बाइबिल कहती है कि अदम को बनाया मिट्टी से परमात्मा ने, फिर उसके नासापुटों में श्वास डाली, श्वास पूंकी। यह कहानी सच है। कहानी की तरह सच नहीं है, अस्तित्वगत रूप से सच है। हर बच्चे में कोई श्वास डालता है। पता नहीं कौन! जीवन की कोई महत ऊर्जा छुपे-छुपे बच्चे में श्वास डाल देती है। यह चमत्कार रोज घटता है, फिर भी हम अंधे हैं। हम श्वास को चलते देख लेते हैं, और जिसने श्वास पूंकी उसकी तलाश नहीं करते।
देखो चारों तरफ, सब कितना संगीतपूर्ण है! इस संगीत के पीछे तुम सोचते
हो कोई कुशल अंगुलियां नहीं होंगी?
आकाश की तरफ आंख उठाकर शून्य से जो वार्तालाप करे, वह प्रार्थना है।
और आंख बंद करके भीतर के शून्य में जो ठहर जाए, वह ध्यान है। मगर दोनों की शुरुआत श्रद्धा में है।

श्रद्धा का अर्थ होता हैः जो दिखाई नहीं पड़ताः जिसके होने का कोई कारण नहीं, कोई प्रमाण नहीं; लेकिन होना चाहिए, ऐसी अपूर्व भावदशा।
देखते हो तुम, रोज लोग मरते हैं। रोज तुम लाश उठते देखते हो, अर्थी निकलते देखते हो। लेकिन फिर भी तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आता कि मैं मरूंगा।
क्या मामला है? इतने लोग मरते हैं, लेकिन तुम्हें यह ख्याल नहीं आता
कि मैं मरूंगा। जरूर कुछ राज है। इतने लोगों की मृत्यु भी यह सिद्ध नहीं कर पाती तुम्हारे सामने कि मैं मरणधर्मा हूं। तुम्हारे भीतर कहीं कोई श्रद्धा है अमरत्व की।
प्रत्येक व्यक्ति अपने अंतरतम में जानता ही है कि जीवन अमर है। इसका कोई अंत नहीं। तुम खोजते नहीं, तलाश नहीं करते, अन्यथा यही श्रद्धा तुम्हारे जीवन का साक्षात्कार बन जाए।
रबाबे-वक्त पै छेड़ें तरानए-अबदी! यह जो समय की वीणा है, इस पर छेड़ो संगीत! इन श्वासों के भीतर श्वास लेने वाला छिपा है। इस मरणधर्मा देह में अमृत विराजा है।
दयारे-मर्ग में उम्रे-खिजर तलाश करें! यह जो मृत्यु का पथ है--जन्म से लेकर अर्थी तक, झूले से लेकर कब्र तक--यह जो जीवन का पथ है, यह तो मृत्यु का पथ है। मगर इस पर चलने वाला जो यात्री है, वह अमृत है। देहें गिरती हैं, उठती हैं, यात्री चलता रहता है। वस्त्र बदलते हैं, जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, बदल लिए जाते हैं, मगर जो भीतर छिपा है, चलता जाता है।
रबाबे-वक्त पै छेड़ें तरानए-अबदी
दयारे-मर्ग में उम्रे-खिजर तलाश करें
ऐसी तलाश के लिए किसी धनी का साथ चाहिए। और कबीर ने ठीक किया कि अपने
इस अपूर्व शिष्य को, धरमदास को, धनी कहा, धनी धरमदास कहा। धनी वे थे, संन्यस्त होने के पहले। खूब धन था। संन्यस्त होते ही सारा धन लुटा दिया। जब तक संन्यस्त न हुए थे, तब तक कबीर ने कभी उनको धनी नहीं कहा था। जिस दिन सब धन लुटा दिया, उस दिन कबीर ने कहा कि धरमदास! अब तू धनी हो गया। आज से तुझे धनी धरमदास कहूंगा। क्योंकि अब तूने उस धन को पा लिया है जो तुझसे कोई भी छीन न सकेगा। अब तूने उस धन को पा लिया है कि तू बांट कितना ही, चुकेगा नहीं। अब तूने उस धन को पा लिया, जो शाश्वत है।
जागने के लिए, किसी जागने वाला का साथ चाहिए। संगीत सीखते हो तो किसी संगीतज्ञ से सीखते हो न! जिसके हाथ सध गए हों, उसके हाथों को देख कर, तुम्हारे हाथ भी सधने लगते हैं। श्रद्धा भी सीखनी हो तो किसी सत्संग में ही सीखनी होगी; जहां श्रद्धा को कोई उपलब्ध हो गया हो; जहां फूल खिल गए हों। चाहे फूल तुम्हें न भी दिखाई पड़ें, सुवास तो तुम्हें भी पता चलेगी। स्पष्ट-स्पष्ट कुछ पकड़ में न भी आए, तो भी अस्पष्ट तुम्हें अदृश्य की पगचाप सुनाई पड़ने लगेगी।
धनी धरमदास के साथ आने वाले कुछ दिनों में हम यात्रा करेंगे। धनी धरमदास अपूर्व व्यक्तियों में एक हैं। कहा है धरमदास नेः
हम सतनाम के बैपारी।
कोई-कोई लादे कांसा पीतल, कोई-कोई लौंग सुपारी।
हम तो लादा नाम धनी का, पूरन खेप हमारी।
मोती-बिंदु घटहि में उपजै, सुकृत भरत कोठारी।
नाम-पदारथ लादि चला है, धरमदास बैपारी।
पहले भी व्यापार करते थे, फिर भी व्यापार किया। पहले क्षुद्र का व्यापार करते थे, फिर विराट का व्यापार किया। सतनाम का व्यापार किया।
ये वचन तुम्हें याद दिलाएंगे कि दिल खोल कर लुटाया है धनी धरमदास ने।
दिल खोल कर लेना भी, तो सत्संग जम जाएगा। तो प्रीति उमगेगी। तो रस बहेगा।
तो रात सुबह में बदलेगी।
मृत्यु को अमृत में बदलने की कला धर्म है।
ये सारे वचन धर्म के संबंध में, अलग-अलग दिशाओं से इशारे होंगे।
काम क्रोध मद लोभ छांड़ सब दुंद रे।
का सोवै दिन रैन विरहिनी जागु रे।।

का सोवै दिन रैन! हम सोए ही हुए हैं। हमारी नींद आध्यात्मिक है। शारीरिक नींद तो दिन में टूट जाती है, लेकिन आध्यात्मिक नींद दिन में भी जारी रहती है। रात तुम आंख बंद करके सोते हो, दिन तुम आंख खोल कर सोते हो। मगर नींद जारी है। रात तुम सपने देखते हो, दिन तुम इच्छाएं; लेकिन स्वन और इच्छाएं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्वन नींद की इच्छाएं हैं, इच्छाएं तुम्हारे तथाकथित जागरण के स्वप्न हैं।
इच्छा का अर्थ हैः भविष्य; जो नहीं है, उसमें तुम खो गए। जो नहीं है, उसमें खो जाने का ही नाम तो सपना है। जो नहीं है, उसमें खो गए, तो जो है, उससे चूक गए।
का सोवै दिन रैन! धरमदास कहते हैंः कब तक सोओगे? कितना सोओगे? रात भी सोए रहते हो, दिन भी सोए रहते हो। जनम-जनम बीत गए सोए-सोए। जाग कर कब देखोगे? और सोए-सोए जिसे तलाश रहे हो, वह जागकर अभी मिल सकता है, तत्क्षण, यहीं। और सोए-सोए कभी न मिलेगा।
सोए हुए आदमी और परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। इसलिए नहीं कि परमात्मा सोए हुए आदमी से नहीं मिलता। सोए हुए आदमी से भी मिलता है। मगर सोया हुआ आदमी पहचाने कैसे? तुम नींद में पड़े हो, कोई तुम्हारे पास भी आकर बैठा रहे, तो बैठा रहे। उसकी तरफ से तो मिलन हो रहा है, तुम्हारी तरफ से कुछ मिलन नहीं हो रहा है।
मैं एक घर में मेहमान हुआ। वहां एक महिला कोमा में गिर गई है। कोई नौ महीने से कोमा में पड़ी है। पति अब भी फूल लाकर उसके तकिए पर रखते हैं। बच्चे अब भी उसके पैर दबाते हैं। मगर उसे कुछ पता नहीं। चिकित्सक आकर अब भी उसकी नाड़ी देख जाते हैं, मगर उसे कुछ पता नहीं।
ऐसा ही कोमा है तुम्हारा। जब तक परमात्मा नहीं जाना गया है, तब तक समझना कि तुम नींद में हो। जागरण का एक ही सबूत है कि परमात्मा का अनुभव हो जाए, और कोई सबूत नहीं है। इसलिए अगर तुम्हें परमात्मा का अनुभव नहीं हुआ हो, तो समझ लेना कि अभी सोए हो। और किसी जाग्रत व्यक्ति का सत्संग करो।
किसी जागे हुए से जुड़ जाओ। क्योंकि जागा हुआ ही सोए को जगा सकता है।
का सोवै दिन रैन--कोई जागा हुआ ही तुमसे कह सकता है। कोई जागा ही तुम्हें हिला सकता है, झकझोर सकता है।
काम क्रोध मद लोभ, छांड़ सब दुंद रे।
यही द्वंद्व है। और द्वंद्व ही नींद का आधार है। हम दो में बंटे हैं, इसलिए सो गए हैं। बंटने के कारण हमारी शक्ति बिखर गई है। जुड़ जाए, इकट्ठी हो जाए, केंद्र पर आ जाए, हम एक हो जाएं--जागरण हो जाए। हम खंड-खंड हो गए हैं। और हमें खंड-खंड किसने किया है? हमने ही कर लिया है। काम, क्रोध, मद, लोभ--इन्होंने ही हमें द्वंद्व से भर दिया है।
मनुष्य सदा ही, यह मिल जाए, वह मिल जाए, ऐसा हो जाऊं, वैसा हो जाऊं, इसकी दौड़ में लगा है। उस दौड़ का नाम काम है। और अगर तुम्हारी इस दौड़ में कोई बाधा डालता है, तो क्रोध उठता है। तुम धन पाना चाहते हो और कोई प्रतियोगिता करता है बाजार में तुमसे। तुम पद पाना चाहते हो, कोई चुनाव में तुम्हारे खिलाफ खड़ा हो जाता है, तो क्रोध पैदा होता है। तुम जो पाना चाहते हो, उसमें कोई बाधा डाल रहा है, तो शत्रुता पैदा होती है।
काम मूल है--हमारी सारी निद्रा का। फिर काम से और-और चीजें पैदा होती हैं। जो बाधा पड़ेगी, तो क्रोध पैदा होगा। और बाधा तो पड़ेगी ही, क्योंकि यहां अनंत लोग हमारे जैसे ही कामी हैं। वे भी उन्हीं चीजों को पाने चले हैं जिनको तुम पाने चले हो।
हर व्यक्ति राष्ट्रपति हो जाना चाहता है। हर व्यक्ति प्रधानमंत्री
हो जाना चाहता है। अब साठ करोड़ के देश में एक आदमी प्रधानमंत्री होगा। एक को छोड़ कर बाकी तो दुखी होने वाले हैं। और बाकी बदला भी लेनेवाले हैं। इसलिए जो व्यक्ति पद पर पहुंच जाता है, उसे जनता कभी क्षमा नहीं करती। कर नहीं सकती। पद पर जब तक रहता है, तब तक जी-हजूरी करती है, क्योंकि करना पड़ता है। पद से उतरते ही जूते फिंकने शुरू हो जाते हैं।
और तुम मजा देखना, ऐसे व्यक्तियों पर जूते फिंक जाते हैं जिनकी तुम सोच भी नहीं सकते थे। जो कल तक दूसरों पर जूते फिंकवाते रहे थे, जो कल तक

जूता फेंकने वालों के सरदार थे--उन पर जूते फिंक जाते हैं। जैसे ही तुम्हारे हाथ में सत्ता आती है, तुम्हारे साथ जितने लोग चल रहे थे सत्ता की तलाश में, वे सब नाराज हो जाते हैं। जब तक तुम्हारे हाथ में सत्ता रहेगी तब तक झुक-झुक कर नमस्कार करेंगे। करना पड़ेगा। जिसकी लाठी उसकी भैंस। लेकिन जिस दिन तुम्हारी लाठी छिन जाएगी, उस दिन तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा कोई मित्र नहीं। उस दिन जिन्होंने तुम्हें सहारा दिया था कल तक, तुम्हें पद-प्रतिष्ठा तक पहुंचाया था, वे ही तुम्हारे शत्रु हो जाएंगे। जो तुम्हारी स्तुति करते थे, वे ही तुम्हें गालियां देने लगेंगे।
क्या है कारण इसके पीछे? कारण साफ है। पद थोड़े हैं। अब कोई यह पूछ सकता हैः तो पद ज्यादा क्यों नहीं हैं? पद ज्यादा हो सकते हैं, लेकिन तब उनमें मजा चला जाता है। जैसे घोषणा कर दी जाए कि हिंदुस्तान में सभी लोग राष्टपति हैं। मगर तब उसका मजा चला गया। उसका मजा ही इसमें है कि जितना थोड़ा हो, जितना न्यून हो, उतना ही मजा है।
समझो कि कोहिनूर हीरे रास्तों पर पड़े हों, कंकड़-पत्थरों की तरह, तो बस व्यर्थ हो गए। फिर इंग्लैंड की महारानी के राज-मुकुट में लगाए रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। फिर तो कोई भी राह के किनारे से उठा ले। कंकड़-पत्थरों का मूल्य क्यों नहीं है? .जरा सोचो, दुनिया में अगर एक ही कंकड़ होता, कितना ही कुरूप, तो किसी राजमुकुट में जड़ा जाता। हीरे भी कंकड़ ही हैं, बस वे न्यून हैं। यही उनकी खूबी है। सोने और पीतल में और कुछ भेद नहीं हैः पीतल ज्यादा है, सोना न्यून है। जो चीज न्यून है, वह अहंकार को बलवती बनाती हैः मेरे पास है, और किसी के पास नहीं है! जितनी न्यून होती जाती है चीजें, उतना ज्यादा अहंकार को मजा आने लगता है। जब तुम आखिरी शिखर पर पहुंच जाते हो, जहां तुम अकेले हो और कोई भी नहीं, तब अहंकार को बड़ा रस आता है।
अहंकार का रस हैः काम। फिर काम के बहुत रूप हैं। काम को तुम सिर्प सेक्स ही और यौन मत समझ लेना। वह तो एक रूप है। काम के अनंत रूप हैं। जीवन का सारा विस्तार, जीवन का सारा द्वंद्व, जीवन का सारा संघर्ष, हिंसा, उपद्रव--काम ही है। जो बाधा बन जाएगा, वह दुश्मन। उस पर क्रोध पैदा होगा। और अगर तुमने सारे दुश्मनों को समाप्त करके पा लिया, जिसको तुम पाने निकले थे, तुमने अपने काम की पूर्ति कर ली, तो मद पैदा होगा। तीसरा उपद्रव शुरू हुआ।
मद का मतलब हैः काम सफल हो गया। तुम राष्ट्रपति होना चाहते थे और हो गए, तो मद पैदा होगा। मद का मतलब होता है कि देखो, तुमको किसी को भी नहीं मिल पाया, और मुझे मिल गया! तुम्हारी छाती फैल जाती है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम्हारे रंग-ढंग बदल जाते हैं।
सफल राजनीतिज्ञ ज्यादा जीते हैं, असफल जल्दी मर जाते हैं। सफल होते
से ही उनकी उम्र दस साल बढ़ जाती है। एक नशा पैदा होता है। अब जीने में मजा आता है। अब जीने का कुछ अर्थ मालूम होता है। यह जान कर तुम चकित होओगे कि अलग-अलग समाजों में अलग-अलग तरह के लोग ज्यादा जीते हैं। इस पर बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। यूनान में दार्शनिक लंबे जीते थे, क्योंकि यूनान में दार्शनिकों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। सुकरात और प्लेटो और अरस्तू और हेराक्लाइटस और पार्मिनिडीज और पाइथागोरस, यूनान में दार्शनिक लंबा जीता था। उसकी प्रतिष्ठा थी। कवि भी लंबे जीते थे। उनकी भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। हिंदुस्तान में ऋषि-मुनि लंबे जीते रहे। उनकी प्रतिष्ठा थी। तुम यह मत सोचना कि ऋषि-मुनियों के पास कुछ यौगिक विद्या थी, जिससे वे ज्यादा जीते थे। नासमझी की बकवास है। प्रतिष्ठा थी, सन्मान था। राजा भी आकर ऋषि-मुनि के चरणों में झुकता था। योग इत्यादि का इसमें कुछ हाथ नहीं है। क्योंकि यूनान में दार्शनिक कोई योग नहीं करते थे, वे ज्यादा जीते थे। उसी तरह ज्यादा जीते थे जैसे हिंदुस्तान में ऋषि-मुनि ज्यादा जीते थे। अमरीका में व्यवसायी सबसे ज्यादा जीते हैं। धनी आदमी। अमरीका में कवि चालीस साल के आस-पास टांय-टांय फिस हो जाता है। इस पर मनोवैज्ञानिक शोधें हुई हैं और बड़ा चमत्कार अनुभव होता है कि ऐसा क्यों हो जाता है? अमरीका में कहानीकार, कवि, लेखक, दार्शनिक नहीं ज्यादा जी पाते। अमरीका में क्या

प्रतिष्ठा है दार्शनिक की? धन एकमात्र दर्शन है। तो जिसके पास धन है, वह लंबा जीता है।
तुम देखते हो, हिंदुस्तान में फिल्म अभिनेता देर तक जवान रहते हैं। कोई योग साध रहे हैं? कोई योग नहीं साध रहे हैं। लेकिन फिल्म-अभिनेता की प्रतिष्ठा है, सन्मान है। वह ज्यादा देर तक जवान रहता है। पचास साल, पचपन साल का हो जाता है, और फिल्मों में पच्चीस साल के जवान का काम करता है-- कालेज का विद्यार्थी! फिर जी जंचता है।
सारी दुनिया में ऐसा हो रहा है। अभिनेता लंबे जीने लगे हैं। राजनेता
भी लंबे जीते हैं। जिनके पास काम की प्रतिष्ठा हो जाती है, संपन्नता हो जाती है, जो पहुंच जाते हैं, वांछित लक्ष्य को पा लेते हैं, उनमें मद पैदा होता है। अहंकार जिलाने वाली संजीवनी है। इसलिए तो जो व्यक्ति परम निर-अहंकारिता को प्राप्त हो जाता है, उसकी शरीर से विदाई शुरू हो जाती है। उसका मद टूट गया। शरीर से उसके संबंध उखड़ जाते हैं, जैसे भूमि से वृक्ष उखड़ गया। और फिर दुबारा उसका आगमन नहीं होता। क्योंकि आने के लिए मद चाहिए। मद ही न रहा। इसलिए बुद्ध फिर दुबारा नहीं जन्मते। जन्म नहीं सकते।
और जो मद की अवस्था में पहुंच गया, जिसका अहंकार तृप्त हो गया, उसे लोभ पैदा हाता है। लोभ का मतलब होता हैः जो मुझे मिल गया वह तो मेरे पास रहे ही, और ज्यादा मुझे मिल जाए। जो मंत्री हो गया वह मंत्री से नीचे नहीं उतरना चाहता, मुख्यमंत्री हो जाना चाहता है। जो कैबिनेट में पहुंच गया, केंद्रीय, वह अब वहां से नहीं हटना चाहता। उसके दो काम हैं अब, दो ही जीवन लक्ष्य हैंः जहां पहुंच गया वहां पैर जमा कर अड़ा रहे। अगर आगे जा सके, तो ही उस पद को छोड़ सकता है, पीछे न जाना पड़े। तो उसके दो काम हैं। जहां बैठा है वहां तो पकड़ कर बैठा रहे। और आगे कोई बैठा हो तो उसको धक्के देता रहे कि कोई जगह खाली हो जाए तो वह आगे पहुंच जाए।
लोभ का अर्थ होता हैः जो है उसे जोर से पकडो, कि कुछ छूट न जाए। जितना
मिल गया है, उसमें से छूटे न। और जितना अभी आगे और पड़ा है, वह भी मिल जाए। लोभ कोई ंअंत नहीं है। क्योंकि ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां तुम्हारी कल्पना तृप्त हो सके।
तुम कहोगेः क्यों? किसी आदमी के पास दुनिया की सबसे ज्यादा संपत्ति
हो जाए, फिर तृप्त नहीं होगा?
नहीं होगा। क्योंकि अगर एक ही वासना होती तो मामला हल हो गया होता। वासनाएं अनेक हैं।
जैसे समझो, नेपोलियन की ऊंचाई.जरा कम थी--पांच फीट, दो इंच। बड़ा सम्राट, बड़ा साम्राज्य; मगर यही पीड़ा उसकी थी। जब भी किसी आदमी को जरा लंबा देख लेता, उसके घाव लग जाते। उसको बड़ी चोट लग जाती थी। अब वह इसी से परेशान रहा जिंदगीभर। उसकी जीवन-कथा लिखने वाले लेखक लिखते हैं कि यह उसका आब्सेशन था। यह बस उसका एकमात्र रोग था, कि कोई उससे लंबा आदमी न दिखाई पड़ जाए। उसने अपने जनरल ऐसे चुने थे जिनकी ऊंचाई कम थी। कोई लंबा जनरल उसके बरदाश्त के बाहर हो जाता था, क्योंकि उसके पास अगर खड़ा हो जाए तो वह छोटा मालूम पड़ता था।
अब देखते हो, साम्राज्य हो, संपदा हो, सब हो, तो भी एक छोटी सी बात छोटा
कर सकती है! धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, और एक भिखारी मस्त चाल से चलता हुआ रास्ते से निकल जाए और ईर्ष्या पैदा हो जाएगी। या तुम किसी को गहरी नींद में सोया हुआ देख लो, एक मजदूर, जो अपनी ठेला-गाड़ी को रोक कर, भरी दुपहरी में उसी के नीचे पड़ा सो गया है। और मजे से सो रहा है और रास्ता चल रहा है, कारें निकल रही हैं, और भोंपू बज रहे हैं, शोरगुल मच रहा है, मजे से सो रहा है। और तुम रात-भर अपने बिस्तर पर करवटें बदलते हो, और नींद नहीं आती। बेचैनी हो गई, ईर्ष्या जग गई।
अमीर आदमी गरीब से ईर्ष्या करते हैं, यह जानकर तुम्हें हैरानी नहीं होनी चाहिए। अमीर आदमी सदा ही सोचते हैंः गरीब बड़े मजे में हैं, बड़े सुख-चैन में हैं। गरीब अमीर से ईर्ष्या करते हैं। वे सोचते हैंः अमीर बड़े मजे में हैं। मजे में यहां कोई भी नहीं है। देहात का आदमी सोचता हैः शहर में लोग मजा लूट रहे हैं। मजा बंबई में है। बंबई में जो रहता है वह सोचता हैः

गांव में कैसी शांति! कैसा स्वाभाविक सौंदर्य! जो गांव में रहता है उसे कोई स्वाभाविक सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता। कीचड़-कबाड़ और गोबर और मक्खियां और मच्छर, बस यही दिखाई पड़ते हैं। शहरों में रहने वाले कवि जब गांव के संबंध में कविता लिखते हैं, उनमें न मच्छर आते हैं, न गर्द-गुबार, न गरमी, न गोबर, न रास्तों पर मल-मूत्र, कीचड़, कुछ भी नहीं आता। उसमें सिर्प फूल दुल्हन की तरह सजे खड़े होते हैं। हरियाली फैली होती है। सुख-शांति छायी होती है।
यहां किसी भी व्यक्ति को तृप्ति मिलनी संभव नहीं है। क्योंकि जो तुम्हारे पास होगा, उससे बहुत कुछ शेष रह गया है। सच तो यह हैः तुम जब एक चीज को पाने में लग जाते हो, तो तुम्हारी सारी ऊर्जा उसमें लग जाती है। और सारे अन्य जीवन के अंग अपंग रह जाते हैं। जो आदमी धन पाने जाता है, अक्सर मूढ़ होता है। क्योंकि सारी ऊर्जा तो धन पाने में लग गई, बुद्धिमत्ता कमाने का अवसर कहां रहा? जो आदमी बुद्धिमान होने में लग जाता है, अक्सर अव्यावहारिक हो जाता है। क्योंकि सारी ऊर्जा तो बुद्धिमान होने में लग गई, व्यावहारिकता कहां सीखता? समय कहां मिला?
जिंदगी में जब हम चुनाव कर लेते हैं, तो बाकी चीजें जो छूट गई हैं, एक दिन न एक दिन उनकी पीड़ा सताएगी। और इससे द्वंद्व पैदा होता है। पहले तो कोई वासना पूरी नहीं होती, और सदा आगे कुछ शेष रहता है। फिर पूरी कोई वासना हो भी जाए तो अनंत वासनाएं अधूरी रह गयी हैं। जो पूरी हो गईं, वह तो भूल जाती हैं; जो अधूरी रह गईं वे कांटे की तरह चुभती हैं।
काम क्रोध मद लोभ, छांड़ सब दंद रे।
का सोवै दिन रैन, विरहिनी जागु रे।।
धरमदास कहते हैंः जागो! कब तक द्वंद्व झेलते रहोगे? कब से तुम विक्षिप्तता झेल रहे हो! कितने दिनों से दौड़ते-दौड़ते थक गए हो, टूट गए हो! जीवन तुम्हारा कितना अर्थहीन हो गया है! अब जागो!
दास्ताने-हयात कुछ तो हो
सूरते-वाकियात कुछ तो हो
गलत अंदाज ही सही लेकिन
निगहे-इल्तफात कुछ तो हो
न सही इशरते-हयात मगर
फर्के-मौतो-हयात कुछ तो हो हस्तीए-बेसबात कुछ भी नहीं
हस्तीए-बेसबात कुछ तो हो
महर्बानी ही महर्बानी क्या
महर्बानी में बात कुछ तो हो
दौलते-दर्द मिल गई "शम्सी"
हासिले-कायनात कुछ तो हो
यहां कुछ हाथ आता कभी लगता नहीं। दास्ताने-हयात कुछ तो हो! जीवन कथा यहां है क्या?
दास्ताने-हयात कुछ तो हो
सूरते-वाकियात कुछ तो हो
यहां कुछ कभी घटता ही नहीं। सपनों में कहीं कुछ घट सकता है? समय ही जाया होता है। तुम्हारा सारा जीवन एक रिक्त मरुस्थल है।
भवसागर की आस, छांड़ सब फंद रे।
इस संसार से आशा बना रखी है, तो फिर तुम सोए रहोगे। वही आशा नींद है। भवसागर की आस--यहां कुछ मिल जाएगा, यहां कुछ मिल सकता है! कभी किसी को नहीं मिला। सिकंदर भी खाली हाथ जाते हैं। धनपति भी दरिद्र मरते हैं। सम्राट भी भिखमंगे ही रह जाते हैं। यहां कभी किसी को कुछ नहीं मिला। लेकिन एक आशा है, जो जलती रहती है भीतर। किसी को न मिला हो, मुझे शायद मिल जाए।
भवसागर की आस, छांड़ सब फंद रे।
इसी आशा का फंदा है, जो आदमियों की गर्दन में अटका है और सूली लगी हुई है। इस आशा से जो मुक्त हो गया, वह संसार से मुक्त हो जाता है।

मैं तुमसे संसार से भागने को नहीं कहता। इस आशा को छोड़ दो, इस आशा को गिरा दो। और ध्यान रखना, एक भूल अकसर हो जाती है। लोग आशा छोड़ देते हैं, तो निराशा पकड़ लेते हैं। निराशा आशा का ही उल्टा रूप है। निराशा आशा ही है-- शीर्षासन करती हुइ, र् सिर के बल खड़ी हुई। अगर आशा सच में ही छूट गई तो निराशा भी उसी के साथ छूट जाती है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू नहीं बचा सकते और एक पहलू नहीं छोड़ सकते। या तो दोनों बचते हैं, या दोनों छूटते हैं। अगर तुम्हें कोई धार्मिक आदमी निराश मालूम पड़े तो समझ लेना वह धार्मिक नहीं है। वह सांसारिक आदमी ही है। आस उसने छोड़ी नहीं है; सिर्प आस के पहलू को छिपा लिया है और निराशा के पहलू को ऊपर कर लिया है। सिक्का उलटा कर लिया है, बस।
असली धार्मिक आदमी न तो जगत से आशा रखता है और न निराशा। आशा-निराशा
से जो मुक्त हो गया, वही द्वंद्व के बाहर है। वही जागरण फलता है।
भवसागर की आस, छांड़ सब फंद रे।
फिरि चलु अपन देस यही भल रंग रे।।
और जब यहां की आशा-निराशा छूट जाएगी, तो जड़ें उखड़ जाएंगी। संसार में हमारी जड़ें, हमारी आशा-निराशाएं हैं। जड़ उखड़ते ही "फिरि चलु आपन देस"ष्ठ फिर अपने देश की यात्रा शुरू हो। उसकी याद जग जाए तुम में, तो विरह का जन्म हुआ। इसलिए धनी धरमदास कहते हैंः विरहिनी जागु रे!
किस कदर दूर हूं
सख्त मजबूर हूं
जज्बए-इश्क से
शोलाए-तूर हूं
कोई पर्दा नहीं
फिर भी मस्तूर हूं
हंस रही हूं मगर
रंज से चूर हूं
तेरा शिकवा नहीं
खुद ही मजबूर हूं
हम अपने ही हाथ से अपने पैर काट लिए हैं। अपने ही हाथ से अपने पंख तोड़ लिए हैं। हम अपने ही हाथ से मजबूर हो गए हैं। हम अपने ही हाथ से दूर हो गए हैं।
आशा को जाने दो। क्या इतना काफी नहीं, जितना तुमने देखा है? हर बार आशा हारती है, मगर फिर तुम उसे पुनरुज्जीवित कर लेते हो। धन पाना चाहा था, पा लिया--और कुछ नहीं पाया। और दिखता है, कुछ नहीं पाया। मगर तब तुम नई आशा बना लेते हो कि शायद पद पाने से कुछ हो जाए। पद पा लेते हो, और देखते हो कुछ नहीं पाया। मगर फिर सोचते हो, शायद यश पाने से कुछ हो जाए। ऐसे तुम आशाएं बदलते रहते हो; करवटें बदलते रहते हो, मगर आशा मात्र जाती नहीं है; किसी न किसी रूप में जीवित रहती है; किसी न किसी रूप में जलती रहती है। तुम उसमें तेल डालते ही रहते हो।
सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे।।
फिरि चलु आपन देस! धनी धरमदास कहते हैंः चलो! अपने देश वापस चलें। यह हमारा घर नहीं। यह हमारा देश नहीं। हम कहीं और से आते हैं। हम हंस हैं किसी मानसरोवर के और यहां तलैयों में बैठ गए हैं--कीचड़-भरी तलैयों में! हम हंस हैं, जो मोती चुगें। हंसा तो मोती चुगे!
और यहां कंकड़-पत्थरों पर चोंचें मार रहे हैं। हम हंस हैं, जो मानसरोवर
के स्वच्छ जल में तैरें। हम यहां कीचड़ों में बैठे हैं। हम बगुलों के साथ बैठे हैं।
सुन सखि पिय कै रूप! धनी धरमदास कहते हैं कि मैं अपना देश देख कर आया। मैं अपने देश में पहुंच गया हूं। और प्यारे का रूप तुम से कहना चाहता हूं। तुम किस में उलझे हो? तुम किन रूपों में उलझे हो? तुम्हें पता ही नहीं कि कौन विराट प्रीतम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है! तुम कंकड़-पत्थर बीन रहे

हो? सारा साम्राज्य तुम्हारा है। तुम क्षुद्र आकांक्षाएं कर रहे हो! विराट तुम पर बरसने को आतुर है।
सुन सखि पिय कै रूप! तो कहते हैं, मैं तुझसे कहता हूं कि सुन, उस प्यारे
का रूप सुन! लेकिन बड़ी तकलीफ हैः "तो बरनत ना बने।" देखा तो है, स्वाद तो लिया है, आंखें तो भरी हैं उसके रूप से; लेकिन वर्णन करते नहीं बनता, शब्दों में नहीं आता, शब्दों में नहीं अटता।
वे तसव्वुर में यकायक आ गए
हिज्र की सूरत बदल कर रह गई
ध्यान में एक झलक आ जाती है उनकी कि जहां नरक था वहां स्वर्ग हो जाता है।
वे तसव्वुर में यकायक आ गए
हिज्र की सूरत बदल कर रह गई
नरक एकदम स्वर्ग हो जाता है। कहते नहीं बनता। हमारी भाषा नरक की है।
और अचानक स्वर्ग हो जाता है! हम रहे अंधरी रात में और अचानक सुबह हो गई। कैसे कहें? हम तो अंधेरा ही जानते हैं। अंधेरे की हमारी भाषा है। अंधेरे से हम परिचित हैं। इस रोशनी को कैसे प्रकट करें? भूखे को तृप्ति हो गई, कैसे कहें? प्यासे को जल मिला, कैसे कहें? पहले तो कभी जल मिला न था, पहले तो कभी तृप्ति हुई न थी। अतृप्ति की भाषा तो हमारे पास है।
इसलिए तुमने एक बात देखी? लोगों को अगर झगड़े के लिए उकसाना हो तो भाषा बड़ी कुशल है। अगर लोगों को कहना हो कि चलो घिराव करो, हड़ताल करो, पत्थर फेंको, मस्जिद में आग लगा दो कि मंदिर मिटा दो, कि हिंदू मार डालो कि मुसलमान काट डालो--भाषा बड़ी कुशल है। लोग एकदम तैयार हो जाते हैं। वे कहते हैंः कहां है मस्जिद? कहां है मंदिर? लोग तो उबल रहे हैं घृणा से। उनको कोई भी निमित्त, कोई भी बहाना चाहिए। और जब लोग नारे लगाने वाले लोगों के पीछे चले जाते हैं तो नारे लगाने वाले लोग समझते हैं कि कोई बड़ी क्रांति हो रही है।
कोई क्रांति यहां कभी नहीं होती। यहां तो सिर्प घृणा की भाषा लोग समझते हैं; इसलिए घृणा की भाषा बोलो, साथ हो जाते हैं। लोगों को ध्यान समझाओ, हजारों को समझाओ, एकाध साथ होता है। लोगों को घृणा भड़काओ, एक को समझाओ, हजार चले आते हैं। लोगों को उकसाना हो, भड़काना हो, तो भाषा बड़ी कारगर है।
तुम देखते हो, राजनेताओं को कितने लोग सुनने जाते हैं! लाखों लोग सुनने जाते हैं! वहां भाषा हिंसा की है, भड़काने की है। राजनेता बड़े प्रसन्न भी हो जाते हैं, जब लोग भड़क जाते हैं। सोचते हैं कि शायद उन्होंने कोई बहुत बड़ा काम कर दिया मनुष्य-जाति के हित में। उनको पता नहीं है कि लोग तो भड़कने को तैयार बैठे हैं। लोग लड़ने को तैयार हैं। लोग मरने-मारने को तैयार हैं। उनको बहाने चाहिए, निमित्त चाहिए! कोई भी निमित्त हो, कहीं भी लड़ा दो, वे लड़ेंगे। और भाषा बड़ी कुशल है।
लेकिन जब शांति की बात करो तो भाषा एकदम नपुंसक है। और जब प्रेम की बात करो तो भाषा एकदम व्यर्थ होने लगती है। और जब परमात्मा की भाषा में लाने की कोशिश करो, परमात्मा आता ही नहीं है।
सुन सखि पिय के रूप, तो बरतन ना बने।
फिर भी धनी धरमदास कहते हैंः कहूंगा। कुछ तो कहूंगा। कुछ इशारा सही। कुछ भनक पड़ जाए। अजर अमर तो देस! वह देश ऐसा है जहां न कोई बूढ़ा होता है, न कोई मृत्यु कभी घटती है।
अब ख्याल रखना, इसमें हमें नकार शब्दों का उपयोग करना पड़ रहा है। सारे परम ज्ञानियों को नकारात्मक भाषा बोलनी पड़ती है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि परमात्मा कैसा है, लेकिन यह कहा जा सकता है कि कैसा नहीं है। सुबह हो गई। सूरज निकल आया। जो सदा रात ही रात रहा था, जो रात का चमगीदड़ है, या रात का उल्लू है, वह अगर खबर दे तो क्या खबर दे! वह यही कहेगाः वहां रात नहीं है, वहां अंधेरा नहीं है। यही तो सारी भाषा है। अब तक सारे शास्त्रों ने इसका उपयोग किया है।
"अजर"--वहां जरा नहीं है। "अमर"--वहां मृत्यु नहीं है। नकार।

इसलिए तुम देखोगे, शास्त्रों में सदा नकारात्मक भाषा है। परमात्मा कैसा है, पूछो; और शास्त्र बताते हैं, कैसा नहीं है। तुम कुछ पूछते हो, शास्त्र कुछ कहते हैं। कारण?
कारण यही है। हमारी भाषा संसार के लिए बनी है, सांसारिकों ने बनायी है। इसमें उस अलौकिक को पकड़ लेने का उपाय नहीं है। यह क्षुद्र को पकड़ पाती है, विराट इससे छूट जाता है। और अगर विराट को जबर्दस्ती इसमें समाने की कोशिश करो तो विराट मुर्दा हो जाता है।
सुगंध सागर भरे!
दूसरा उपाय यह है कि जो छोटे-मोटे सुख के अनुभव यहां हुए हैं उनको हम बहुत बड़ा करके कहें। यहां सुगंध तो सागर भर नहीं होती; बूंद भर सुगंध मिल जाए तो बहुत। वहां सागर भरे हैं। एक दूसरा उपाय यह है कहने का, कि जो यहां छोटा-मोटा है, वह वहां बहुत है। संभोग में थोड़ा सुख मिलता है, तो वहां अनंतगुना संभोग का सुख! प्रेम में यहां थोड़ा-बहुत सुख मिलता है, वहां अनंतगुना प्रेम का सुख। सुगंध सागर भरे!
फूलन सेज संवार, पुरुष बैठे जहां।
फूलों की सेज है। फूल इस जगत में सबसे ज्यादा अपार्थिव वस्तु हैं। इसलिए फूल को हमने प्रार्थना में पूजा के लिए चुना है। इस जगत में फूल सबसे ज्यादा अपार्थिव है, अपौदगलिक, इममैटीरियल वस्तु है। फूल को देख कर लगता है न, कितना नाजुक। सपना लगता है जैसे साकार हुआ। छुओ तो कुम्हला जाए। तोड़ो कि मुरझा जाए। सुबह था और सांझ पंखुड़ियां झर जाएंगी और खो जाएगा। फूल ऐसा लगता है कि कुछ ऐसा हो रहा है जो होना नहीं चाहिए। पत्थर बिल्कुल ठीक मालूम पड़ते हैं इस दुनिया में। मौजू लगते हैं। उनकी संगति दिखाई पड़ती है। फूल ऐसा लगता है अजनबी है, किसी और देश से आया है। क्षण भर को आ गया है, भटक गया है जैसे राह से, फिर विदा हो जाएगा! पत्थर यहीं के यहीं पड़े रहते हैं--शाश्वत हैं। फूल क्षणभंगुर हैं। फूल की खिलावट, फूल का रंग-- सब अलौकिक मालूम होता है। फूल की गंध, फूल का कुंवारापन!
फूलन सेज संवार पुरुष बैठे जहां! वहां मालिक... पुरुष यानी परमात्मा, फूलों की सेज पर बैठा हुआ है।
ढुरै अग्र के चंवर, हंस राजै जहां। हंस पहुंच गया है वापिस मानसरोवर में। भूल गया वे सब दुख-स्वप्न ताल-तलैयों के। छोड़ दिया संग-साथ बगुलों का, जाग्रत हो गया है।
कोटिन भानु अंजोर... और जैसे करोड़ों सूरज एक साथ जल उठे हों। देखना, वही--इस एक सूरज से कैसे कहें उस प्रकाश को! तो या तो कहते हैं अंधेरा नहीं है वहां और या फिर कहते हैं कि करोडों सूरज वहां एक साथ जल उठे हैं।
कोटिन भानु अंजोर, रोम एक में कहां। एक रोएं भर जगह नहीं खोज सकते जहां अंधेरा हो। रोशनी ही रोशनी है। उगे चंद्र अपार... और गिनती नहीं हो सकती, इतने चांद उगे हैं। भूमि सोभा जहां। जहां शोभा की ही भूमि है, जहां सौंदर्य की ही भूमि है!
सेत बरन वह देस... । शुभ्र है वर्ण, सफेद है वह देश।
समझना। शुभ्र रंग वस्तुतः एकमात्र रंग है। शेष सब रंग उसी के अंग हैं, खंड हैं।
इसलिए तुमने कभी देखा, वर्षा के दिनों में सूरज निकल आए और वर्षा होती हो, तो इंद्रधनुष बन जाता है। इंद्रधनुष क्या है? सूरज की किरणें हवा में झूलती हुई पानी की बूंदों में से टूट जाती हैं सात रंगों में। अगर तुम सात रंग का एक पंखा बनाओ, जिसमें सात पंखुड़ियां हों सात रंग की और उस पंखे को बिजली से जोर से चलाओ तो सातों रंग खो जाएंगे और सफेद रंग प्रकट हो जाएगा। सफेद रंग एकता का प्रतीक है, अद्वैत का प्रतीक है। यह जगत सतरंगा है। यहां सब चीजें खंड-खंड हो गई हैं। वहां सब चीजें फिर पुनः इकट्ठी हो गई हैं।
सेत बरन वह देस... । वह देश श्वेत है। सिंहासन सेत है। वहां का सिंहासन
भी सफेद है। सेत छत्र सिर धरे... और वहां शुभ्रता ही मुकुट भी है। अभयपद देत है। और वहां पहुंचते ही भय विलीन हो जाते हैं। भय है ही क्या--सिवाय मृत्यु के? मृत्यु ही जहां नहीं वहां भय भी नहीं।

करो अजपा के जाप, प्रेम उर लाइए।
उस देश में कैसे पहुंचोगे? उस प्यारे को कैसे पाओगे? करो अजपा कै जापष्ठ ऐसा जाप सीखो जिसमें शब्द नहीं होते। ऐसा जाप सीखो, जिसमें वाणी सो जाती है। जहां वाणी सो जाती है, वहां चैतन्य जागता है। जहां शब्द खो जाते हैं, वहां शून्य झंकृत होता है। प्रार्थना तभी परिपूर्ण होती है, जब सब शब्द खो जाते हैं। प्रार्थना जब पूर्ण होती है तो परिपूर्ण होती है। प्रार्थना जब शून्य होती है तो परिपूर्ण होती है। प्रार्थना का शून्य होना ही पूर्ण होना है। तुमने अगर कुछ कहा प्रार्थना में, उतनी ही दखल डाल दी प्रार्थना में। कुछ कहने की जरूरत नहीं है। उससे कहना क्या है? जो है, वह जानता है। शिकायत क्या करनी है? शिकवा क्या है? मांगना क्या है? जितना दिया है, उसको ही तो जी लो। जितना दिया है, उसे ही तो भोग लो। जितना दिया है, उसका ही तो भजन कर लो। जितना दिया है, वही अपार है। वही तुम्हारे पात्र में कहां समा रहा है? वही तो तुम्हारे पात्र से बिखरा जा रहा है।
मांगो मत, कहो मत। चुप झुक जाओ। गहन चुप्पी में झुक जाओ। उस झुकने में
ही अजपा जाप है।
करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइए। बस इतनी ही बात रहेः शब्द तो न हों, प्रेम हो हृदय में। प्रेम की झंकार हो।
बेखबर मंजिले-मकसूद नहीं दूर
मगर आलमे होश से हस्ती को गुजर जाने दो
यह जो तुमने समझदारी बना रखी है अपनी, जिसको तुम होश कहते हो, जिसको तुम बुद्धिमानी कहते हो, ये जो तुमने गणित बिठा रखे हैं--यह जो तुमने हिसाब-किताब जिंदगी का कर रखा है--इस सब को जाने दो। प्रेम का मतलब होता हैः गया हिसाब-किताब, गए गणित, गए तर्क। प्रेम है अतर्क।
प्रेम देना जानता है, मांगना नहीं जानता। तर्क मांगना जानता है, देना नहीं जानता। तर्क कंजूस है। प्रेम दाता है। जब तुम परमात्मा से कुछ मांगते हो, तब प्रेम की बात नहीं है यह। प्रेम मांगता ही नहीं। प्रेम मांगना जानता ही नहीं।
करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइए।
मिलो सखी सत पीव, तो मंगल गाइए।।
और तभी मंगल होगा, तभी उत्सव होगा। उसके पहले सब उत्सव झूठे हैं। विवाह हो रहा है, तुम बैंड-बाजे बजा रहे हो। क्या कर रहे हो? उसके पहले सब विवाह झूठे हैं। उसके साथ ही भांवर पड़े तो भांवर पड़ी। क्षुद्र बातों के उत्सव मना रहे हो उत्सव जैसा यहां क्या है? मन को समझा लेते हो। शोरगुल मचा लेते हो। सोचते हो, बड़ा आनंद आ रहा है। न तो आनंद आ रहा है, न पहले कभी आया है, न आगे इसी ढंग से जिए तो कोई आशा है।
मगर फिर भी आदमी को उत्सव मनाने पड़ते हैं--दीवाली है, होली है। थोड़ा समझा लेता है अपने को। ये उत्सव धोखे हैं। घर पर दिए जला लिए, दीपमालाएं सजा लीं, फटाखे फोड़ लिए। ऐसे अपने को भ्रांति पैदा कर रहे हो उत्सव की? भीतर दिवाला निकला हुआ है, बाहर दीवाली मना रहे हो। किसको धोखा दे रहे हो, इसलिए एकाध दिन मना लेते हो, फिर दूसरे दिन वही मातम, फिर वही मुहर्रमी चेहरा! चले! ... यह तुम्हारा उत्सव तुम्हें बदलता कहां है? यह उत्सव ही झूठा है।
मगर आदमी की मजबूरी मैं समझता हूं। जिंदगी बिल्कुल बिना उत्सव के हो
तो जीना दूभर हो जाए। तो हमने झूठे उत्सव बना लिए हैं। चलो बहाना सही। असली नहीं तो नकली सही।
धरमदास कहते हैं करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइए। प्रेम हो हृदय में
और झुकना हो जाए--शांत, मौन, बिना शब्द के, बिना मांग के, समर्पण हो जाए... मिलो सखी सत पीव... तो उस प्यारे से अभी मिलन हो जाए, इसी क्षण मिलन हो जाए। और वह मिलन हो, तो मंगल गाइए। फिर उत्सव है। फिर जीवन महोत्सव है। फिर यहां आनंद ही आनंद है और रस की धार ही धार है। फिर नाचो और गाओ और गुनगुनाओ। फिर फूल खिलेंगे तुम्हारे व्यक्तित्व में। फिर सुगंध बिखरेगी। फिर दीये जलेंगे। फिर आई दिवाली। फिर खेलो रंग से। फिर आई होली। झूठी होलियों में मत उलझो और झूठी दीवालियों में मत उलझो।

झुठलाओ मत अपने को। तुम्हारी जिंदगी मरुस्थल है। इसमें तुम जितने मरूद्यान बना लिए हो, वे सब कल्पित हैं। मरूद्यान तो एक ही है। परमात्मा से मिलन। उस प्यारे से साथ हो जाए।
मिलो सखी सत पीव तो मंगल गाइए।
जुगन जुगन अहिवात, अखंड सो राज है।
उससे हो जाए जोड़ तो सुहाग सदा के लिए हो जाता है। यहां तो तुम्हारा सुहाग क्या है? तुम्हारी सधवा और विधवा में क्या कोई बहुत फर्क है? .जरा भी फर्क नहीं है। विधवा पति के बिना विधवा है और सधवा पति के साथ विधवा है, बस इतना ही फर्क है। यहां की दोस्ती दो कौड़ी की है। यहां के सब नाते-रिश्ते झूठे हैं।
जुगन जुगन अहिवात... अहिवात यानी सुहाग। सदा रहे सुहाग, ऐसा कुछ खोज लो। अखंड सो राज है... फिर जो कभी खंडित न होता हो, ऐसा साम्राज्य खोज लो। पिय मिले प्रेमानंद तो हंस समाज है। और उस प्यारे से मिलना हो जाए तो
सब मिल गया, क्योंकि प्रेमानंद मिल गया। और उससे मिलन के बाद ही तुम हंसों के समाज के हिस्से हुए। नहीं तो तुम बगुलों के साथ बैठे हो। और हंसों ने बगुलों के साथ रह-रह कर समझ लिया है कि वे भी बगुले हैं। जिनके साथ रहोगे वैसे ही हो जाओगे।
तुमने सुनी है कहानी? --एक सिंहनी छलांग लगाती थी एक पहाड़ी से। गर्भवती थी, बीच में ही बच्चा हो गया। वह बच्चा नीचे गिर गया। नीचे से भेड़ों का एक झुंड निकल रहा था, वह बच्चा भेड़ों के साथ हो लिया। उसने बचपन से ही अपने को भेड़ों के बीच पाया, उसने अपने को भेड़ ही जाना। और तो जानने का उपाय क्या था?
इसी तरह तो तुमने अपने को हिंदू जाना है, मुसलमान जाना है, जैन जाना है। और तुम्हारे जानने का उपाय क्या है? जिन भेड़ों के बीच पड़ गए, वही तुमने अपने को जान लिया है। इसी तरह तुम गीता पकड़े हो, कुरान पकड़े हो, बाइबिल पकड़े हो। जिन भेड़ों के बीच पड़ गए, वे जो किताब पकड़े थीं, वहीं तुमने भी पकड़ ली हैं। तुम्हारे व्यक्तित्व का अभी जन्म कहां हुआ?
वह सिंह का बच्चा भेड़ होकर रह गया। भेड़ों जैसा मिमियाता। भेड़ों के साथ घसर-पसर चलता। भेड़ों के साथ भागता। और भेड़ों ने भी उसे अपने बीच स्वीकार कर लिया। उन्हीं के बीच बड़ा हुआ। उन्हें कभी उससे भय भी नहीं लगा। कोई कारण भी नहीं था भय का। वह सिंह शाकाहारी रहा। जिनके साथ था, भेड़ें भागतीं तो वह भी भागता।
एक दिन ऐसा हुआ कि एक सिंह ने भेड़ों के इस झुंड पर हमला किया। वह सिंह
तो चौंक गया। वह यह देख कर चकित हो गया कि यह हो क्या रहा है। उसे अपनी आंखों पर भरोसा न आया। सिंह भाग रहा है भेड़ों के बीच में! और भेड़ों को उससे भय भी नहीं है; घसर-पसर उसके साथ भागी जा रही हैं। और सिंह क्यों भाग रहा है? उस बूढ़े सिंह को तो कुछ समझ में नहीं आया। उसका तो जिंदगीभर का सारा ज्ञान गड़बड़ा गया। उसने कहा, यह हुआ क्या? ऐसा तो न देखा न सुना। न कानों सुना, न आंखों देखा। उसने पीछा किया। और भेड़ें तो और भागीं। और भेड़ों के बीच जो सिंह छिपा था, वह भी भागा। और बड़ा मिमियाना मचा और बड़ी घबड़ाहट फैली। मगर उस बूढ़े सिंह ने आखिर उस जवान सिंह को पकड़ ही लिया। वह तो मिमियाने लगा, रोने लगा। कहने लगाः छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, मुझे जाने दो। मेरे सब संगी- साथी जा रहे हैं, मुझे जाने दो।
मगर वह बूढ़ा सिंह उसे घसीट कर उसे नदी के किनारे ले गया। उसने कहा, मूरख! तू पहले देख पानी में अपना चेहरा। मेरा चेहरा देख और पानी में अपना चेहरा देख, हम दोनों के चेहरे पानी में देख।
जैसे ही घबड़ाते हुए, रोते हुए... आंखें आंसुओं से भरी हुईं, और मिमिया रहा है, लेकिन अब मजबूरी थी, अब यह सिंह दबा रहा है तो देखना पड़ा... उसने देखा, बस देखते ही एक हुंकार निकल गई। एक क्षण में सब बदल गया।
वे तसव्वुर में यकायक आ गए।
हिज्र की सूरत बदल कर रह गई
एक क्षण में क्रांति हो गई। भेड़ गई। सिंह जो था, वही हो गया।

ऐसे ही तुम हो। तुम्हें भूल ही गया है तुम कौन हो। तुमने दोस्ती बगुलों से बना ली है। तुमने दोस्ती झूठ से कर ली है। तुमने झूठ के खूब घर बना लिए हैं। और झूठ के घर जब तक तुम्हें घर मालूम होते हैं, असली घर की तलाश नहीं हो सकती।
पिय मिले प्रेमानंद, तो हंस समाज है।
तब फिर एक-दूसरे ही जगत में तुम्हारा प्रवेश होगा--हंसों का समाज, सिद्धों का समाज। उसका नाम ही मोक्ष है। लेकिन सारी बात का सारसूत्र है-- मौन प्रेम।
कुछ भी नहीं इस जिंदगी में खिदमत के सिवा
सोजे दिलो-दर्द आदमीयत के सिवा
औ" रंगो, निशानो, चतरो, मुहरो, दिहीन
सब हेच हैं, सब हेच हैं, मुहब्बत के सिवा
राज्य-सिंहासन, राज्य-पताकाएं, छत्र, स्वर्ण-छत्र, राज-मोहरें, मुकुट--सब तुच्छ हैं, एक प्रेम के सिवाय। इस जगत में अगर कोई चीज समझने जैसी है तो प्रेम है। अगर इस जगत में कोई चीज जीने जैसी है तो प्रेम है। कुछ भी नहीं जिंदगी में खिदमत के सिवा
सोजे दिलो-दर्द आदमीयत के सिवा
औ रंगो, निशानो, चतरो, मुहरो, दिहीन
सब हेच हैं, सब हेच हैं, मुहब्बत के सिवा
प्रेमानंद! प्रेम हो और शून्य हो--अजपा जाप। बस जहां प्रेम और तुम्हारे शांत मन का मिलन होता है, वहां अजपा जाप पैदा होता है। तुम्हें करना नहीं होता, अपने से ओंकार का नाद उठता है। अपने से ओंकार की ध्वनि तुम्हारे भीतर उठती है। तुम्हारी पैदा की हुई नहीं होती। तुम्हारे मूल अस्तित्व से आती है। तुम सिर्प साक्षी होते हो। उसी दिन तुम हंसों के समाज के हिस्सेदार हो गए। उसी दिन से तुम कीड़े कचरे के न रहे, कूड़े के न रहे। उसी दिन से तुम्हें पंख लग गए।
कहे कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो
धरमदास कहते हैं कि मेरे गुरु ने ऐसी ही किसी घड़ी में, जब मैं मौन था
और प्रेम से भरा था, मुझे पुकार कर कहा थाः
कहे कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो।।
यही घड़ी है, धरमदास चूक मत जाना। चलो अब। हंस चले सतलोक!
लेकिन अपूर्व प्रेम चाहिए, तो ही गुरु पुकार सकता है कि बस आ गई घड़ी, आंख खोल!
उठाना मेरा साजे-हस्ती उठाना
बहुत देर से मुन्तजिर है जमाना
कभी मुस्कराहट कभी चश्मे-पुरनम
बस इतना-सा है जिंदगी का फसाना
तेरे इक न होने से हैं बे-हकीकत
यह रंगी फजाएं, यह मौसम सुहाना शबे-गम सितारे भी बुझने लगे हैं
मेरे दिल के दागो! कोई लौ बढ़ाना
कोई छेड़ दे नग्महाए-मुहब्बत
बहुत गौर से सुन रहा है जमाना
तेरी याद ही वजहे-तस्कीने-दिल है
बड़ा ही करम है, तेरा याद आना
प्रभु याद आ जाए तो भक्त कहता हैः प्रभु की ही कृपा है। बड़ा ही करम है तेरा याद आना! तू याद भी आता है तो तेरी ही कृपा है, तो याद आ गया है, अन्यथा हमारे किए तो यह भी नहीं हो सकता था
तुम यहां आ गए हो मेरे पास, उसे धन्यवाद देना! उसके लाए ही आ गए हो। तुम्हारी चलती तो तुम आते ही नहीं। आदमी की चले तो आदमी सत्संग में कभी जाए ही नहीं। जो चला लेते हैं अपनी, वे कभी जाते ही नहीं। धन्यभागी हैं वे

जिनके भीतर एक प्रबल आकांक्षा उठती है बाढ़ की तरह और उन्हें ले जाती है सत्संग की तरफ। थोड़े से लोग ही तो इस जगत में जाग पाते हैं, जब कि सब का हक था जागना। मगर हक को ही लोग कहां स्वीकार करते हैं!
धनुष-बाण लिए ठाढ़, योगिनी एक माया हो।
इस जगत के हजार-हजार माया-प्रलोभन धनुषबाण लिए खड़े हैं तुम्हारी प्रतीक्षा में। तुम्हें शिकार बनाने के लिए यहां बहुत शिकारी हैं। तुम्हें आखेट बनाने के लिए यहां बहुत शिकारी हैं। सावधान रहना!
छिनहिं में करत बिगार... । एक क्षण में बिगाड़ हो जाता है।... तनिक नहिं दाया हो। और इनमें, यह जो माया-मोह, मद-मत्सर, काम-क्रोध-लोभ का यह जो विस्तार है, इनको किसी को तुम पर दया नहीं है। छिनहिं में करत बिगार... एक क्षण में सब अस्तव्यस्त हो जाता है। जो सतत सजग है, वही इनसे बच पाएगा। झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
जो बच गया, जिसने अपने को इन बाणों से बचा लिया--और बचाने का एक ही उपाय है, कुछ और करना नहीं--एक ही ढाल हैः सावधानी, सजगता।
का सोवै दिन रैन, विरहिनी जाग रे! अगर कोई जागा रहे तो ये चोर नहीं आते।
बुद्ध ने कहा हैः अगर घर में कोई जागा हो तो चोर दूर रहते हैं। घर में दीया जलता हो तो चोर दूर रहते हैं। पहरेदार सजग हो तो चोर दूर रहते हैं। ऐसी ही जीवन की दशा है। तुम्हारे भीतर चेतना थोड़ी जागती रहे, पहरे पर हो, तो न तो काम आता है न क्रोध आता है।
मुझसे लोग पूछते हैंः काम को कैसे जीतें? मैं कहता हूंः तुमने बात ही बिगाड़ ली। जीतने का सवाल ही नहीं है। जीतने का मतलब हैः काम घुस आया, अब तुम लड़ने की कोशिश कर रहे हो। कैसे घुस आया है, इस प्रक्रिया को समझ लो। तुम मूर्छित थे तो घुस आया है। तुम जाग जाओ। तुम्हारे जागते ही तिरोहित हो जाएगा। घर में लोग जाग जाते हैं, चोर भाग जाते हैं।
और जो जागा है... झिरि झिरि बहै बयार... उसके जीवन में बड़ी शीतल हवाएं, स्वर्ग की, बहने लगती हैं।
झिरि झिरि बहै बयार, प्रेम रस डोलै हो। मस्ती आने लगती है प्रेम की।
प्रेम की मधुशाला खुल जाती है। सोए-सोए तो पता भी नहीं चलता। स्वर्ग की हवाएं आती हैं, तुम्हें छू कर भी निकल जाती हैं; मगर पता नहीं चलता। परमात्मा आता है, तुम्हारा आलिंगन भी कर लेता है, तो भी पता नहीं चलता। कुछ खबर हो सकी न तरे बगैर
कब बहार आयी, कब खिजां आई
पता ही नहीं चलता। सब होता रहता है, आदमी सोया रहता है। पतझड़ भी आ जाता है, बसंत भी आ जाता है, कोयलें कूक लेती हैं, पपीहे पुकार लेते हैं, सब होता रहता है। बुद्ध पुरुष जगते हैं, चलते हैं, विदा हो जाते हैं-- सोए लोग सोए ही रहते हैं। तुम कब से सोए हो। कितने बुद्धपुरुष तुम्हारे पास से गुजर गए! कितने कृष्ण, कितने क्राइस्ट, कितने मोहम्मद पुकारते रहे और गुजर गए! कितने धनी धरमदास! तुम सोए ही रहे।
कुछ खबर हो सकी न तेरे बगैर
कब बहार आयी, कब खिजां आई
और प्रतिक्षण घटना घट रही है। स्वर्ग प्रतिक्षण पृथ्वी पर उतरता है।
परमात्मा प्रतिपल अपना जाल फेंकता है।
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।।
जिसको थोड़ा सा स्वर्ग की हवा का स्वाद लग गया, उसे यहां हर तरफ से परमात्मा का इशारा मिलने लगेगा। कोयल बोलेगी तो उसके स्वर में परमात्मा के स्वर की झलक मिलने लगेगी। फूल खिलेगा तो उसके रंग में परमात्मा खिला मालूम होगा। धूप निकलेगी, चटकेगी, तो परमात्मा निखरेगा और चटकेगा। चांद उगेगा तो परमात्मा उगेगा। किसी की शांत आंखों में, किसी के प्रेम-भरे हुए आंसुओं में, बस उसी की झलकें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी।
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।।

पिया पिया करत पुकार पिया नहिं आया हो।
पिय बिन सून मंदिलवा, बोलन लागे कागा हो।।
इस जगत में तो तुमने पिया-पिया बहुत पुकारा, मगर पिया आया नहीं।
तुम्हारी दिशा पुकार की गलत थी। मंदिर सूना ही पड़ा रहा। कौवे बस गए और कौवे बोलने लगे। तुम्हारी जिंदगी में कोयल बोली कहां, कौवे बोले हैं। तुम्हारी जिंदगी मंदिर है कहां? खंडहर हो गई, कब की खंडहर हो गई!
बदलो रुख! थोड़ा जागो! अंधेरे में थोड़ी सुबह की तलाश करो। कांटों में थोड़े फूल को खोजो। बदलियों में थोड़े चांद-नक्षत्रों की खोज करो। ठीक दिशा में बहो। तुम ठीक दिशा में बहो तो अभी, इसी क्षण--
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।।
सब अभी हो रहा है। ऐसा नहीं है कि परमात्मा पहले कभी आया था पृथ्वी पर,
अब नहीं आता। परमात्मा सदा आता रहा है--आता ही रहा है। जिनने भी जाग कर देख लिया, उन्होंने पहचान लिया। जो सोए रहे, वे सोए रहे।
कागा हो तुम का रे, कियो बटवारा हो।
कौओं ने बेठिकाना कर दिया है।
पिया मिलन की आस, बहुरि न छूटे हो।
यह सारा जगत एक खंडहर जैसा है, जहां कोयलें तो हट गई हैं और कौवे बैठ गए; जहां ठीक अस्वीकृत हो गया है और गलत स्वीकृत हो गया है; जहां धर्म तिरोहित हो गया है और जहां अधर्म जीवन की शैली बन गया है।
जागो तो खंडहर फिर मंदिर हो जाता है। शायद खंडहर कभी हुआ ही नहीं था, खंडहर मालूम होने लगा था। हमारी आंखों में ही कुछ भूल-चूक हो गई थी। शायद कौए कभी बसे ही नहीं थे; हमारे कान ही खराब हो गए थे, विकृत हो गए थे। और कोयल की आवाज हमें कौओं की आवाज मालूम होने लगी थी। जागते ही क्रांति घटती है।
ये किसके अश्क थे जो बन गए तबस्सुमे-गुल
ये किसके दिल की तमन्ना, बहार हो के रही
और तब भरोसा भी नहीं आता कि यह कैसे हुआ! आंसू फूल बन जाते हैं। दिल के भीतर की अभीप्सा बसंत हो जाती है।
कहै कबीर धरमदास, गुरु संग चेला हो।
यह क्रांति घटती है, जब गुरु और चेले का साथ हो जाता है; जब गुरु और शिष्य का साथ हो जाता है; जब गुरु और शिष्य का मिलन हो जाता है। और मिलन बाहर-बाहर का नहीं, बाहर का हो तो मिलन नहीं।
हिलिमिलि करो सत्संग... ।
हिलिमिलि शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब हैः गुरु कुछ तुम में प्रवेश
कर जाए, तुम कुछ गुरु में प्रवेश कर जाओ। हिलिमिलि करो सत्संग... । ऐसा गुरु दूर रहे, तुम दूर रहो, ऐसा बीच में फासला रहे, तो सत्संग नहीं होता। सत्संग में तो सीमा टूट जाती है। सत्संग वहीं है, जहां सीमा नहीं है; जहां शिष्य भूल ही जाता है कि मैं शिष्य हूं। गुरु तो जानता ही नहीं कि गुरु है, इसीलिए गुरु है। जब शिष्य भी नहीं जानता कि मैं शिष्य हूं। दोनों हिलमिल जाते हैं। जहां दोनों के बीच की सब दीवालें गिर जाती हैं। दोनों का रस एक-दूसरे में उतर जाता है।
यह जीवन की अपूर्व घटना है। इससे महान और कोई आलिंगन नहीं। और इससे गहरा कोई संभोग नहीं है!
कहै कबीर धरमदास, गुरु संग चेला हो।
हिलिमिलि करो सत्संग, उतरि चलो पारा हो।।
हिलमिल सत्संग हो जाए, तो बस पार उतरना हो जाए। इस भवसागर से पार उतरना हो जाए।
साजे-उम्मीद बजा
नग्मए-शौक सुना
तीर इक और लगा
दर्दे-दिल और बढ़ा
देख ले आज फजा

सागरे-शौक उठा
कलियां उम्मीद की चुन
दामने दिल को सजा
मेरा गम कुछ भी न कर
अपना अफसाना सुना
आज गमगीन है दिल
मेरे जख्मों को हंसा
कुछ बता भी तो मुझे
क्यों हुआ मुझसे खफा?
तीर एक और लगा! दर्दे-दिल और बढ़ा! शिष्य यही मांगता हैः तीर इक और लगा! दर्दे-दिल और बढ़ा! करो चोट। शिष्य कहता हैः मारो मुझे। मिटाओ मुझे। अपना बनाओ मुझे। उतरो मेरे भीतर, मैं बाधा न दूंगा। और मैं बाधा भी दूं तो सुनना मत। तुम मेरी सुनना ही मत। तुम मुझसे खफा मत हो जाना। मेरी गलत आदतें हैं, गलत संस्कार हैं। कई बार मैं नाराज हो जाऊंगा, प्रतिरोध करूंगा, विरोध करूंगा--चिंता मत करना। तुम चोट किए ही जाना। तुम मुझे पुकारे ही जाना। मैं करवट लेकर सो जाऊं तो पुकार बंद मत कर देना। मेरी भूलों का हिसाब मत करना। मेरे बावजूद मुझे जगाना।
कहै कबीर धरमदास, गुरु संग चेला हो।
हिलिमिलि करो सत्संग, उतरि चलो पारा हो।।
सत्संग पारस-पत्थर है, जिसके छूते लोहा सोना हो जाता है। गुरु तो उपलब्ध है, राजी है। लूट लो जितना उसे लूटना हो! मगर लोग इतने कंजूस हो गए हैं कि देने में ही कंजूस नहीं हो गए हैं, लेने तक में कंजूस हो गए हैं। ऐसा हो जाता है, जिसने देना छोड़ दिया वह लेने में भी कृपण हो जाता है।
वह लेने में भी डरने लगता है कि कहीं लेने में कुछ देना न पड़े! कहीं लेकर कुछ देना न पड़े! ले लूं आज तो कहीं फिर देना न पड़े!
गुरु को कुछ भी चाहिए नहीं। तुम ले लो--और गुरु आभारी है। सत्संग घट जाए तो तुम पार हो जाओ। सत्संग घटे तो बहार आए।
चमन में जश्ने-उरूसे-बहार है, आ जा
उरूसे-नग्मा सरे-आबशार है, आ जा
हर-एक जुम्बिशे गुल में हजार नग्मे हैं
हर-इक नसीम का झोंका बहार है, आ जा
सरूरबख्श घटाओं के मस्त साये में
जमाले-लाल-ओ-गुल ताबदार है, आ जा
रविश-रविश पै छिड़ी है हदीसे-लाल-ओ-गुल
कली-कली को तेरा इंतजार है, आ जा
तुझे खबर भी है इस मौसमें-बहार में भी
"शमीम" नाविके-गम का शिकार है आ जा।
शिष्य पुकारता है। शिष्य रोता है। शिष्य झुकता है। गुरु भी पुकारता है। गुरु भी बहता है। गुरु भी झुकता है।
जीसस की विदाई के क्षण, उन्होंने अपने शिष्यों के चरण छुए। एक शिष्य
ने पूछाः यह आप क्या करते हैं? हम आपके चरण छुएं, ठीक; आप हमारे चरण छुएं, यह आप क्या करते हैं?
जीसस ने कहाः ताकि तुम्हें याद रहे कि जब शिष्य और गुरु एक-दूसरे में झुक जाते हैं, तब मिलन है। तब सत्संग है। सत्संग में नाव है। यह नाव उस पार ले जा सकती है।
का सौवै दिन रैन, विरहिनी जाग रे!

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
दूसरा प्रवचन

जागो--अभी और यहीं

पहला प्रश्नः क्या आपकी देशना नगद धर्म की है? हर क्षण भगवत्ता भोगने
की है? क्या आप भक्ति को भी नगद धर्म की संज्ञा देंगे? अनुकंपा करें और हमें कहें।

धर्म तो सदा ही नगद होता है। उधार और धर्म, संभव नहीं। उधार धर्म का नाम ही अधर्म है। और उधार धर्म बहुत प्रचलित है पृथ्वी पर। मंदिर-मस्जिदों में जिसे तुम पाते हो, वह उधार धर्म है।
उधार से अर्थ हैः अनुभव तुम्हारा नहीं है, किसी और का है। किसी राम को हुआ अनुभव या किसी कृष्ण को या किसी क्राइस्ट को, तुमने सिर्प मान लिया है। तुमने जानने का श्रम नहीं उठाया। मानना बड़ा सस्ता है, जानना महंगी बात है। जानने के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। और जब कीमत चुकाते हो तभी धर्म नगद होता है। और कीमत भारी है--प्राणों से चुकानी होती है।
उधार धर्म बिल्कुल सस्ता है। गीता पढ़ो, मिल जाता है। बाइबिल पढ़ो, मिल जाता है। उधार धर्म तो चारों तरफ देनेवाले लोग मौजूद हैं। मां-बाप से मिल जाता है, पंडित-पुरोहित से मिल जाता है। नकद धर्म दूसरे से नहीं मिलता। नगद धर्म को स्वयं के भीतर ही कुआं खोदना पड़ता है, गहरी खुदाई करनी पड़ती है। लंबी यात्रा है अंतर्यात्रा, क्योंकि बहुत दूर हम निकल आए हैं अपने से। जन्मों-जन्मों हम अपने से दूर जाते रहे हैं। अब अपने पास आना इतना आसान नहीं। और हमने हजार बाधाएं बीच में खड़ी कर दी हैं। हम भूल ही गए हैं कि हम अपने को कहां छोड़ आए। कुछ पता-ठिकाना भी नहीं है, कि कहां जाएंगे तो अपने से मिलन होगा। कभी अपने से मिलन रहा भी है, इसकी भी कोई याद्दाश्त नहीं बची है। विस्मृति के पहाड़ खड़े हो गए हैं।
नगद धर्म का अर्थ होता हैः इन सारे पहाड़ों को पार करना होगा। और ये पहाड़ बाहर होते तो हम पार आसानी से कर लेते। ये पहाड़ भीतर हैं--विचारों के, भावनाओं के, पक्षपातों के, धारणाओं के। और यह खुदाई बाहर करनी होती तो बहुत कठिन नहीं थी; उठा लेते कुदाली और खोद देते। यह खुदाई भीतर करनी है। ध्यान की कुदाली से ही हो सकती है। और ध्यान की कुदाली बाजार में नहीं मिलती; स्वयं निर्मित करनी होती है; इंच-इंच श्रम से बनानी होती है।
धर्म तो सदा ही नगद होता है--अर्थ, कि धर्म सदा ही स्वानुभव से होता है, आत्म-अनुभूति से होता है। तो जो उधार हो, उसे अधर्म मान लेना।
मैं नास्तिक को अधार्मिक नहीं कहता, ख्याल रखना। नास्तिक धर्म-शून्य है, अधार्मिक नहीं है। धर्म का अभाव है। अधार्मिक तो मैं कहता हूं हिंदू को, मुसलमान को, ईसाई को, जैन को, सिक्ख को, जिसने दूसरे को मान कर अपनी खोज ही बंद कर दी है; जो कहता हैः "हम क्यों खोज करें? बाबा नानक खोज कर गए। हम क्यों खोज करें? कबीरदास खोज कर गए।"
और ऐसा नहीं है कि नानक ने और कबीर ने, दादू ने और रैदास ने सत्य नहीं पाया था--पाया था, लेकिन अपने भीतर खोदा था तो पाया था। तुम अगर सच में ही नानक को प्रेम करते हो तो उसी तरह अपने भीतर खोदो जैसा उन्होंने खोदा। तुम अगर सच में ही कृष्ण के अनुगामी हो तो कृष्ण के पीछे मत चलो। यह बात तुम्हें बेबूझ लगेगी, क्योंकि अनुगमन का अर्थ होता है पीछे चलना। मेरी भाषा में अनुगमन का अर्थ होता हैः वैसे चलो जैसे कृष्ण चले। कृष्ण के पीछे मत चलना, क्योंकि कृष्ण किसी के पीछे नहीं चले। कृष्ण के पीछे चले तो तुम कृष्ण का अनुगमन नहीं कर रहे हो। कृष्ण किसी के पीछे नहीं चले। कृष्ण अपने भीतर चले। तुम भी कृष्ण की भांति ही अपने भीतर चलो।
अगर लोग समझ लें सदगुरुओं को, तो सदगुरुओं का पीछा नहीं करेंगे। उनको समझते ही, उनका इशारा ख्याल में आते ही, अपने भीतर डुबकी मार जाएंगे। वहीं पाया जाता है हीरा धर्म का। नहीं तो तुम कूड़ा-करकट बटोर रहे हो। कितने ही याद कर लो वेद और कितने ही कंठस्थ कर लो उपनिषद, तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा, खाली के खाली रहोगे।

उधार धर्म का अर्थ होता हैः पांडित्य। नगद धर्म का अर्थ होता हैः अनुभव।
तुम पूछते होः "क्या आपकी देशना नगद धर्म की है?"
जिन्होंने भी जाना है, सभी की देशना नगद धर्म की है।
आदमी बेईमान है। आदमी जिस चीज से बचना चाहता है उसके झूठे सिक्के पैदा कर लेता है। उस तरह से दूसरों को भी धोखा हो जाता है; और भी बड़ी बात हो जाती है, अपने को ही धोखा हो जाता है।
तुम देखो, तुम्हें अगर प्रेम करना है तो तुम खुद प्रेम करते हो। तुम
यह नहीं कहते कि बाबा मजनू कर गए, अब हमें क्या करना है? सब तो हो चुका। बड़े-बड़े प्रेमी हो चुके। सब खोजा जा चुका है। अब हमें क्या करना है? हम तो लैला-मजनू की किताब पढ़ेंगे। हम तो लैला-मजनू की किताब कंठस्थ करेंगे। हम तो रोज सुबह उसका पाठ करेंगे। हमें प्रेम क्या करना है?
नहीं, लेकिन तुम्हें प्रेम करना है। तो तुम मजनू की किताब नहीं पढ़ते,
न फरियाद की याद करते हो। तुम खुद प्रेम करते हो।
तुम्हें धन खोजना है, तो तुम अतीत में हुए धनियों का नाम नहीं लेते, तुम खुद धन की खोज में निकलते हो। वहां तुम बेईमानी नहीं करते। धर्म की यात्रा तुम्हें करनी नहीं है, मगर दुनिया को तुम दिखाना चाहते हो कि ऐसा भी नहीं है कि मैं धार्मिक नहीं हूं। तो तुम तरकीब निकालते हो। तुम कहते होः मैं बुद्ध के पीछे चलूंगा, मैं धम्मपद कंठस्थ करूंगा। मैं जरथुस्त्र को मानूंगा। मैं क्राइस्ट की पूजा करूंगा। मैं कृष्ण को फूल चढ़ाऊंगा। मैं मंदिरों में झुकूंगा। मैं काबा में आऊंगा। गंगा-स्नान कर लूंगा।
तुम इस भांति दुनिया को भी धोखा दे लेते हो और खुद भी धोखे में पड़ जाते हो। धीरे-धीरे तुम्हें ऐसा लगने लगता है कि अब और क्या चाहिए, धर्म तो है ही। काशी भी हो आता हूं, गंगा-स्नान भी किया, किताब भी पढ़ता हूं, चंदन-तिलक भी लगाता हूं, जनेऊ भी धारण करता हूं, चोटी भी बढ़ा रखी है--अब और क्या चाहिए?
नहीं, तुम्हें धर्म चाहिए ही नहीं, इसलिए तुमने ये सारी तरकीबें ईजाद
की हैं। अगर धर्म तुम्हें चाहिए तो तुम कहोगेः मुझे कैसे अनुभव हो? मंदिरों में जो विराजा परमात्मा है, वह मेरे काम न आएगा। मेरे भीतर कैसे विराजे? और कहते हैं लोग कि मेरे भीतर विराजा है--और मुझे उसका पता नहीं है-- और मैं मंदिरों में खोज रहा हूं!
नगद धर्म भीतर ले जाता है। नगद धर्म की तलाश आंख बंद करके होती है। नगद धर्म की तलाश विचार से नहीं होती, निर्विचार से होती है; शास्त्र से नहीं होती, सब शास्त्रों से मुक्त हो जाने से होती है। शब्द से ही मुक्त हो जाना है, तो शास्त्र में कैसे बंधोगे? शास्त्र तो शब्दों का ही जाल है। कितने ही प्यारे हों शब्द, शब्द शब्द हैं। जब तुम्हें भूख लगती है तो शब्द "भोजन" से पेट नही भरता। और जब तुम्हें प्यास लगती है तो एच. टू. ओ. का फार्मूला लेकर तुम बैठे रहो, प्यास नहीं बुझती। और ऐसा नहीं है कि एच. टू. ओ. का फार्मूला गलत है। वह पानी के बनाने का सूत्र है। और ऐसा भी नहीं है कि पाक-शास्त्र में जो भोजन की विधियां लिखी हैं वे गलत हैं। मगर भोजन की विधियों से क्या होगा? भोजन पकाओगे कब? चूल्हा जलाओगे कब? बर्तन चढ़ाओगे कब? और तुम्हारे भीतर सब मौजूद है। भोजन पकाना हो तो अभी पक सकता है। लेकिन तुम भूखे हो और पाकशास्त्र की किताब लिए बैठे हो--कहते होः "जपुजी" पढ़ रहे हैं। पाक-शास्त्र हैं तुम्हारी सब किताबें।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं किताबें मत पढ़ो। मैं यह कह रहा हूंः उतने भर
पर रुक मत जाना। किताब पढ़ने से इतना ही हो जाए कि तुम्हें याद आ जाए कि अरे, ऐसे सत्य भी लोगों को अनुभव हुए हैं, जो मुझे अब तक अनुभव नहीं हुए! ऐसे-ऐसे सत्य लोग पाकर गए हैं इस पृथ्वी पर--और मैं बिना पाए जा रहा हूं। बहुत देर हो चुकी है। अब जागने का क्षण आ गया। ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है। अब खोजूं, खोदूं। अब अपने को रूपांतरित करूं। अब क्रांति से गुजरूं। अब भोजन पकाऊं। लोग कहते हैं, जल के सरोवर हैं। लोग कहते हैं, हम महातृप्त हो गए हैं पी कर। मैं प्यासा हूं और जब सदियों-सदियों से इतने लोगों ने कहा है कि जल मिलता है, हमें मिल गया है--बुद्ध के कहा, महावीर ने कहा--तो मैं भी खोजूं।

मगर खोज से मिलता है, किसी पर विश्वास कर लेने से नहीं मिलता। अनुभव
ही एकमात्र द्वार है परमात्मा का। इसलिए सभी धर्म नगद होता है।
धार्मिक, जिनको तुम कहते हो, वे नगद नहीं हैं, यह मैं जानता हूं। वे बिल्कुल उधार हैं। इसलिए तो दुनिया में धर्म की बातचीत बहुत होती है और धर्म की सुगंध.जरा भी पता नहीं चलती। दुनिया में कितने मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे हैं, और कहीं भी धर्म का गीत नहीं उठ रहा है। हवा में धर्म की खबर नहीं मालूम होती। पृथ्वी धर्म से शून्य मालूम होती है।
इन अधार्मिकों से--जिनको तुम हिंदू कहते हो, मुसलमान कहते हो, ईसाई कहते हो--नास्तिक बेहतर हैं। क्यों कहता हूं मैं कि नास्तिक बेहतर हैं? कम-से-कम झूठ में तो नहीं पड़ा है। और जो झूठ में नहीं पड़ा है, जो किताबों में नहीं उलझ गया है, जो शब्दों के जाल में नहीं डूब गया है, उसके जागने की संभावना ज्यादा है, क्योंकि कब तक भूखा रहेगा? कब तक प्यासा रहेगा? उसकी प्यास खटकेगी, गला जलेगा, भभक उठेगी। उसकी भूख उसके पेट में कड़केगी, उसकी आत्मा रोएगी।
जो कहता है, मैंने ईश्वर को नहीं जाना, इसलिए कैसे मानूं--वह यही तो कह रहा है न कि जब जानूंगा तभी मानूंगा। और क्या कह रहा है? नास्तिक सिर्प इतना ही तो कह रहा है न, जब मेरा अनुभव होगा तब मैं स्वीकार कर लूंगा; अभी मेरा अनुभव नहीं है, मुझे अभी प्रमाण चाहिए। अभी मुझे अनुभव का प्रमाण चाहिए। मेरी आंखें खुलेंगी तो मैं प्रकाश को मान लूंगा।
जिसने आंखें बंद किए ही प्रकाश मान लिया है, वह आंखों का इलाज नहीं करवाएगा। जरूरत न रही। बात ही खत्म हो गई। लेकिन जिसने आंखों के अभाव में प्रकाश को नहीं माना है, उसको यह बात पीड़ा देती रहेगी कि मैं अंधा हूं। लोग कहते हैं प्रकाश है, मुझे नहीं दिखाई पड़ता, तो निश्चित मैं अंधा हूं। मैं कुछ करूं--कोई उपचार, कोई औषधि। किसी वैद्य को खोजूं, जहां मेरी आंखों का इलाज हो सके, जहां मैं भी देख सकूं।
नास्तिक आज नहीं कल आस्तिक होगा ही--होना ही पड़ेगा! खतरा तो झूठे आस्तिकों का है। वे कभी आस्तिक नहीं हो पाते। जब भी मेरे पास कोई नास्तिक आ जाता है, मैं प्रसन्न होता हूं। एक ईमानदार आदमी आया है; जिसने भरोसे दूसरों पर नहीं किए हैं; जिसकी एकमात्र निष्ठा अपने अनुभव पर है; जिसे प्रमाण नहीं मिले हैं अभी तो अभी चुप है; या कहता है कि अभी मैं नहीं मान सकता हूं; जो स्वाद लेगा तो ही "हां" भरेगा। जो आदमी ऐसी हालत में है उसे स्वाद दिलवाया जा सकता है। कठिनाई तो उन झूठों के साथ है कि जिन्हें कुछ पता नहीं और जो कहते हैं, हां, ईश्वर है। खतरा तो इन जी-हजूरों के साथ है, जिन्हें.जरा भी कभी कोई स्वर नहीं सुनायी पड़ा है और जो थोथे ही डोलते हैं, जैसे उनके ऊपर संगीत की वर्षा हो रही हो!
यह झूठ दूसरों की हानि तो करेगा ही, मगर सब से बड़ी हानि तो अपनी है। ऐसे झूमते-झूमते-झूमते झूमने की आदत हो जाएगी। मंदिर में झुकते-झुकते झुकने की आदत हो जाएगी। और झुकने की आदत हो गई तो झुकने का मजा गया, झुकने में प्राण न रहे, संजीवनी न रही। झुकना सच न रहा। झुकने में समर्पण न रहा। झूठे मत झुकना और झूठे "हां" मत भरना।
नास्तिक से भी ज्यादा और एक ईमानदार आदमी होता है, जिसको अज्ञेयवादी कहते हैं, एग्नास्टिक कहते हैं। एग्नास्टिक या अज्ञेयवादी का अर्थ होता है कि मुझे अभी पता नहीं है, तो न तो मैं "हां" कहूंगा और न "ना" कहूंगा।
तो चार तरह के लोग हैं पृथ्वी पर। एक--जो जान कर कहते हैं। दूसरे--झूठे,
जो दूसरों की सुन कर तोतों की तरह दोहराने लगते हैं। तीसरे--जिन्होंने जाना नहीं है, इंकार करते हैं। चौथे--जिन्होंने, जाना नहीं है तो न "हां" भरते हैं न "ना" करते हैं; वे कहते हैं, अभी हम कोई भी वक्तव्य नहीं दे सकते। यह सबसे ज्यादा ईमानदार आदमी है चौथा; इसकी सबसे ज्यादा संभावना है आस्तिक हो जाने की। फिर नंबर दो की संभावना नास्तिक की है। और नंबर तीन की संभावना तुम्हारे तथाकथित थोथे आस्तिक की है; वह सबसे गहरे गर्त में है। उधार धर्म से बचना, अगर नगद धर्म को पाना हो। और नगद ही तृप्ति लाएगा। पूछा तुमनेः क्या आपकी देशना नगद धर्म की है? हर क्षण भगवत्ता भोगने
की है?

भगवान तुम हो। भगवान तुम में आया हुआ है। तुम भगवान की एक लहर हो, एक तरंग हो। यह मेरी दृष्टि है। यह मेरा अनुभव तुमसे कह रहा हूं। इसे तुम मान मत लेना। तुम्हारे मानने से कुछ हल नहीं होगा। तुम मेरी बात पर ही मत रुक जाना। इससे सिर्प इशारा लेना। इशारा लेना इस बात का कि अगर मैं कहता हूं तो चलो, हम भी खोज करें और देखें क्या यह सच है? इसको प्रश्न बनाना। यह तुम्हारे भीतर जिज्ञासा बने, विश्वास नहीं।
सदगुरु का काम है जिज्ञासा को जगाना। देखते नहीं शांडिल्य के सूत्र शुरू हुएः अथातो भक्ति जिज्ञासा! बादरायण का ब्रह्मसूत्र शुरू होता हैः अथातो ब्रह्म जिज्ञासा! जिज्ञासा से ये अदभुत शास्त्र शुरू होते हैं। सदगुरु जिज्ञासा देता है--उत्कट जिज्ञासा देता है, गहन जिज्ञासा देता है। झकझोर देता है और तुम्हारे भीतर प्यास को उठाता है--तुम्हारी प्यास को उठाता है; तुम्हारी प्यास को निखारता है। तुम्हें संतोष नहीं देता, क्योंकि सब संतोष झूठे हैं। तुम्हें असंतोष देता है, क्योंकि असंतोष से गति है, विकास है।
सांत्वनाएं खतरनाक हैं, जहरीली हैं। लेकिन तुम सांत्वना की तलाश में होते हो। तुम चाहते हो कोई कह दे, खिलौनों जैसे तुम्हें कोई पकड़ा दे सिद्धांत और तुम उन्हें छाती से लगा कर बैठ जाओ।
इसलिए लोग सदगुरु से बचते हैं, असदगुरु प्यारे लगते हैं। मिथ्या गुरु खूब पुजते हैं; भीड़ वहां इकट्ठी हो जाती है। सदगुरु के पास तो कुछ हिम्मतवर लोग ही जाते हैं। वह चुने, हिम्मतवर लोगों का काम है। वह साहसियों का काम है। वह आग से खेलना है। उसका मतलब ही है इतना कि अब तुम उस आदमी के पास जा रहे हो जो तुम्हें इतना असंतुष्ट कर देगा कि तुम्हें परमात्मा की यात्रा पर निकलना ही होगा; जो तुम्हारी प्यास को ऐसे भड़काएगा कि तुम्हें सरोवर खोजना ही पड़ेगा--चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे जीवन की कीमत ही क्यों न देनी पड़े। वह तुम्हें ऐसी प्यास देगा जो जीवन से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, जीवन भी बलिदान किया जा सकता है।
लोग सांत्वना चाहते हैं। लोग मृत्यु से डरे हैं। वे चाहते हैंः कोई समझा दे कि आत्मा अमर है। लोग चाहते हैं कि कोई समझा दे कि परमात्मा हमारी सारी चिंता-फिकर कर रहा है। लोग चाहते हैं कि कोई समझा दे कि जो बुरा हुआ है, वह पिछले जन्मों के कर्मो के कारण है, उससे पिछले जन्मों के कर्म भी कट गए, बुरे से झंझट भी मिट गई, अब बस शुभ होने के दिन आ रहे हैं। कोई किसी तरह से समझा दे कि हम जैसे हैं बिल्कुल ठीक हैं, कहीं कुछ खास करने की जरूरत नहीं है। कोई पकड़ा दे राम-नाम, कि बस सुबह उठते, सोते दोहरा लेना दो-चार बार, सब ठीक हो जाएगा। कोई सस्ती औषधि दे-दे। कोई कह दे कि मरते वक्त भी अगर राम का नाम ले लिया तो बस पार हो जाओगे। सत्यनारायण की कथा सुन लेना और पार हो जाओगे। कभी भजन-कीर्तन करवा लेना घर में और पार हो जाओगे। कभी मंदिर में भोग लगा आना और पार हो जाओगे। कभी पड़ोसियों की बगिया से फूल तोड़ लेना और मंदिर में चढ़ा आना और पार हो जाओगे।
फूल भी तुम्हारे नहीं हैं--वे भी पड़ोसी की बगिया के! फूल तो चढ़े ही थे परमात्मा को, वृक्ष पर--बहुत प्यारे रूप से चढ़े थे! तुम तोड़कर उनको मार डाले। और तुम जाकर पत्थरों पर चढ़ा आए। फूलों को पत्थरों पर चढ़ा रहे हो? बदलो हालत, पत्थरों को फूलों पर चढ़ाओ! पत्थर मुर्दा हैं, फूल जीवंत हैं। जीवन को मुर्दा पर चढ़ाते हो? मुर्दे को जीवन पर चढ़ाओ।
लेकिन सस्ते उपाय--सांत्वना, संतोष मिल जाए। जिंदगी में वैसे ही असंतोष बहुत हैः धन नहीं मिला, पद नहीं मिला, प्रतिष्ठा नहीं मिली, सफलता नहीं मिली, यश नहीं मिला, नाम नहीं मिला। सदगुरु के पास जाओगे, वह कहेगाः यह असंतोष तो कुछ भी नहीं है; असली असंतोष तो अभी जगा ही नहीं--कि परमात्मा नहीं मिला। तुम गए थे तकलीफें लेकर कि किसी तरह आशीर्वाद दो कि पद मिल जाए, प्रतिष्ठा मिल जाए, धन मिल जाए, यश मिल जाए, आपका आशीर्वाद हो तो क्या नहीं हो सकता! लेकिन सदगुरु तुम से कहेगा कि यह तो सब बकवास है, अभी असली बात तो तुम्हें ख्याल में नहीं आई कि परमात्मा नहीं मिला। अभी तुम ही तुम को नहीं मिले तो और तुम्हें क्या मिलेगा? अच्छे आ गए, अब मैं तुम्हें नई प्यास देता हूं, नई जिज्ञासा देता हूं। अपने को पाने में लगो। मिथ्या गुरु

आशीर्वाद दे देगा, ताबीज दे देगा, मंत्र दे देगा कि घबड़ाओ मत, इस मंत्र को पढ़ने से अगले चुनाव में निश्चित जीत जाओगे।
तुम देखते हो, दिल्ली में तुम्हारे हर नेता का ज्योतिषी है! तुम्हारे बड़े से बड़े नेता भी इतने बचकाने हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हर बड़ा नेता ज्योतिषी से पूछता है कि कब नामांकन-पत्र भरना है, किस शुभ मुहूर्त में, किस घड़ी में? इस बार चुनाव में जीतूंगा कि नहीं जीतूंगा? तथाकथित गुरुओं के पास आशीर्वाद के लिए जाता है।
एक नेता भूल से मेरे पास आ गए। आया आशीर्वाद लेने के लिए कि चुनाव में खड़ा हो गया हूं, आपका आशीर्वाद चाहिए। तो मैंने कहा, मेरा आशीर्वाद है कि निश्चित हार जाओ। क्योंकि जो जीत गए वे भटक जाते हैं। हारोगे तो शायद परमात्मा की याद आए। जीते तो दिल्ली में डूब मरोगे, राजघाट पर पड़ोगे जल्दी ही देर-अबेर। हार जाओ तो दिल्ली से बच जाओ। और ज्ञानी कह गए हैंः हारे का हरिनाम।
वे तो बहुत घबड़ा गए। वे कहने लगे कि आप कैसी अपशकुन की बातें कह रहे हैं! उनको तो पसीना आ गया। उन्होंने कहाः ऐसा मत कहिए, नहीं-नहीं ऐसा मत कहिए। आप क्या मजाक कर रहे हैं?
उनको घबड़ाहट हुई कि यह मैं कहां आ गया! कोई ऐसा तो कहता नहीं किसी से
कि तुम हार ही जाओ। पर मैंने कहाः अब आ ही गए हो तो आशीर्वाद दूंगा ही। तुमने मांगा तो मैं दूंगा। मैं वही आशीर्वाद दे सकता हूं जो सच में आशीर्वाद है। चुनाव में जीत कर करोगे क्या? गालियां खाओगे? चुनाव में जीत कर करोगे क्या? अहंकार को थोड़ा और मजा आ जाएगा। जितना अहंकार को मजा आएगा उतना परमात्मा से दूर पड़ जाओगे। तुम अभिशाप मांग रहे हो मुझसे?
लेकिन वे कहने लगेः मैं और गुरुओं के पास गया, वे तो सब आशीर्वाद देते हैं। तो मैंने कहाः फिर वे गुरु न होंगे। तो तुम उन्हीं के पास जाओ। सदगुरु के पास घबड़ाहट होगी तुम्हें, क्योंकि वह तुम्हारी आकांक्षाएं पूरी करने को नहीं है। तुम्हारी समझ ही कितनी है? तुम्हारी आकांक्षा कितनी है? उसे कुछ और विराट दिखाई पड़ रहा है जिसकी तुम्हें खबर भी नहीं है। तुम कंकड़-पत्थर मांगने गए हो, उसे हीरों की खदानें दिखाई पड़ रही हैं जो तुम्हारे पीछे पड़ी हैं। वह तुमसे कहता हैः छोड़ो कंकड़-पत्थर! जितनी जल्दी हार जाओ कंकड़ों-पत्थरों से उतना बेहतर है। हारो तो नजर पीछे जाए। यहां से चुको तो थोड़ी सुविधा बने, अवसर बने; तुम उसको देख सको, जो तुम्हारे भीतर पड़ा है। बाहर से बिल्कुल टूट जाओ, बाहर कुछ भी उपाय न रहे, सब तरह से हताश हो जाओ, तभी भीतर जाओगे। हारे को हरिनाम! जीता तो अकड़ मे होता है।
तुमने देखा नहीं? सफल होता है आदमी, ईश्वर को भूल जाता है। सुख में आदमी ईश्वर को भूल जाता है, दुख में याद करता है।
तो सदगुरु तो वह है जो तुमसे कहे कि दुखी हो जाओ, और दुखी हो जाओ। अभी तुम्हारे दुख काफी नहीं हैं। तुम्हारे दुख अभी तुम्हारी नींद नहीं तोड़ पाए हैं। अभी और दुख चाहिए।
सदगुरु तो वह है जो और तीर भोंक देगा तुम्हारी छाती में कि उसकी पीड़ा
ही तुम्हें जगा दे।
धर्म तो नगद ही हो सकता है, लेकिन नगद धर्म पाने के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए उसको नगद धर्म कहते हैं।
फिर, नकद धर्म का एक और अर्थ होता हैः जो अभी मिल सकता हो, इसी क्षण मिल सकता हो, जिसके लिए कल की प्रतीक्षा न करनी पड़े।
परमात्मा ऐसा थोड़े ही है कि कल मिलेगा। आंख खोलो तो अभी मिल जाए। आंख खोलो तो अभी है। तुम कहते होः नहीं, अभी नहीं। अभी तो मुझे और हजार काम हैं। अभी परमात्मा मिल गया तो मैं और अपने हजार काम कैसे करूंगा? नहीं, अभी नहीं। इतना ही आशीर्वाद दें कि जब मुझे जरूरत हो तब मिल जाए।
तुम पहले तो धर्म लेते हो अतीत से उधार और परमात्मा को सरकाते हो भविष्य में। तुम्हारे मन की तरकीब को ठीक से समझ लेना। धर्म तुम्हारा होता है अतीत का और परमात्मा सदा भविष्य में। और वर्तमान को तुम बचा लेते हो संसार के लिए। इसलिए धर्म तुम लेते हो बुद्ध से, महावीर से, कृष्ण से, क्राइस्ट से। जब कृष्ण और बुद्ध जिंदा थे, तब तुमने उनसे धर्म नहीं लिया,

क्योंकि तब वे वर्तमान थे। तब तुम धर्म ले रहे थे वेद से, उपनिषद से। और जब वेदों के ऋषि जिंदा थे तब तुम उनसे धर्म नहीं ले रहे थे। तुम्हारा बड़ा मजा है। तुम हमेशा मुर्दा गुरु से धर्म लेते हो, क्योंकि मुर्दा गुरु का धर्म तुम्हें जरा भी अड़चन नहीं देता। कांटे नहीं चुभते उससे, फूलों की सेज मिल जाती है। सांत्वना मिलती है, सत्य नहीं मिलता। और तुम सत्य चाहते नहीं, तुम सांत्वना चाहते हो।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने लिखा है कि लोग सत्य चाहते ही नहीं। लिखा है उसने कि जब भी मैंने लोगों से सत्य कहा, लोगों ने गालियां दीं। और जब भी मैंने असत्य कहा, लोग बड़े प्रसन्न हुए, मुस्कुराए और धन्यवाद दिया। लोग सत्य चाहते ही नहीं। सत्य लोगों को देना ही मत, अन्यथा वे तुम्हें कभी क्षमा न करेंगे।
बात सच मालूम होती है, नहीं तो जीसस को सूली पर क्यों लटकाया? लोग क्षमा नहीं कर सके। सुकरात को जहर क्यों दिया? लोग क्षमा नहीं कर सके। लोग सत्य चाहते नहीं।
सुकरात पर जुर्म क्या था? अदालत में मुकदमा चला। जुर्म क्या था? जुर्मो की लंबी फेहरिस्त थी, उसमें सबसे महत्वपूर्ण जुर्म जो था, नंबर एक का जुर्म जो था, वह यह था कि सुकरात जबरदस्ती लोगों को समझाता है कि सत्य क्या है। कोई आदमी अपने काम से निकला है, रास्ते पर मिल जाता है, सुकरात उसका हाथ पकड़ लेता है और ऐसे प्रश्न उठाने लगता है जो कि वह आदमी कहता है, अभी मुझे उठाने नहीं हैं। अभी मैं दूसरे काम से जा रहा हूं। अभी मैं बाजार जा रहा हूं। अभी नौकरी करनी है। अभी धंधा करना है। सुकरात ने लोगों को इस तरह परेशान कर दिया। रास्तों पर पकड़-पकड़ कर। चलते आदमी सुकरात को देख कर, कहते हैं गलियों से भाग निकलते थे। आस-पास के दरवाजों में से घुस जाते थे दूसरों के मकानों में, कि सुकरात कहीं कोई बात न छेड़ दे। क्योंकि उसकी हर बात तीखी है।
अदालत ने सुकरात से कहा थाः हम तुम्हें क्षमा कर सकते हैं अगर तुम सत्य का उपदेश देना बंद कर दो। तुम बच सकते हो। तुम्हारा जीवन बच सकता है। लेकिन तुम यह सत्य की बात बंद कर दो। जब लोग चाहते ही नहीं हैं तो तुम क्यों ये बातें करते हो? अगर तुम विश्वास दिला दो अदालत को कि अब तुम चुप रहोगे और सत्य की बात नहीं बोलोगे तो तुम्हारा जीवन बच सकता है, अन्यथा मृत्यु सुनिश्चित है।
सुकरात हंसा और उसने कहाः फिर मैं जी कर ही क्या करूंगा? सत्य आए जगत में, यही तो मेरे जीवन का प्रयोजन है। सत्य ही तो मेरा धंधा है। जिऊंगा तो सत्य का काम जारी रहेगा। इसलिए वह वचन मैं नहीं दे सकता हूं।
तुमने कभी वर्तमान के बुद्धों को क्षमा नहीं किया है। हां, जब बुद्ध
जा चुके होते हैं तब उनकी किताब पर तुम फूल चढ़ाते हो। सुविधापूर्ण है। किताब तुम्हें जगा नहीं सकती। सच तो यह है, किताब का अच्छा तकिया बन जाता है, उस पर तुम गहरी नींद सोते हो।
सदगुरु का तुम तकिया नहीं बना सकते। सदगुरु आग है। अंगारों से तकिए नहीं बनते। अंगारें जलाती हैं, बुरी तरह जलाती हैं! लेकिन उसी जलने में ही तो तुम्हारा निखार छिपा है। उसी मृत्यु से तो तुम्हारा पुनरुज्जीवन है। नीत्से ठीक कहता है कि लोग सत्य नहीं चाहते। नीत्से ने यह भी कहा है
कि लोगों को अगर सत्य मिल जाए तो वे उसे जल्दी ही झूठ कर लेते हैं। वह भी ठीक है। उसको लीप-पोत लेते हैं। उसको इधर-उधर से काट-छांट लेते हैं। उसके कोने मार देते हैं। उसको गोलाई दे देते हैं। उसको इस तरह की शब्दावली में, इस तरह के सिद्धांत-जाल में रच देते हैं कि उसकी प्रखरता चली जाती है, उसकी चोट चली जाती है। फिर वह घाव नहीं बना पाता। फिर वह मलहम हो जाता है। छुरी, जो तुम्हारे प्राणों को छेद देती, भाला जो तुम्हारे प्राणों के आर-पार उतर जाता--वह मलहम बन जाता है। लोग उसको घोंट-पीस कर मलहम बना लेते हैं--भाले की मलहम बना लेते है। लोग झूठ चाहते हैं। झूठ बड़ा प्यारा है।
तुम झूठ में ही जीते हो। कोई तुमसे कह देता है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं और तुम प्रफुल्लित हो जाते हो। और तुमने कभी यह सोचा ही नहीं कि तुम में प्रेम करने योग्य है क्या, जो कोई तुम्हें प्रेम करेगा! तुम्हें

अगर कोई याद दिलाए कि तुम में प्रेम करने योग्य कुछ है ही नहीं, भाई मेरे तुम्हें कोई प्रेम करेगा कैसे? तो तुम नाराज हो जाओगे। उसने तुम्हारा सत्य छू दिया। उसने तुम्हारी रग छू दी। उसने तुम्हारा दर्द छेड़ दिया। तुम मलहमपट्टी चाहते हो। तुम चाहते हो लोग कहेंः तुम बड़े प्यारे हो, बड़े भले हो! और तुम जानते हो कि ऐसे तुम नहीं हो। जानते हो, इसलिए इसको छिपाना चाहते हो। तुम उन्हीं लोगों का आदर करते हो, जो तुम्हारे मन को किसी न किसी रूप में सांत्वना दिए चले जाते हैं।
इसलिए तो दुनिया में खुशामद का इतना प्रभाव है। स्तुति का इतना चमत्कारी प्रभाव है! तुम कैसे ही कुरूप से कुरूप आदमी से कहो कि तुम सुंदर हो, वह मान लेता है। और तुम मूढ़ से मूढ़ से कहो कि आपकी प्रतिमा अपूर्व है, वह मान लेता है। तुम अंधे आदमी से कहो की तुम्हारी दृष्टि बड़ी दूरगामी है और वो मान लेता है। शक ही नहीं पैदा होता। मानना चाहता है। उसे पता है वह अंधा है। वह बात अखरती है, वह खटकती है। कोई कह देता है कि "क्या पागल हुए हो, तुम और अंधे! ऐसे प्यारे नेत्र तो कभी देखे नहीं। ऐसे सुख देने वाले नेत्र तो कभी देखे नहीं!" और उसके भीतर भी गुदगुदी पैदा होती है, और वह स्वीकार कर लेता है कि तुम ठीक कहते होओगे। वह मानना चाहता है कि तुम ठीक ही कहते होओगे। वह मान लेता है।
ऐसे हम एक-दूसरे की मलहम-पट्टी करते रहते हैं, एक-दूसरे को सांत्वना देते रहते हैं। यहां हम सब एक-दूसरे की नींद में सहयोगी हैं। जब कोई सदगुरु कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई नानक खड़ा हो जाता है और जगाने लगता है नींद से तो तुम्हें बड़ी बेचैनी होती है; तुम्हें लगता हैः कौन सपने तोड़ने आ गया? अभी तो बड़े प्यारे सपने चलते थे। अभी तो मैं राजमहलों में था। स्वर्ण-मुकुट मेरे सिर पर थे। अप्सराएं मेरे आस-पास नाचती थीं। ऐसे प्यारे सपनों को तोड़ने यह कौन आ गया? यह किसने सत्य की बात छेड़ दी, असमय में?
हां, सत्य ठीक है--अतीत में हो, भविष्य में हो; वर्तमान में कोई सत्य को नहीं चाहता। नगद धर्म का अर्थ होता हैः सत्य वर्तमान में है; न तो अतीत में और न भविष्य में।
तुम जरा अपने भीतर जांच करना, तुम्हें मेरी बात साफ दिखाई पड़ जाएगी।
लोग कहते हैं, पहले हुए होंगे बुद्ध पुरुष। लोग कहते हैं कि आगे भी होंगे बुद्ध पुरुष। लेकिन वर्तमान में किसी बुद्ध को तुम स्वीकार नहीं कर पाते कि कोई बुद्ध पुरुष पैदा हुआ है। कहां होगी इसकी अड़चन? क्योंकि आखिर जो आज अतीत हो गए हैं, वे कभी तो वर्तमान में थे। तब तुमने उनको भी इनकार किया था। महावीर को लोग इनकार करते थे। बुद्ध को लोग इनकार करते थे। क्राइस्ट को इनकार किया। लाओत्सु को इनकार किया। तब भी लोग यही कहते थेः हां, पहले हुए हैं महापुरुष, जानने वाले, मगर अब कहां? अब भी वे यही कहते हैं कि पहले हुए हैं, अब कहां? कल भी वे कहेंगे कि पहले हुए हैं, अब कहां? वे सदा पहले होते हैं। अब नहीं होते।
क्यों? क्या अड़चन है तुम्हें आज मानने में? आज मानने में यह अड़चन है
कि अगर आज कोई जाग्रत हो गया है, तो फिर तुम क्या कर रहे हो? अगर आज कोई बुद्ध हो गया है, तो फिर तुम कहां हो? यह स्वीकार ही करना कि कोई आज बुद्ध हो गया है, कोई आज भगवत्ता को उपलब्ध हो गया है, तुम्हारे भीतर शूल की तरह चुभ जाता है कि नहीं, यह नहीं हो सकता, क्योंकि इससे बेचैनी शुरू होती है। इससे यह लगता हैः तो फिर मेरा जीवन अकारथ गया? पहले हुए होंगे। पहले होते थे। वे सतयुग की बातें हैं। अब कहां कलियुग में? और आगे हुए होंगे। मजा यह है, आगे भी होंगे। बल्कि अवतार होगा भगवान का--आगे! मैत्रेय का अवतार होगा बुद्ध का--आगे! क्राइस्ट फिर आएंगे--आगे!
तुम पीछे और आगे तो मान लेते हो; बीच में, जो कि वास्तविक सत्य है, जो
कि वास्तविक क्षण है, जो समय की एकमात्र सत्ता है, उसको तुम स्वीकार नहीं करते। अतीत केवल स्मृति है और भविष्य केवल कल्पना। न तो अतीत का कोई अस्तित्व है, न भविष्य का। अस्तित्व तो वर्तमान का है।
मैं तुमसे कहता हूंः बुद्ध आज हैं। धर्म आज है, अभी है।
नगद धर्म का यह भी अर्थ है कि जागना हो तो आज जाग जाओ।

एक मित्र ने पूछा हैः "प्रभु, कब जागूंगा?"
"कब" का मतलब यह होता हैः आगे पर टालना शुरू कर दिया। मैं कहता हूं, अभी! और तुम पूछते होः कब? अभी क्यों नहीं? कल भी ऐसा ही दिन होगा जैसा आज है। परसों भी यही होगा, जैसा आज है। ऐसा ही कल था, ऐसा ही परसों था। ऐसा ही कल होगा, ऐसा ही परसों होगा। समय की वही धारा बह रही है। जीवन का चक्र वैसा ही घूम रहा है। कुछ भेद नहीं है। जागना हो तो अभी। या तो अभी या कभी नहीं। तुम पूछते होः "प्रभु, कब जागूंगा?"
तुम्हारा मन एक बात भर स्वीकार नहीं करता कि अभी जागना हो सकता है। अगर मैं तुमसे कहूं हां, जरूर जागोगे अगले जन्म में, तुम निश्चिंत हुए। फिर तुम्हारे मन से सारा बोझ टला। तो तुमने कहाः तो अभी तो जाऊं, दुकान करूं! तो अभी तो जाऊं, चुनाव लडूं? अभी तो धन कमा लूं। अभी तो जागने में देर है। अभी तो थोड़े सपने और देखू लूं। एक करवट और लूं और रजाई में छुप जाऊं। मीठी सुबह ठंडी सुबह! अभी तो जगना नहीं है, अभी बड़ी देर है। देखेंगे अगले जन्म में।
और अगले जन्म में भी तुम मेरे जैसे किसी व्यक्ति के पास जाकर पूछोगेः प्रभु, कब जागूंगा? ऐसा ही तुमने पिछले जन्म में भी पूछा था। तुम कोई नये थोड़े ही यहां आ गए हो। तुम जन्मों-जन्मों से यही तरकीब करते रहे हो। तुमने बुद्ध से पूछा था यही कि प्रभु, कब जागूंगा? और बुद्ध ने कहाः अभी! और तुम्हें बात नहीं जंची। तुमने कहाः अभी कैसे हो सकता है? अभी हजार और काम पड़े हैं।
एक गांव में बुद्ध तीस वर्षो तक निरंतर आए और एक आदमी तीस वर्षों तक निरंतर सोचता रहा कि बुद्ध के दर्शन करने हैं और नहीं कर पाया।.जरा बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है। तीस साल लंबा समय है। जब उसको खबर मिली कि बुद्ध अब मरने के करीब हैं, तब वह भागा। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से उस सुबह शरीर छोड़ने के पहले कहाः किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ लो, मेरी आखिरी घड़ी आई। भिक्षुओं के पास तो पूछने को क्या था; जीवन भर पूछा था, फिर भी समझे नहीं, अब और पूछने को क्या था! पूछते ही रहे जिंदगी भर, पूछना आदत हो गई थी। सुनना भी आदत हो गई थी। वे प्रश्न पूछते रहे थे, बुद्ध उत्तर देते रहे थे; लेकिन सब चीजें जहां की तहां थीं। वे रोने लगे। अब घबड़ाहट उन्हें भी लगी कि कल शास्ता नहीं होंगे; प्रश्न हमारे वहीं के वहीं हैं, उत्तर देने वाला नहीं होगा।
बाहर से अगर उत्तर लिए हैं तो एक न एक दिन अड़चन आएगी, आंखों में आंसू आएंगे ही। क्योंकि बाहर से उत्तर एक न एक दिन बंद हो जाएंगे। मैं तुम्हें कब तक उत्तर देता रहूंगा। मेरे उत्तरों पर निर्भर मत रहना, नहीं तो उधार हो गया धर्म। मेरे उत्तर से अपने उत्तर को खोजने की कोशिश में लग जाओ। मेरा उत्तर सिर्प तुम्हारे अपने उत्तर की तलाश में एक धक्का बन जाए, बस पर्याप्त हैं। काम शुरू हो जाए। नहीं तो किसी न किसी दिन मुझे भी तुमसे कहना होगा कि अब मैं जाता हूं। अब कल तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर मैं न दे सकूंगा। तब तुम रोओगे। तुम कहोगेः हमारे प्रश्न तो वहीं के वहीं हैं। आपने दिए थे उत्तर, मगर हमने लिए कब? आपने दिए थे, मगर हमने जिए कब? आपने दिए थे, वे आप के थे, हमारे हुए कब? आए ऊपर से और निकल गए ऊपर से, हम तो वैसे के वैसे हैं।
तुम भी रोओगे। उस दिन बुद्ध के शिष्य रोने लगे। लेकिन बुद्ध ने कहाः
अब रोने से कुछ भी न होगा। इतनी बार मैंने तुमसे कहा था कि जाग जाओ, जाग जाओ, जाग जाओ! तुम कल पर टालते रहे, अब कल मैं नहीं रहूंगा। अब आज पर ही बात है, कुछ पूछना हो पूछ लो।
उन्हें कुछ सूझा नहीं पूछने को। टालने की सुविधा हो तो आदमी ऊंचे- ऊंचे प्रश्न पूछता हैः "ईश्वर है या नहीं?" टालने की सुविधा न हो तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। कोई ईश्वर जानना थोड़े ही चाहता है। अभी.जरा तुम सोचो, सच में तुम अभी जानना चाहते हो? इसी वक्त? अगर मैं तुम्हारा हाथ पकड़ लूं कि आज जना ही दूंगा, तो तुम कहोगेः छोड़िए भी मेरा हाथ! घर में पत्नी राह देखती होगी। और बच्चे भी हैं।।

फिर आऊंगा और अगर तुम ज्यादा डर गए मुझसे तो फिर तुम कभी आओगे भी नहीं।
उस आदमी को, जिसका नाम सुभद्र था, गांव में खबर मिली कि आज बुद्ध का जीवन समाप्त हो रहा है। वह चौंका। उसने कहा कि तीस साल हो गए, मैं कितनी बार सोचा कि जाना है, जाना है जाना है; मगर कोई न कोई काम आ जाता है।
काम सदा आ जाते हैं। तुम्हारे और राम के बीच में काम सदा आ जाते हैं। कभी जा ही रहा था कि मेहमान घर में आ गए थे। कभी जाने को ही था कि दुकान पर ग्राहक आ गए थे। कभी जाने को ही था कि पत्नी बीमार हो गई थी। कभी जाने को ही था कि बच्चा गिर पड़ा, उसने टांग तोड़ ली। ऐसे कुछ न कुछ काम आते ही गए, आते ही गए। वे सब काम तो चलते ही रहते हैं, जिसे जाना हो वह उनके बावजूद जाता है। जो सोचता है कि जब सब काम निपट जाएंगे, तब मैं राम के पास जाऊंगा, वह कभी जाता ही नहीं। काम कभी निपटे हैं? काम कभी पूरे हुए हैं? यहां कुछ भी कभी पूरा नहीं होता।
वह भागा एक दिन दुकान छोड़ कर। उसकी पत्नी ने कहाः कहां जाते हो? उसने कहाः अब बकवास बंद कर! तीस साल से तू रोकती रही। उसके बेटे ने कहाः लेकिन, आखिर जा कहां रहे हैं? उसने कहाः अब बात ही मत कर। ग्राहक दुकान पर आ गए थे, उसने कहाः अब जो तुम्हें करना हो करो। दुकान लूटना हो तो लूट लो, मैं जा रहा हूं! हद हो गई। यह तीस साल से मैं प्रतीक्षा करता हूं, लेकिन कोई न कोई काम आ जाता है।
वह भागा हुआ पहुंचा। बुद्ध तो विदा ले चुके थे। उन्होंने अपने भिक्षुओं से कहा कि अगर कुछ नहीं पूछना है तो मैं अब आंख बंद करूं और डूब जाऊं। वे वृक्ष के पीछे चले गए। उन्होंने आंखें बंद कर लीं। उन्होंने देह का पहला तल छोड़ दिया। दूसरा तल छोड़ रहे थे, तब सुभद्र पहुंचा। वह चिल्लाने लगा कि मुझे दर्शन करने हैं। मुझे कुछ पूछना है।
भिक्षुओं ने कहा कि अब देर हो गई, बहुत देर हो गई। और सुभद्र, तीस साल
से तू क्या कर रहा था? और हम खबर तो सदा सुनते थे कि सुभद्र आना चाहता है, आना चाहता है, आना चाहता है। तीस साल तू क्या कर रहा था? अब बहुत देर हो गई। अब मिलना नहीं हो सकेगा। अब तो यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। हम उन्हें विदा भी दे चुके। उन्होंने आंख भी बंद कर लीं। वे अपनी देह को छोड़ने में संलग्न हो गए हैं।
लेकिन सुभद्र चिल्लाया कि नहीं, एक बार तो मुझे मिल ही लेने दो! एक बार
तो उनको मुझे देख ही लेने दो!
बुद्ध ने आंखें खोल दीं। उठ कर आ गए। उन्होंने कहाः सुभद्र! तू तीस साल तक बचता रहा। तू सोचता था काम आ गए बीच में! बात गलत थी, बहाना था। सब काम बहाने थे। काम तो आज भी थे, आज तू कैसे आया? जिन्होंने तुझे पहले रोका था, वे आज भी रोक रहे थे, आज तू कैसे आया? जब कोई आना चाहता है तब आ जाता है। जब नहीं आना चाहता तो बहाने खोज लेता है। और मुझे अपनी मरण-प्रक्रिया को छोड़ कर तुझे उत्तर देने के लिए आना पड़ा है। क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि बाद में लोग यह कहें कि बुद्ध जिंदा थे और एक आदमी प्रश्न पूछने आया और बिना प्रश्न पूछे, बिना उत्तर पाए चला गया। यह जुम्मेवारी मैं नहीं लेना चाहता। हालांकि मैं जानता हूं कि तू उत्तर न तो सुनेगा, न ग्रहण करेगा; मगर वह तेरी बात। पूछ ले तूझे जो पूछना हो।
और कहानी कुछ भी नहीं कहती कि सुभद्र ने उत्तर ग्रहण किया या नहीं किया। सुभद्र यही पूछे था कि हे प्रभु, मुझे ज्ञान कब होगा? --जो तुमने पूछा हैः मुझे बोधि कब मिलेगी?
कब! अभी बुद्ध मर रहे हैं, तुम फिर भी पूछ रहे होः कब? मैं तुमसे कहता हूंः अब! इसी वक्त! कब की भाषा छोड़ दो। कब का मतलब होता हैः भविष्य। कब का मतलब होता हैः तुमने आज बचने का उपाय खोज लिया। "कब" तुम्हारे आज से बचने के लिए छाते का काम करता है। यह कल की कंबली छोड़ो। यह कल का कंबल छोड़ो। यह कल तुम्हें बचाता रहा है आज से। आज ही सब है। आज जीवन का सब मौजूद है। इस क्षण परमात्मा उतना ही मौजूद है जितना कभी पहले था और जितना कभी आगे होगा। रत्ती भर कम नहीं, रत्ती भर ज्यादा नहीं।

परमात्मा की मात्रा इस विश्व में सदा समान है। जो भी हिम्मत कर लेता
है जागने की, वह अभी जाग सकता है। तुम टालो मत। स्थगित मत करो।
नगद धर्म का यह भी अर्थ होता है कि स्थगित करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

दूसरा प्रश्नः
मेरी वीणा तुम बिन रोए,
मधुर मिलन कब होए?
बहुत सारे प्रश्न उठते हैं, शब्द नहीं मिलते हैं, क्या पूछूं?

पूछा है वीणा ने।
प्रश्न तो उठते ही रहते हैं। प्रश्न तो ऐसे ही लगते हैं मन में जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। उनका कोई अंत नहीं है। तुम प्रश्न पूछो, मैं उत्तर दूंगा। उत्तर से दस और प्रश्न उठ आएंगे, और कुछ भी न होगा। उत्तरों से प्रश्न नहीं मरते। उत्तरों के माध्यम से प्रश्न अपने को फिर पुनरुज्जीवित कर लेते हैं, फिर ताजे हो जाते हैं, फिर बलशाली हो जाते हैं। अगर उत्तरों से प्रश्न हल होते होते, तो सारे प्रश्नों के उत्तर दिए जा चुके हैं। क्या तुम सोचते हो तुम कोई नया प्रश्न पूछ सकते हो? इस सूरज के तले नया कुछ भी नहींं है।
जो तुम मुझसे पूछते रहे हो, वही बुद्ध से पूछा गया है, वही कृष्ण से, वही कबीर से, वही दादू से, वही धनी धरमदास से। जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, ये अनंत बार पूछे गए प्रश्न हैं। और अनंत बार इनके उत्तर दिए जा चुके हैं। प्रश्न भी वही हैं, उत्तर भी वही हैं। अन्यथा हो भी कैसे सकता है, क्योंकि सत्य एक है। थोड़ी भाषा बदल जाती होगी, युग के अनुकूल शैली बदल जाती होगी, थोड़े दृष्टांत बदल जाते होंगे, मगर बात नहीं बदलती। मूल बात नहीं बदलती। बुद्ध एक तरह के उदाहरण देते थे, मैं दूसरे तरह के उदाहरण देता हूं--बस उतना ही फर्क है। बुद्ध एक तरह की भाषा का उपयोग करते थे मैं दूसरी भाषा का उपयोग करता हूं। बुद्ध उस भाषा का उपयोगग करते थे जो उनको सुनने वाले समझते थे। मैं उस भाषा का उपयोग करता हूं जो मुझे सुनने वाले समझते हैं। बस उतना ही भेद है। लेकिन जो कहा जा रहा है, वह वही है।
बोतलें बदल जाती हैं, शराब वही है। बोतलों पर लेबल बदल जाते हैं, शराब वही है। समय के अनुकूल भाषा और शैलियां बदल जाती हैं, शराब वही है।
प्रश्न पूछने से हल नही होते, नहीं तो कभी के हल हो गए होते। एक भी तो नया प्रश्न नहीं है जो पूछा जा सके।
फिर, प्रश्न कैसे हल होंगे? प्रश्न मन के अनिवार्य अंग हैं। जब तक तुम
मन से मुक्त न हो जाओगे तब तक प्रश्नों से मुक्त न हो सकोगे।
इसलिए सदगुरु का असली काम प्रश्न मारना नहीं है, प्रश्नकर्ता को मारना है। प्रश्न तो बहाना है। प्रश्न के बहाने सदगुरु प्रश्नकर्ता की हत्या करने लगता है। प्रश्न को तोड़-तोड़ कर प्रश्नकर्ता को धीरे-धीरे तोड़ देता है। और जिस दिन प्रश्नकर्ता मर जाता है, तुम्हारे भीतर प्रश्न नहीं उठते, उस दिन उत्तर आता है।
ख्याल रखना, इस बात को फिर से दोहरा दूं। जब तक प्रश्न हैं तब तक उत्तर नहीं मिलेगा। प्रश्न से भरे चित्त को उत्तर मिल ही कैसे सकता है? प्रश्न से भरे चित्त को क्षमता कहां है उत्तर को समझ लेने की, सुन लेने की? प्रश्न से भरा चित्त उस उत्तर को भी पकड़ लेगा और दस प्रश्न उसमें से निकाल लेगा। तुम.जरा अपने प्रश्न की प्रक्रिया देखना, तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी।
एक आदमी मेरे पास आया। उसने कहा बस मेरा एक ही प्रश्न है। मैंने कहा, फिर पक्का रहे कि एक ही रहे, फिर दूसरा न हो। वह थोड़ा झिझका। और कह चुका था कि एक ही प्रश्न है, तो उसने कहा ठीक। मैंने कहा, बात के धनी हो कि नहीं? एक ही प्रश्न रहे। फिर दूसरा न उठे। तो उसने कहा, बस मेरा एक ही प्रश्न है। उसने बहुत सोचा-समझा, आंख बंद कर ली कि जब एक ही पूछना है, तो सोच-समझ कर पूछ

लेना चाहिए। उसने कहा कि यह पृथ्वी, यह संसार सच में किसी ने बनाया है? तो उसने सोचा बड़ा गहरा प्रश्न पूछ रहा है।
मैंने कहाः निश्चित। ईश्वर सब के पीछे छिपा है।
तो उसने कहा, फिर सवाल उठता है। मैंने कहा, अब उठने नहीं देंगे। सवाल-- लेकिन उसने कहा, सवाल उठता ही है। अब आप उठने दो या नहीं उठने दो, मैं कहूं या न कहूं। सवाल उठता है कि अगर ईश्वर है तो दुनिया में दुख क्यों है? बीमारी क्यों है? कैंसर क्यों है? टी. बी. क्यों है? गरीब क्यों है, अमीर क्यों है?
क्या तुम सोचते हो, उसको प्रश्न का उत्तर दिया जाए तो हल होगा? मैंने उससे पूछाः अगर इसका मैं उत्तर दूं, फिर तो नहीं पूछेगा? उसने कहा, अब मैं वचन नहीं दे सकता। पहले वचन देकर मैं भूल में पड़ गया, फिर उत्तर ने नया प्रश्न उठा दिया।
जब तक प्रश्न करने की मूल प्रक्रिया जीवित है... उस मूल प्रक्रिया का नाम मन है। मन का अर्थ होता हैः प्रश्न पैदा करने का यंत्र। उसमें कुछ भी डालो, वह प्रश्न बन कर बाहर आता है। मन की कला यही है कि हर चीज पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देता है। कुछ भी डालो, उसको जल्दी से मोड़ कर प्रश्न बनाता है, प्रश्न आकर ऊपर उठ आता है। कोई प्रश्न मन के रहते हल नहीं होने वाला है।
इसलिए वीणा, प्रश्न की फिकर में ही मत पड़ो। मन कैसे जाए, मन से कैसे छुटकारा हो, अ-मनी दशा कैसे पैदा हो--बस उसकी ही तलाश में लगो। मन चला जाए तो जड़ कट जाती है, फिर पत्ते नहीं लगते। अ-मन हो जाए।
और देखते हो, अमन शब्द बड़ा प्यारा है! एक तो अमन का अर्थ होता है मन न
रह जाए, और एक अमन का अर्थ होता है शांति हो जाए। दोनों का एक ही प्रयोजन है। जहां मन नहीं रहा, वहीं शांति हो जाती है। जहां मन नहीं, वहीं अमन है, वहीं चैन है, वहीं चैन की बंसी बजती है। फिर कोई प्रश्न नहीं उठते। और जहां प्रश्न नहीं उठते, उसको मैं कहता हूं आस्तिकता।
तुमने समझा हुआ है सदा से कि आस्तिकता का अर्थ होता है, जो संदेह न करे। लेकिन अगर मन है तो संदेह उठेंगे ही, करो या न करो, कहो या न कहो। आस्तिकता का अर्थ होता हैः जहां मन न रहा, जहां प्रश्न ही नहीं उठते। संदेह करने वाला ही चला गया। संदेह का मूलस्रोत ही नष्ट हो गया। चैतन्य बचा--मन-रहित चैतन्य।
ऊर्जा को, अपनी सारी शक्ति को, प्रश्नों के हल करने में मत लगाओ। सारी ऊर्जा को मन से मुक्त होने में लगा दो। उसी का एक नाम ध्यान है, उसी का एक नाम भक्ति है। जो तुम्हें प्रीतिकर लगे।
वीणा को दृष्टि में रख कर कहता हूं, भक्ति ही प्रीतिकर होगी। क्योंकि पूछा हैः मेरी वीणा तुम बिन रोए। मधुर मिलन कब होए?
मिलन हो सकता है। तुम मिटो तो मिलन हो जाए। तुम ही बाधा हो, और कोई बाधा नहीं है। कठिनाई है। बिना मिलन के पीड़ा है। होनी ही चाहिए। मेरे पास आयी हो तो उसे और बढ़ाऊंगा।
क्योंकर गुजर रहे हैं मेरी जिंदगी के दिन
यह मैं तुम्हें बता नहीं सकती हूं, क्या करूं?
मुझको तेरे फिराक का एहसास है मगर
मैं तेरे पास आ नहीं सकती हूं, क्या करूं?
यह ठंढी-ठंढी आग, मुहब्बत कहें जिसे
यह आग मैं बुझा नहीं सकती हूं, क्या करूं?
यह आग अभी बढ़ाना है, बुझाना है ही नहीं। यह आग अभी गहरानी है। यह आग अभी पूरी प्रज्वलित करनी है। इस आग में जितनी समिधा डाल सको, डालो। इस आग में जितना ईंधन डाल सको, डालो। यह आग पूरी प्रज्वलित हो जाए तो यही है यज्ञ। वह जो तुम हवन-कुंड बना कर, कर लेते हो यज्ञ, वे सब थोथे हैं और झूठे हैं और पाखंड हैं, और पंडितों का जाल है, शोषण के उपाय हैं। असली यज्ञ की वेदी भीतर बनती है। यही है वह आग--मोहब्बत की आग! प्रेम की आग!
इस जगत में प्रेम कभी तृप्त नहीं हो सकता, क्योंकि इस जगत में जिससे
भी तुम प्रेम लगाओगे वह सब क्षणभंगुर है। पानी का बबूला है; अभी बना, अभी

मिटा। प्रेम शाश्वत पात्र चाहता है। ऐसा, जिससे मिलन हो तो छूटे न फिर। जहां विरह फिर दुबारा न हो। जहां तलाक संभव ही नहीं है। जहां मिलन का अर्थ ही होता हैः मिल गए, एक हो गए, अब दो होने का उपाय न रहा। जहां मिलन में दो नहीं बचते; दो मिल कर एक ही हो जाते हैं, एक ही बचता है, अद्वैत बचता है। अभी प्रश्नों की दिशा में जाने की बजाय भजन की दिशा में चलो। वही शक्ति है, उससे प्रश्न बनाओ तो दर्शन की यात्रा होती है; उसको ही अगर आंख के आंसू बनाओ। रोओ विरह में! मिलन की आकांक्षा है तो विरह में रोओ! पुकारो! कोई उत्तर न आएगा, फिर भी पुकारते रहो! उत्तर की फिकर ही मत करो। आज नहीं आया तो इतना ही समझना कि पुकार पूरी नहीं थी। कहीं कोई संदेह था। कहीं कोई दुविधा थी। फिर पुकारना। फिर-फिर पुकारना। पुकारते ही जाना। इतना सुनिश्चित है कि जिस दिन पुकार पूर्ण होती है उसी दिन उत्तर आ जाता है। उसी दिन सारा जगत मुखर हो जाता है। अस्तित्व बोल उठता है। अस्तित्व डोल उठता है। अस्तित्व सब तरफ से तुम्हारे ऊपर बरस जाता है। अभी तो बातें करो। उधर से उत्तर नहीं भी आए तो चिंता मत करना।
जब मेरे पास वे नहीं होते, उनसे होती हैं राज की बातें
जिन पै मौसीकिओं को वज्द आए, हाय उस मस्ते नाज की बातें
जिससे संगीत भी झेंप जाए... जिन पै मौसीकिओं को वज्द आए... जिसमें संगीत
को भी बेहोशी आ जाए और तल्लीनता हो जाए, हाय उस मस्ते नाज की बातें! उस प्यारे की बातें! उस प्रीतम की बातें!
उत्तर नहीं आएगा। यही पीड़ा है भक्त की। पुकारता है, उत्तर नहीं आता। सूने आकाश में सारी पुकार खो जाती है। गाता है गीत, कहीं से कोई खबर नहीं आती कि किसी ने सुना कि नहीं सुना। झुकता है प्रार्थना में, लेकिन चरण हाथों में पकड़ नहीं आते।
वीणा के लिए यही उचित होगाः झुको! रोओ! पुकारो! प्रश्नों की चिंता छोड़ो। प्रश्नों के गोरखधंधे में मत पड़ो। फिर एक दिन घटना घटती है। निश्चित घटती है। सदा घटती रही है। तुम्हारे साथ विश्व का नियम अपवाद नहीं करेगा। निरपवाद घटती रही है।
कभी इधर भी चले आओ कैफ बरसाते
सबू कदे की फजाएं सलाम करती हैं
ख्याले दोस्त यह चुपके से उनसे कह देना
तुम्हें किसी की वफाएं सलाम करती हैं
अभी भेजो सलाम! अभी झुको! जल्दी ही किसी दिन, जिस दिन झुकना पूरा हो जाएगा, चरण हाथ में आ जाएंगे! लेकिन तुम्हारी तरफ से जब पूर्णता होती है तभी यह हो पाता है।
तो अभी प्रश्न में मत बांटो अपने को, नहीं तो पूर्णता कभी नहीं हो पाएगी। भक्त को प्रश्न की चिंता ही नहीं करनी चाहिए। भक्ति में प्रश्न इत्यादि का कोई सवाल नहीं है। भक्त को तो प्रेम की चिंता करनी चाहिए, प्रश्न की नहीं। थोड़ा सा प्रेम भी पहाड़ों जैसे बड़े ज्ञान से ज्यादा बहुमूल्य है। प्रेम में बहे दो आंसू ज्ञानी की पूरी खोपड़ी से ज्यादा मूल्यवान हैं। प्रेम में उठी एक आह--और सारे वेद और सारे शास्त्र फीके पड़ जाते हैं! ... तो रोओ! गाओ!
किसी की याद में आंसू बहा रही हूं मैं
हदीसे-दर्दे-मुहब्बत सुना रही हूं मैं
संभल जमानए-हाजिर की तुझसे कुछ पहले
करीब मंजिले-मकसूद जा रही हूं मैं
सुनी है जब से खबर उनकी आमद-आमद की
हरीमे-दीदए-दिल को सजा रही हूं मैं
अभी जमाना नहीं उनके आजमाने का
अभी तो अपने को खुद आजमा रही हूं मैं,
नफस-नफस है मेरा साजे-गैब ऐ "अख्तर"!
जो सुन रही हूं जहां को सुना रही हूं मैं
रोओ! गाओ! कभी कुछ भनक पड़ जाए, सुनाई पड़ जाए उस अज्ञात लोक से, उसे जगत
को सुनाओ। कभी कुछ पकड़ में आ जाए एक किरण, उसे जल्दी से बांट दो कि हाथ से

छूट न जाए। कभी एक बूंद तुममें टपक जाए उस सागर की, तो उसे संभालकर संपत्ति समझ कर दबा मत लेना। उसे बांटना! जितना बांटोगे उतना बढ़ेगी। एकाध स्वर पकड़ में आ जाए, गुनगुनाना। दे देना औरों को! फिर और बड़े स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे। उसके मार्ग पर बांटने वाले ही संगृहीत कर पाते हैं और लुटाने वाले ही संपदावान हो पाते हैं।

तीसरा प्रश्न: सत्संग की महिमा समझाने की अनुकंपा करें।

प्रज्ञा! सत्संग ही करो न! सत्संग की महिमा समझ कर क्या करोगी? यह तो ऐसा ही हुआ कि फलों से भरे बगीचे में गए और पूछने लगे कि फलों की महिमा समझाइए। ये रस-भरे फल! स्वाद नहीं लेना है, इनकी महिमा ही समझनी है? और महिमा समझते-समझते जन्म-जन्म हो गए। चूसो इन आमों को! पीयो! इस रस को पचाओ! मेरे साथ सत्संग ही होने दो न! सत्संग की महिमा... ? जहां स्वाद मिल सकता हो, वहां भी तुम शब्द की ही प्रतीक्षा करते हो? जहां भोजन मिल सकता हो वहां भी तुम भोजन की वार्ता करना चाहते हो? सत्संग घट सकता है, घट रहा है। जो भी राजी हैं, उनको घट रहा है। जो भी हिम्मत रखते हैं पास सरक आने की... सत्संग का और क्या अर्थ होता है--पास सरक आना। जहां सत्य दिखाई पड़ जाए, वहीं जम कर बैठ जाना, वहां से हटना ही नहीं। वहीं करीब-करीब सरकते आना। गुरु धक्के दे और भगाए, डंडे मारे और पीछा करे, तो भी फिकर नहीं करना। जमे ही रहना!
परीक्षा है। लोग छोटी-छोटी बातों में उखड़ जाते हैं, जरा-जरा सी बातों में भाग जाते हैं।.जरा एक-आध बात उनके मन के अनुकूल न पड़ी और वे गए। उन्होंने कहाः "यह हमारे बात नहीं जंचती। यह हमारे शास्त्र में नहीं लिखी। यह हमारी किताब के अनुकूल नहीं है।" वे गए!
सत्संग तभी हो सकता है जब तुम सब अपनी किताबें घर रखकर आओ, खाली आओ। सत्य का साथ करना हो तो नग्न होकर आओ, रिक्त होकर आओ। अपने सिर को उतार कर घर रख आओ। खाली आओ, ताकि सत्य प्रवेश कर सके।
फिर, सत्य को ग्रहण करने के लिए और कुछ नहीं करना पड़ता, सिर्प गर्भ बन जाना पड़ता है। स्वीकार करने की भाव-दशा... । द्वार खुला छोड़ो। मुझे भीतर आने दो।
हालतें अजीब हैं। मैं तुम्हारे द्वार पर दस्तक दिए जाता हूं और तुम द्वार मजबूती से बंद किए हुए हो, ताले लगाए बैठे हो। और भीतर से पूछते होः सत्संग की महिमा!
दरवाजा खोलो! ताले तोड़ो! तुमने ही लगाए हैं, तुम्हीं खोल सकते हो। थोड़ी हिम्मत करो बाहर आने की। सुरक्षा थोड़ी छोड़ो। थोड़े असुरक्षित होने का साहस दिखाओ। सत्संग हो जाएगा। सूरज निकल आया है, तुम्हीं अपने दरवाजे बंद किए भीतर अंधेरे में बैठे हो। सूरज पर कोई परदा नहीं है, तुमने ही घूंघट कर रखा है।
प्रज्ञा! घूंघट के पट-खोल! हटाओ यह घूंघट! यहां पीयो, महिमा क्या पूछनी है? महिमा किससे पूछनी है? महिमा अनुभव करो! पूछने-पाछने का काम नहीं है। सोचने-समझने का काम नहीं है। पी जाओ।
सत्संग तो शराब जैसी चीज है; जो पीएगा वही जानता है। जिसने कभी शराब
पी नहीं, उसे कोई महिमा समझ में नहीं आ सकती। यह तो पियक्कड़ों का रस है, पियक्कड़ों का अनुभव है। सत्संग तो एक तरह की मधुशाला है, जहां शराब ढाली जा रही है। शराब--परमात्मा की! इस नशे में अपने को बचाओ मत, होशियारी न करो।
प्रज्ञा में मुझे दिखाई पड़ती है थोड़ी होशियारी और थोड़ा बचाव। यहां है, पूरी-पूरी नहीं, थोड़ा फासला रखे है, थोड़ी दूरी बचाए है। इतना फासला है कि अगर जरूरत हो तो निकल भागे। उतनी दूरी होशियार लोग हमेशा बचा कर रखते हैं, कि फिर कहीं ऐसा न हो जाए कि निकल न सकें बाहर। तो सत्संग नहीं हो सकेगा। इसलिए महिमा पूछी है। महिमा इसलिए पूछी है कि शायद महिमा समझ में आ जाए तो थोड़े और करीब आ जाएं।

और महिमा तो रोज तुमसे कह रहा हूं। और तो कुछ कह ही नहीं रहा हूं-- सत्संग की ही महिमा कह रहा हूं। अब समय आ गया है कि सत्संग करो।
"सत्संग" प्यारा शब्द है। उसका अर्थ हैः जिसे मिल गया हो, उसके साथ संबंध जोड़ लेना, उसके साथ भांवर डाल लेनी, उसके साथ सात चक्कर लगा लेने। सत्य संक्रामक है। अगर किसी को मिल गया हो और तुम उसके पास भी बैठ जाओ
तो तुम पाओगे, एक दिन अचानक तुम्हारे भीतर भी आषाढ़ के पहले मेघ घिर गए, घुमड़ने लगे, बिजली कौंधने लगी, वर्षा की तैयारी होने लगी। जन्मों-जन्मों की तुम्हारी आत्मा की प्यासी धरती तृप्ति के करीब आने लगी।
सत्य संक्रामक है। लेकिन करीब होओ, तभी संक्रमण होता है।
तुम देखते हो, डाक्टर मरीज के पास जाता है, तो जैसे जैन तेरापंथी मुनि मुंह पर पट्टी बांधते हैं, वह भी मुंह पर पट्टी बांध लेता है, हाथ पर दस्ताने चढ़ा लेता है, क्योंकि बीमारी संक्रामक है। मरीज के इतने पास होना, बिना दस्ताने के और बिना और मुंह-पट्टी के, खतरनाक है। और जैसे ही मरीज को देखता है, फिर जल्दी से जा कर साबुन से हाथ धोता है, जल्दी से सफाई करता, मुंह कुल्ला करता, कि कहीं कोई कीटाणु प्रवेश न कर गए हों।
सत्संग करना हो तो इससे ठीक उलटी प्रक्रिया चाहिए। मुंह-पट्टी अलग करो! और हाथ से दस्ताने हटाओ! सब बाधाएं अलग करो। सत्य को उतर जाने दो। सत्य मुक्तिदायी है। कुछ और करना नहीं है, सिर्प बाधाएं खड़ी नहीं करनी हैं। बस सत्य सब कर लेता है। यही सत्य की महिमा है कि सत्य सब कर लेता है। तुम बाधा बस मत डालो। तुम आलिंगन को तैयार रहो। तुम बाहें फैला दो और कहोः मैं राजी हूं! जाऊंगा अज्ञात में, अनजान में, अपरिचित में। जहां ले चलोगे, चलूंगा। जो होगा, होगा। सब दांव पर लगाता हूं। फिर सत्संग हो जाता है।
और एक बार सत्संग का स्वाद लग जाए तो फिर बढ़ता जाता है। बस पहली घूंट
ही कठिन पड़ती है। एक बार हलक से पहली घूंट उतर गई सत्संग की शराब की, फिर तो आदमी पीने के लिए आतुर हो जाता है। फिर तो जितना मिले उतना पीता है। जितना मिले उतना पचाता है। फिर कोई अंत नहीं है यात्रा का।
हर नफस मौत का इशारा है
जिंदगी आंसुओं का धारा है
हमने अपने लहू की सुर्खी से
चहरए-जिंदगी निखारा है
आज गुलशन में खारो-खस ने भी
लाल-ओ-गुल का रूप धारा है दिल धड़कता है इस तरह जैसे कोई टूटा हुआ सितारा है
जिंदगी के उदास लम्हों में
अब तेरे नाम का सहारा है
हमने इस जिंदगी से घबड़ा कर
बारहा मौत को पुकारा है
जब से वह है शरीके-गम "रूही"
हर गमे-जिंदगी गवारा है
गुरु का साथ सत्संग की शुरुआत है। इस शुरुआत का अंत परमात्मा के साथ में हो जाता है। इसलिए गुरु को परमात्मा कहा है शास्त्रों ने--सिर्प इसलिए कहा है कि गुरु से परमात्मा की यात्रा का पहला कदम उठता है, फिर यात्रा घनी होती जाती है। और कब गुरु खो जाता है और परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है, पता भी नहीं चलता।
हर नफस मौत का इशारा है
जिंदगी आंसुओं का धारा है
तुम्हारी जिंदगी में है क्या, सिवाय आंसुओं के, सिवाय दुख के? घबड़ाते क्या हो? अगर गुरु कुछ छीन भी लेगा तो क्या छीन लेगा? तुम्हारे पास जो भी है, अच्छा ही है कि छिन जाए।
मगर लोग बड़े अजीब हैं! अपने दुखों की गठरी बांधे बैठे हैं। गठरी के ऊपर बैठे हुए हैं कि कहीं कोई चुरा न ले, कहीं कोई छीन न ले! तुम डरते क्या हो? तुम्हारी हालत ठीक वैसी है जैसी कहावत है एक कि नंगा नहाता नहीं था।

किसी ने पूछा, भाई तू नहाता क्यों नहीं? उसने कहाः नहा तो लूं, लेकिन कपड़े कहां सुखाऊंगा? उसने कहाः भाईजान, कपड़े हैं कहां?
तुम घबड़ा क्या रहे हो? तुम्हारे पास खोने को है क्या? तुमसे अगर मैं कुछ छीन भी लूंगा तो क्या छीन लूंगा? छीना-झपटी में तुम्हें कुछ मिल ही सकता है, तुम्हारा कुछ खो नहीं सकता, घबड़ाओ मत। इतना ख्याल रखो के छीना- झपटी में कुछ भी तुम्हारा खो नहीं सकता। है ही नहीं तुम्हारे पास कुछ। काश तुम्हारे पास कुछ होता, तो सत्संग की जरूरत ही न थी! तुम बिल्कुल रिक्त हो। और जो तुम्हारे पास है, वह सिर्प तुमने बहाना बना रखा है कि अपने पास कुछ तो होना ही चाहिए, नहीं तो मन में बड़ी घबड़ाहट होती है।
मैंने सुना है, एक फकीर के घर में एक चोर घुस गया रात। अंधेरे में टटोल रहा था, फकीर ने कहाः मेरे भाई! घबड़ाना मत, मैं दीया जला लूं।
उस चोर ने कहाः दीया जला लूं, क्या मतलब?
फकीर ने कहाः मैं भी तुम्हारा साथ दूंगा। क्योंकि मैं इस घर में तीस साल से रहता हूं, मुझे कुछ नहीं मिला। दिन के उजाले में खोजते-खोजते परेशान हो गया हूं और तुम रात में अंधेरे में खोज रहे हो! तुम्हारे भाग्य से शायद कुछ मिल जाए तो आधा-आधा कर लेंगे।
तुम्हारे घर में है क्या? मान रखा है कि कुछ है। तुम्हारे घर से कोई चुरा भी ले जाएगा तो क्या चुरा ले जाएगा?
मैंने और एक कहानी सुनी है। मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक चोर घुस गया। चोर ने अपनी चादर बिछाई सामान बांधने के लिए, वह अंदर सामान लेने गया, मुल्ला उसकी चादर पर सो गया। बिल्कुल आंख बंद करके लेटे रहा है। तो चोर लौटा, उसने कहाः यह भी हद हो गई! घर में तो कुछ मिला ही नहीं, और चादर भी गई! उसने मुल्ला से कहा कि भई चादर तो दे दो। मुल्ला ने कहा कि इसी तरह कोई-कोई कभी-कभी आ जाता है, उसी से तो हमारा जीवन चल रहा है। चादर कहां से दें?
एक कहानी और भी मैंने सुनी है। एक चोर किसी के घर में घुसा। कुछ खास तो वहां था नहीं। मगर जो भी कूड़ा-कबाड़ था, अब आ ही गया था, रात खराब गई, चलो जो है ले चलें। वह उसी को बांध-बूंध कर चलने लगा। जब वह चलने लगा तो आधे रास्ते में उसने पाया कि कोई पीछे चला आ रहा है। उसने लौटकर देखा, वही आदमी है जिसके घर में वह सामान ले आया है। उसने पूछा कि भाई, तुम किसलिए आ रहे हो उसने कहा कि घर हम बदलना ही चाहते थे पहले से। हम भी वहीं रहेंगे जहां तुम रहते हो। सामान तो तुम ले ही आए हो, हम को कहां छोड़ जाते हो?
तुम्हारे पास है क्या? तुम इतने घबड़ाए किसलिए हो? लेकिन लोग बड़े डरे हुए हैं कि कहीं कुछ छिन न जाए, कहीं कुछ खो न जाए! जिनके पास कुछ नहीं है, उनका डर कि कहीं कुछ खो न जाए, सिर्प एक मान्यता है यह अपने को समझाए रखने की कि हमारे पास कुछ है। जरा खोल कर तो देखो पोटली, सिवाय दुखों के और कुछ भी नहीं।
गुरु अगर छीन भी लेगा तो दुख ही छीन सकता है।
हर नफस मौत का इशारा है
जिंदगी आंसुओं का धारा है
हमने अपने लहू की सुर्खी से
चहरए-जिंदगी निखारा है
गुरु के पास रहो, उठो-बैठो। उस हवा में थोड़ा जियो, श्वास लो, तो तुम्हारे दुखों का एक उपयोग हो जाएगा। वह उपयोग यह है कि दुःखों के माध्यम से चेहरे को निखारा जा सकता है। तुम्हारे आंसुओं का भी उपयोग ही जाएगा, क्योंकि आंसुओं के माध्यम से तुम्हारी आंखों को नहलाया जा सकता है। गुरु के पास यही तो कीमिया है कि तुम्हारे पास जो कूड़ा-करकट है उसका भी उपयोग सिखा दे, उसमें से भी कुछ सार्थक का निर्माण कर दे।
आज गुलशन में खारो-खस ने भी
लाल-ओ-गुल का रूप धारा है
अगर सत्संग हो जाए तो कांटों को भी तुम पाओगे फूल बन गए। आज गुलशन में खारो-खस ने भी... घास-पात ने, तिनकों ने, कांटों ने लाल-ओ-गुल का रूप धारा है। फूल बन गए हैं।
दिल धड़कता है इस तरह जैसे

कोई टूटा हुआ सितारा है
जिंदगी के उदास लम्हों में
अब तेरे नाम का सहारा है
सत्संग का अर्थ होता हैः किसी के साथ हो लिए, किसी का सहारा हो गया। अब तुम अकेले नहीं। संन्यास का और क्या अर्थ है? संन्यास का यही अर्थ है कि अब तुम अकेले नहीं, तुमने किसी का संग-साथ लिया है, तुम्हारे हाथ में किसी का हाथ है।
हमने इस जिंदगी से घबरा कर
बारहा मौत को पुकारा है।
तुमने तो इस जिंदगी में सिवाय मौत के और सोचा क्या था?
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने जिंदगी में दो- चार बार आत्महत्या की बात न सोची हो। और यह बात मुझे सच लगती है। हजारों लोगों के मनों का विश्लेषण कर-कर के मुझे भी यह बात दिखाई पड़ी है कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने कभी दो-चार बार किन्हीं उदास लम्हों में, किन्हीं दुख की घड़ियों में, किन्हीं पीड़ा के क्षणों में, आत्मघात का विचार न किया हो, मौत को न पुकारा हो।
तुम्हारी जिंदगी मौत को पुकारने में बीत गई है। यह भी कोई जिंदगी हुई?
जब से वह है शरीके-गम "रूही"
हर गमे-जिंदगी गवारा है
लेकिन सत्संग लग जाए, सत्संग का रंग लग जाए, तो फिर जिंदगी के सब दुख गवारा हैं। फिर एक रोशनी की किरण तुम्हारी अंधेरी रात में उतरी। फिर अमावस भी एकदम अमावस नहीं है, उसमें पूर्णिमा का कुछ हिस्सा उगने लगा। चांद की पहली रेखा प्रकट होने लगी। फिर चांद बढ़ता जाता है, अंधेरा कम होता जाता है। एक दिन पूर्णिमा की रात भी आती है। निश्चित आती है!
खिलाओ फूल तबस्सुम से गुलसितां बन जाओ
गुलों का नग्मा बहारों की दास्तां बन जाओ
नजर-नजर में सितारों की ताबिशें भर दो
हमारी अंजुमने-दिल में कहकशां बन जाओ
सत्संग का अर्थ होता हैः जहां सत्य दिख जाए, वहां प्रार्थना करना। उतर आओ हमारे हृदय में, ऐसी प्रार्थना करना। शब्दों में ही न हो प्रार्थना, प्राणों में ऐसी प्रार्थना हो। हमारी अंजुमने-दिल में कहकशां बन जाओ! आकाश-गंगा की तरह हमारे हृदय में उतर आओ! नजर-नजर में सितारों की ताबिशें भर दो! चमक भर दो तारों की!
उठाओ-पर्दए-रुख माहे जौ-फिशां बन जाओ
दिले-तबाह को तसकीं तो हो किसी सूरत
सितम से बाज न आओ तो महरबां बन जाओ
निबाहो रस्मे-मुहब्बत तुम अपनी "शबनम" से
नजर से दिल में समा जाओ राजदां बन जाओ
सत्संग प्रेम का परम रूप है। जैसे दो प्रेमी एक-दूसरे के हिस्से हो जाते हैं, ऐसा गुरु और शिष्य एक-दूसरे के हिस्से हो जाते हैं।
कल सुना नहीं, धनी धरमदास ने क्या कहा! एक-दूसरे में हिल-मिल जाते हैं! धीरे-धीरे गुरु का रंग शिष्य पर चढ़ जाता है। और धीरे-धीरे यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि गुरु कहां समाप्त होता है, शिष्य कहां शुरू होता है।
सीमाएं धीरे-धीरे धुंधली हो जाती हैं। शिष्य भी गुरु का एक प्रतिनिधि
हो जाता है--उसकी ही वीणा का एक स्वर! उसकी ही बगिया का एक फूल!
शिष्य की खिलावट में भी गुरु की खिलावट सम्मिलित हो जाती है। शिष्य
की सुवास में तुम गुरु की सुवास भी पाओगे।
सत्संग जीवन-रूपांतरण की एक प्रक्रिया है--और भक्ति के मार्ग पर तो बड़ी महत्वपूर्ण है! भक्ति के मार्ग पर सत्संग से ज्यादा महत्त्वपूर्ण और कुछ भी नहीं है।
मगर महिमा मत पूछो, अब सत्संग करो।

आखिरी सवालः यह बताने की कृपा करें कि उपलब्ध होने के बाद भोजन लेना
भी शरीर का मोह है? क्या उपलब्ध हो जाने के बाद भोजन के बिना जीवन चल सकता है?
कोई महात्मा का आगमन हो गया है!
भोजन से ऐसी क्या नाराजी? शरीर से ऐसी क्या दुश्मनी? शरीर भी उसका रूप है। स्वाद भी उसका स्वाद है। भोजन का रस भी उसका भजन है। यह तुम कैसा रुग्ण-चित्त लिए बैठे हो! तुम गलत आदमियों के साथ पड़ गए हो। तुम दुष्ट-संग में पड़ गए। हालांकि दुष्ट-संग को ही लोग सत्संग समझ रहे हैं। तुम किसी दुष्ट-प्रकृति आदमी की दोस्ती में बिगड़े हो।
तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा जीवन-विरोधी हैं, शरीर-विरोधी हैं, आनंद विरोधी हैं। उनका परमात्मा जीवन का नियंता, रचयिता नहीं है; उनका परमात्मा जीवन का शत्रु है। उनके हिसाब में परमात्मा और उसकी सृष्टि में विरोध है, जो कि बात बड़ी ही नासमझी से भरी है। अगर परमात्मा स्रष्टा है तो सृष्टि उसका फैलाव है। तो सृष्टि के विपरीत उसका स्रष्टा कैसे हो सकता है? कोई कवि अपनी कविता के विपरीत होता है? कोई संगीतज्ञ अपने संगीत के विपरीत होता है? और अगर संगीतज्ञ संगीत के विपरीत है तो वीणा तोड़ क्यों नहीं देता? बंद करे यह साज, यह राग समाप्त करे।
लेकिन परमात्मा ने वीणा तोड़ नहीं दी है, गीत जारी है। अब भी बीज टूटेंगे और वृक्ष बनेंगे। अब भी लोग प्रेम करेंगे और बच्चे पैदा होंगे। अब भी नये तारे निर्मित होंगे। अब भी जगत चलता रहेगा। परमात्मा ने किसी एक दिन सृष्टि की और फिर भाग थोड़े ही गया है दुनिया से। सृष्टि रोज कर रहा है, प्रतिपल कर रहा है। प्रतिपल सृष्टि जारी है। नहीं तो कौन नये अंकुर निकालता है बीज से? कौन पत्तों पर रंग देता है? कौन तितलियों के पर सजाता है? कौन तारों में रोशनी डालता है? कौन तुम्हारे भीतर प्रेम बन कर उमगता है, गीत बन कर प्रकट होता है? कौन है तुम्हारे जीवन का मूलाधार? कौन तुम्हारी श्वास ले रहा है?
लेकिन तुम्हारे महात्मा संसार के बड़े विपरीत हैं। और जो संसार के विपरीत हैं, मैं कहता हूं, वे परमात्मा के भी विपरीत हैं। क्योंकि जो कविता के विपरीत हैं वह कवि के विपरीत है और जो नृत्य के विपरीत है वह नर्तक के विपरीत है। जो सृष्टि के विरोध में है वह स्रष्टा के विरोध में है।
इन रुग्ण-चित्त लोगों से बचना। इस तरह के महात्माओं से सावधान!
जीवन का प्रेम सीखो! जीवन का आह्लाद सीखो! जीवन के आह्लाद से ही तुम एक-एक कदम परमात्मा के आह्लाद में प्रवेश करोगे। कविता का रस लो तो कविता ही तुम्हें कवि तक पहुंचा देगी। नृत्य में डूबो! उसी में डुबकी लगाते- लगाते एक दिन नर्तक का साथ हो जाएगा।
इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम शरीर को सुखाओ, कि धूप में नग्न खड़े
हो जाओ, कि सर्दियों में जाकर हिमालय की ठंढी गुफाओं में बैठो। तुम्हें मूढ़ताएं करनी हों तो किसी सर्कस में भरती हो जाओ, इतनी दूर और इतने लंबे और इतने उपद्रव क्यों मचाने? तुम्हें उपवास करना हो तो इसको धर्म का चोगा मत पहनाओ। तुम सिर्प आत्मघाती हो। तुम्हारे भीतर आत्महत्या की वृत्ति है, और कुछ भी नहीं। इसको अच्छे-अच्छे शब्दों के जाल में मत छिपाओ।
अब तुमने पूछाः "यह बताने की कृपा करें कि उपलब्ध होने बाद भोजन लेना
भी शरीर का मोह है क्या?"
उपलब्ध होने के बाद न कोई शरीर है, न कोई आत्मा है। उपलब्ध होने के बाद स्रष्टा और सृष्टि एक हैं, आत्मा और शरीर एक हैं। उपलब्ध होने के बाद एक ही बचता है, दो नहीं बचते। उपलब्ध होने के बाद आदमी सोच कर नहीं चलता कि मैं क्या करूं और क्या न करूं, आज उपवास करूं कि आज भोजन लूं। उपलब्ध होने के बाद सब सहज स्वाभाविक होता है। जिस दिन भूख लगती है, भोजन लेता है; जिस दिन भूख नहीं लगती, उस दिन भोजन नहीं लेता। इसमें कृत्य नहीं होता--सहज, स्व-स्फूर्त्त।
तुम्हारी हालत बड़ी अजीब है! भूख नहीं लगी और भोजन लेते हो; और भूख लगी
है और उपवास करते हो! तुम पागल हो। तुम प्रकृति को मौका दोगे कभी कि नहीं

दोगे? तुम अड़ंगे क्यों खड़े करते हो? पेट भर गया है और तुम खाए जा रहे हो। यह भी अनाचार है, व्यभिचार है, क्योंकि बलात्कार है शरीर के साथ। और आज भूख लगी है, मगर तुम उपवास किए बैठे हो, क्योंकि पर्युषण-व्रत चल रहे हैं। या आज कोई धार्मिक दिन है, उपवास का दिन आ गया। या तुम प्राकृतिक चिकित्सकों के चक्कर में पड़ गए हो। अब यह अप्राकृतिक बात तुम कर रहे हो प्राकृतिक चिकित्सक के चक्कर में पड़ कर।
प्राकृतिक होने का अर्थ होता हैः तुम निर्णय छोड़ दो। जो सहज होता है, होने दो। और तुम चकित हो जाओगे जान कर कि जो सहज होता है वह परमात्मा से होता है। और जो असहज होता है वह तुमसे होता है, तुम्हारे अहंकार से होता है।
हां, ऐसे दिन आते हैं, जरूर आते हैं, जब भोजन का भाव नहीं उठता। नहीं उठता तो बात खत्म हो गई। जब भाव ही नहीं उठ रहा है तो परमात्मा आज भोजन नहीं लेना चाहता है, तो आज परमात्मा को भोग मत लगाना। जिस दिन भाव उठ रहा है, उस दिन भोजन लेना, उस दिन परमात्मा भोजन लेना चाहता है।
जब नींद आए तो सो जाना। जब भूख लगे तो भोजन कर लेना। सहज हो जाए तुम्हारी गति। सहज योग ही एकमात्र योग है। जो असहज है, उसमें कहीं मनुष्य का अहंकार है और दंभ है।
अब तुम्हें चिंता पड़ी है। अभी उपलब्धि भी नहीं हुई, मगर उपलब्धि के बाद तुम्हारी चिंता बड़ी अजीब है। और कुछ नहीं पूछा तुमने, उपलब्धि के बाद और क्या होगा--मोक्ष होगा, निर्वाण होगा, सत्य मिलेगा, शांति मिलेगी, अमृत मिलेगा? यह सब फिजूल की बकवास तुमने पूछी नहीं। तुम्हें सवाल उठा है कि भोजन का क्या होगा! तुम भोजन-भट्ट मालूम होते हो। तुम भोजन के पीछे दीवाने हो। यह तुम्हारा ऑब्सेशन होगा। यह तुम्हारा रोग है।
कुछ लोग इसी रोग में जीते हैं। उनकी जिंदगी बस इसी में लगी रहती है। चौबीस घंटे वे यही चिंतन करते हैं। भूख लगे, तब भोजन कर लेना स्वाभाविक है; लेकिन जब पेट भर जाए तब भोजन का चिंतन करना रोग है। मगर लोग चिंतन में लगे हैं। ऐसे साधु-संन्यासी हैं जिनका पूरा काम यही है।
एक सज्जन के साथ एक दफे मुझे यात्रा करने की झंझट आ गई। महात्मा हैं। महात्माओं से मेरी साधारणतः बनती नहीं। संयोगवश साथ हो लिए। एक ही सम्मेलन में हम भाग लेने जाते थे। एक ही डिब्बे में पड़ गए, एक-दूसरे को जानते थे, तो साथ हो गया। संयोजकों ने भी सोचा कि हम साथ ही डिब्बे में आए हैं तो शायद संग-साथ हमारा है, कुछ दोस्ती है, तो एक ही जगह ठहरा दिया। ऐसे भाग्य से ही यह मुसीबत हुई। मगर मैं बड़ा परेशान हुआ उनका सब ढंग देख कर। चौबीस घंटे उनका विचार भोजन पर खड़ा! और उसमें ऐसी बारीकियां--भैंस का दूध वे लेंगे नहीं।
मैंने उनसे पूछा कि भैंस में परमात्मा नहीं है? नहीं, वे तो गऊ का ही दूध लेंगे, गाय का ही दूध चाहिए। चलो ठीक है, संयोजकों ने व्यवस्था की गाय के दूध की। वे पूछने लगेः गाय सफेद है कि काली? तब मैंने कहाः अब जरा जरूरत से ज्यादा बात हुई जा रही है। सफेद गाय का ही दूध लेंगे हम, ऐसा व्रत लिया हुआ है; जैसे कि काली गाय का दूध काला होता है! मूढ़ताओं की भी... बड़ी ऊंचाइयां हैं मूढ़ता की भी! बड़े परिष्कार हैं मूढ़ता के! ... "घी कितनी देर का तैयार किया हुआ है? चार घड़ी से ज्यादा देर का नहीं होना चाहिए। भोजन स्त्री का बना हुआ नहीं होना चाहिए।"
मैंने उनसे पूछाः जब तुम पैदा हुए, तो तुमने पिता का दूध पिया क्या? वे बहुत नाराज हो गए कि आप किस तरह की बात करते हैं। मैंने कहाः बात इसलिए करता हूं कि परमात्मा ने भी तय किया है कि स्त्री का ही भोजन शुरू से चल रहा है, बचपन से ही नहीं तो पिता को स्तन दिए होते। कम से कम महात्माओं के लिए तो विशेष इंतजाम किया होता! तुम मां के ही पेट में बड़े हुए, मां के ही मांस-मज्जा से तुम्हारी देह बनी, मां के ही स्तन से दूध पीकर तुम बड़े हुए, आज यह कैसा अकृतज्ञ व्यवहार--स्त्री का छुआ भोजन नहीं खाएंगे!
नहीं, वे कहने लगेः आप समझते नहीं, इसमें बड़ा विज्ञान है। स्त्री का भोजन लेने से स्त्री-तत्व उसमें सम्मिलित हो जाता है, तो वासना जगती है। मैंने कहाः हद हो गई! गऊ का दूध पिए--सफेद गऊ का--वह कोई बैल है? उससे वासना

नहीं जग रही? और उससे तो और खतरनाक वासना जगेगी--सांड हो जाओगे। बिल्कुल खराब हो जाएगी जिंदगी।
वे तो इतने नाराज हो गए कि उन्होंने संयोजकों से कहा कि मुझे इस कमरे
से अलग करो। मेरी सारी साधना में बाधा पड़ रही है। हर चीज के लिए मुझे उत्तर देना पड़ रहा है और व्यर्थ का विवाद खड़ा हो रहा है।
चौबीस घंटे उनकी चर्या देखा तो उसमें यही हिसाब-किताब था--यह खाना यह नहीं खाना, इसका छुआ उसका छुआ। पानी भी जो भर कर लाए कुएं से, वह गीले वस्त्र पहन कर भर कर लाए पानी। मैंने पूछा कि इसका क्या राज है? उन्होंने कहाः असली में नियम तो यह है कि नग्न उसको भर कर लाना चाहिए, लेकिन नग्न जरा भद्दा मालूम पड़ता है, तो गीले कपड़े। यह उसमें जरा समझौता है। शुद्धि के लिहाज से ऐसा करना पड़ता है।
और मैंने कहाः तुम कपड़े पहने पानी पी रहे हो! गीले करो कपड़े! या नंगे होकर पीयो! दूसरा आदमी गीला होकर लाए या गीले कपड़े पहन कर लाए, तुम क्या कर रहे हो?
तुम चकित होओगे अगर तुम महात्माओं का सत्संग करो। तो तुम बड़े हैरान होओगे कि क्या-क्या उन्होंने कलाएं खोज रखी हैं।
तुम्हें कुछ ऐसे ही दुष्टों का संग मिल गया होगा। इनको मैं रुग्ण मानता हूं--मानसिक रूप से विक्षिप्त मानता हूं।
तुम्हें उपलब्धि के बाद और कुछ न सुझा, भोजन की याद आयी! भोजन परमात्मा पर छोड़ा; जो उपलब्धि तक करवा देगा, वह भोजन की भी फिकर लेगा। करवाए तो कर लेना और न करवाए तो न करना। तुम बीच में अपना अड़ंगा मत लगाना, बस इतना ही ख्याल रखना।
हमारे चित्त में द्वैत की भावना, द्वैत का भाव इतना गहरा बैठ गया है-- द्वंद का, संघर्ष का! हमें एक बात इतनी जड़ता से पकड़ गई है कि हमें कुछ करना है संघर्ष। जब कि सच्चाई यह है कि हमें जो करना है वह संघर्ष नहीं है, समर्पण है। परमात्मा पर छोड़ो! वह जहां ले जाए जाओ। तुम नदी की धार में बहो, तैरो मत। और धार के विपरीत तो तैरो ही मत। यह धार के विपरीत तैरना है। इसमें नाहक थकोगे, टूटोगे। और जब थकोगे, टूटोगे, परेशान होओगे, तो नाराज होओगे नदी पर, कि यह नदी हमारी दुश्मनी कर रही है। और नदी तुम्हारी दुश्मनी नहीं कर रही, नदी अपनी धार से बही जा रही है। तुम नाहक नदी की दुश्मनी करके अपने को तोड़े ले रहे हो।
और ध्यान रखना, अंश अंशी से लड़ कर कहीं भी नहीं पहुंच सकता। हम उसके बड़े छोटे-छोटे हिस्से हैं। जैसे मेरी अंगुली अगर मेरे से लड़ने लगे, तो कहां पहुंचेगी? हम उससे भी छोटे हैं। एक अंगुली भी तुम्हारे शरीर में बड़ा अनुपात रखती है। इस विराट विश्व में हमारा अनुपात क्या है? इस विराट के साथ लड़ो मत।
भूख में अशुभ क्या है? भोजन की तृप्ति में अशुभ क्या है? जो स्वाभाविक है, सहज है, वह सत्य है, श्रेयस्कर है। स्वाभाविक सहज के लिए समर्पित हो जाओ। उस समर्पण से ही सुवास उठती है।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
तीसरा प्रवचन

प्रेम पाठ है--विद्रोह का

हमरे का करे हांसी लोग।
मोरा मन लागा सतगुरु से भला होय कै खोर।
जब से सतगुरु-ज्ञान भयो है, चले न केहु के जोर।।
मातु रिसाई पिता रिसाई, रिसाये बटोहिया लोग।
ग्यान-खड़ग तिरगुन को मारूं, पांच-पचीसो चोर।।
अब तो मोहि ऐसी बनि आवै सतगुरु रचा संजोग।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात वियापै रोग।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सुनु हो बन्दी-छोर।
जाको पद त्रैयलोक से न्यारा, सो साहब कस होय।।

साहेब येहि विधि ना मिलै, चित चंचल भाई।
माला तिलक उरमाइके, नाचै अरु गावै।
अपना मरम जानै नहीं, औरन समुझावै।।
देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई।।
आंखि मूंदि मौनी भया, मछरी धरि खाई।।
कपट-कतरनी पेट में, मुख वचन उचारी।
अंतरगति साहेब लखै, उन कहां छिपाई।।
आदि अंत की वार्ता, सतगुरु से पावो।
कहै कबीर धरमदास से, मूरख समझावो।।

मेरे मन बस गए साहेब कबीर।
हिंदू के तुम गुरु कहावो, मुसलमान के पीर।।
दोऊ दीन ने झगड़ा मांडेव, पायो नाहिं सरीर।।
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति धीर।
वेद कितेब मते के आगर, दोऊ दीनन के पीर।।
बड़े-बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर।
धरमदास की विनय गुसाईं, नाव लगावो तीर।।

समझी नहीं हयात की शामो-सहर को मैं
हैरत से देखती रही शम्मो-कमर को मैं
यह कौन गायबाना है, जल्वे दिखा रहा बेताब पा रही हूं जो अपनी नजर को मैं मंजिल का होश है, न अपनी खबर मुझे मुद्दत से तक रही हूं तेरी रहगुजर को मैं दिल की कली कभी न खिली फिर भी आज तक हसरत से तक रही हूं नसीमे-सहर को मैं मेरे जनूने-शौक का आलम तो देखिए
सज्दे भी कर रही हूं तो अपने ही दर को मैं मुड़-मुड़ के देखने पर वह मजबूर हो गए
अब कामयाब पाती हूं अपनी नजर को मैं
यह किसके नक्शे-पा ने हैं थामे मेरे कदम
मंजिल समझ कर बैठ गई रहगुजर को मैं
माना नहीं है कोई तबस्सुम-नवाज आज
फिर भी परख रही हूं किसी की नजर को मैं

आदमी एक खोज है। किसकी, यह भी ठीक-ठीक साफ नहीं। पर खोज है, इतना निश्चित। कोई अज्ञात, किसी गहरे अचेतन तल पर प्रश्न बन कर खड़ा है।

आदमी एक प्रश्न है, एक जिज्ञासा। किसकी, यह भी ठीक पता नहीं। प्रश्न किस के संबंध में है, यह भी साफ नहीं। पर प्रश्न है, इतना निश्चित है। समझी नहीं हयात की शामो-सहर को मैं।... यह जिंदगी की क्या है सुबह और क्या है शाम, कुछ समझ में नहीं आता। कहां है प्रारंभ, कहां है अंत, कुछ समझ में नहीं आता।
समझी नहीं हयात की शामो-सहर को मैं
हैरत से देखती रही शम्मो-कमर को मैं
चांद कहां से, सूरज कहां से? यह विस्तार, यह ब्रह्मांड--इसके पीछे कौन छिपा है? क्या इसका राज है?
यह कौन गायबाना है जल्वे दिखा रहा! ... इस सारे उत्सव के पीछे कौन छिपा है! कौन है गुप्त इस सारे रहस्य के पीछे! किसके हाथ हैं! किसके हस्ताक्षर हैं! ये गीत किसके गाए हुए हैं! ये फूल किसके बनाए हुए हैं!
यह कौन गायबाना है जल्वे दिखा रहा! ... यह छिप-छिप कर कौन रहस्यों को प्रकट कर रहा है!
बेताब पा रही हूं जो अपनी नजर को मैं! ... और जब तक इसका पता न चल जाए, तब
तक आंखें खोजती ही रहती हैं। तब तक आंखें खोजती ही रहेंगी तब तक प्यास जलती ही रहेगी। और तुम ऊपर-ऊपर से कितने ही अपने को समझाने के उपाय करो, वे सब उपाय देर-अबेर टूट जाएंगे। हर बार विषाद हाथ लगेगा।
इसी गहरी जिज्ञासा को तृप्त करने में आदमी ने संसार का सारा फैलाव कर लिया है। पता नहीं चलता किसकी खोज है, धन खोजने लगता है। पता नहीं चलता किसकी खोज है, पद खोजने लगता है। और फिर एक दिन धन भी पा लेता है बहुत दौड़ कर--और पाता है कुछ हाथ न लगा। पद भी मिल जाता है--बहुत जीवन गंवा कर, बहुत जीवन दांव पर लगा कर--मिलने पर पता चलता है, हाथ राख से भरे हैं, जीवन व्यर्थ गया।
लेकिन जो धन खोजने जाता है, वह भी खोजने तो जा रहा है। जो पद खोजने जाता है, वह भी खोजने जा रहा है। ऐसा आदमी ही खोजना कठिन है जो खोज न रहा हो। क्योंकि आदमी खोज है, एक जिज्ञासा है। जब तक जिज्ञासा का तीर परमात्मा की तरफ नहीं लग जाता, तब तक हमारा भटकाव जारी रहता है। तब तक हम घूमते रहते हैं कोल्हू के बैल की भांति--उसी रास्ते पर।
यह कौन गायबाना है, जल्वे दिखा रहा
बेताब पा रही हूं जो अपनी नजर को मैं
मंजिल का होश है, न है अपनी खबर मुझे
मुद्दत से तक रही हूं तेरी रहगुजर को मैं
कुछ पता भी नहीं है कि मंजिल क्या है, कहां जाना है, कहां से आते हैं, किसलिए आए हैं, किसलिए जाना है? मंजिल का होश है, न अपनी खबर मुझे! श्ठन यही पता है कि यह खोजने वाला कौन है! यह कौन मेरे भीतर बेताब है! यह कौन मेरे भीतर बेचैन है! यह कौन मेरे भीतर प्रश्न बनकर खड़ा है जो मिटता ही नहीं! धन दो, पद दो, प्रतिष्ठा दो, यश दो, सब दे दो--और मेरे भीतर यह कौन सा पात्र है जो भरता ही नहीं, खाली का खाली रह जाता है! फिर आंखें बेताब हो जाती हैं। फिर दिल बेचैन हो जाता है। फिर खोज शुरू हो जाती है।
इसलिए तो एक वासना चुकती भी नहीं कि दूसरी वासना शुरू हो जाती है।
क्योंकि खोज तब तक जारी रहेगी जब तक कि ठीक को न खोज लिया जाए। उस ठीक का नाम ही परमात्मा है। तुम उसे क्या नाम देते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता।
तुम्हारे भीतर ठीक प्रश्न के बन जाने का नाम धर्म है। ठीक प्रश्न के बन जाने का नाम धर्म है--और ठीक प्रश्न एक ही है, गलत प्रश्न हजार हो सकते हैं।
जब तक तुम्हारे भीतर ठीक प्रश्न निर्मित नहीं हुआ है, ठीक जिज्ञासा नहीं बनी है, तब तक तुम कुछ तो पूछोगे ही। पूछना ही पड़ेगा। आदमी का स्वभाव है। वह आदमी की नियति है। तुम कुछ तो तलाशोगे--तलाशना ही पड़ेगा। उससे बचने की कोई सुविधा नहीं है। ईश्वर को इनकार कर दो, फिर भी खोज जारी रखनी पड़ेगी।
कुछ और खोजोगे। एक बेहतर समाज--समाजवाद, साम्यवाद! एक सुंदर भविष्य। एक वर्ग-विहीन समाज।... कुछ खोजोगे। लेकिन खोज जारी रहेगी। तुम खोज से नहीं बच सकते। खोज से बचने का कोई उपाय नहीं है।

खोज के साथ एक ही स्वतंत्रता है--गलत खोज हो सकती है, तब हजार खोजें हो सकती हैं। ठीक खोज होगी तो एक खोज होगी।
स्वास्थ्य तो एक ही होता है, बीमारियां अनेक होती हैं। जब मैं स्वस्थ
हो जाऊं, जब तुम स्वस्थ हो जाओ, जब कोई और स्वस्थ हो जाए, तो स्वास्थ्य स्वास्थ्य में भेद नहीं होता। इसलिए कभी भूल कर मत पूछना कि बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट और मुहम्मद में कोई भेद है या नहीं। स्वास्थ्य में भेद होता ही नहीं। भेद बीमारी में होते हैं। तुम्हारी बीमारी अलग, मेरी बीमारी अलग। कोई टी0 बी0 लिए चल रहा है, कोई कैंसर लिए चल रहा है, कोई कुछ और लिए चल रहा है। लेकिन स्वास्थ्य तो एक होता है, स्वास्थ्य को कोई विशेषण ही नहीं होता।
तुम किसी से यह नहीं पूछते... कोई कहे कि मैं बीमार हूं तो तुम पूछते हो, कौन-सी बीमारी? कोई तुमसे कहे कि मैं स्वस्थ हूं, क्या तुम पूछते हो, कौन-सा स्वास्थ्य? वह बात ही बेहूदी है, वह प्रश्न ही व्यर्थ है। स्वास्थ्य तो बस स्वास्थ्य है। इसलिए जो व्यक्ति उपलब्ध हो जाता है, वह हिंदू नहीं होता, मुसलमान नहीं होता, ईसाई नहीं होता। ये बीमारियों के नाम हैं। धार्मिक आदमी बस धार्मिक होता है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि किस घर में पैदा हुआ? इससे क्या फर्क पड़ता है कि किस कुएं से पानी पिया? --प्यास बुझ गयी। जलस्रोत एक है। घाट अनेक होंगे, लेकिन जलस्रोत एक है। किस बर्तन में पानी भरा... इससे भी क्या फर्क पड़ता है कि सोने के पात्र थे कि मिट्टी के पात्र थे, कि पूरब की दिशा में बैठ कर पानी पिया था कि पश्चिम की दिशा में बैठ कर पानी पिया था। कोई फर्क नहीं पड़ता। उस परमात्मा को अल्लाह कहा था कि राम कहा था, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्या नाम दिए थे... हमारे दिए नाम हैं। परमात्मा बेनाम है, अनाम है।
मंजिल का होश है, न अपनी खबर मुझे
मुद्दत से तक रही हूं तेरी रहगुजर को मैं
लेकिन राह तो देखी जा रही है: "आता ही होगा वह!" कौन? उसका हमें साफ कुछ भी पता नहीं। हो भी कैसे पता, उससे कभी मुलाकात नहीं हुई। आंख-भर उसे कभी देखा नहीं। उससे कभी गुफ्तगू नहीं हुई। उससे कभी दो बातें नहीं हुई। उससे परिचय ही नहीं है। मगर तड़प है, खोज है, आकांक्षा है।
दिल की कली कभी न खिली फिर भी आज तक
हसरत से तक रही हूं नसीमे-सहर को मैं
यह दिल की कली खिली तो नहीं आज तक, लेकिन फिर भी सुबह की प्रातःकालीन हवा आएगी और मेरी कली को खिलाएगी और फूल बनाएगी और सूरज निकलेगा और सूरज की रोशनी में मेरी गंध भी लुटेगी और मैं तृप्त होऊंगा--वह आकांक्षा गहरे में बैठी है। वह आकांक्षा ही तुम हो।
अपनी आकांक्षा को ठीक-ठीक परख लेना, पहचान लेना। अपनी आकांक्षा को ठीक-ठीक दिशा दे देनी, इतना ही धर्म का काम है। यह दिशा कौन देगा? यह दिशा कैसे मिलेगी? यह दिशा कहां से आएगी? ... इसलिए सदगुरु का अर्थ है।
आज के सूत्र सदगुरु के संबंध में हैं। सदगुरु का अर्थ हैः जिसने पा लिया; जो मंजिल पर आ गया। सदगुरु का अर्थ हैः जिसकी अभीप्सा तृप्ति बन गई; जिसके भीतर अब कोई प्रश्न नहीं। जिसके भीतर प्रश्न नहीं है, उसी के भीतर उत्तर हो सकता है। जब तक प्रश्न है तब तक उत्तर नहीं हो सकता। जब तक तुम पूछ रहे हो, तब तक कैसे उत्तर होगा? उत्तर ही होता तो पूछते क्यों? जब तक तुम्हारे भीतर रंचमात्र भी प्रश्न रह जाए तो समझना अभी खोज जारी है।
पर ऐसी घड़ी निश्चित आती है, जब सारे प्रश्न गिर जाते हैं। प्रश्नों के गिराने की प्रक्रिया का नाम ध्यान है। ध्यान उत्तर पाने की चेष्टा नहीं है, ध्यान प्रश्न को विदा करने की चेष्टा हृ, मन को निष्प्रश्न करने की चेष्टा है। जब मन में कोई प्रश्न नहीं होता, अर्थात कोई विचार नहीं होता, क्योंकि सभी विचार प्रश्न हैं, चाहे उनके पीछे प्रश्न-चिह्न लगा हो या न लगा हो, सभी विचार प्रश्न हैं। विचार उठ ही इसलिए रहे हैं कि हमें ज्ञान नहीं है। विचार ज्ञान के अभाव में उठ रहे हैं। जानते ही विचार समाप्त हो जाते हैं। या विचार समाप्त हो जाएं तो जानना हो जाता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जिस व्यक्ति के सारे विचार समाप्त हो गए हैं, जिसके भीतर सन्नाटा छा गया है, जिसके भीतर अब तरंगें नहीं उठती, जिसे अब कहीं जाना नहीं है, जो अब किसी रास्ते पर बैठकर राह नहीं देख रहा है, जिसकी राह पूरी हो गई, जिसकी प्रतीक्षा का अंत आ गया, जो तृप्त है, जिसके भीतर परम संतोष की वर्षा हो गई--उसे सदगुरु कहा है। उसके पास उत्तर है।
ऐसे किसी व्यक्ति को खोज लेना अत्यंत जरूरी है, जिसके पास उत्तर हो। उससे दोस्ती बना लेना जरूरी है। उसके साथ गांठ बांध लेनी जरूरी है। उसके साथ बंधते ही तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू हो जाता है। उसके पास होने का नाम सत्संग है। उससे जुड़ जाने का नाम शिष्यत्व है।
आज के सूत्र, धनी धरमदास ने कबीर को पाया, तब लिखे हैं। लेकिन कठिनाइयां आएंगी जो उन्हें आईं।... "हमरे का करे हांसी लोग!" लोग हंसते हैं।
धनी धर्मदास सफल व्यवसायी थे। सब तरह से सफल व्यक्ति थे। खूब धन था, प्रतिष्ठा थी, सम्मान था। और एक दिन अचानक कबीर के साथ पागल हो गए। फिर घर ही न लौटे। फिर घर खबर भेज दी कि लुटा दो जो मेरा है, क्योंकि मेरा कुछ भी नहीं है। और अब मैं वापिस नहीं आ रहा हूं, क्योंकि जिसकी मुझे तलाश थी वह मिल गया है। अब वापस जाना कैसा? वे चरण मिल गए जिनको मैं टटोलता था जन्मों- जन्मों से। अब उनमें झुक गया। अब झुक गया तो उठना कैसा?
सच में जो झुकता है वह फिर कभी उठता नहीं। लोग हंसने लगे होंगे। लोग समझे होंगे पागल हो गए। स्वाभाविक है। लोगों का समझना भी स्वाभाविक है। लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन हैः जब सत्य बोला जाए तो जो समझते हैं वे आनन्दित होंगे; जो नहीं समझते हैं वे हंसेंगे। जो नहीं समझते हैं अगर वे न हंसें तो समझना कि सत्य बोला ही नहीं गया। उनका हंसना जरूरी है, क्योंकि उन्होंने झूठों को सत्य मान लिया है। उनके लिए सत्य झूठ मालूम होगा।
हम अपने भीतर जिसको सत्य की तरह पकड़ लिए हैं, उसीसे तो तौलेंगे न, वही
तो तराजू होगा! किसी ने धन को सत्य समझा है और तुम ध्यान में मग्न हो जाओगे, वह समझेगा कि तुम पागल हो गए। उसके पास एक तराजू है, अगर तुम भी धन की दौड़ में हो तो तुम समझदार हो। जो पद की आकांक्षा से पीड़ित है, जिसके भीतर बस एक ही प्रार्थना है और एक ही पूजा है और एक ही अर्चना है--दिल्ली चलो! --अगर वह तुमको देखेगा कि तुम कहीं ओर जा रहे हो, तो समझेगा कि "पागल हो गए हो। सारी दुनिया दिल्ली जा रही है, तुम कहां जा रहे हो? होश में हो?" और अगर तुम दिल्ली में ही थे और दिल्ली छोड़कर जाने लगे, तब तो वह निश्चित पागल समझेगा--"तुम्हारा मस्तिष्क खराब हो गया है। सारी दुनिया आ रही है राज्य-सिंहासन की तरफ, तुम कहां जा रहे हो?" उसके पास एक तर्क है, उसकी एक भाषा है। पद उसके मापने का ढंग है, उसका मापदंड है। जो पद को छोड़ता है, वह पागल है।
लोग हंसेंगे। हंसना उनकी आत्म-रक्षा का उपाय है। अगर वे न हंसें तो अपनी आत्मरक्षा न कर सकेंगे। तुम संन्यस्त हो जाओ और बाजार के लोग अगर तुम पर न हंसें तो बाजार के लोगों को बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर अपना बचाव कैसे करेंगे? निहत्थे हो जाएंगे, निःशस्त्र हो जाएंगे। तुम अगर सही हो तो वे गलत हो जाएंगे। और कोई इस दुनिया में यह जानकर कि मैं गलत हूं, जी नहीं सकता, बहुत मुश्किल हो जाता है जीना। गलत भी हो आदमी तो मानना पड़ता है कि ठीक हूं। मानकर ही ठीक, जिया जा सकता है।
ख्याल रखना, सत्य के साथ ही जी सकते हो तुम। चाहे झूठ के साथ जियो तो उसी को सत्य मान लेना पड़ता है। असत्य को असत्य की तरह जान लेना, फिर उसके साथ जीना असंभव हो जाता है। तुम्हें समझ में आ गया कि जिस नाव में तुम बैठे हो वह कागज की नाव है, फिर कितनी देर बैठे रहोगे? कागज की ही भले हो, मगर तुम यह मानोगे नहीं कि यह कागज की है, तो बैठे रह सकते हो। तुमने एक मकान बनाया है, रेत पर बना लिया है। तुम यह मानना नहीं चाहोगे कि रेत पर बनाया है; क्योंकि रेत पर बनाया है, यह बात साफ हो गई तो तुम मकान से निकल भागोगे, निकलना ही पड़ेगा। वहां खतरा है।... जो तुमसे कहेगा रेत पर मकान बनाया है, तुम उसे पागल कहोगे। और निश्चित ही, भीड़ तुम्हारे साथ है, क्योंकि उन सबने भी रेत पर मकान बनाए हैं और उन सबने भी कागज की नावें तैरायी हैं और वे भी

सपनों में जी रहे हैं। मत तुम्हारे साथ है। बुद्ध तो कभी कोई एकाध होता है। कबीर तो कोई एकाध होता है। बुद्धू बहुत हैं, उनकी संख्या बड़ी है। वे सब तुमसे राजी होंगे, क्योंकि उनका भी निहित स्वार्थ तुम्हारे ही साथ जुड़ा हुआ है तुम गलत हो तो वे भी गलत हैं।
इसलिए तो लोग इतना विवाद करते हैं दुनिया में। विवाद की इतनी जरूरत क्या है? इसलिए इतना विवाद करते हैं कि बिना विवाद के जीना ही मुश्किल हो जाएगा। हिंदू लड़ता है कि मेरी किताब ठीक, मुसलमान लड़ता है मेरी किताब ठीक। दुनिया में सारे लोग अपना विचार ठीक है, इस बात के लिए बड़ा संघर्ष करते हैं। क्यों? असल में जितना उन्हें डर होता है हमारी बात कहीं गलत न हो, उतने ही जोर से संघर्ष करते हैं। कंपेंसेशन, एक परिपूरकता है उसमें। जितना तुम भीतर भयभीत होते हो कि कहीं ऐसा न हो कि मैं गलत होऊं, तुम उतने ही आक्रामक ढंग से अपने को सिद्ध करना चाहते हो कि मैं सही हूं। जो आदमी अपने को बहुत आक्रामक ढंग से सही सिद्ध करना चाहता है, पक्का जान लेना कि उसके भीतर भी शक उठने लगा है, उसके भीतर भी संदेह जगने लगा है, संदेह ने सिर उठाया है। वह किसी और को नहीं समझा रहा है, वह जोर से चिल्लाकर अपने को ही समझा रहा है कि मैं ठीक हूं। और वह मत इकट्ठे करेगा, क्योंकि जब बहुत लोग उसके साथ हों तो उसे भरोसा आ जाता है कि इतने लोग गलत नहीं हो सकते; मैं एक गलत हो सकता हूं, इतने लोग गलत नहीं हो सकते।
इसलिए तो लोग भीड़ का हिस्सा बनते हैं। इसलिए तो तुम अकेले खड़े नहीं होते--हिंदू की भीड़, मुसलमान की भीड़, जैन की भीड़, ईसाई की भीड़। तुम भीड़ के हिस्से बनते हो। तुम अकेले खड़े नहीं होते। तुम कभी यह नहीं कहते कि मैं मैं हूं, व्यक्ति। तुम कहीं न कहीं समाज, समूह, क्लब, पार्टी, धर्म... कहीं न कहीं अपने को जोड़ते हो। क्योंकि अकेले, शक उठेंगे, संदेह उठेंगे, उनको दबाओगे कैसे? अकेला आदमी गलत हो सकता है; उस डर से बचने के लिए आदमी भीड़ का हिस्सा बन जाता है। भीड़ का हिस्सा बनते ही तुम्हारी चिंता समाप्त हो जाती है। भीड़ में एक बल है; भीड़ में एक सम्मोहन है, एक जादू है। भीड़ का एक मनोविज्ञान है। और जब इस भीड़ के विपरीत कोई चलेगा तो यह भीड़ हंसेगी, जोर से हंसेगी। यह तिरस्कार करेगी। यह इनकार करेगी। यह मजाक उड़ाएगी। जरूरी है यह। यह इसकी आत्मरक्षा के लिए जरूरी है, अन्यथा इस सारी भीड़ का क्या होगा? जब बुद्ध ने राजमहल छोड़ा और जब वे राजमहल छोड़ कर अपने राज्य से चले गए,
तो जिस राज्य में गए उसी राज्य का राजा, उसी राज्य-परिवार के लोग उनको समझाने आए। वे अपना राज्य छोड़ कर इसलिए गए थे कि राज्य के भीतर रहेंगे तो पिता आदमियों को समझाने भेजेंगे। मगर वे बड़े हैरान हुए कि जिनसे कोई संबंध न था, जिनसे कोई पहचान न थी, वे राजे भी समझाने आए। यही नहीं, जिनसे उनके पिता की दुश्मनी थी, वे भी समझाने आए। तब तो बहुत बुद्ध चकित हुए कि इनसे तो पिता का जीवन भर विरोध रहा, ये तो दुश्मन थे, एक-दूसरे की छाती पर तलवार लिए खड़े रहे। दुश्मन क्यों समझाने आया? दुश्मन को तो खुश होना चाहिए कि अच्छा एक हुआ, बरबाद हुआ यह परिवार। क्योंकि बुद्ध अकेले बेटे थे। इकलौता बेटा भाग गया घर से। यह परिवार नष्ट हो गया। बाप बूढ़ा था, इकलौता बेटा भाग गया, अब इस परिवार का कोई भविष्य नहीं है। इस परिवार को नष्ट किया जा सकता है, इसके राज्य को हड़पा जा सकता है। लेकिन नहीं; वे भी समझाने आए। क्यों समझाने आए? क्योंकि बुद्ध ने समस्त राज-परिवारों में तहलका मचा दिया। उनको भी शक होने लगे पैदाः हम यह सिंहासन पर बैठे जो कर रहे हैं वह ठीक है? हम यह जो पद को पकड़े बैठे हैं, कहीं ऐसा तो नहीं कि हम जीवन गंवा रहे हैं? कहीं यह भाग आया सिद्धार्थ ही सही न हो!
ये संदेह उठने लगे। ये गहरे संदेह थे। इन गहरे संदेहों को दबाने के लिए एक ही उपाय था--इसको किसी तरह समझा-बुझा कर वापस कर लो। यह आदमी प्रश्न-चिह्न बन गया।
राजाओं ने कहा कि हमारे घर आ जाओ। तुम्हारी पिता से नहीं बनती होगी, कोई फिकर न करो। अगर पिता से नहीं बनती, हम समझ सकते हैं। यह तुम्हारा राज्य है, इसको अपना समझो। मेरी बेटी जवान है, उससे विवाह कर लो। मेरी अकेली ही बेटी है, तुम्हीं इस राज्य के मालिक हो जाओगे। यह तुम्हारे पिता के राज्य से दोगुना बड़ा राज्य है।

लेकिन बुद्ध हंसते। वे कहते कि छोटे और बड़े राज्य का सवाल नहीं है। राज्य ही व्यर्थ है। मेरा पिता से कोई झगड़ा नहीं है। मेरा कोई विरोध नहीं है किसी से। मुझे इस जीवन की तथाकथित सुख-सुविधा, इस जीवन की तथाकथित पद-प्रतिष्ठा व्यर्थ दिखाई पड़ गई हैं। तब एक खाई से निकला और दूसरी खाई में गिरूं। मुझे क्षमा करो। धन्यवाद तुम्हारी कृपा का!
लेकिन जिन राजाओं ने उनसे आकर प्रार्थना की थी, वे सो न सके होंगे रातों में। उनके मन में विचार उठते रहे होंगे कि कहीं यह ठीक न हो। और क्यों न उठेंगे विचार, क्योंकि जिंदगी उन्होंने भी गंवाई है, पाया क्या है? प्रमाण तो सब बुद्ध के पक्ष में हैं, भीड़ उनके पक्ष में है। इस भेद को ख्याल में कर लेना।
प्रमाण तो धर्म के पक्ष में है, भीड़ संसार के पक्ष में है। प्रमाण तो ध्यान के पक्ष में है, भीड़ धन के पक्ष में है। तुम भी जीवन से जानते हो, क्या पाया है--संबंधों में, सफलता में, दौड़-धाप में, आपा-धापी में? गंवाया होगा कुछ, पाया क्या है? लेकिन, अगर तुम इस बात की घोषणा करोगे कि यहां कुछ भी नहीं है... अगर एक चोर घोषणा कर दे कि मैं साधु होता हूं, बाकी चोर हंसेंगे कि पागल हुआ, इसने बुद्धि गंवायी।
"हमरे का करे हांसी लोग।" धनी धरमदास कहते हैं कि लोग हमारी हंसी क्यों कर रहे हैं? हमने कुछ बुरा तो किया नहीं।
"मोरा मन लागा सदगुरु से, भला होय कै खोर। " मेरा मन सतगुरु से लग गया है, इसमें लोगों के हंसने का क्या कारण है? अपेक्षा का क्या कारण है? मेरे विरोध का क्या कारण है? और मैं परम सुख को उपलब्ध हो रहा हूं। फिर मेरा गुरु ठीक हो कि गलत हो... "भला होय कि खोर"... इससे किसी को क्या प्रयोजन है? मैंने धन से मोह लगाया था, कोई हंसा नहीं था। किसी ने मुझसे नहीं कहा था कि धन कहीं बुराई में न ले जाए।
और धन बुराई में ले जाता है। गरीब आदमी आमतौर से भला होता है; बुरे होने के लिए भी तो सुविधा चाहिए न! पद बुराई में ले जाता है। जिनके पास सत्ता नहीं है, वे बुराई भी करेंगे तो कितनी बुराई कर सकेंगे?
लार्ड ऐक्टन का प्रसिद्ध वचन तुमने सुना है नः पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोलूटली! उससे मैं राजी नहीं हूं और राजी हूं भी। ऐक्टन ठीक कहता है और ठीक नहीं भी कहता। ठीक इसलिए कहता है कि जो भी सत्ता में जाते हैं, वे सभी सत्ता के द्वारा व्यभिचारित हो जाते हैं। सत्ता उन्हें नष्ट कर देती है। सत्ता उनकी साधुता छीन लेती है। मगर यह सत्ता का कसूर नहीं है, जिस कारण मैं ऐक्टन से सहमत नहीं हूं। यह सत्ता का दोष नहीं है। ये भ्रष्ट लोग थे ही; सिर्प इनके पास सत्ता नहीं थी, इसलिए साधु बने थे। साधु बिना सत्ता के आदमी बन सकता है। असाधु बनने के लिए सत्ता चाहिए।
अगर अपनी पत्नी के पास ही घर में बैठे रहना हो, इसके लिए बहुत धन की जरूरत नहीं है, लेकिन वेश्या के घर जाना हो तो फिर धन की जरूरत पड़ती है। किसी से झगड़ा इत्यादि न करना हो, शांत जीवन बिताना हो, तो इसके लिए कोई बड़ी सुविधा की जरूरत नहीं है; लेकिन लोगों की छाती पर चढ़ना हो, लोगों की गरदनें काटनी हों, लोगों को नीचा दिखाना हो, फिर सत्ता की जरूरत है।
सत्ता के पीछे राज ही क्या है? लोग क्यों सत्ता चाहते हैं? क्योंकि सत्ता के साथ ही उनके हाथ में शत्ति आती है। और शत्ति के साथ वे जो सदा करना चाहते थे और कर नहीं पाते थे, अब कर सकते हैं। सत्ता नहीं किसी को नष्ट करती, सत्ता नहीं किसी को विकृत करती--विकृत लोग सत्ता की तलाश करते हैं।
इस देश में तुमने देखा? रोज-रोज यह होता रहा। उन्नीस सौ सैंतालीस में
जब देश आजाद हुआ तो जो लोग सत्ता में गए। साधु लोग थे, भले लोग थे। किसी ने कभी सोचा नहीं था कि इनमें कुछ बुराई हो सकती है। और भले आदमी कहां खोजते! तकली चलाते थे, चर्खा चलाते थे, खादी पहनते थे, शाकाहारी थे, भजन-कीर्तन करते थे। "अल्ला ईश्वर तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान!"--ऐसी-ऐसी सद्भभावनाएं करते थे। और अच्छे आदमी तुम पाते कहां से! सब महात्मा थे। लेकिन सत्ता में गए तो हालत बदल गई। सत्ता में जाने से ही बदल गई। तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि भीतर इनके आकांक्षा तो कुछ और थी। ये जो ऊपर-

44

ऊपर से राम-राम जप रहे थे, वह सिर्प बगल में दबी हुई छुरी को छिपाने का उपाय था।
और यह रोज-रोज होता है। हर बार सत्ता बदलती है दुनिया में और हर बार नये आदमी पहुंचते हैं। जब वे जाने के रास्ते पर होते हैं, तो बड़े साधु होते हैं; सत्ता में पहुंचते ही साधुता धीरे-धीरे विसर्जित हो जाती है। सत्ता आदमी के भीतर छिपे हुए असाधु को प्रकट कर देती है।
धन आदमी के भीतर छिपी हुई बुराई को बाहर ले आता है। धन अद्भभुत है इस लिहाज से। आदमी की पहचान करनी हो तो धन दो। आदमी की परख तभी हो पाएगी जब उसके पास धन हो। उसको धन दे दो पूरा और तुम उसकी असलियत को जान लोगे; असलियत उभर कर ऊपर आ जाएगी। गरीब आदमी को अपनी असलियत भीतर दबा कर रखनी पड़ती है। रखनी ही पड़ेगी, मजबूरी है, कोई और उपाय नहीं है।
बुरा होने के लिए थोड़ी समृद्धि चाहिए, सुविधा चाहिए। बुराई में खतरे हैं, थोड़ी शक्ति चाहिए। तुम बुरा करोगे तो दूसरे भी बुरा करेंगे। तुम्हारे पास इतनी शक्ति होनी चाहिए कि तुम बुरा करो और दूसरा जवाब न दे सके, मन मारकर रह जाए।
ऐक्टन ठीक कहता है कि सत्ता लोगों को विकृत करती है। लेकिन फिर मैं कहता हूं कि और गहराई से खोजने पर पता चलता है कि विकृत लोग ही सत्ता की तलाश करते हैं। सत्ता का कसूर नहीं है।
लोग हंसे नहीं थे। धरमदास ने खूब धन कमाया, कोई नहीं हंसा। और किसी ने नहीं कहा कि धन का दुरुपयोग होगा--और धन का सदा दुरुपयोग होता है! और आज कबीर के साथ हो लिया धरमदास, तो लोग हंस रहे हैं और लोग हजार तरह के सवालों का जवाब मांग रहे हैं।
मोरा मन लागा सतगुरु से! ... और यह बात मन के लग जाने की है। इसके लिए कोई तर्क नहीं है, इसको स्मरण रखना। ये सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं... । मोरा मन लागा! इसके लिए कोई तर्क नहीं है। यह कोई वैचारिक प्रक्रिया से पहुंची गई निष्पत्ति नहीं है। यह कोई ऐसा नहीं है कि सोचा, विचारा, अनुभव किया--यह प्रेम है।
वसीयत मीर ने मुझको यही की,
कि सब कुछ होना, तू आशिक न होना।
क्यों? समझदार क्यों कहते हैं कि प्रेमी मत होना? क्योंकि प्रेम इस दुनिया की समझदारी के बिल्कुल विपरीत पड़ जाता है। प्रेम नासमझी है। अगर इस दुनिया के समझदार समझदार हैं तो प्रेम नासमझी है। और अगर प्रेम समझदारी है तो यह सारी दुनिया नासमझी है। अगर प्रेम समझदारी है तो तर्क पागलपन है। दो में से चुनना होगा--तर्क या प्रेम। जो प्रेम को चुन लेता है वह तर्क को छोड़ देता है। जो तर्क को पकड़ लेता है वह प्रेम से वंचित रह जाता है। तर्क से बहुत चीजें मिलती हैं, प्रेम नहीं मिलता। और प्रेम नहीं मिलता तो परमात्मा नहीं मिलता। तर्क से बहुत चीजें मिलती हैं, लेकिन हृदय खो जाता है। और हृदय खो जाता है तो जीवन का सार खो जाता है। तर्क से बहुत चीजें मिलती हैं, लेकिन उल्लास नहीं मिलता, उत्सव नहीं मिलता। तर्क से लोगों के जीवन रेगिस्तान हो जाते हैं, मरूद्यान नहीं रह जाते, उनमें फिर फूल नहीं खिलते। फूल तो प्रेम से खिलते हैं। फूल तो बेबूझ प्रेम से खिलते हैं।
वसीयत मीर ने मुझको यही की,
कि सब कुछ होना, तू आशिक न होना।
लेकिन बड़ी मुश्किल है। यह आदमी के हाथ में नहीं है। प्रेम तुम्हारे हाथ में तो नहीं है। हो जाता है, किया नहीं जाता। ऐसे ही सदगुरु से भी प्रेम हो जाता है। वह भी होने की ही बात है।
इश्क पर जोर नहीं, है ये वो आतिश गालिब
कि लगाए न लगे, और बुझाए न बुझे।
--न तो लगाने से लगती है और न बुझाने से बुझती है। इश्क पर जोर नहीं, है
ये वो आतिश गालिब! यह ऐसी आग है कि लगाए न लगे और बुझाए न बुझे। मगर समझदार सदा कहते रहे हैं: बचना, सावधान रहना! समझदारों ने यह दुनिया ऐसी बना दी है कि इसमें प्रेम के उपाय नहीं छोड़े हैं। इस दुनिया को प्रेम-शून्य बना दिया

है। और मजा यह है कि यही समझदार मंदिर और मस्जिद में भी जाने की बात करते हैं और दुनिया को प्रेम-शून्य बना दिया है। और जो दुनिया प्रेम-शून्य है, उसमें मंदिर-मस्जिद झूठे हो जाएंगे। क्योंकि प्रेमपूर्ण दुनिया में ही वस्तुतः मंदिर उग सकता है। प्रेम-शून्य दुनिया में मंदिर जबरदस्ती थोपा जाता है, उगता नहीं, उसकी जड़ें नहीं होतीं। जैसे किसी उत्सव के दिन तुमने लाकर जबर्दस्ती और वृक्षों को अपने घर में थोप दिया हो, एक-दो दिन हरियाली दिखाई पड़ेगी। उनकी जड़ें नहीं हैं। केले के वृक्ष काट लाए हो और उनको सौंप दिया जमीन को, एकाध दो दिन हरे रह जाएंगे। पर सब झूठ है।
तुम्हारे मंदिर-मस्जिद ऐसे ही झूठ हैं, क्योंकि जिस दुनिया में तुमने
ये मंदिर-मस्जिद आरोपित किए हैं, वह दुनिया प्रेम-शून्य है। मंदिर तो प्रेमपूर्ण दुनिया में ही उठ सकता है।
इश्क से लोग मना करते हैं
जैसे कुछ इख्तियार है अपना!
आदमी के हाथ में नहीं है प्रेम। साधारण प्रेम भी आदमी के हाथ में नहीं है। तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए, कि एक पुरुष के प्रेम में पड़ गए, कि एक मित्र के प्रेम में पड़ गए--यह भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। अचानक तुम पाते हो: किसी से तरंग मेल खा गयी। अचानक तुम पाते हो: किसी के साथ बस संगीत बंध गया, लयबद्धता हो गयी। किसी को देखते ही एक छन्द उमगा, जो तुम्हारे हाथ में नहीं है, जो तुम्हारे बस में नहीं है।
तो सदगुरु के साथ तो यह पागलपन और भी बड़ा होता है। बस प्रेम हो जाता है।
हमने अपने से की बहुत, लेकिन
मर्जे इश्क का इलाज नहीं।
जो प्रेम में पड़ता है वह भी बचना चाहता है। क्योंकि प्रेम अहंकार को डुबाता है, मिटाता है। कौन अपने अहंकार को डुबाना चाहता है! दुनिया भी कहती है बचो, और भीतर अहंकार भी कहता है बचो। दुनिया और अहंकार के बीच सांठ-गांठ है। दुनिया और अहंकार एक ही भाषा बोलते हैं। लेकिन जब प्रेम की किरण उतर आती है तो फिर कोई उपाय नहीं है।
मोरा मन लागा सतगुरु से! ... सौभाग्य का क्षण है ऐसा कि सतगुरु से मन लग जाए। क्योंकि यह परमात्मा की तरफ पहला और अंतिम कदम है। पहला भी और अंतिम भी। इसके बाद कोई और कदम नहीं हैं। एक ही कदम में यात्रा पूरी हो जाती है। क्योंकि सतगुरु के दो काम हैं! एक तरफ से वह दुनिया से तुम्हें तोड़ देता है। और तुम दुनिया से टूटे कि परमात्मा से जुड़े। तुम्हें कोई और चीज रोके नहीं है; तुम दुनिया से जुड़े हो, इसलिए परमात्मा से टूटे हो।
इंसान को बे इश्क सलीका नहीं आता
जीना तो बड़ी चीज है, मरना भी नहीं आता।
प्रेम के बिना न तो जीना आता है।... जीना तो बड़ी चीज है, मरना भी नहीं आता। प्रेम दोनों बातें सिखा जाता है--एक ही झलक में सिखा जाता है। मरना भी सिखा जाता है और जीना भी सिखा जाता है।
तुम ध्यान रखना, जब तक तुम्हारी जिंदगी में कोई ऐसी चीज न हो जिसके लिए तुम मर न सको, तो समझना तुम्हारी जिंदगी में ऐसी कोई चीज नहीं, जिसके लिए तुम जी सको। जीना और मरना साथ घट जाते हैं। जब तुम्हारी जिंदगी में ऐसी कोई चीज होती है कि तुम उसके लिए जिंदगी भी निछावर कर दो, तभी तुम्हारी जिंदगी में अर्थ होता है, तभी तुम्हारी जिंदगी में कोई अभिप्राय होता है, तभी तुम्हारी जिंदगी में कोई गीत होता है।
यह बड़े मजे की बात है, बड़ी विरोधाभासी है। जिसके पास मरने का कारण होता है, उसके पास जीने का कारण होता है। अधिकतर लोगों के पास न तो मरने का कारण है न कोई जीने का कारण है। वे ऐसे धक्के खाते हैं। जीते नहीं, बहे जाते हैं। उनके जीवन में कोई दिशा नहीं होती--कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं? और सब जा रहे हैं, इसलिए वे भी जा रहे हैं। उनसे पूछो ही मत। ऐसे प्रश्न शिष्ट नहीं समझे जाते, अशिष्ट समझे जाते हैं। ऐसी बातें पूछो मत। भले लोग, सुसंस्कृत लोग ऐसी बातें नहीं पूछते--कहां जा रहे हो, क्यों जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो? अच्छे-भले लोग भीड़ जहां जाती है, उस तरफ चलते

रहते हैं, चुपचाप। अच्छे-भले लोग आज्ञाकारी होते हैं, विद्रोही नहीं होते।
और धर्म विद्रोह है। और प्रेम विद्रोह का पाठ सिखाता है।
कोयल की सदाएं आती हों जब रह-रह के गुलजारों से
इक नग्मए-शीरीं फूट पड़े जब दिल के नाजुक तारों से
उस वक्त हटाके पर्दो को तू काश चमन में दर आए
हस्ती का मेरा जर्रा-जर्रा तस्वीरे मसर्रत बन जाए।
कोई घड़ी होती है, कोई बसंत की घड़ी होती है--जब तुम्हारी आंखें ताजा होती हैं। कोई प्रभात होता है तुम्हारे जीवन में। उस घड़ी में अगर तुम्हें किसी ऐसे व्यक्ति से मिलन हो जाए, जो पा गया है... । संयोग की ही बात है, आयोजन नहीं किया जा सकता।
सदगुरु अतिथि की तरह आता है। तिथि बताकर नहीं आता इसलिए अतिथि। पहले
से खबर नहीं हो सकती कि आ रहा हूं। शायद पहले से खबर हो तो तुम भाग ही जाओ।
अनायास घटती है घटना। तुम शायद किसी और ही काम से गए थे। तुम शायद किसी और ही वजह से गए थे। तुमने कभी सोचा भी न था कि इतने गहरे जाल में पड़ जाओगे।
तुम हिसाब-किताब से न गए थे। हिसाब-किताब किया होता तो गए ही न होते। हिसाब-किताबी सदगुरुओं के पास नहीं जाते। धनी धरमदास भी नहीं गए थे। धनी धरमदास धनी थे। और जैसे धनी लोग धार्मिक होते हैं, इसी तरह धार्मिक भी थे--सत्यनारायण की कथा, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन करवाते थे। इसी पूजा, हवन, यज्ञ इत्यादि करवाने की प्रक्रिया में मथुरा गए थे। वहां किसी न कहा कि आप आ ही गए हो, कबीर भी यहां आए हुए हैं, दर्शन कर लो। बहुत साधु-संतों के दर्शन किए थे, सोचा चलो इस साधु का भी कर लें। मगर यह साधु और साधुओं जैसा साधु नहीं था। और तो तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हारे संसार के ही अंग हैं, तुम्हारी सांत्वना के हिस्से हैं। तुम्हें सोए रखने में नींद की दवा का काम करते हैं। तुम्हें बच्चा नहीं होता, वे यज्ञ करवा देते हैं। धर्म तो तुम्हें फिर दुबारा पैदा न होना पड़े, इसकी प्रक्रिया है; वे दूसरे तक को पैदा करवाने का उपाय करवा देते हैं। तुम्हें चुनाव लड़ना है, वे यज्ञ करवा देते हैं, कि जीत निश्चित करवा देते हैं। धर्म तो तुम्हें इसे संसार में हराने की प्रक्रिया है, ताकि तुम यहां हार जाओ तो परमात्मा का स्मरण आए। हारे को हरिनाम! लेकिन वे तुम्हें यहां जीत करवा देते हैं। तुम लाटरी के टिकट खरीदो और यहां तुम्हें लोग मिल जाते हैं, महात्मा, जो आशीर्वाद दे देते हैं।
मैं बंबई से जब यात्रा करता था बार-बार तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाता था। बम्बई के स्टेशन पर जब बहुत मित्र मुझे छोड़ने आते तो देख लेता गार्ड भी, देख लेता ड्राइवर भी कि इतने लोग आए हैं छोड़ने, जरूर कोई महात्मा होगा। गाड़ी क्या चलती, मैं मुश्किल में पड़ जाता। गार्ड आकर पैर पकड़े पड़ा है कि नंबर बता दीजिए।... किस बात का नंबर? वे कहते: आप तो सब जानते ही हैं, आपको क्या कहना है? मगर एक बार मिल जाए बस लाटरी, सिर्प एक बार! और आपकी कृपा से क्या नहीं हो सकता!
मुझे बड़ी कठिनाई हो जाती। मैं जितना उनको समझाता कि भई मुझे कोई नंबर वगैरह पता नहीं। और लाटरी मैं दिलवाता नहीं, हरवाता हूं।
वे कहते: नहीं-नहीं, आप भी क्या बात कर रहे हैं? महात्मा कभी ऐसा कर सकते हैं? महात्मा का तो काम ही यह है कि आशीर्वाद दे। आप मुझे टाल नहीं सकते। आज तो नंबर लेकर ही जाऊंगा। एक बार बस, दुबारा फिर आपको नहीं सताऊंगा। बस एक बार हो जाए तो सब ठीक-ठीक हो जाए। अब आप देखिए, मेरी लड़की है, बड़ी हो गई, शादी करनी है। बेटा है नौकरी नहीं लगती। तो कोई ऐसा आप से नाजायज काम नहीं करवा रहा हूं।
तुम्हारे साधु, तुम्हारे महात्मा यही करते रहे हैं सदियों से, वेद से लेकर अब तक। और ऐसे-ऐसे काम करते रहे हैं कि तुम हैरान होओगे। दुश्मन को मारना है, उसके लिए भी तुम्हारा महात्मा आशीर्वाद दे देता है। वेदों में इस तरह की ऋचाएं हैं, जो बड़ी बेहूदी हैं, जिनमें इंद्र से प्रार्थना की गई है कि हे इंद्र! मेरे दुश्मन के खेत में फसल न हो, पानी न गिरे; कि मेरे दुश्मन की गाय के थन सूख जाएं, उनसे दूध न बहे। जिसने ये प्रार्थनाएं की

होंगी वे धार्मिक थे? और जिनने यह प्रार्थनाएं संग्रहीत कीं, वे धार्मिक थे? और जो सदियों से इस किताब को पूजते रहे हैं, वे धार्मिक हो सकते हैं? लेकिन तथाकथित धर्म ऐसा ही है। वह तुम्हारे संसार का ही फैलाव है, वह उसी का हिस्सा है।
धनी धरमदास बहुत साधुओं के पास गए थे और सभी साधुओं को उन्होंने शांति दी थी। किसी को धन दान कर दिया था, किसी को मकान दान कर दिया था, किसी को मंदिर बनवा दिया था। कबीर के पास जाकर मुश्किल में पड़ गए। भूल से चले गए थे, नहीं तो शायद गए भी नहीं होते। वह जो आंख मिली कबीर से, कुछ बात और हो गई। मोरा मन लागा सतगुरु से!
थी वह निगाहे नाज या नावक का तीर था
मिलते ही आंख रह गया मैं कह केः हाय दिल!
पागल होने की घड़ी आ गयी। मोरा मन लागा सतगुरु से, भला होय कि खोर! और अब
यह सवाल ही कहां है कि इससे अच्छा होगा या बुरा होगा। यह अच्छे-बुरे के पार घटना है।
इसलिए तो तुम प्रेमी को कभी नहीं समझा सकते कि इससे बुरा हो जाएगा। वह कहता है, बुरा हो तो बुरा हो जाए। प्रेम इतनी बड़ी घटना है कि बुरा सहा जा सकता है।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि चलिबो पावक मांहि।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन सब कोई निबहत नाहिं।।
अंतर दांव लगी रहे, धुआं न प्रकटे सोय।
कै जिय जाने आपनो कै जा सिर बीती होय।।
जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे मांहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि के सुलगाहिं।।
यह न रहीम सराहिए, लेन-देन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए, हार होय कि जीत।।
फिर अब हार होगी कि जीत, यह तो सवाल नहीं उठता। प्राण की बाजी लगानी होती है।... प्रेम-पंथ ऐसो कठिन सब कोई निबहत नाहिं। दुकानदारों का यह काम नहीं। यह जुआरियों का काम है। धरमदास जुआरी रहे होंगे। हिम्मतवर थे। दांव पर सब लगा दिया। वह जो आंखों में दिख गया था कबीर के, तय कर लिया कि जब तक मुझे न दिख जाए तब तक अब जीवन में कोई सार नहीं। वह जो कबीर के पास आभा दिखायी पड़ी थी, वह जो रोशनी दमक गयी थी दामिनी की तरह, जब तक मेरे जीवन का भी अंग न हो जाए तब तक सब व्यर्थ है। सब दांव पर लगा दिया। लौटे ही नहीं। कहा: बात खत्म हो हो गई। अब तक जो मिले थे, बस नाममात्र के महात्मा थे; आज महात्मा से मिलना हुआ। अब तक तो जो महात्मा मिले थे, वे धनी धरमदास से ही कुछ पाना चाहते थे; आज पहली दफा कोई महात्मा मिला, जिससे धनी धरमदास को कुछ मिल सकता था--जिससे वे वस्तुतः धनी हो सकते थे।
मोरा मन लागा सतगुरु से भला होय कि खोर।
जब से सतगुरु-ज्ञान भयो है चले न केहु के जोर।।
और एक बार इस बात की प्रत्यभिज्ञा हो जाए, पहचान हो जाए, रिकग्नीशन हो जाए कि यह रहा सतगुरु, फिर किसी का बस नहीं चलता। फिर सारी दुनिया एक तरफ और सारी दुनिया कहे गलत, तो भी अंतर नहीं पड़ता।
जब से सतगुरु ज्ञान भयो है... । यह ज्ञान कैसे हो जाता है? शिष्य के उपाय से नहीं होता। शिष्य क्या उपाय करेगा? बस इतना ही शिष्य कर सकता है कि सतगुरु की छाया में मौजूद हो जाए। और क्या कर सकता है? बैठे, उठे, जाए, सत्संग करे--कभी तो घड़ी आएगी सौभाग्य की, जब मिलन हो जाएगा। सतगुरु के पास बैठते-बैठते बैठते-बैठते ऐसी घड़ी आ जाती है, सुनते-सुनते ऐसी घड़ी आ जाती है, जब तुम्हारी श्वास सतगुरु के साथ लयबद्ध हो जाती है, तुम्हारे विचार धीरे-धीरे धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। एक सन्नाटा तुम्हारे भीतर छा जाता है। उसी घड़ी कोई उतर आता है अज्ञात से तुम्हारे भीतर। उसी घड़ी तुम्हारा पात्र भर जाता है--अमृत से! और वह स्वाद लगा, फिर किसी का जोर नहीं चलता। फिर तो स्वयं परमात्मा भी आकर तुमसे कहे कि गुरु को छोड़ दो, तो भी तुम नहीं छोड़ सकते। तुम कहोगेः परमात्मा को छोड़ सकता हूं, क्योंकि

परमात्मा का मुझे कुछ पता नहीं था। परमात्मा का पता ही मुझे सदगुरु के द्वारा चला है।
कबीर ने कहा हैः गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव! किसके पैर पहले लगूं? गुरु, गोविंद--इनके बीच चुनाव कबीर को करना पड़ रहा है! क्यों? क्योंकि गुरु ने ही गोविंद जन्माया। गुरु ने आंखें दीं, जिनसे रोशनी दिखाई पड़ी। रोशनी तो रही होगी पहले भी, मगर उसके होने न होने से क्या फर्क पड़ता था! गोविंद तो रहे होंगे पहले भी, लेकिन जब तक गुरु सेतु न बना तब तक गोविंद से कोई संबंध नहीं था। तो कृपा किसकी है?
मात रिसाई पिता रिसाई, रिसाये बटोहिया लोग। साथी-संगी सब नाराज हो गए। मां नाराज हो गयी, पिता नाराज हो गए।
अकसर ऐसा होता है। होगा ही। किसी स्वाभाविक नियम के अनुसार होता है।
जब भी तुम गुरु को चुनोगे, पिता निश्चित नाराज होगा, मां निश्चित नाराज होगी। अगर न हो मां और पिता नाराज, तो तुम धन्यभागी हो। मगर ऐसे बिरले अवसर होंगे। अगर पिता और मां को भी गुरु से कुछ जोड़ बना हो, कभी जीवन में स्वाद लगा हो, तभी यह हो सकता है, नहीं तो नहीं, नाराज होंगे ही। क्यों? मां से तुम्हारा पहला जन्म हुआ--देह का। और गुरु से तुम्हारा दूसरा जन्म होगा। गुरु से मां की प्रतिस्पर्धा हो जाती है। और निश्चित ही गुरु तुम्हारी मां से बड़ी मां है। क्योंकि मां से तो केवल देह मिली, गुरु से आत्मा मिलेगी। मां से तो बाहर का जीवन मिला, गुरु से भीतर का जीवन मिलेगा। तो मां को स्पर्धा हो ही जाएगी, जलन हो ही जाएगी। मां गुरु को बर्दाश्त नहीं कर सकेगी। पिता भी बर्दाश्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि पिता का अब तक तुम पर कब्जा था। अब किसी का तुम पर इतना कब्जा हो गया कि अगर गुरु कहे कि पिता की काट लाओ गरदन, तो तुम काट कर ले आओगे। यह खतरनाक बात है।
जीसस के बड़े प्रसिद्ध वचन हैं और बड़े कठोर भी--कि "जब तक तुम अपने माता-पिता को इनकार न करोगे, मेरे पीछे न चल सकोगे। अनलैस यू डिनायष्ठ जब तक तुम इनकार न करोगे अपने माता-पिता को, मेरे पीछे न चल सकोगे। " ईसाइयों को बड़ी कठिनाई रही है इन वचनों को ठीक-ठीक समझाने की। उनको पता नहीं है कुछ। ये वचन जीसस के पास किसी बुद्ध-परंपरा से आए होंगे। बुद्ध के वचन और भी खतरनाक हैं। बुद्ध ने कहा: जब तक तुम अपने मां-बाप को मार ही न डालोगे, मेरे पीछे न चल सकोगे।
एक सुबह एक संन्यासी विदा हो रहा है, बुद्ध का एक भिक्षु विदा हो रहा है, यात्रा पर जा रहा है बुद्ध का संदेश पहुंचाने। उसने झुक कर बुद्ध के चरणों में प्रणाम किया है। सम्राट प्रसेनजित उस दिन दर्शन को आया था, वह भी पास बैठा है। बुद्ध ने उसके सिर पर हाथ रखा है--भिक्षु के। बड़े गदगद होकर आशीर्वाद दिया है। और फिर प्रसेनजित से कहा कि यह भिक्षु अदभुत है, इसने अपने मां और पिता को मार डाला है। प्रसेनजित तो बहुत घबड़ाया। सम्राट था वह। इस बात की प्रशंसा की जा रही है और यह आदमी हत्यारा है! वह थोड़ा परेशान हुआ। उसने कहा कि यह आदमी कौन है, इसका पता-ठिकाना क्या है? मुझे इसकी खबर क्यों नहीं हो सकी अब तक? इसने मां-बाप को मार डाला!
बुद्ध के भिक्षु हंसने लगे। उन्होंने कहा: आप समझे नहीं। इसने वस्तुतः मां-बाप नहीं मार डाले हैं। आपके नियम-कानून के भीतर नहीं पकड़ा जा सकता है यह आदमी। यह किसी और बड़े नियम के भीतर चल रहा है। बुद्ध जब कहते हैं कि इसने अपने मां-बाप मार डाले हैं तो इसका मतलब यह है कि अब बुद्ध के अतिरिक्त इसके मां-बाप नहीं हैं, और कोई मां-बाप नहीं, बात समाप्त हो गई है। वह नाता गया। वह संबंध गया।
तो गुरु के साथ अड़चन तो है।
मात रिसाई, पिता रिसाई, रिसाए बटोहिया लोग।
ग्यान-खड़ग तिरगुन को मारूं, पांच पचीसो चोर।।
धरमदास कहते हैं: लेकिन मुझे अब फिकर नहीं है, मेरे हाथ में वैसी तलवार आ गई है कि मां-बाप को मारने में तो क्या रखा है, मित्रों को मारने में क्या रखा है! त्रिगुण, जिनसे यह पूरा अस्तित्व बना है--सत, रज, तम--उनको मार डालूंगा। जिनसे यह जीवन बना है, उनको मार डालूंगा। इस जीवन की मूल आधारशिला को तोड़ दूंगा, जड़ को काट दूंगा।... पांच पचीसो चोर... ये जो पांच

इंद्रियों ने पच्चीसों चोर खड़े कर रखे हैं, इन सबको काट कर फेंक दूंगा। तलवार मेरे हाथ लग गई है।
अब तो मोहि ऐसी बनि आवै, सतगुरु रचा संजोग। गुरु का काम ही है संयोग रचना। बुद्ध ने इस संयोग रचने को कहा है: बुद्धक्षेत्र। गीता शुरू होती है--कुरुक्षेत्रे धर्म-क्षेत्रे। वह जो कुरुक्षेत्र था, वह जो युद्ध हो रहा था पांडव और कौरवों के बीच, वह धर्मक्षेत्र था। उसकी गहराई में कोई जाए तो पाएगा कि वह भी कृष्ण का रचा हुआ खेल था। उस संघर्ष से ही कृष्ण के शिष्य साक्षी बन सकते थे और निमित्तमात्र बन कर मुक्त हो सकते थे।
गुरु का काम है संयोग रचना; डिवाइस; उपाय; एक परिस्थिति पैदा करना, जिसमें घटनाएं घटनी शुरू हो जाएं। घटनाएं तो घटती हैं शिष्य के अंतस्तल में, लेकिन बाहर वातावरण रचना होता है। इसी वातावरण को रचने के लिए बहुत उपाय किए गए हैं। बुद्ध ने हजारों लोगों को भिक्षु बनाया; वह यही उपाय था। एक समुदाय निर्मित किया। एक मित्रों की मंडली इकट्ठी खड़ी की। एक संघ निर्मित किया। अकेले-अकेले शायद तुम संसार से न लड़ पाओ। अकेले-अकेले शायद तुम टूट जाओ। अकेले-अकेले शायद तुम डूब जाओ। तुम्हें एक वातावरण दिया। बुद्ध के साथ दस हजार भिक्षु चलते थे। उन दस हजार भिक्षुओं की हवा, उन दस हजार भिक्षुओं की शांति, उन दस हजार भिक्षुओं का आनंद साथ चलता था। उसमें जब कोई नया भिक्षु आकर डूबता था, सरलता से डुबकी मार लेता था। यह दस हजार की तरंग पर सवार हो जाता था।
अब तो मोहि ऐसी बनि आवै, सतगुरु रचा संजोग।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात वियापै रोग।।
अब तो साधु को देखकर ही बड़ा सुख लगता है। अब तो साधु से मिलन हो जाता
है तो बड़ा सुख लगता है। अब तो साधु से संबंध टूटता है तो बड़ी पीड़ा होती है, रोग लग जाता है।
साधु किसको कहते हैं? --जिसके पास बैठ कर परमात्मा की याद आए। जिसके पास बैठ कर अंतर्यात्रा की स्मृति पकड़े। जिसके पास बैठकर सार सुनाई पड़े, असार छूटे। और स्वभावतः जब साधु के पास बैठ कर सत्संग जमेगा, जहां चार दीवाने मिल जाते हैं और परमात्मा की चर्चा होती है, वहां आंसुओं की धार लग जाती है, हृदय नाचने लगते हैं। तो फिर जब विदाई होगी तो पीड़ा भी होगी।... जात वियापै रोग।
खून बन कर मेरी आंखों से टपकने वाले
नूर बन कर मेरी आंखों में समाया क्यों था?
मगर जो नूर बनकर समाएगा, वह खून बन कर टपकेगा भी। पर धीरे-धीरे धीरे- धीरे बाहर साधु के सत्संग की जरूरत समाप्त हो जाती है। अपने ही भीतर का साधु पैदा हो जाता है। तब फिर कोई जरूरत नहीं रह जाती। फिर तुम जहां हो वहीं तीर्थ है। जहां बैठे वहीं काबा। जहां सिर झुकाया वहीं मंदिर। जहां पैर पड़ जाते, वहीं पवित्रता का जन्म हो जाता है।
लेकिन शुरुआत तो साधु-संगति से करनी होगी। साधुओं के प्रेम में पड़ो,
पर उसके पूर्व सतगुरु से मिल लेना जरूरी है। नहीं तो साधु को पहचान ही न सकोगे। और असाधु बहुत हैं और साधु कभी कोई बिरला। पहले तो सतगुरु से प्रेम लगे।
इश्क जन्नत है आदमी के लिए।
इश्क नेमत है आदमी के लिए।
पहले तो प्रेम लगे सतगुरु से। थोड़ा स्वर्ग का स्वाद तो लगे! थोड़ा वह मंगलदायी अनुभव तो हो! फिर जब सदगुरु दिखाई पड़ गया है, तो फिर जहां भी रोशनी की छोटी सी किरण होगी, तुम पहचान लोगे। फिर कहीं जरा सा तारा टिमटिमाता होगा, तो भी तुम पहचान लोगे। तब तुम सब तरफ साधु को पहचानने लगोगे। और तब तुम्हारे जीवन में एक रूपांतरण हो जाता है। तुम असाधुओं की दुनिया के हिस्से नहीं रह जाते। तुम धीरे-धीरे साधुओं की दुनिया के हिस्से हो जाते हो।
और तुम जैसे होने लगते हो वैसे व्यक्ति तुम्हारे पास आने लगते हैं।
और तुम जैसे व्यक्तियों के पास जाने लगते हो वैसे व्यक्तियों की पहचान

बढ़ने लगती है। धीरे-धीरे इसी पृथ्वी पर तुम किसी दूसरे ही संसार के हिस्से हो जाते हो। वह दूसरा संसारः बुद्धक्षेत्र, धर्मक्षेत्र।
धरमदास बिनवै कर जोरी सुनु हो बंदी-छोर। गुरु से कहते हैं कि मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूं! तुमने ही मुझे बंधन से छुड़ाया, तुमने मुझे कारागृह से बाहर निकाला।
जाको पद त्रैयलोक से न्यारा सो साहब कस होय।... और अभी तो मैंने गुरु
को ही जाना है--और इतना आनंद इतनी अपूर्व अनुभूति हो रही है, कैसा होगा उसका लोक--परमात्मा का! अभी तो परमात्मा को जानने वाले को जाना है, तो भी इतना आनंद झलक रहा है। अभी तो दर्पण में उसकी तस्वीर देखी है। अभी उसकी तस्वीर नहीं देखी। अभी तो पानी की झील में बनता हुआ चांद देखा है। अभी असली चांद नहीं देखा। अभी तो गुरु के भीतर क्या घटा है, यह देखा है। मगर जिसके कारण घटा है, उस मालिक को, उस साहब को... या मालिक!
"साहब" शब्द बड़ा प्यारा है। साहब का मतलबः मालिक! गुरु को भी साहब कहते हैं, क्योंकि पहले तो साहब के दर्शन गुरु में ही होते हैं। गुरु में हम अ ब स सीखते हैं साहब का। गुरु, ऐसा समझो कि तुम तैरने गए हो, तो उथले- उथले पानी में तैरना सीखते हो; एक दफे तैरना सीख लिया तो फिर सागरों में तैर जाओ। गुरु तो उथला-उथला पानी है, जहां तुम तैरना सीख सकते हो। गुरु तुम्हारे और परमात्मा के मध्य की कड़ी है। गुरु किनारे और मध्य के बीच कड़ी है। गुरु देह में परमात्मा है। रूप है, आकार है, सीमा है। सीमा है, रूप है, आकार है--इसलिए तुम संबंधित हो सकते हो, प्रेम कर सकते हो। अरूप को कैसे प्रेम करोगे? निराकार को कैसे प्रेम करोगे? निराकार के प्रेम में गिरोगे कैसे?
तो पहले तो साहब को खोजो गुरु में। फिर गुरु तुम्हें धीरे-धीरे उस साहब से मिला देगा जो निराकार है। आकार का प्रेम धीरे-धीरे निराकार की अनुभूति में सहयोगी हो जाता है। रूप को पहचानते-पहचानते अरूप से भी मिलन होने लगता है। स्थूल से पहचान करो तो धीरे-धीरे सूक्ष्म में भी गति हो जाती है।
जाको पद त्रैयलोक से न्यारा सो साहब कस होय।
साहब येहि विधि ना मिलै चित चंचल भाई।... अड़चन क्या है? साहब मिलता क्यों नहीं? क्योंकि चित्त चंचल है। चित्त ठहरता नहीं। चित्त रुकता ही नहीं।
तुमने क्या कभी देखा, जब तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है तो चित्त ठहरने लगता है! किसी स्त्री के तुम प्रेम में पड़ गए, फिर तुम लाख कामों में उलझे रहते हो, उसकी याद भीतर बहती रहती है--सतत धारा की भांति। बाजार में हो--और उसकी याद भीतर। दुकान पर हो--और उसकी याद भीतर। काम कर रहे हो--और उसकी याद भीतर। रात सोते हो, उसका सपना भीतर चलता है। दिन उसकी स्मृति। कुछ भी करते रहते हो, उसकी याद बहती रहती है। एक सातत्य हो जाता है स्मृति का। एकशृंखला बंध जाती है।
तुम्हारे जीवन में बस प्रेम का ही एक अनुभव है, जब तुम्हारे चित्त की चंचलता थोड़ी कम होती है। इसी अनुभव से सीखो। यही प्रेम बहुत विराट होकर गुरु के साथ जुड़ जाए तो चित्त अचंचल हो जाता है।
साहब येहि विधि ना मिलै चित्त चंचल भाई।
माला तिलक उरमाइके नाच अरु गावै।
फिर तुम कितनी ही माला घुमाओ, कितना ही तिलक लगाओ, कितने ही नाचो और गाओ--अगर प्रेम नहीं लग गया है तो सब थोथा-थोथा है, सब ऊपर-ऊपर है, सब औपचारिक है, क्रियाकांड है। और तुम भेद समझ लेना। क्योंकि क्रियाकांड बहुत प्रचलित है। मंदिर में जाते हो तो फूल चढ़ा देते हो। जरा सोचना, हृदय चढ़ता है या नहीं? मंदिर के सामने से निकले, हाथ जोड़ लेते हो। प्राण जुड़ते हैं या नहीं? नहीं तो उपचार छोड़ दो। उपचार का धोखा मत रखो। उपचार पाखंड है। अगर प्राण न जुड़ते हों तो हाथ मत जोड़ो। और अगर हृदय न चढ़ता हो तो फूल मत चढ़ाओ। क्या सार होगा हृदय का फूल चढ़े तो ही चढ़े। फिर बाहर का फूल भी उपयोगी हो जाता है। हृदय से जोड़ बन जाए तो कुछ ऐसा नहीं है कि धनी धरमदास कह रहे हैं कि नाचना और गाना मत। धनी धरमदास खुद खूब नाचे और गाए। उन्हीं का गीत

तो हम सुन रहे हैं। यह नहीं कह रहे हैं कि नाचना और गाना मत। यही कह रहे हैं कि नाच और गाने में तुम होना, बस नाच ही गाना न हो। ओठों पर ही न हो गीत, रोएं-रोएं में समाया हो। पुकार ऊपर ही ऊपर शब्दों की न हो।
तेरा इमाम बेहजर, तेरी नमाज बेसरूर
ऐसी नमाज से गुजर, ऐसे इमाम से गुजर
बेसरूर--जिसमें नशा ही नहीं है, आंखें मदमाती नहीं हैं... ! मंदिर चले गए, तुम्हारी आंख में कोई नशा नहीं दिखाई पड़ता। तुम मंदिर से लौट कर डगमगाते नहीं दिखते। शराबी बेहतर है। लड़खड़ाता तो है! तुम लड़खड़ाते ही नहीं हो! इतनी बड़ी मधुशाला में गए और ऐसे ही चले आए! होश सम्हाले के सम्हाले! बेहोशी.जरा भी लगी नहीं।
तेरा इमाम बेहजर, तेरी नमाज बेसरूर
ऐसी नमाज से गुजर, ऐसे इमाम से गुजर
छोड़ो ऐसी नमाज! छोड़ो ऐसा क्रियाकांड। ऐसी प्रार्थना, जो तुम्हें नशे
से नहीं भर देती, जो तुम्हें नचा नहीं देती, जो तुम्हें आनंद-मग्न नहीं कर देती, जो तुम्हारे भीतर मधुशाला के द्वार नहीं खोल देती--छोड़ो!
जाहिदे कमनिहाद ने रस्म समझ लिया तो क्या
कसदे कयाम और है रस्मे-कयाम से गुजर
एक तो रस्म है--उपचार। और एक असलियत है--भाव। तुम किसी से कहते हो, "मुझे तुमसे प्रेम है" और भीतर कोई प्रेम नहीं हैं--तो यह रस्मे-कयाम है। बस एक उपचार निभा रहे हो। कहना चाहिए सो कह रहे हो। फिर तुम्हारा किसी से प्रेम है और शायद तुम कहते भी नहीं, कहने की शायद जरूरत भी नहीं पड़ती, बिना शब्दों के प्रकट हो जाता है। तुम्हारे आने का ढंग कहता है। तुम्हारे देखने का ढंग कहता है। तुम्हारा हाथ हाथ में लेने का ढंग कहता है। तुम्हारी आंखें कहती हैं। तुम्हारा नशा कहता है। और अगर तब तुम कहो भी कि मुझे तुमसे प्रेम है तो उसमें अर्थ होता है। अर्थ प्राणों से आता है। अर्थ शब्दों में कभी नहीं होता। शब्द तो चली हुई कारतूस जैसे भी हो सकते हैं। भीतर बारूद होनी चाहिए।
जाहिदे कमनिहाद ने रस्म समझ लिया तो क्या?
और लोग रस्म समझ कर बैठ गए हैं, निभा रहे हैं। मंदिर जाना चाहिए सो जाते हैं। गणेश-उत्सव आ गया, सो गणेश जी की पूजा करते हैं। न गणेश जी से कुछ लेना है, न पूजा से कोई प्रयोजन है। सदा होता रहा तो करते हैं। बाप-दादे करते रहे हैं तो हम भी करते हैं। एक लकीर है, सो उसको पीटते हैं। मस्जिद जाना है तो मस्जिद जाते हैं। रविवार का दिन है तो चर्च जाते हैं। रविवारीय धर्म से उतरो, पार हटो! रविवारीय धर्म से गुजरो। रस्मे-कयाम से गुजर, ऐसे इमाम से गुजर, ऐसी नमाज से गुजर, तेरी नमाज बेसरूर! ... नशा चाहिए!
और एक बड़ी अनिवार्य बात ख्याल रखना, अगर तुम व्यर्थ न करो तो सार्थक करने की स्मृति आए बिना नहीं रहेगी। आएगी ही। क्योंकि मनुष्य एक खोज है। तुम अगर खिलौनों में न उलझे रहो, घुनघुनों में न उलझे रहो, तो तुम असली की तलाश करोगे ही।
तुमने देखा, छोटे बच्चों को हम धोखा देते हैं! मां काम में है और बच्चे
को अभी स्तन नहीं दे सकती, उसको एक चूसनी पकड़ा देती है--रबर की चूसनी। बच्चा रबर की चूसनी मुंह में ले लेता है, आंख बंद करके बड़े मजे में हो जाता है। चूसता है, सोचता है कि स्तन है। स्तन जैसा मालूम पड़ता है। मगर उससे कोई पुष्टि तो मिलेगी नहीं। उससे कोई पोषण तो मिलेगा नहीं। तुमने बच्चे को धोखा दे दिया। धोखे की शुरुआत हो गई। फिर ऐसे ही पंडित-पुजारी तुम्हें चूसनी दे रहे हैं। हृदय में तो परमात्मा विराजमान नहीं है; बाजार गए और एक मूर्ति खरीद लाए। विराज दिया परमात्मा को घर में और हृदय में जगह नहीं है कोई। तुम चूसनी ले आए, इससे पोषण नहीं होगा, इससे प्राण रूपांतरित नहीं होंगे। तुम किसको धोखा दे रहे हो? यह खिलौना ले आए। खिलौनों की पूजा में लगे हो?
छोटे-छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डी का विवाह रचाते हैं और बड़ी उम्र के बच्चे रामलीला करते हैं। मगर सब खेल है।... ऐसे इमाम से गुजर, ऐसी नमाज से गुजर।... इससे तुम छूट जाओ तो तुम ज्यादा देर खाली न रह सकोगे। अगर बच्चे

को उसकी चूसनी छीन ली जाए, वह फिर रोने लगेगा। वह फिर पुकारने लगेगा मां को कि मुझे भूख लगी है। वह चूसनी धोखा दे रही है।
इसलिए बहुत बार तुम्हें मेरी बातें कठिन लगती होंगी, क्योंकि मैं बहुत चोटें करता हूं तुम्हारी उन सब बातों पर जिनको तुमने धर्म समझा है। चोट इसलिए करता हूं कि चूसनी तुम्हारे मुंह से निकाल ली जाए तो तुम मां को फिर पुकारो, तो तुम्हें अपनी भूख का पता चले, तो तुम्हें अपनी पीड़ा का अनुभव हो। और पीड़ा से प्रार्थना है। पीड़ा से पुकार है। तब एक पुकार उठेगी जो दूर आकाश को भेद देती है, जो सारे अस्तित्व के प्राणों को कंपा देती है। परमात्मा का उत्तर आ सकता है, मगर तुम्हारी पुकार नहीं आ रही। तुम अपनी चूसनी लिए बैठे हो। अलग-अलग चूसनियां हैं। किसी की एक ढंग की, किसी की दूसरे ढंग की। किसी के पास एक फैक्टी की बनी, किसी के पास दूसरी फैक्ट्री की बनी। कोई गीता को चूस रहा है, कोई कुरान को चूस रहा है। पर सब चूसनियां लिए बैठे हुए हैं। उनकी शक्लों से पता चल रहा है कि चूसनी लिए बैठे हैं।... तेरी नमाज बेसरूर!
जागो! धर्म का संबंध तो मतवालेपन का संबंध है। वह दीवानों की बात है।
एक बूंद पड़ जाएगी तो नाच उठोगे। एक बूंद ऐसा नचाएगी कि नाच रुकेगा नहीं।
और तुम चूसनी लिए बैठे हो इतने दिन से और कोई नाच पैदा नहीं हुआ। कोई जीवन में आनंद की जरा सी झलक नहीं, कोई फूल नहीं खिले।
माला-तिलक उरमाइके, नाचै अरु गावै।
अपना मरम जानै नहीं औरन समुझावै।।
और बड़ा मजा चल रहा है इस दुनिया में, जिनको खुद कुछ पता नहीं है वे दूसरों को समझा रहे हैं। समझाने का एक फायदा हैः उससे तुम्हें यह बात भूल जाती है कि हमको पता नहीं। समझाने में एक दूसरा और फायदा है कि दूसरे को समझाते-समझाते तुम्हें यह भ्रांति पैदा हो जाती है कि मैं भी समझ गया। दूसरे में उलझ कर अपनी याद ही भूल जाती है। दूसरे की चिंताएं, दूसरे के प्रश्नों का जवाब देते-देते तुम्हें याद ही नहीं रहता कि मेरे भी अभी प्रश्न हैं जिनके जवाब मिले नहीं। फिर अहंकार को भी बड़ी तृप्ति मिलती है कि मैं ज्ञाता और दूसरा अज्ञानी। समझाने का यही तो मजा है। समझाने वाला ज्ञानी हो जाता है, जो समझने बैठ गया वह अज्ञानी हो जाता है।
पांडित्य से बचना। पांडित्य जहर है। और यह रोग ऐसा है कि एक बार पकड़ जाए तो बड़ी मुश्किल से छूटता है। कैंसर का इलाज है, पांडित्य का इलाज नहीं है। कैंसर का नहीं है तो हो जाएगा कल इलाज, लेकिन पांडित्य का कभी नहीं रहा और कभी नहीं होगा। कैंसर तो शरीर को मार डालता है, पांडित्य आत्मा को सड़ा डालता है। अपना मरम जानै नहीं, औरन समुझावै।
जख्मे-दिल पर दवा तो लग जाए
आंख मेरी.जरा तो लग जाए
खून हो-होके दिल टपकता है
इसके मुंह को मजा तो लग जाए
रक्शे-आलम को यूं ही रहने दो
दिल मिरा एक जां तो लग जाए
क्यों दरे-मैकदा का बंद करें
शेख गुजरे हवा तो लग जाए
उसको दुनिया में ढूंढ ही लेंगे
अपने दिल का पता तो लग जाए
मगर अपने दिल का पता ही नहीं लगता। और परमात्मा को लोग खोजने चल पड़ते हैं, स्वयं को अभी खोजा नहीं।
उसको दुनिया में ढूंढ ही लेंगे
अपने दिल का पता तो लग जाए
खाक ही होके चैन पा जाऊं
मुझको इक बद्दुआ तो लग जाए
तुझको मेरा पता लगाना है
मेरे आलम में आ, तो लग जाए
लाख वह बेवफा सही "सलमा"

उसको मेरी वफा तो लग जाए
सबसे महत्त्वपूर्ण, सबसे प्रथम काम है इस बात को समझना कि मुझे पता नहीं है, कि मैं अज्ञानी हूं, कि मेरा सारा ज्ञान थोथा है, कि मैंने ज्ञान सब उधार लिया है, कि मेरा ज्ञान नगद नहीं है। जिसको अपने अज्ञान का पता है उसने ज्ञान की तरफ पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम उठा लिया।
लेकिन पंडित को यह पता नहीं चल पाता। उसे सब पता है। और उसका पता वैसे
ही है जैसे तोतों को पता होता है। तोते को जो कहो, दोहरा दे। और कभी-कभी तो तोता पंडित से ज्यादा बेहतर होता है।
मैंने सुना है कि एक पंडित एक तोता खरीदने गया। उसने तोते की दुकान पर
कई तोते देखे। एक तोता उसे पसंद आया। बड़ा शानदार तोता था। पर दुकानदार ने कहा: यह जरा मैं बेचना नहीं चाहता। यह मुझे भी बहुत प्यारा है। यह मेरी दुकान की रौनक और मेरी शान है।
पर पंडित ने कहा: जो भी दाम होंगे, दूंगा। मेरा भी मन भा गया है इस तोते पर। इसकी खूबी क्या है?
उसने कहा कि इसकी खूबी यह है कि अगर... इसके बाएं पैर में देखते हो, एक रस्सी बंधी है, धागा पतला सा, इसको.जरा खींच दो तो यह तत्क्षण गायत्री मंत्र बोलता है।
पंडित तो बहुत खुश हुआ कि यह तो बड़ी खूबी की बात है।
और इसके दाएं पैर में जो बंधा है? उसने कहा कि अगर दाएं पैर का खींच दो
तो तत्क्षण नमोकार मंत्र बोलता है। यह तोता जैनियों और हिंदुओं दोनों को प्यारा है।
पंडित ने पूछा: और अगर दोनों धागे एक साथ खींच दो?
तोता बोला: अरे बुद्धू! चारों खाने चित नीचे गिर पडूंगा।
कभी-कभी तोते तुम्हारे पंडितों से ज्यादा समझदार होते हैं। दोनों पैर अगर खींचोगे तो गिर ही पड़ेगा चारों खाने चित। पंडित सोचता था कि शायद दोनों पैर एक साथ खींचने से कुछ समन्वय का सूत्र बोलेगा: "अल्ला ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान!"... कि नमोकार मंत्र और गायत्री मंत्र का मिक्श्चर करके बोलेगा या कुछ होगा।
पांडित्य तोता-रटंत है। शास्त्र से मुक्त होना पड़ता है सत्य की यात्रा में। शब्द से जागना पड़ता है सत्य की यात्रा में।
अपना मरम जानै नहीं औरन समुझावै।
देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई।
देखते हो बगुले को! बिल्कुल गांधीवादी! शुभ्र खादी के वस्त्र! बगुले
को देखते हो! बड़े-बड़े नेताओं के वस्त्र भी थोड़े फीके पड़ जाएं। बगुला बड़ा पुराना गांधीवादी है। सदा से ही शुभ्र खादी में भरोसा करता है। देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई। लेकिन भीतर... ।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन चला जा रहा था एक रास्ते पर। नुमाइश लगी थी। बड़े शुभ्र वस्त्र पहने हुए--झकझक, अभी धुलवाए! बूढ़ा हो गया है, बाल भी सफेद, वस्त्र भी सफेद! बड़ा प्यारा लग रहा था! मगर एक सुंदर स्त्री के पीछे हो लिया। बारबार उसे धक्के देने लगा, कहीं टुहनी मारने लगा, कहीं च्योंटियां निकालने लगा।
आखिर उस स्त्री ने कहा कि भले मानस! कुछ ख्याल तो करो! अपने सफेद कपड़ों
का ख्याल करो! अपने सफेद बालों का तो ख्याल करो।
मुल्ला ने कहा कि बाई, बालों के सफेद होने से क्या होता है, दिल तो अभी
भी काला है। और दिल का ही सवाल है।
पांडित्य बस ऊपर-ऊपर के सफेद वस्त्र हैं, भीतर कुछ भी नहीं है। अहंकार
का मजा है। दूसरे को समझाने में मजा आता है। इसलिए तो दुनिया में सलाह जितनी दी जाती है उतनी और कोई चीज नहीं दी जाती। मुफ्त दी जाती है। सलाह देने वालों का कोई अंत ही नहीं है। और मजा यह भी है कि सलाह इतनी दी जाती है, मगर लेता कोई नहीं। कहते हैं दुनिया में सबसे ज्यादा दी जाने वाली चीज सलाह है और सबसे कम ली जानेवाली चीज भी सलाह है। देने वाले को देने का मजा है; उसको भी फिकर नहीं है कि तुम लो। सच तो यह है, उसने अपनी सलाह के अनुसार खुद भी चलकर कभी देखा नहीं है।

एक मनोवैज्ञानिक के पास एक स्त्री गयी। उसका बेटा उसे परेशान कर रहा था, बहुत ऊधमी था, मारपीट भी करनी पड़ती थी। उसने मनोवैज्ञानिक से कहा कि मैं क्या करूं? मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह बिल्कुल ठीक नहीं है। मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे को मारना बिल्कुल गलत है, अपराध है। फ्रायड कह गए हैं, एडलर, जुंग भी कह गए हैं, सब बड़े मनोवैज्ञानिक कह गए हैं कि बच्चे को मारना उसको जीवनभर के लिए ग्रंथियों से ग्रस्त कर देना है।
उस स्त्री ने कहा: अच्छा! आपके बच्चे हैं या नहीं?
मनोवैज्ञानिक थोड़ा ढीला पड़ा। उसने कहा कि बच्चे हैं।
तो उस स्त्री ने पूछा: ईमान से मुझे कहो, सच-सच कहो। मनोविज्ञान एक तरफ रखो। कभी उनको मारते हो या नहीं?
अब उसने कहा: अब तुम से क्या झूठ बोलें। अगर ऐसी ही बात पूछती हो, तो आत्मरक्षा के लिए मारना ही पड़ता है।
आत्म-रक्षा के लिए!
तुम.जरा ख्याल करना, तुम जो सलाह दूसरे को देते हो, कभी स्वयं भी मानी? अगर दुनिया में लोग अपनी सलाहों पर थोड़ा विचार करें तो दुनिया बड़ी शांत हो जाए। लोग सलाहें न दें, पहले उसका उपयोग करें।
आंख मूंदि मौनी भया मछरी धारि खाई।... देखते हो बगुले को, खड़ा रहता है, बिल्कुल मौन साधे, बिल्कुल ध्यान करता। बुद्ध भी थोड़े-बहुत हिलते होंगे, मगर बगुला नहीं हिलता। और एक टांग पर खड़ा होता है! सबसे पुराना योगी है। एक पैर पर खड़े होना, फिर बिल्कुल बिना डुले, एकटक, शांत, मौन... जरा भी नहीं हिलता, क्योंकि हिले तो पानी हिल जाए, तो मछली भाग जाती है।
तुम.जरा अपने साधु-महात्माओं के पास गौर से जाकर देखना--कहीं तुम्हारी मछली को फांसने के लिए आंख बंद करके तो नहीं बैठे हैं? तुमसे कुछ लेने को तो नहीं हैं? तुमसे कुछ पाने की आकांक्षा तो नहीं हैं? और तुम चकित होओगे कि तुम जिनके पास गए हो वे वैसे ही भिखारी हैं जैसे तुम भिखारी हो। उनकी नजर, जो तुम्हें शांत दिखाई पड़ती है, सिर्प धोखा है। और उनका आसन, जो तुम्हें अडिग दिखाई पड़ता है, केवल धोखा है, पाखंड है। और ऐसा नहीं है कि सभी बगुले हैं, कभी-कभी कोई हंस भी है। मगर बड़ी सावधानी चाहिए। बड़ी सावधानी से चलोगे तो ही सदगुरु को पा सकोगे।
और अकसर ऐसा हो जाता है कि बगुला तुम्हें ज्यादा जंच जाएगा, क्योंकि बगुला तुम्हारे हिसाब से चलता है। वह देख कर चलता है; तुम्हारी क्या-क्या आकांक्षाएं हैं, वह पूरी करता है। तुम अगर कहते हो कि जनेऊ धारण होना चाहिए तो वह जनेऊ धारण करता है। तुम कहते हो माथे पर ऐसा तिलक होना चाहिए, तो वैसा तिलक लगाता है। वह तुम्हारी आकांक्षाएं पूरी करने को बैठा है। वह जानता है तुम्हारी क्या अपेक्षा है। वह पूरी करता है। सदगुरु तुम्हारी कोई अपेक्षा पूरी नहीं करेगा। इसलिए सदगुरु को अकसर तुम पसंद न कर पाओगे। इसको ख्याल में रखना, बगुला तुम्हें अकसर पसंद आ जाएगा, क्योंकि तुमसे मेल खाएगा। वह तुम्हारे लिए ही बैठा हुआ है। तुम्हारे साथ मेल खाने की उसने तैयारी ही कर रखी है। तुम अगर उपवास पसंद करते हो, वह उपवास का ढोंग करेगा। तुम अगर राम-नाम मानते हो तो वह राम-नाम की चदरिया ओढ़े बैठा हुआ है। तुम जो मानते हो, उसने उसका आयोजन किया हुआ है। वह तुम्हीं को फांसने बैठा है, तुम्हें राजी न करेगा तो कैसे?
लेकिन सदगुरु तुम्हें राजी करने नहीं, सदगुरु तुम्हें नाराज करेगा। सदगुरु तुम्हें झकझोरेगा। सदगुरु तुम पर चोट करेगा। तुम तिलमिला उठोगे। तुम नाराज हो जाओगे। तुम शायद कसम खा लोगे कि दुबारा इस जगह नहीं आना है, यह आदमी खतरनाक है। सदगुरु तुम्हारे विचारों से सहमत हो ही नहीं सकता। अगर तुम्हारे विचारों से सहमत हो जाए तो तुम्हारे काम का ही न रहा। सदगुरु के साथ तुम्हें सहमत होना पड़ेगा, सदगुरु तुम्हारे साथ सहमत नहीं होता। मैं एक घर में मेहमान था। जैन घर था। उन्होंने बड़ा मेरा स्वागत किया
और कहा कि आप तो हमें ऐसे हैं जैसे पच्चीसवें तीर्थंकर। मैंने कहाः थोड़ा ठहरो! तीन दिन तुम्हारे घर रह जाऊं, जाते वक्त फिर पूछूंगा। उन्होंने कहाः क्यों? वे थोड़ा चौंके। मैंने कहा: तुम अभी मुझे जानते ही नहीं हो, अभी इतनी जल्दी पच्चीसवां तीर्थंकर मत कहो।

शाम को ही गड़बड़ हो गई। शाम को ही भोजन का समय आया और एक सज्जन मुझसे मिलने आ गए। बूढ़े थे, बड़ी दूर से चल कर आए थे, तो मैं उनसे बातचीत में लग गया। गृहणी ने आकर कहा कि समय हो गया, "अन्थउ" का समय हो गया। सूरज ढला जाता है, आप जल्दी उठिए।
मैंने कहा: सूरज को ढल जाने दो। ये वृद्ध सज्जन बड़ी दूर से आए हैं, इनसे मैं पूरी बात कर लूं।
वह महिला तो चौंक कर खड़ी हो गई। उसने कहा: क्या आप रात्रि-भोजन करते हैं? मैंने कहा: मुझे जब भूख लगती है तब भोजन करता हूं। दिन और रात से भोजन का क्या संबंध? भोजन का संबंध भूख से है।
लेकिन उसने कहा कि महावीर स्वामी तो रात्रि-भोजन नहीं करते थे। मैंने कहा: उनके समय में बिजली नहीं थी, मेरे समय में बिजली है। उनके समय में मैं भी होता तो मैं भी रात भोजन नहीं करता।
जब मैं लौटने लगा--और इस तरह की कई तीन दिनों में घटनाएं घटीं--जब मैंने पूछा तीसरे दिन चलते वक्त कि क्या विचार है, मैं पच्चीसवां तीर्थंकर हूं कि नहीं? उन्होंने कहाः अब हम नहीं कह सकते। रात्रि-भोजन आप करते हैं! तीर्थंकर रात्रि-भोजन कर ही नहीं सकता।
तो मैंने कहाः गया मेरा तीर्थंकर-पद। फिर दुबारा उन्होंने मुझे कभी निमंत्रण नहीं दिया घर में ठहरने का। बात ही खत्म हो गई। मैं किसी काम का ही न रहा। उनसे राजी हो जाता तो मैं पच्चीसवां तीर्थंकर था, लेकिन तब मैं बेकार था। तब वे मेरे गुरु थे, मैं उनका शिष्य था, उनसे मैं राजी हुआ था। जानकर उस दिन मैंने रात्रि-भोजन किया, आमतौर से मैं नहीं करता। उस दिन रात्रि-भोजन करना ही पड़ा, यह मौका मैंने नहीं छोड़ा। यह एक चोट थी जो करनी जरूरी थी।
ऐसे वर्षो में कभी एकाध मौका कोई आता है, जब किसी को चोट करनी हो तो मैं रात्रि भोजन करता हूं, नहीं तो नहीं करता। क्योंकि बिजली होने से ही क्या होता है? सूरज के साथ भूख तृप्त हो जाए, तो शरीर के लिए सबसे बेहतर है। मगर इसकी कोई लकीर का फकीर बनाने की जरूरत नहीं है। इस पर कोई जीवन ढालने की जरूरत नहीं है। ये कोई जीवन के और धर्म के नियम नहीं हैं। ये स्वास्थ्य के नियम हैं, हाइजिन के नियम हैं। इनसे किसी धर्म का कोई लेना- देना नहीं है।
यह बिल्कुल ठीक है कि सूरज के साथ भोजन ले लिया जाए। जब सूरज उष्ण होता है तो शरीर में पचाने की क्षमता होती है। जैसे ही सूरज ढल जाता है, शरीर के पचाने की क्षमता ढल जाती है। मगर यह नियम तो स्वास्थ्य का है। स्वास्थ्य का नियम तोड़ने से पाप नहीं होता। स्वास्थ्य का नियम तोड़ने से थोड़ा-बहुत स्वास्थ्य में नुकसान पहुंचता है। और ऐसा कोई एकाध दिन रात भोजन कर लेने से कोई तुम्हारी पाचन-प्रक्रिया नष्ट नहीं हो जाती है। ऐसा रोज-रोज करते रहो तो होती है।
मगर उस रात मुझे करना ही पड़ा। वह बूढ़ा तो सिर्प बहाना था। उसे मैंने
और बातों में लगाए रखा। थोड़ी रात हो ही जाने दी, क्योंकि वह पच्चीसवां तीर्थंकर होना मुझे नहीं जंच रहा था। मैं किसी का तीर्थंकर नहीं होना चाहता। मैं पिटी-पिटाई किसी परंपरा का हिस्सा नहीं होना चाहता। जब मैं पहला ही हो सकता हूं तो पच्चीसवां क्यों होना? किसको अच्छा लगता है क्यू में खड़ा होना! चौबीस के पीछे खड़े हैं, अभी आगे के तीर्थंकर जब हटेंगे तब नंबर आएगा।
आंखि मूंदि मौनी भया, मछरी धरि खाई।
कपट-कतरनी पेट में, मुख वचन उचारी।
अंतर गति साहेब लखै, उन कहां छिपाई।।
यह जो पंडित है, यह जो दूसरों को समझा रहा है, यह जो समझाने को ही अपने अहंकार की यात्रा बना लिया है, यह अनिवार्य रूप से तुमसे राजी होगा। यह तुम्हें देखकर चलेगा। तुम जो कहोगे, वही करेगा।
राजनीति का एक नियम हैः नेता को सदा अपने अनुयायी के पीछे चलना होता है। अनुयायी जो कहे, नेता उसको और जोर से कहता है। अनुयायी को यह भ्रांति

होती है कि नेता ने पहले नारा दिया। यह बात बिल्कुल गलत है। नेता तो जांचता रहता है कि अनुयायी क्या कहने जा रहा है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठ कर बाजार से निकल रहा था। एकदम तेजी से चला जा रहा था। लोगों ने कहा: नसरुद्दीन, कहां जा रहे हो? उसने कहा: मुझसे मत पूछो, गधे से पूछो। क्योंकि इस गधे के साथ बड़ी हुज्जत होती है। अगर मैं इसको कहीं ले जाना चाहता हूं तो बीच बाजार में अड़ जाता है, इधर-उधर जाने लगता है। उससे बड़ी बदनामी होती है। लोग कहते हैं, तुम्हारा गधा है मुल्ला और तुम्हीं से नहीं मानता। तो मैंने अब एक तरकीब सीख ली है। जब निकलता हूं, लगाम बिल्कुल छोड़ देता हूं। इससे कहता हूं, बेटा चल जहां जाए, बाजार से वहीं मुझे ले चल। मगर बाजार में प्रतिष्ठा तो रहे कि मेरा गधा मुझे मानकर चलता है।
नेता हमेशा अनुयायी के पीछे चलता है। तुम जो कहो, नेता उसी को जोर से चिल्लाता है। नेता देखता रहता है पीछे लौट-लौट कर कि तुम किस तरफ जा रहे हो, जल्दी से उचक कर तुम्हारे आगे हो जाता है। वही होशियार नेता कहलाता है। उसी को राजनीतिज्ञ कहते हैं, जो देख ले समय के पहले, हवा बदलने वाली है। वह नई हवा पर सवार हो जाए। वह पुराना ही रट लगाए रखे तो कोई ज्यादा समझदार नेता नहीं है। जनता ही चली गई, वे अकेले ही रह गए। वे चिल्ला रहे हैं, कोई सुनने वाला नहीं है। चूक गए।
नेता को समय की परख होनी चाहिए। मगर नेता नेता नहीं होता, धोखा है नेता का।
सदगुरु कोई नेता नहीं है, राजनीतिज्ञ नहीं है। सदगुरु तुम क्या मानते हो, उसको कह कर नहीं तुम्हें राजी कर लेता। सदगुरु को जैसा दिखायी पड़ता है वैसा कहता है। फिर तुम्हें चोट लगे तो लगे, तुम नाराज होओ तो होओ, सूली चढ़ाओ तो चढ़ाओ, तुम जहर पिलाओ तो पिलाओ। मगर सदगुरु के साथ ही होओगे तो रूपांतरण है। जो तुम्हारे साथ हो गए हैं, जो साधु-संन्यासी, महात्मा तुम्हारे पीछे चल रहे हैं, उनसे तुम्हारे जीवन में क्या क्रांति हो सकती है? ... कपट-कतरनी पेट में मुख वचन उचारी। कुछ कहता है और भीतर कुछ और है। अंतर गति साहब लखै... लेकिन परमात्मा तो अंतर गति जानता है। तुम्हारे कहे को नहीं सुनेगा, तुम्हारे भीतर की गति को पहचनाता है।
उन कहां छिपाई... उससे छिपाने से क्या होगा? ... आदि अंत की वार्ता सदगुरु से पाओ। और जैसा परम परमात्मा तुम्हारी अंतर-गति जानता है, वैसे ही सदगुरु तुम्हारी अंतर-गति जानता है।... अंतर गति साहब लखै... । "साहब" दोनों के लिए प्रयोग होता है। गुरु तुम्हारे भीतर की गति देख रहा है--तुम क्या कर रहे हो, क्या सोच रहे हो, कहां जा रहे हो, क्या मांग रहे हो और क्या वस्तुतः तुम्हारे लिए हितकर है? उससे तुम छिपा न सकोगे।
आदि अंत की वार्ता सदगुरु से पाओ।... तुम अपने सिद्धांत छोड़ो। तुम अपने शास्त्र छोड़ो। तुम उससे पूछो कि क्या है प्रारंभ, क्या है अंत। तुम उससे सुनो। तुम अपने विचार लेकर उससे मेल बिठाने मत बैठ जाओ, क्योंकि उसमें सब गड़बड़ हो जाएगा। अगर तुम्हारे विचार ही सही होते, तब तो तुम पहुंच ही गए होते। तुम्हारे विचार सही नहीं हैं, इसलिए तो तुम पहुंचे नहीं हो। अब इन्हीं विचारों को लिए अगर तुमने सदगुरु को सुना तो सुना ही नहीं।
कहै कबीर धरमदास से, मूर्ख समझाओ।... कबीर कहते हैं धरमदास सेः जाओ, मूर्खों को समझाओ, कि तुम किनकी मान रहे हो! जो तुम्हारी मान रहे हैं, उनकी तुम मान रहे हो। यह खूब पारस्परिक शडयंत्र चल रहा है! तुम किसकी सुन रहे हो? जिनका धर्म उधार है, जिन्होंने कहीं से पढ़ा है, गुना है, सुना है, जिन्होंने जाना नहीं है, उनके पीछे चल रहे हो? अंधा-अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत! अंधों से बचो।
मेरे मन बस गए साहेब कबीर।
धरमदास कहते हैं: मेरे मन कबीर बस गए।
उस गैरते नाहिद की हर तान पर दीपक,
शोला सा चमक जाए है आवाज तो देखो।

सुनी आवाज, सुनी वाणी, सुना कबीर का शब्द और भीतर कोई शोला-सा चमक गया, दीपक जल गए। सदगुरु अर्थात दीपक राग। उसे सुनकर अगर तुम्हारे भीतर का दीया न जल जाए तो समझना कि तुम पहचाने नहीं।
मेरे मन बस गए साहेब कबीर।
हिंदू के तुम गुरु कहाओ, मुसलमान के पीर।
दोऊ दीन ने झगड़ा मांडेव, पायो नाहिं सरीर।।
और दोनों धर्म लड़ रहे हैं, झगड़ रहे हैं। और दोनों के झगड़े के कारण परमात्मा देह नहीं ले पाता है। परमात्मा उतर नहीं पाता है। दोनों के झगड़े के कारण परमात्मा उतर ही नहीं सकता है। दोनों के झगड़े में परमात्मा कट रहा है। धर्मो के झगड़ों ने परमात्मा को मार डाला है।
मैंने सुना है, एक गुरु एक दोपहर, गर्मी की दोपहर सोया। उसके दो शिष्य थे। दोनों सेवा करना चाहते थे, क्योंकि सुना था सेवा से मेवा मिलता है। तो गुरु ने कहा ठीक है सेवा करो। गुरु तो सो गया, दोनों ने गुरु को आधा-आधा बांट लिया कि बायां पैर में सेवा करूंगा, दायां पैर तू सेवा करना। और गुरु को कुछ पता नहीं है। नींद में गुरु ने करवट ले ली, बाएं पैर पर दायां पैर पड़ गया। जिसका बायां पैर था, उसने दूसरे से कहा: हटा ले अपने पैर को! देख हटा ले! मेरे पैर पर तेरा पैर पड़ जाए, यह बर्दाश्त के बाहर है।
उसने कहा: देख लिए हटाने वाले! देख लिए तेरे जैसे हटाने वाले! हो हिम्मत तो हटा दे! अगर मेरा पैर भी छुआ, आज गरदनें कट जाएंगी।
दोनों ने डंडे उठा लिए। उनकी आवाज शोरगुल सुन कर गुरु की नींद खुल गई। उसने आंख बंद पड़े-पड़े सारा मामला समझा कि मामला क्या है? वह तो डंडे उठा कर पिटाई करनी है--गुरु की पिटाई! क्योंकि "उसका पैर मेरे पैर पर चढ़ गया है। " गुरु ने कहा कि हद हो गई, ये दोनों पैर मेरे हैं। तुमसे कहा किसने? तुमने बांटे कैसे? तुम हो कौन इनकी मालकियत करनेवाले?
यह सारा अस्तित्व उसका है, लेकिन बांट बैठे हैं। हिंदू जाकर मस्जिद में आग लगा देते हैं, मुसलमान जाकर मंदिर की मूर्ति तोड़ देते हैं। किसकी मूर्ति, किसका मंदिर, किसकी मस्जिद?
दोऊ दीन ने झगड़ा मांडेव, पायो नाहिं सरीर।... इनके झगड़े के कारण परमात्मा का अवतरण नहीं हो पाता है। यह पृथ्वी परमात्मा-पूर्ण नहीं हो पाती है।
सील संतोष दया के सागर प्रेम प्रतीत मति धीर।... कहते हैं धरमदास कि कबीर में मुझे सब मिल गया--सील, संतोष, दया के सागर, प्रेम प्रतीत, मति धीर। यहां मैंने प्रेम को साकार पा लिया है। यहां न हिंदू है, न मुसलमान है। यहां भेद नहीं। यहां संप्रदाय नहीं। यहां विभाजन नहीं है अस्तित्व का-- अविभाज्य है।
वेद कितेब मते के आगर... और कबीर को भाषा आती नहीं। कहा है: मसि कागद छुयो नहीं। कभी स्याही और कागज छुआ नहीं। फिर कैसे सब चीजों के सागर हो गए।
वेद कितेब मते के आगर... सारे वेद और सारे कुरान उनसे बोल रहे हैं। यह कैसे घटा? ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय। कबीर ने ढाई अक्षर पढ़े हैं। उन ढाई अक्षरों में जितना है उतना चार वेदों में नहीं, उतना कुरान, बाइबिल में नहीं। असल में कुरान, बाइबिल, वेद, धम्मपद में, गीता में जो बहा है, वह उनसे ही बहा है जिन्होंने ढाई अक्षर जाने। प्रेम को जान लिया तो परमात्मा को जान लिया।
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति धीर।
वेद कितेब मते के आगर, दोऊ दीनन के पीर।।
बड़े बड़े संतन हितकारी अजरा अमर सरीर।
कबीर के पास जो बैठे, जिन्होंने कबीर का अजर-अमर शरीर देखा, जिन्होंने कबीर की इस देह के भीतर छिपे हुए अदेही को पहचाना, जिन्होंने कबीर के आकार में निराकार को पकड़ा, वे बड़े-बड़े संत हो गए। कबीर के पास बैठ-बैठ कर बड़े-बड़े संत हो गए।

धरमदास की विनय गुसाईं... हे साहब! धरमदास कहते हैं: मेरी एक ही विनय है--नाव लगाओ तीर! मेरी नाव को भी किनारे से लगा दो! बहुत तुम्हारा सहारा लेकर पार हो गए, मुझे भी पार करा दो।
शिष्य प्रार्थना ही कर सकता है। शिष्य प्रार्थना है। और जिस दिन प्रार्थना पूरी हो जाती है उस दिन घटना घट जाती है। प्रार्थना जब तक कम है, अधूरी है, आंशिक है, आधी-आधी है, कुनकुनी है, तब तक परिणाम नहीं होता। सदगुरु की नाव उस किनारे ले जा सकती है। उस किनारे परमात्मा है। और वह किनारा दूर नहीं। नाव तैयार है। चढ़ने की हिम्मत चाहिए। दुनिया हंसेगी।... हमरे का करे हांसी लोग। लोग हंसेंगे।
मेरे संन्यासियों से पूछो। लोग उन पर हंसते हैं। लोग उन्हें पागल समझते हैं। लोग समझते हैं सम्मोहित हो गए हैं। फिकर न करना। लोग सदा ही हंसते रहे हैं। यह कोई नई बात नहीं है, पुरानी परंपरा है। लोग हंसने ही चाहिए। अगर लोग हंसेंगे नहीं, तो संन्यास झूठा होगा।
लोग जिन संन्यासियों की पूजा करते हैं, समझना वहां कुछ झूठ है, नहीं
तो लोग पूजा नहीं करते। लोग इतने झूठे हैं कि झूठ की ही पूजा कर सकते हैं। लोग जब हंसें, तभी समझना कि कुछ सत्य की बात होनी शुरू हुई, कोई दीवाना पैदा हुआ, कोई मस्ती उतरनी शुरू हुई।
और नाव पर सवार होने की हिम्मत चाहिए। समर्पण, नाव पर सवार हो जाना है। प्रार्थना करने की हिम्मत चाहिए। कंजूसी मत करना प्रार्थना में।
धरमदास की विनय गुसाईं, नाव लगावो तीर।
शिष्य का अर्थ ही इतना होता है कि जिसने अपनी प्रार्थना निवेदन कर दी
और जो प्रतीक्षा करता है।
जब कली कोई मुस्कराती है
मेरी आंख अश्क से भर आती है
दूर बजती हो जैसे शहनाई
इस तरह उनकी याद आती है
दिल की किश्ती निकल के तूफां से
आके साहिल पै डूब जाती है
जैसे जमना में अक्से-ताजमहल
दिल में यूं उनकी याद आती है
सुबहे-नौ की किरन उफक के करीब
सुर्ख घूंघट में मुस्कराती है।
गुरु की याद से भरो! साहब की याद से भरो! फिर साहब ही उस पार ले जाता है। सच पूछो तो कोई ले जाता नहीं--तुम्हारा याद से भर जाना, तुम्हारा प्रार्थना से परिपूर्ण हो जाना ही, ले जाता है।
नाव तो अपने से चलती है। रामकृष्ण ने कहा है, पतवार भी नहीं चलानी पड़ती, सिर्प पाल खोल देने पड़ते हैं। उसकी हवाएं ले जाती हैं। कोई चलाता नहीं नाव को। मगर नाव में बैठने की हिम्मत चाहिए, क्योंकि यह नाव जाती है अज्ञात की तरफ, अपरिचित की तरफ--जिससे तुम्हारी पहचान नहीं, जिसे तुमने कभी जाना नहीं, जिसे कभी अनुभव नहीं किया। तुम्हारा परिचित तट छूट जाएगा; और अपरिचित तट, जो दूर कुहासे में छिपा है, पता नहीं हो या नहीं हो!
वह जो नहीं हो, उसकी यात्रा पर निकल जाने के साहस का नाम शिष्यत्व है।
और जो भी उतना साहस करता है, संतुष्ट हो जाता है। उस साहस में ही वर्षा हो जाती है।
जुआरी बनो! प्रेम जुआरीपन है।
रहिमन मैं तुरंग चढ़ि चलि हो पावक मांहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन सब कोई निबहत नांहि।।
अंतर दांव लगी रहे धुआं न प्रकटे सोय।
कै जिय जानौ आपनो कै जा सिर बीती होय।।
जे सुलगे ते बुझि गए बुझे ते सुलगे मांहि।
रहिमन दाहे प्रेम के बुझि बुझि के सुलगाहिं।।
यह न रहीम सराहिए लेन-देन की प्रीत।
लेने-देने का हिसाब मत रखना। लेना-देना यानी व्यवसाय।

यह न रहीम सराहिए लेन-देन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए हार होय कि जीत।।
और तब निश्चित ही जीत होती है। हार कभी हुई नहीं। निरपवाद रूप से जीत हुई है। जिसने दांव लगाया है, वह जीता है।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
चौथा प्रवचन

मुझे एक झरोखा बना लो

पहला प्रश्न: परमात्मा की स्मृति प्रारंभ कैसे होती है? मैं परमात्मा को याद कैसे करूं? मुझे तो परमात्मा का कोई भी पता नहीं है।

मधुशालाओं में आओ-जाओ। पियक्कड़ों के पास बैठो। जहां शराब ढलती हो वहां से हटो ही मत। सत्संग करो। एक तो यह उपाय है।
परमात्मा से तो तुम्हारी पहचान नहीं। सच, कैसे याद करोगे? किसकी याद करोगे? करोगे भी तो झूठी होगी। हृदय से नहीं उमगेगी। बुद्धि के द्वारा आरोपित होगी। करनी चाहिए, इसलिए करोगे। प्राणों का उससे संवाद नहीं होगा। उसमें तुम्हारे जीवन की धुन नहीं बजेगी। उधार होगी। दो कौड़ी की होगी। ऐसी याद से परमात्मा नहीं पाया जाता है।
तो पहला, सबसे सुगम और सबसे करीब मार्ग है: किसी ऐसे व्यक्ति की आंख में झांको, जिसने परमात्मा जाना हो। क्योंकि जिसने परमात्मा जाना है, उसकी आंख में नशा सदा के लिए शेष रह जाता है। चांद नहीं दिखाई पड़ता तो झील में झांको। झील में प्रतिबिंब दिखाई पड़ेगा। माना कि प्रतिबिंब चांद नहीं है, लेकिन चांद का है। पि132 र प्रतिबिंब से चांद तक की यात्रा सुगम हो सकेगी। कुछ तो पहचान हो जाएगी। व्यक्ति न देखा, चलो उसकी तस्वीर ही देखी, कुछ तो पहचान हो जाएगी। दर्पण में झलक देखी, उस झलक से ही हृदय तंत्री पर गीत उठना शुरू होता है।
एक अर्थ में सुगम है यह बात, दूसरे अर्थ में कठिन भी। कहां खोजो ऐसे व्यक्ति का? फिर, किसी व्यक्ति में परमात्मा की झलक पड़ी है, यह स्वीकार करना हमारे अहंकार को बड़ा कठिन होता है। परमात्मा की झलक देने वाले व्यक्ति सदा मौजूद रहे हैं, सदा मौजूद हैं। पृथ्वी कभी उनसे खाली नहीं होती। थोड़े होंगे, मगर हैं। और जो खोजता है उसे मिल जाते हैं। प्यासा खोजने निकले तो पानी खोज ही लेता है। भूखा खोजने निकले तो भोजन मिल ही जाता है, देर-अबेर लेकिन नहीं मिलता, ऐसा नहीं है। जिन्होंने भी कभी खोजा है उन्हें मिला है।
लेकिन कठिनाई तुम्हारी तरफ से आती है। तुम्हारा अहंकार यह स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि किसी व्यक्ति में परमात्मा की झलक आई है। तुम्हारा अहंकार कहीं झुकने को राजी नहीं होता। तुम्हारा अहंकार हजार बाधाएं खड़ी करता है। तुम्हारा अहंकार पहाड़ बनकर खड़ा हो जाता है बीच में। और पहाड़ बनने की जरूरत भी नहीं है; आंख में जरा सी कंकड़ी भी पड़ी हो, तो भी आंख बंद हो जाती है। और अहंकार का पहाड़ लिए हम चलते हैं। इस पहाड़ के कारण तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। इस पहाड़ को उतार कर रखो।
अहंकार को उतार कर जो रख दे, उसे देर न लगेगी उस व्यक्ति को खोज लेने में, जहां से झलक शुरू हो जाए, जहां से लालसा का जन्म हो, अभीप्सा पैदा हो जाए। सच तो यह है, अगर तुम अहंकार को उतार कर रख दो तो तुम्हें खोजने न जाना पड़ेगा उस व्यक्ति को, वैसे व्यक्ति तुम्हें खोजते चले जाएंगे। सद्गुरु तुम्हारे द्वार पर दस्तक देगा। दस्तक शायद बहुत बार दी भी होगी, मगर तुम गहरी नींद में सोए हो। अहंकार बड़ी गहरी निद्रा है। कौन सुनता है दस्तक! और सदगुरुओं की दस्तक बड़ी धीमी होती है, बड़ी सूक्ष्म होती है; चिल्लाने की तरह नहीं होती, कानाफूसी की तरह होती है। बड़ी माधुर्य से भरी होती है! नाजुक होती है। स्त्रैण होती है!
अहंकार उतारकर रखो। परमात्मा की फिकर छोड़ दो। मैं तुम्हारी बात समझा, तुम्हारा प्रश्न समझा, तुम्हारे प्रश्न की संगति समझा। ठीक पूछा है तुमने। सार्थक पूछा है तुमने। यह प्रश्न सभी का प्रश्न है। करें तो कैसे उसकी याद करें? पुकारना भी चाहें तो किस दिशा में पुकारें? किसका नाम लेकर पुकारें? वह है भी? हमें भरोसा भी नहीं आता। अनुभव न हो तो भरोसा कैसे आए? इस दुष्ट-चक्र को तोड़ें कैसे? अनुभव हो तो भरोसा आए। और अनुभवी कहते हैं कि भरोसा हो जाए तो अनुभव हो। अब बड़ी अड़चन खड़ी हो जाती है। बिना अनुभव के

भरोसा नहीं आता। बिना भरोसे के अनुभव नहीं होता। करें क्या? आदमी बड़ी दुविधा में पड़ जाता है।
तुम्हारा द्वंद्व समझा। तुम्हारी दुविधा समझ में आई। तुम परमात्मा
की फिक्र ही मत करो। तुम सिर्प अपने अहंकार को उतारकर रखो। यह तो कर सकते हो! अहंकार से तुम्हारी भलीभांति पहचान है। अहंकार के ढंग से तुम जीए हो। और अहंकार से तुमने दुख के अतिरिक्त कुछ पाया नहीं। नरकों का ही निर्माण हुआ है तुम्हारे अहंकार से। इसे छोड़ने से कुछ खोएगा नहीं--दुख खो जाएंगे, नरक मिट जाएंगे।
अहंकार से तुमने कभी कोई सुख जाना है? घाव की तरह अहंकार दुखता है। हर छोटी-छोटी बात दुखाती है। जितना अहंकार होता है उतनी जीवन में पीड़ा होती है। इस पीड़ा के स्रोत को हटा दो। और कोई सदगुरु तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे देगा। या कि तुम अनायास, जिसमें कभी सदगुरु नहीं देखा था, उसमें सदगुरु को पहचान लोगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम्हारे पड़ोस में ही मौजूद था और तुमने नहीं सुना। तुम रोज रास्ते पर मिलते-जुलते थे, जयराम जी भी होती थी, और फिर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा।
देखने की आंख चाहिए न! अहंकार वैसी आंख को जन्मने नहीं देता। अहंकार बड़ा पर्दा है।
एक तो उपाय यह है। अगर यह कठिन मालूम पड़े कि अहंकार भी उतरना कहीं आसान तो नहीं, सद्गुरु को देखना आसान तो नहीं, फिर एक और उपाय है। वह उपाय हैः प्रकृति में तलाशो। झरनों में, वृक्षों में, हवाओं में, चांद-तारों में! परमात्मा को मत तलाशों, क्योंकि परमात्मा का तो पता नहीं--सिर्प तलाशों! अगर है तो मिल जाएगा।
आदमी ने एक दुनिया बना ली है। जो आदमी की बनाई हुई है, उसमें तुम परमात्मा तलाशोगे, नहीं मिलेगा। मंदिरों में मत तलाशना। अगर पाना ही हो तो मंदिरों में मत तलाशना, मस्जिदों में मत तलाशना, गिरजे-गुरुद्वारों में मत तलाशना, क्योंकि वे आदमी के बनाए हुए हैं। आदमी के बनाए हुए में परमात्मा का हस्ताक्षर नहीं है। वे मूर्तियां आदमी ने गढ़ी हैं--तुम जैसे आदमियों ने गढ़ी हैं, जिन्हें खुद भी परमात्मा का कोई पता नहीं है। जिन्हें पता है वे परमात्मा की मूर्ति नहीं गढ़ सकते, क्योंकि वह अमूर्त है। जिन्हें पता है वे उसका मंदिर नहीं बना सकते, क्योंकि यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। अब और क्या मंदिर? जिन्हें पता है वे तीर्थ निर्मित नहीं करते। प्रत्येक कण तीर्थ है। जहां तुम हो वहां तीर्थ है, क्योंकि हर तरफ परमात्मा ने ही तुम्ह घेरा है। तुम उससे ही घिरे हो।
जैसे मछली सागर के जल से घिरी है, ऐसे तुम परमात्मा से घिरे हो। और मछली तो शायद कभी दुर्घटनावश किसी मछुए के जाल में फंस जाए तो जल के बाहर भी निकल आती है, मगर तुम तो उसके जल के बाहर निकल ही नहीं सकते। उसके अतिरिक्त कोई स्थान नहीं है जहां तुम जा सको। वही है! सब तरफ, सब दिशाओं में! नीचे-ऊपर, आगे-पीछे! उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
परमात्मा अस्तित्व का नाम है।
मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम वृक्षों में परमात्मा को खोजो, क्योंकि फिर तो भूल हो जाएगी। वृक्षों में तुम क्या खोजोगे? अगर तुम कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हुए तो वृक्ष में तुम चाहोगे कि बांसुरी मिल जाए कृष्ण की। वह नहीं मिलेगी।... कि मोरमुकुट बांधे हुए कृष्ण का दर्शन हो जाए वृक्ष में। वह नहीं होगा। उसके लिए तो मंदिर जाना होगा। और मंदिर झूठे हैं। सब मंदिर झूठे हैं। अस्तित्व के मंदिर के अतिरिक्त और सब मंदिर झूठे हैं। और प्रकृति के वेद के अतिरिक्त सब वेद आदमी के निर्मित हैं। तुम प्रकृति में तलाशो। मैं नहीं कहता परमात्मा तलाशो--सिर्फ तलाशो! अगर राख में अंगार होगा, तुम राख में सिर्प तलाशने जाओगे, अंगार मिल जाएगा। और अंगार है। जीवंत है यह सारा जगत। इसकी जीवन्तता ही तो परमात्मा है। तुम जरा गौर से गहरे झांको।
कुछ ऐसी ही फजा, ऐसी ही शब, ऐसा ही मंजर था
न जाने क्या मुझे भा गया तारों की झिलमिल में

रात तारों की झिलमिल को देखो! उसके साथ झिलमिलाओ। हिलो-मिलो! तुम भी तारे हो जाओ तारों के साथ। पानी की लहरों में झांको। लहर बन जाओ। हवा का झोंका आया, हवा हो जाओ। हरे वृक्ष के पास खड़े होकर हरे हो जाओ। फूल के पास फूल हो जाओ। ऐसे तल्लीन हो जाओ प्रकृति में और तुम परमात्मा को पा लोगे, क्योंकि वह सब तरफ मौजूद है। फिर तो तुम्हें याद अपने आप आने लगेगी। फिर तो तुम्हारी पहचान गहराने लगेगी।
मैं आह करके अपने ख्यालों में खो गया
कुछ जिक्र था बहारो-शबे माहताब का
फिर तो कोई चांद की बात करेगा और तुम्हें मालिक की याद आ जाएगी। कोई सूरज की बात करेगा और तुम्हें साहब की याद आ जाएगी। कोई बच्चा हंसेगा--और तुम्हें उसकी खिलखिलाहट सुनाई पड़ जाएगी। किसी की आंखों में प्रेम के और आनंद के आंसू बहेंगे--और उन आंसूओं में तुम्हें दर्पण मिल जाएगा, उसकी झलक पकड़ में आ जाएगी।
सहर के झुटपुटे में जब परिंदे चहचहाते हैं
मनाजिर सुबह के जिस दम रसीले गीत गाते हैं
बहारों के जिलौमें दिलरुबा नग्मे लुटाते हैं
हंसी गुचे चमन में सुबह दम जब मुस्कराते हैं
तुम ऐसे में मुझे बेसाख्ता क्यों याद आते हो? शफक जब झांकती है दामनों से कोहसारों के फजा में थरथराते हैं तराने आबशारों के
हवा में तैरने लगते हैं नक्शे जूए-बारों के बयाबां जब बदल लेते हैं चोले सब्जा जारों के तुम ऐसे में मुझे बेसाख्ता क्यों याद आते हो? परी कौसे-कुजा की आस्मां पर जब संवरती है अदाए-दिलबरी से रंग के सांचो में ढलती है सबा के मुश्कबू झोंकों से निकहत टूट पड़ती है बहार आकर चमन की जब गुलों से मांग भरती है तुम ऐसे में मुझे बेसाख्ता क्यों याद आते हो? कनारे आब का नज्जारा जब मदहोश होता है दरख्शां रेत का मैदान जब जरपोश होता है। कंवल आबे-रवां की जीनते-आगोश होता है
हंसी लहरों के दिल में जज्बए पुरजोश होता है तुम ऐसे में मुझे बेसाख्ता क्यों याद आते हो?
खुनक रातों की भीनी-भीनी जब महकार होती है
सितारों की नजर जब वाकिफे-इसरार होती है
किसी शाइर की चश्मे-रूह जब बेदार होती है
मेरे पिंदार के तारों में जब झंकार होती है
तुम ऐसे में मुझे बेसाख्ता क्यों याद आते हो?
और अनिवार्यरूपेण उसकी याद आएगी। उसकी स्मृति से तुम भर जाओगे। बेसाख्ता! विवश! तुम चाहोगे भी कि याद न आए तो भी याद आएगी।
आदमी प्रकृति से टूटा है, इसलिए परमात्मा से टूटा है। और आदमी ने धीरे-धीरे अपनी ही बनावट की दुनिया खड़ी कर ली है। हमारे सीमेंट-पत्थरों के मकान, आकाश को छूती हुई गगनचुंबी मंजिलें, हमारे कोलतार और सीमेंट के रास्ते, हमारे बड़े-बड़े कारखाने, हमारी मशीनें--हमने एक झूठी दुनिया निर्मित कर ली है, आदमी की अपनी। हमने प्रकृति को बाहर कर दिया है। हम प्रकृति के बाहर हो गए हैं। इसलिए अड़चन आ गई है।
नास्तिकों ने नहीं परमात्मा को तुमसे छीना है। कौन नास्तिक की सामर्थ्य है कि किसी से परमात्मा छीन ले? तुमने ही प्रकृति से अपने नाते तोड़ लिए हैं। जिस मात्रा में तुम्हारे प्रकृति से नाते टूट गए हैं, उसी मात्रा में तुम परमात्मा से भी टूट गए हो। तुम्हारी जड़ें उखड़ गई हैं।
मैं समझा तुम्हारी बात। मैं तुम्हारी पीड़ा समझता हूं। तुम्हारे प्रश्न का दर्द मेरे ख्याल में है। ये दो उपाय हैं। सुगमतम मैं तुमसे कहता हूं यह है। क्योंकि वृक्षों में झांकने में फिर अड़चन होगी। वृक्ष कुछ

बोलते नहीं। वृक्ष चुप हैं। उनमें झांकने के लिए बड़ी संवेदनशीलता चाहिए। सदगुरु बोलता है, उसका रोआं-रोआं बोलता है। अगर तुम जरा सा अहंकार हटा कर रख दो तो ज्योति से ज्योति जल उठे। उसका दीया तुम्हारे बुझे दीये को जला दे।
इसलिए पहले तो मैंने यह सुझाया कि सदगुरु खोजो। अगर यह संभव ही न हो-- बहुत लोगों के लिए संभव नहीं रहा है--तो उनके लिए फिर एक दूसरा उपाय हैः प्रकृति में तलाशो।
लेकिन तुमसे मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मंदिरों में और मस्जिदों में तलाशो। वहां तलाशने वाले लोग खाली हाथ रह गए हैं। और मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं कि शास्त्रों में तलाशो, क्योंकि शास्त्रों में शब्द हैं और शब्दों के साथ तुम खेल करोगे, तुम पंडित हो जाओगे, प्रज्ञा को उपलब्ध न हो सकोगे। और शास्त्र तुम्हें ज्ञान से भर देंगे, प्रेम से नहीं। और प्रेम से मिलता है परमात्मा, ज्ञान से नहीं।

दूसरा प्रश्नः अपने भीतर झांकने पर मुझे लगा है कि मेरी अनेक वासनाएं रुग्ण हैं, बीमार हैं, विशेषकर नकारात्मक वासनाएं। तो क्या वासनाएं भी स्वस्थ और रूग्ण होती हैं? और क्या बताने की कृपा करेंगे कि स्वस्थ और रुग्ण वासनाओं में फर्क क्या है?

वासना स्वाभाविक है। प्रकृति की भेंट है। परमात्मा का दान है। वासना अपने आप में बिल्कुल स्वस्थ है। वासना के बिना जी ही न सकोगे, एक क्षण न जी सकोगे।
सच तो यह है, संसार के पुराने से पुराने शास्त्र एक बात कहते हैंः परमात्मा अकेला था। उसके मन में वासना जगी कि मैं दो होऊं, इससे संसार पैदा हुआ। परमात्मा में भी वासना जगी कि मैं दो होऊं, कि मैं अनेक होऊं, कि मैं फैलूं, विस्तीर्ण होऊं, तो संसार पैदा हुआ! हम परमात्मा की ही वासना के हिस्से हैं, उसकी ही वासना की किरणें हैं।
इसलिए पहली बात: वासना स्वाभाविक है। वासना प्राकृतिक है, नैसर्गिक है। वासना बुरी नहीं है, पाप नहीं है।
जिन्होंने तुमसे कहा वासना पाप है, वासना बुरी है, वासना से बचो, वासना से हटो, वासना से भागो, वासना को दबाओ, काटो, मारो--उन्होंने वासना को रुग्ण कर दिया। दबाई गई वासना रुग्ण हो जाती है। जो भी दबाया जाएगा वही जहर हो जाता है। दबने से मिटता तो नहीं, भीतर-भीतर सरक जाता है। उसकी सहज प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, क्योंकि तुम उसे प्रकट नहीं होने देते। वह फिर असहज रूप से प्रकट होने लगता है। और असहज रूप से जब वासना प्रकट होती है, तो विकृति, तो रोग, तो रुग्ण। तो तुमने एक सुंदर वस्तु को कुरूप कर डाला।
वासना तो परमात्मा की दी हुई है, विकृति तुम्हारे महात्माओं की दी हुई है। महात्माओं से सावधान! अपने परमात्मा को महात्माओं से बचाओं। तुम्हारे महात्मा परमात्मा के एकदम विपरीत मालूम होते हैं। और तुम्हें यह समझ में आ जाए कि तुम्हारे महात्मा परमात्मा के विपरीत है; तुम्हें यह दिखाई पड़ जाए कि जो परमात्मा ने दिया है स्वाभाविक, सरल, जो जीवन का आधार है, उसे नष्ट करने में लग हैं--तो तुम्हारे जीवन से रुग्णता समाप्त हो जाएगी, वासना का रोग विलीन हो जाएगा, विकृति विदा हो जाएगी।
समझो। कामवासना है। स्वाभाविक है। तुमने पैदा नहीं की है। जन्म के साथ मिली है। जीवन का अंग है। अनिवार्य अंग है। तुम्हारे मां और पिता को कामवासना न होती तो तुम न होते। इसलिए शास्त्र ठीक ही कहते हैं कि परमात्मा में वासना उठी होगी, तभी संसार हुआ। तुम्हारे मां और पिता में वासना न उठती तो तुम न होते। तुममें वासना उठेगी तो तुम्हारे बच्चे होंगे।
यह जो जीवन कीशृंखला चल रही है, यह जो जीवन का सातत्य है, यह जो जीवन की सरिता बह रही है, इसके भीतर जल वासना का है।

वासना बुरी नहीं हो सकती, क्योंकि जीवन बुरा नहीं है। जीवन प्यारा है, अति सुंदर है। लेकिन वासना को दबाने में लग जाओ--और विकृति शुरू हो जाती है। वासना के ऊपर चढ़ कर बैठ जाओ, उसकी छाती पर बैठ जाओ, उसको प्रकट न होने दो, उसको दबाओ, काटो, छांटो, कि बस फिर विकृति शुरू होती है। फिर अड़चन शुरू होती है। फिर वासना ऐसे ढंग से प्रकट होने लगती है, जो कि स्वाभाविक नहीं है।
जैसे एक सुंदर स्त्री को देख कर तुम्हारे मन में अहोभाव का पैदा होना जरा भी अशोभन नहीं है। सुंदर फूल को देख कर तुम्हारे मन में अगर यह भाव उठता है सुंदर है, तो कोई पाप तो नहीं है। चांद को देख कर सुंदर है, तो पाप तो नहीं है। तो मनुष्य के साथ ही भेद क्यों करते हो? सुंदर स्त्री, सुंदर पुरुष को देखकर सौंदर्य का बोध होगा। होना चाहिए। अगर तुममें जरा भी बुद्धिमत्ता है तो होगा। अगर बिल्कुल जड़बुद्धि हो तो नहीं होगा।
इसलिए सौंदर्य के बोध में तो कुछ बुराई नहीं है, लेकिन तत्क्षण तुम्हारे भीतर घबड़ाहट पैदा होती है कि पाप हो रहा है; मैंने इस स्त्री को सुंदर माना, यह पाप हो गया, कि मैंने कोई अपराध कर लिया। अब तुम इस भाव को दबाते हो। तुम इस स्त्री की तरफ देखना चाहते हो और नहीं देखते। अब विकृति पैदा हो रही है। अब तुम और बहाने से देखते हो, किसी और चीज को देखने के बहाने से देखते हो। तुम किस को धोखा दे रहे हो? या तुम भीड़ में उस स्त्री को धक्का मार देते हो। यह विकृति है। या तुम बाजार से गंदी पत्रिकाएं खरीद लाते हो, उनमें नग्न स्त्रियों के चित्र देखते हो। यह विकृति है।
और यह विकृति बहुत भिन्न नहीं है--जो तुम्हारे ऋषि-मुनियों को होती रही। तुमने कथाएं पढ़ी हैं न, कि ऋषि ने बहुत साधना की और साधना के अंत में अप्सराएं आ गईं आकाश से। उर्वशी आ गई और उसके चारों तरफ नाचने लगी। पोरनोग्रैफी नई नहीं है। ऋषि-मुनियों को उसका अनुभव होता रहा है। वह सब तरह की अश्लील भाव-भंगिमाएं करने लगी ऋषि-मुनियों के पास।
अब किस अप्सरा को पड़ी है ऋषि-मुनि के पीछे पड़ने की! ऋषि-मुनियों के पास, बेचारों के पास है भी क्या, कि अप्सराएं उनको जंगल में तलाशती जाएं और नग्न होकर उनके आस-पास नाचें! सच तो यह है कि ऋषि-मुनि अगर अप्सराओं के घर भी दरवाजे पर जाकर खड़े रहते तो क्यू में उनको जगह न मिलती। वहां पहले से ही लोग राजा-महाराजा वहां खड़े होते। ऋषि-मुनियों को कौन घुसने देता? मगर कहानियां कहती हैं कि ऋषि-मुनि अपने जंगल में बैठे हैं--आंख बंद किए, शरीर को जला कर, गला कर, भूखे-प्यासे, व्रत-उपवास किए हुए--और अप्सराएं उनकी तलाश में आती हैं।
ये अप्सराएं मानसिक हैं। ये उनके मन की दबी हुई वासनाएं हैं। ये कहीं हैं नहीं। ये बाहर नहीं है। यह प्रक्षेपण है। यह स्वप्न है। उन्होंने इतनी बुरी तरह से वासना को दबाया है कि वासना दबते-दबते इतनी प्रगाढ़ हो गई है कि वे खुली आंख सपने देखने लगे हैं, और कुछ नहीं। हैल्यूसिनेशन है, संभ्रम है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, किसी आदमी को ज्यादा दिन तक भूखा रखा जाए तो उसे भोजन दिखाई पड़ने लगता है। और किसी आदमी को वासना से बहुत दिन तक दूर रखा जाए तो उसकी वासना का जो भी विषय हो वह दिखाई पड़ने लगता है। भ्रम पैदा होने लगता है। बाहर तो नहीं है, वह भीतर से ही बाहर प्रक्षेपित कर लेता है। ये ऋषि-मुनियों के भीतर से आई हुई घटनाएं हैं, बाहर से इनका कोई संबंध नहीं है। कोई इंद्र नहीं भेज रहा है। कहीं कोई द्वंद्व नहीं है और न कहीं उर्वशी है। सब इंद्र और सब उर्वशियां मनुष्य के मन के भीतर का जाल हैं। तो तुम अगर कभी यह सोचते हो कि जंगल में बैठने से उर्वशी आएगी, भूल से
मत जाना, कोई उर्वशी नहीं आती। नहीं तो कई ऋषि-मुनि इसी में हो गए हों, बैठे हैं जंगल में जाकर कि अब उर्वशी आती होगी, अब उर्वशी आती होगी! उर्वशी तुम पैदा करते हो, दमन से पैदा होती है। यह विकृति है। इस स्थिति को मैं मानसिक विकार कहता हूं। यह कोई उपलब्धि नहीं है। यह विक्षिप्तता है। यह है वासना की रुग्ण दशा।
तुम्हारे भीतर जो स्वाभाविक है, उसको सहज स्वीकार करो। और सहज स्वीकार से क्रांति घटती है। जल्दी ही तुम वासना के पार चले जाओगे। मैं यह

नहीं कह रहा हूं कि वासना में सदा रहोगे। लेकिन पार जाने का उपाय ही यही है कि उसका सहज स्वीकार कर लो। दबाना मत, अन्यथा कभी पार न जाओगे। उर्वशियां आती ही रहेंगी।
तुमने देखा कि चूंकि पुरुषों ने ही ये शास्त्र लिखे हैं, इसलिए उर्वशियां आती हैं। स्त्रियां अगर शास्त्र लिखतीं और स्त्रियां अगर साधनाएं करती जंगलों में, पहाड़ों में, तुम क्या समझते हो उर्वशी आती? स्वयं इंद्र आते। तब उनकी कहानियों में उर्वशी इंद्र को भेजती, क्योंकि उर्वशी से काम नहीं चल सकता था। जो तुम्हारी वासना का विषय है वही आएगा। उन्होंने अप्सराएं नहीं देखी होती, उन्होंने देखे होते कि चलो हिंदकेसरी चले आ रहे हैं, कि विश्व-विजेता मोहम्मद अली चले आ रहे हैं। स्त्रियां देखती उस तरह के सपने कि कोई अभिनेता चला आ रहा है। कल्पना है तुम्हारी। मनुष्य वासना के पार निश्चित जा सकता है, जाता है। जाना चाहिए। मगर वासना से लड़ कर कोई वासना के पार नहीं जाता। जिससे तुम लड़ोगे उसी में उलझे रह जाओगे। दुश्मनी सोच-समझ लेना, क्योंकि जिससे तुम दुश्मनी लोग उसी जैसे हो जाओगे। यह राज की बात समझो। मित्रता तो तुम किसी से भी करो तो चल जाएगी, मगर दुश्मनी बहुत सोच-समझ कर लेना, क्योंकि दुश्मन से हमें लड़ना पड़ता है। और जिससे हमें लड़ना पड़ता है, हमें उसी की तकनीक, उसी के उपाय करने पड़ते हैं।
हिटलर से लड़ते वक्त चर्चिल को हिटलर जैसा ही हो जाना पड़ा। इसके सिवाए कोई उपाय न था। जो धोखा-धड़ी हिटलर कर रहा था वहीं चर्चिल को करनी पड़ी।
हिटलर तो हार गया, लेकिन हिटलरवाद नहीं हारा। हिटलरवाद जारी है। जो-जो हिटलर से लड़े वही हिटलर जैसे हो गए। जीत गए, मगर जब तक जीते तब तक हिटलर उनकी छाती पर सवार हो गया।
जिससे तुम लड़ते हो, स्वभावतः उसके जैसा ही तुम्हें हो जाना पड़ेगा। लड़ना है तो उसके रीति-रिवाज पहचानने होंगे, उसके ढंग-ढौल पहचानने होंगे, उसकी कुंजिया पकड़नी होंगी, उसके दांव-पेंच सीखने होंगे। उसी में तो तुम उस जैसे हो जाओगे।
दुश्मन बड़ा सोच कर चुनना। वासना को अगर दुश्मन बनाया तो तुम धीरे- धीरे वासना के दलदल में ही पड़ जाओगे, उसी में सड़ जाओगे।
वासना दुश्मन नहीं है। वासना प्रभु का दान है। इससे शुरू करो। इसे स्वीकार करो। इसको अहोभाव से, आनंद-भाव से अंगीकार करो। और इसको कितना सुंदर बना सकते हो, बनाओ। इससे लड़ो मत। इसको सजाओ। इसेशृंगार दो। इसे सुंदर बनाओ। इसको और संवेदनशील बनाओ। अभी तुम्हें स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है, अपनी वासना को इतना संवेदनशील बनाओ कि स्त्री के सौंदर्य में तुम्हें एक दिन परमात्मा का सौंदर्य दिखाई पड़ जाए। अगर चांद-तारों में दिखता है तो स्त्री में भी दिखाई पड़ेगा। पड़ना ही चाहिए। अगर चांद तारों में है तो स्त्री में क्यों न होगा? स्त्री और पुरुष तो इस जगत की श्रेष्ठतम अभिव्यक्तियां है। अगर फूलों में है--गूंगे फूलों में--तो बोलते हुए मनुष्यों में न होगा? अगर पत्थर पहाड़ों में है--जड़ पत्थर-पहाड़ों में--तो चैतन्य मनुष्य में न होगा... संवेदनशील बनाओ।
वासना से भगो मत। वासना से डरो मत। वासना को निखारो, शुद्ध करो। यही मेरी पूरी प्रक्रिया है जो मैं यहां तुम्हें दे रहा हूं। वासना को शुद्ध करो, निखारो। वासना को प्रार्थनापूर्ण करो। वासना को ध्यान बनाओ। और धीरे-धीरे तुम चमत्कृत हो जाओगे कि वासना ही तुम्हें वहां ले आई, जहां तुम जाना चाहते थे वासना से लड़ कर और नहीं जा सकते थे।
प्रेम करो। प्रेम से बचो मत। गहरा प्रेम करो! इतना गहरा प्रेम करो कि जिससे तुम प्रेम करो, वहीं तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। इतना गहरा प्रेम करो! तुम्हारा प्रेम अगर तुम्हारे प्रेम-पात्र को परमात्मा न बना सके तो प्रेम ही नहीं है, तो कहीं कुछ कमी रह गई। तुम्हारे महात्मा कहते हैं कि प्रेम के कारण तुम परमात्मा को नहीं पा रहे हो। मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम की कमी के कारण तुम परमात्मा को नहीं पा रहे हो। इस भेद को समझ लेना। इसलिए अगर तुम्हारे महात्मा मुझसे नाराज हैं तो बिल्कुल स्वाभाविक है। अगर मैं सही हूं तो वे सब नाराज होने ही चाहिए।

मैं कह रहा हूंः प्रेम तुममें कम है, इसलिए महात्मा तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारी वासना बड़ी अधूरी है, अपंग है। तुम्हारी वासना को पंख नहीं है। पंख दो! तुम्हारी वासना को उड़ना सिखाओ! तुम्हारी वासना जमीन पर सरक रही है। मैं कहता हूंः वासना को आकाश में उड़ना सिखाओ।
परमात्मा अगर वासना के द्वारा संसार में उतरा है, तो तुम वासना की ही सीढ़ी पर चढ़ कर परमात्मा तक पहुंचोगे, क्योंकि जिस सीढ़ी से उतरा जाता है उसी से चढ़ा जाता है। फिर तुम्हें दोहरा कर कह दूं। पुराने शास्त्र कहते हैंः परमात्मा में वासना जगी कि मैं अनेक होऊं। अकेला-अकेला थक गया होगा। तुम भीड़ से थक गए हो, वह अकेला-अकेला थक गया था। वह उतरा जगत में। तुम भीड़ से थक गए हो, अब तुम वापिस एकांत पाना चाहते हो, मोक्ष पाना चाहते हो, कैवल्य पाना चाहते हो, ध्यान-समाधि पाना चाहते हो। चढ़ो उसी सीढ़ी से, जिससे परमात्मा उतरा।
इसलिए मैं कहता हूं: संभोग और समाधि एक ही सीढ़ी के दो हिस्से हैं; दिशा का भेद है, और कोई भेद नहीं है। परमात्मा उतरा है समाधि से संभोग की तरफ, तो संसार बना है, नहीं तो संसार नहीं बन सकता था। तुम चलों संभोग से समाधि की तरफ, तो तुम संसार से मुक्त हो जाओगे। उसी सीढ़ी से चलना होगा, और कोई सीढ़ी नहीं है।
तुम जिस रास्ते से चलकर मुझ तक आए हो, घर जाते वक्त उसी रास्ते से लौटोगे न! तुम यह तो नहीं कहोगे कि इस रास्ते से तो हम अपने घर से दूर गए थे, इसी रास्ते पर हम कैसे अपने घर के पास जाएं, यह तो बड़ा तर्क विपरीत मालूम पड़ता है। नहीं; तुम जानते हो कि तर्क विपरीत नहीं है। जो रास्ता यहां तक लाया है, वहीं तुम्हें घर वापस ले जाएगा; सिर्फ दिशा बदल जाएगी, चेहरा बदल जाएगा। अभी यहां आते वक्त मेरी तरफ मुंह था, जाते वक्त मेरी तरफ पीठ हो जाएगी। आते वक्त घर की तरफ पीठ थी, जाते वक्त घर की तरफ मुंह हो जाएगा। बस इतना सा रूपांतरण। विरोध नहीं, वैमनस्य नहीं, दमन नहीं, जबर्दस्ती नहीं, हिंसा नहीं।
तुमने पूछा है कि "अपने भीतर कभी झांकने पर मुझ लगा है कि मेरी अनेक वासनाएं रुग्ण हैं।"
देखना, उनका विश्लेषण करना। जो-जो वासनाएं रुग्ण हों, समझ लेना। खोज करोगे, अनुभव में भी आ जाएगा। वे वे ही वासनाएं हैं, जिन-जिनको तुमने दबाया है या जिन-जिनको तुम्ह सिखाया गया है दबाओ। वे रुग्ण हो गई हैं। उन्हें अभिव्यक्ति का मौका नहीं मिला। ऊर्जा भीतर पड़ी-पड़ी सड़ गई है। ऊर्जा को बहने दो।
झरने रुक जाते हैं तो सड़ जाते हैं। नदी ठहर जाती है तो गंदी हो जाती है। स्वच्छता के लिए नीर बहता रहना चाहिए। बहते नीर बनो! पानी बहता रहे। बहाव को अवरुद्ध मत करो। नहीं तो तुम बीमार वासनाओं से घिर जाओगे। और बीमार वासनाएं हों तो आत्मा स्वस्थ नहीं हो सकती। वे बीमार वासनाएं आत्मा के गले में पत्थर की चट्टानों की तरह लटकी रहेंगी; आत्मा उठ नहीं सकती आकाश में। वे बीमार वासनाएं घाव की तरह होंगी। उनसे मवाद रिसती रहेगी। पूछा तुमनेः "तो क्या वासनाएं भी स्वस्थ और रुग्ण होती हैं?"
निश्चित ही। स्वीकृत वासना, अहोभाव से अंगीकृत वासना स्वस्थ होती है। अस्वीकृत वासना, इनकार की गई वासना, अस्वस्थ हो जाती है। और जिसे तुम इनकार करते हो, वह बदला मांगती है, वह प्रतिरोध करती है और प्रतिशोध चाहती है। जितना तुम दबाते हो उतना ही वह धक्के मारती है कि मैं प्रकट होकर रहूंगी।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिवाए रुग्ण वासनाओं की गठरी के और कुछ नहीं रह जाते। अगर उनके मन की तुम जांच पड़ताल करो तो बड़े चकित हो जाओगे, वहां सिर्प रुग्ण वासनाएं हैं। अगर तुम उनके सपनों में झांको तो बहुत भयभीत हो जाओगे; उससे बेहतर सपने तुम देखते हो। इस बात का तुम्हें शायद पता न हो कि साधारण जन गंदे सपने नहीं देखते, या बहुत कम देखते हैं; लेकिन जिनको तुम साधु पुरुष कहते हो, उनके सब सपने गंदे होते हैं। होंगे ही, क्योंकि दिन भर जिसको दबाया है वह रात में बदला लेता है। इसलिए तो साधु-संन्यासी सोने से डरने लगते हैं। नींद कम

करने लगते हैं--पांच घंटे सोओ, चार घंटे सोओ, तीन घंटे। जो साधु जितना कम सोता है, लोग कहते हैं: "हां" यह साधु! दो ही घंटे सोता है। " मगर यह नींद से डरता क्यों है? इतनी घबड़ाहट क्या है? नींद जैसी सुखद प्रक्रिया, नींद जैसी शांत प्रक्रिया! पतंजलि ने तो कहा हैः समाधि और सुषुप्ति एक जैसे हैं। गहरी नींद समाधि जैसी ही है। जरा सा फर्क है। इतना सा फर्क है। कि समाधि में आदमी जागा होता है और नींद में सोया होता है। मगर दोनों दशाएं एक जैसी हैं, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में मन शांत हो गया होता है, विचार विलीन हो गए होते हैं, निर्विचार दशा आ गई होती है।
सुषुप्ति में भी तुम परमात्मा में गिर जाते हो। रोज गिरते हो। इसलिए
तो गहरी नींद के बाद सुबह ताजापन लगता है, पुनरुज्जीवन मालूम होता है। फिर लौट आए ताजे होकर! किसी ऊर्जा के स्रोत में नहाकर लौट आए! कुछ पता नहीं कहां गए, कैसे गए, मगर गए। होश नहीं था, लेकिन गए।
सुषुप्ति है: सोए-सोए परमात्मा में प्रवेश। और समाधि हैः जागे-जागे परमात्मा में प्रवेश। प्रवेश तो एक ही है। द्वार एक ही है। सिर्फ इतना ही फर्क हैः एक में नींद है, एक में जागरण है। लेकिन तुम्हारे साधु-संन्यासी बड़े घबड़ाते हैं नींद से, बड़े उपाय करते रहते हैं कि किस तरह न सोएं। उनका भय क्या है? उनका भय बेचारों का यही है। वे दया-योग्य हैं। जो सो भी नहीं सकते शांति से, उन पर दया न करो तो और क्या करो। उनकी कठिनाई यही है कि दिन भर जो-जो दबाया है, समझो कि दिन भर उपवास किया है, तो वे रात-डरते हैं, कि जब वे सोएंगे तब राजमहल में निमंत्रण मिलने ही वाला है। वे बच नहीं सकेंगे। राजा भोज देने ही वाला है सपने में। और वहां सभी तरह के मिष्ठान होंगे और सब तरह के भोजन होंगे। दिन भर सोचा वही है, लड़े उसी से है।
तुम भी उपवास करके देखो। जिस दिन उपवास करते हो, उस दिन दिन भर भोजन करना पड़ता है। बारबार भोजन की याद आती है। राह से गुजरते हो, उस दिन फिर जूते की दुकानें नहीं दिखतीं बाजार में, कपड़े की दुकानें नहीं दिखती उस दिन बाजार में--उस दिन रेस्त्रां और होटल, बस यही-यही दिखाई पड़ते हैं। सब तरफ से भोजन की गंध तैरती आती है--ये पकौड़े चले आ रहे हैं! ये भजिए चले आ रहे हैं! सारा जगत भोजन बन जाता है। जिसे देखते हो वही याद दिलाता है, भोजन की याद दिलाता है। रोज इसी रास्ते से निकलते थे, मगर तब यह नहीं हुआ था। रोज भोजन किए निकले थे, कुछ दबाया नहीं गया था, कोई रुग्ण नहीं था।
अगर दिन भर तुम लड़े कि कहीं स्त्री का प्रभाव न पड़ जाए... । और साधु किस तरह से लड़ते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है! स्त्री दिखाई न पड़ जाए, तो आंख झुकाकर चलो। जहां स्त्री बैठी हो उस जगह पर मत बैठ जाना! स्त्री जा भी चुकी है, मगर उसकी जगह पर मत बैठ जाना! वह जगह ही खतरनाक हो गई। तो साधु अपना आसन लेकर साथ चलते हैं कि कहीं कोई किसी के आसन पर बैठना पड़े, पता नहीं कोई स्त्री पहले बैठी रही हो, फिर! कहीं रोग लग जाए! अपना आसन साथ रखते हैं। अपनी पिच्छी साथ रखते हैं, जहां बैठते हैं वहां पहले सफाई कर ली, फिर बैठ गए--देख कर कि अब कोई खतरा नहीं है। ऐसे डरे हुए लोग दया-योग्य हैं। इनका जीवन जीवन नहीं है। जिसको मनोवैज्ञानिक कहते हैं--पैरानाया, भयाक्रांत! कंप रहे हैं। चौबीस घंटे कंप रहे हैं कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए!
और जिससे तुम डरे हो उसकी याद बनी रहती है। वह सब जगह से दिखाई पड़ता है। कोई हिप्पी चला जा रहा है--लंबे बाल। तुम्हारे मुनि महाराज को स्त्री दिखाई पड़ेगी, पुरुष नहीं दिखाई पड़ सकता। ऐसा मैं अनुभव से कह रहा हूं। मैं एक साधु के साथ बैठा था गंगा के किनारे। बचपन के मेरे मित्र थे। फिर मैं असाधु हो गया, वे साधु हो गए। दोनों बैठे बात कर रहे थे उनकी आंखें बारबार तट पर कोई स्नान करने आया उसकी तरफ जाने लगी। मैंने भी देखा कि कौन है। देखा कि एक स्त्री स्नान कर रही है। मैंने उनसे कहा कि यह बात आगे नहीं चल सकेगी। तुम्हारा ध्यान बारबार स्त्री की तरफ जा रहा है। तुम जाकर उसे देख ही आओ।
पीठ थी हमारी तरफ। वे गए, वहां से सिर ठोंकते लौटे कि स्त्री है ही नहीं वह, सिर्प बाल लंबे हैं, कोई पुरुष है। मगर पीछे से लंबे बाल... । वासना दबाई हो जिसने, उसके लिए बड़ी कठिनाइयां हैं। उसे कोई छोटी-मोटी चीज भी प्रतीक बन सकती है।

फ्रायड ने इस संबंध में बड़ी खोज की है। जिन लोगों ने अपनी वासना को दबा लिया है, उन्हें स्त्रियां तो दूर, स्त्री की साड़ी लटकी हो, उसमें भी रस होता है। जिसने पुरुष के प्रति अपनी वासना दबा ली हो, उसे हर पुरुष की चीज में रस हो जाता है। यह विकृति है। यह रुग्ण-चित दशा है।
तो फिर डरोगे रात सोने में। क्योंकि सोए कि अड़चन हुई। सोए कि घबड़ाहट आई। जागने में तो किसी तरह अपने को सम्हाले रहे, सम्हाल-सम्हाल चलते रहे। नींद में कौन सम्हालेगा? नींद में तो सब संभालना बंद हो जाएगा। और जो दिन भर दबा रहा है वह एकदम से प्रकट होगा।
इसलिए तो मनसविद कहते हैं कि तुम्हें जानने के लिए तुम्हें सपनों का विश्लेषण करना पड़ता है। तुम इतने झूठे हो कि तुम्हारे जागरण का तो कोई भरोसा ही नहीं है। तुम्हारा जागरण तो बिल्कुल प्रपंच है। तुम मनोवैज्ञानिक के पास जाओ तो वह कहता है अपने सपने लाओ। रोज-रोज तुमसे कहता है अपने सपने लाओ, सपने लिखवाओ, सपने बताओ, सपने की डायरी बनाओ। तुम सोचते भी हो कि भई तुम्हें जो पूछना हो, मुझसे ही पूछ लो, सपने को क्या देखना? मनोवैज्ञानिक कहता है कि सपने से ही पता चलेगा कि तुम असलियत में क्या हो। जागने में तो तुम धोखा दे सकते हो। और तुम इतने कुशल हो गए हो धोखा देने में कि दूसरे को हीं नहीं दे सकते, अपने को भी दे सकते हो। कुछ लोग तो इतने कुशल हो गए हैं धोखा देने में कि सपने तक में थोड़ा सा धोखा कर जाते हैं। जैसे तुम्हें अपने बाप की हत्या करनी है, ऐसा तुम्हारे दिल में लगा रहता है कि बाप ने बहुत सताया है, कि सता रहा है, कि बूढ़ा अभी भी जा नहीं रहा है, कब जाएगा कब नहीं जाएगा। ऐसे तुम्हारे मन में विचार चल रहे हैं। मगर पिता पिता है और संस्कृति कहती है, सयता कहती है--आदर दो। इसलिए सब संस्कृतियां, सब सयताएं कहती हैं कि पिता को आदर दो, क्योंकि खतरा है, नहीं तो बाप-बेटे के बीच झगड़ा होने वाला है। बेटे बाप को मार डालेंगे। इसको बचाने के लिए ही सारी सयताएं... ।
यह बड़े मजे की बात है। अगर तुम सयताओं के नियम पहचानने की कोशिश करो
तो उनसे राज पता चलता है कि मामला क्या है। इतनी दुनिया की सयताएं हैं-- अलग-अलग ढ़ंग, अलग-अलग व्यवस्था, भोजन अलग, कपड़े अलग--मगर एक बात में सब राजी हैं कि बेटा बाप का सम्मान करें। अनुभव है सभी को कि अगर सम्मान ठोक-ठोक कर बिठाया नहीं गया, तो एक न एक दिन अपमान होने वाला है। बेटे के द्वारा बाप का। इसलिए उसको बिठा ही देना है ठोक-ठोक कर। फिर वह इतना गहरा बैठ जाता है संस्कार... मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सपने में भी तुम अपने बाप की हत्या नहीं करते, अपने चाचा की कर देते हो, क्योंकि वह पिता जैसे मालूम होते हैं। अब चाचा का कोई हाथ ही नहीं। चाचा की कोई हत्या करना ही नहीं चाहता, तुम ख्याल रखना। चाचा से तो दोस्ती होती है। चाचा से तो सबकी दोस्ती होती है। चाचा तो प्यारा आदमी होता है। बाप जैसा होता है और बाप जैसा नहीं होता। मित्रता होती है। न आज्ञा देता है, न जबरदस्ती स्कूल भेजता है; बल्कि मौका पड़ जाए तो कुछ पैसे भी दे देता है, स्कूल से निकालना हो तो छुट्टी भी निकलवा देता है। चाचा तो भिन्न तरह का आदमी होता है। चाचा को कौन मारना चाहता है! लेकिन सपने में, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, पिता की हत्या करने का भाव सपने तक में आदमी रोक लेता है कि यह बात तो हो ही नहीं सकती। चाचा को मार देता है। चाचा पिता जैसा लगता है। वह प्रतीक बन जाता है।
तुम ख्याल करना। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सपने तक में धोखा शुरू हो गया है। आदमी का धोखा इतना गहरा चला गया है! लेकिन सपनों में फिर भी तुम्हारी प्रामाणिकता का पता चल जाता है। अगर तुम्हारे तीन महीने तक के सारे सपने तुम खोल कर रख दो तो तुम्हारी आत्म-कथा हो जाएगी--असली आत्म-कथा! असली आत्म-कथा उन बातों की नहीं है जो तुम जागकर सोचते हो--उन बातों की है, जो तुम सोकर सोचते हो। क्योंकि उससे पता चलता है तुम कहां हो। और बड़ी उलटी बात होगी। ऊपर-ऊपर तुम कुछ थे, भीतर-भीतर तुम कुछ थे। ऊपर-ऊपर तुम इतने शांत थे और भीतर तुमने हत्याएं कर दीं। ऊपर-ऊपर तुम इतने भले मालूम होते थे और भीतर-भीतर तुमने क्या नहीं था जो नहीं किया? बड़े से बड़े अपराधी जो करते हैं, वह हर आदमी अपने सपने में कर लेता है। सपने में तृप्ति मिल जाती है।

रुग्ण मत कर लेना अपनी वासनाओं को, अन्यथा तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। स्वीकार करो। परमात्मा ने जो भी दिया है उसके पीछे राज होगा, उसके पीछे कुछ छिपी होगी संपदा। इनकार मत करो। तुम परमात्मा की जिस चीज को भी इनकार करोगे, उसके माध्यम से परमात्मा का ही इनकार होगा। इसलिए भक्त कहते हैंः सब स्वीकार कर लो। और अहोभाव से स्वीकार कर लो--उदासी से नहीं, विवशता से नहीं, मजबूरी से नहीं। और स्वीकार के बाद सरलता से जो तुम्हें मिला है उसको गहराओ। उसको गहराते-गहराते ही तुम पाओगे कि जहां केवल कंकड़-पत्थर और धूल-धवांस मालूम होती थी, गड्ढा खोदते-खोदते जल के स्रोत मिल गए हैं, कुएं बन गए हैं।
हर वासना से प्रार्थना तक पहुंचने का उपाय है। खुदाई ठीक से करो। मैं तुम्हें जीवन-स्वीकार का धर्म दे रहा हूं। इसमें इनकार नहीं, जरा भी इनकार नहीं। मैं तुम्हें प्रामाणिक मनुष्य होने की कला सिखा रहा हूं। तुम्हें अब तक अप्रमाणिक होने की बातें बताई गई हैं। अब तक तुम्हें जबरदस्ती अपने को कुछ बना लेने की चेष्टा सिखाई गई है। मैं तुमसे कह रहा हूंः सहजता से तुम हो जाओगे जो तुम होना चाहते हो। सहजता धर्म होना चाहिए। सहज-योग ही एकमात्र योग होना चाहिए।
और अगर तुमने इस संसार को स्वीकार न किया तो इस संसार के बनाने वाले
को कैसे स्वीकार कर सकोगे?
वासना का इनकार नास्तिकता है। वासना का स्वीकार आस्तिकता है।
जीस्त को पुरबहार क्या करते
दिल ही था सोगवार क्या करते
आपके गम की बात है वर्ना
खुद को हम बेकरार क्या करते
आपका ऐतबार ही कब था
आपका इंतजार क्या करते
थी हमें क्या बहार से उम्मीद हम उम्मीदे-बहार क्या करते जीस्त पर कब हमें भरोसा था आप पर एतबार क्या करते
थे न जिनको अजीज खारे-चमन
वह भला गुल से प्यार क्या करते
"शमीयः" जब न शब ही रास आई
सुबह का इंतजार क्या करते
थोड़ा समझो।
आपका ऐतबार ही कब था
आपका इंतजार क्या करते
जीवन को ही स्वीकार न करोगे तो जीवन के पीछे छिपे हुए को कैसे स्वीकार करोगे? घूंघट से ही भाग खड़े होओगे तो घूंघट के पीछे जो चेहरा छिपा है, जो प्यारा छिपा है, उसे उघाड़ कैसे पाओगे? यह प्रकृति उसका घूंघट है। वासना प्रार्थना का घूंघट है। यह सब रूप-रंग उस अरूप और अरंग का घूंघट है। यह सब आकार उस निराकार पर घूंघट है। और बड़े प्यारे हैं। घूंघट भी बड़ा प्यारा है, क्योंकि उसके चेहरे पर है। उसके चेहरे पर होने का कारण सब प्यारा है। इस जगत में ऐसा कुछ है ही नहीं जो प्यारा न हो। और अगर ऐसा कुछ मालूम पड़े कि प्यारा नहीं है तो फिर से सोचना, सोच-सोच कर फिर-फिर सोचना: कहीं तुम अपनी भूल पाओगे। होनी ही चाहिए तुम्हारी भूल, क्योंकि तुम परमात्मा से ज्यादा बुद्धिमान नहीं हो सकते।
जिससे यह जगत का प्रवाह आ रहा है, तुम उसमें सुधार करने की सोच रहे हो? तुम्हारी चेष्टा यह है कि तुम परमात्मा को भी सलाह देना चाहते हो कि ऐसा होना चाहिए था। वासना नहीं होनी चाहिए थी। जरा सोचो तो कि एक बच्चा पैदा हो जिसमें वासना न हो, उसमें क्या होगा? उसमें रीढ़ होगी? वह बच्चा नपुंसक होगा। उसमें जीवन की ऊर्जा होगी, उल्लास होगा? उसमें फूल लग सकते हैं? वह जी सकता है? वह श्वास ही क्यों लेगा? उसमें श्वास ही क्यों चलेगी? तुम उसे धक्का मार दोगे तो उसमें क्रोध नहीं उठेगा। वह बिल्कुल गोबर-गणेश होगा।

तुम उसको जैसा बना दोगे वैसा ही बन जाएगा। लीप-पोत दोगे, लीप-पुत जाएगा।
उसमें मेधा नहीं होगी, प्रतिभा नहीं होगी। उसमें बगावत नहीं होगी, क्रांति नहीं होगी, आग नहीं होगी। उसमें कोई किरण नहीं होगी, अंधकार होगा।
वह बिल्कुल मुर्दा होगा, मिट्टी का लौंदा होगा। उसमें आत्मा नहीं होगी।
वासना नहीं होगी तो आत्मा नहीं होगी। वह कभी किसी स्त्री को प्रेम नहीं करेगा। वह अपनी मां को भी प्रेम नहीं कर सकता, ख्याल रखना।
बच्चे का मां से प्रेम संसार में पहली स्त्री से प्रेम है। और मनसविद कहते हैं कि आदमी अपने बुढ़ापे तक भी अपनी मां के प्रेम से मुक्त नहीं हो पाता। वह अपनी पत्नी में भी अपनी मां ही खोजता है। बहुत गहरे में मां की खोज चलती है। इसलिए तो पुरुष स्त्रियों के स्तन में इतने उत्सुक होते हैं--वह मां की खोज है, और कुछ नहीं। स्तन यानी मां का प्रतीक है। वह बच्चे ने पहली दफा जाना था स्त्री का रूप। पहली दफा स्तन ही जाने थे उसने; स्त्री तो बाद में जानी, स्तन पहले जाने। उसकी पहली पहचान दुनिया में स्तन से हुई थी। स्तन ही भोजन थे। स्तन ही उसके लिए प्रेम थ। स्तन ही उसकी सांत्वना थे। रोता था तो स्तन ही, उसके लिए धीरज थे। स्तन ही उसकी सारी आकांक्षा थे। स्तन ही उसकी सारी वासना थे। स्तन ही उसका सब सार थे, सब कुछ थे।
इसलिए ही तो पुरुष स्तन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। चित्रकार स्तनों के चित्र बनाते हैं। मूर्तिकार बड़े-बड़े स्तन गढ़ते हैं, जैसे होते भी नहीं। खजुराहो और कोणार्क स्तनों के मंदिर हैं--स्तन ही स्तन! कवि स्तन की कविताएं लिखते हैं। फिर उपन्यास हों कि फिल्में हों कि पुराण हों, स्तन की ही चर्चा चलती है। स्त्री से स्तन अलग कर लो और स्त्री में से कुछ खो जाता है, बिल्कुल खो जाता है। क्योंकि वह स्त्री मां बनने के योग्य नहीं रह जाती है। कोई पुरुष उस स्त्री में उत्सुक नहीं होता। स्त्रियां भी इस रहस्य को जानती हैं, तो वे स्तनों को उभारने के उपाय करती हैं। ढंग-ढंग की चोलियां तैयार होती हैं सारी दुनिया में; स्तन कैसे बड़े दिखाई पड़े, इसकी चेष्टा जारी रहती है। झूठे स्तन बनाए जाते हैं। स्तन जवान दिखाई पड़ते रहें।
यह सब क्यों चलता है? इसके पीछे गौर से देखो। इसके पीछे यही है कि बच्चे का पहला अनुभव स्तन से हुआ था। स्तन उसका जगत का सबसे प्राथमिक अनुभव है और सबसे बहुमूल्य अनुभव है। फिर मां को पहचाना। फिर मां से पहचान उसकी, पहली स्त्री की पहचान थी। यही उसके गहरे में बैठ गई। मनोवैज्ञानिक कहते हैं: इसलिए कोई पति अपनी पत्नी से कभी पूरा प्रसन्न नहीं हो पाता, क्योंकि कोई पत्नी कभी उसकी मां की प्रतिछवि नहीं हो पाती, कुछ न कुछ कमी रह जाती है। और कोई पत्नी उसकी मां बनने को आई भी नहीं है। पति भी कह नहीं सकता कि मैं तुझमें मां खोज रहा हूं, क्योंकि उसके अहंकार के विपरीत जाता है। वह मालिक, कैसे कह सकता है कि मैं मां खोज रहा हूं, लेकिन खोज मां रहा है। बूढ़े से बूढ़ा आदमी मां की तलाश कर रहा है।
और ठीक इसके विपरीत स्त्री बेटे की तलाश कर रही है। उपनिषदों में एक अदभुत उल्लेख है। ऋषि उन दिनों आशीर्वाद देते थे, जब कोई नव विवाहित जोड़ा उनके पास आता था तो वे जोड़े को आशीर्वाद देते थे कि तुम्हारे दस पुत्र हों और अंततः तुम्हारा पति तुम्हारा ग्यारहवां पुत्र हो जाए। यह बड़ी अदभुत बात है। अंततः उस दिन विवाह पूरा सफल हुआ, जिस दिन स्त्री मां हो जाएगी और पति फिर बेटा हो जाएगा, उस दिन विवाह सफल हुआ। फिर यात्रा पूरी हो गई, वर्तुल पूरा हो गया।
जिस बच्चे में वासना नहीं होगी उसमें जीवन की ऊर्जा नहीं होगी। वह अपनी मां को प्रेम नहीं कर सकेगा। वह किसी स्त्री को प्रेम नहीं कर सकेगा। वह किसी पुरुष को प्रेम नहीं कर सकेगा। वह कोई मैत्री नहीं बना सकेगा। उसे फूलों में कोई सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ेगा, चांद-तारों में कोई रोशनी नहीं दिखाई पड़ेगी। उसे इस जगत में कोई काव्य दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि सब काव्य वासना से ही उमगता है।
तुम क्या समझते हो फूल तुम्हारे लिए उगे हैं वृक्षों में कि तुम तोड़ो
और मंदिरों में चढ़ाओ? फूल तुम्हारे लिए नहीं उगे है, तुम्हारे मंदिरों में चढ़ने के लिए नहीं उगे हैं। फूल वृक्ष की वासना का हिस्सा है। फूलों के

द्वारा वृक्ष तितलियों को लुभा रहा है, मुधमक्खियों को लुभा रहा है। फूलों में वृक्ष ने अपने वीर्य-अणु रखे हुए हैं। मधुमक्खियों में, तितलियों में, उनके पंखों में, उनके पैरों में लग कर वे वीर्य-अणु मादा तक पहुंच जाएंगे। फूल तरकीब है। फूल जाल है।
तुम सोचते हो कोयल जब कुहू-कुहू पुकारती है, तो कोई भजन गा रही है, कि कोई अजान कर रही है? वह अपने प्यारे को पुकार रही है। और ध्यान रखना, जो कुहू-कुहू कर रही है कोयल, वह नर कोयल है। वह स्त्री नहीं है। स्त्री तो चुपचाप बैठी है, जैसी सभी स्त्रियां चुपचाप बैठती हैं। वह पुरुष है जो चेष्टा कर रहा है।
तुमने देखा, वह जो मोर नाचता है, वह पुरुष है! वह जो पंख फैलाता है, वह पुरुष है। स्त्री के पास प्रकृति ने सुंदर पंख नहीं दिए हैं, जरूरत नहीं है। उसका स्त्रैण होना पर्याप्त है। जब दुनिया ज्यादा प्राकृतिक थी तो स्त्रियां गहने नहीं पहनती थी, पुरुष गहने पहनते थे। वही उचित है। वही होना चाहिए। यह जो तुम हिप्पी इत्यादि को देखते हो न, घंटी इत्यादि बांधे हुए, और कुछ... यह ज्यादा ठीक बात है। क्योंकि सारी प्रकृति इसके पक्ष में है कि पुरुष...
मोर सुंदर है। फूल सुंदर हैं। कोयल... नर कोयल की आवाज मधुर है। क्यों?
वह स्त्री को लुभाता है।
स्त्री तो स्त्री होने के कारण पर्याप्त है, कुछ और चाहिए नहीं; पुरुष पर्याप्त नहीं है। वह लुभाने जाएगा। तुम देखते हो, मुर्गा कैसी छाती फैला कर चलता है, कलगी उठा कर चलता है! वह जब तुम भी किसी के प्रेम-व्रेम में पड़ जाते हो, छाती न भी हो तो कोट में रूई भरवा लेते हो, मगर... कलगी वगैरह न हो तो साफा बांध लेते हो, उसमें कलगी निकाल लेते हो, बने मुर्गा, चले!
यह सारा जगत वासना का अदभुत खेल है। बच्चा अगर वासना के बिना पैदा होगा, जीएगा ही नहीं, मर जाएगा। और जिसको जगत से प्रेम पैदा नहीं होगा-- स्त्री का पुरुष से, पुरुष का स्त्री से--उसको परमात्मा की याद भी नहीं आएगी। क्योंकि प्रेम जब इस जगत में हम करते हैं और हारते हैं, तब परमात्मा की याद आती है।
जरा समझने की कोशिश करना। इस जगत का कोई प्रेम जीत नहीं सकता, क्योंकि कोई प्रेम तुम्हारी प्रेम की आकांक्षा को तृप्त नहीं कर सकता। आकांक्षा बहुत बड़ी है--सागरों को पी जाए, इतनी है! और यहां बूदें तरसने से मिलती है, वे भी नहीं मिलतीं। यहां हर बूंद जो तुम्हारे कंठ में पड़ती है, वस्तुतः तुम्हारी प्यास को और जगा जाती है, घटाती नहीं। तो यहां तुम प्रेम में पड़ोगे और हारोगे।
मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम में जरूर पड़ना। हारोगे नहीं तो तुम परमात्मा को कभी याद नहीं करोगे। हारे का हरिनाम! जब हार जाओगे, बुरी तरह हारोगे, यहां सब तरफ टटोलोगे और न पाओगे और हर जगह से विषाद हाथ लगेगा, असफलता हाथ लगेगी, जहां-जहां जाओगे वहीं से खाली हाथ लौटोगे--तब एक दिन असहाय अवस्था में आकाश की तरफ आंखें उठा कर पुकारोगे कि अब बहुत हो गया। अब तो तू ही मिले तो कुछ हो!
जब स्त्री और पुरुष के प्रेम से तृप्ति नहीं होगी और अतृप्ति बढ़ती जाएगी, तो ही परमात्मा की तलाश शुरू होती है। जिस बच्चे में वासना नहीं, वह परमात्मा को खोजने नहीं जाएगा। जिस बच्चे में वासना नहीं, वह परमात्मा से अलग हुआ ही नहीं अभी, खोजने का सवाल ही नहीं है। वासना उठी परमात्मा में तो उसने अनेक होने का विस्तार किया अपना।
आपका ऐतबार ही कब था
आपका इंतजार क्या करते
थी हमें क्या बहार से उम्मीद
हम उम्मीदे-बहार क्या करते
जीस्त पर कब हमें भरोसा था
आप पर ऐतबार क्या करते।
जिंदगी पर ही जिसको भरोसा नहीं है, वह जिंदगी को बनाने वाले पर भरोसा नहीं कर सकता।

जीस्त पर कब हमें भरोसा था
आप पर ऐतबार क्या करते।
जिसको कांटों से प्रेम नहीं है, वह फूलों से भी प्रेम नहीं कर सकेगा।
और जिसे फूलों से प्रेम है उसे कांटों से भी प्रेम होगा। क्योंकि वह समझेगा कि कांटे और फूल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
थे न जिनको अजीज खारे-चमन
वह भला गुल से प्यार क्या करते
"शमीयः" जब न शब ही रास आई
सुबह का इंतजार क्या करते
जिनको रात ही पसंद न पड़ी, वे सुबह का क्या खाक इंतजार करेंगे? रात पसंद पड़े, रात प्यारी हो, तो सुबह की आशा जगती है, कि सुबह और भी प्यारी होगी, कि सुबह और विराट होगी, कि जब रात ही इतनी सुंदर है तो सुबह का क्या!
देखते हो, धनी धरमदास ने कहा कि जब अपने गुरु में झांक कर देखा, जब कबीर में झांक कर देखा और इतना प्यारा दर्शन किया तब समझ में आया कि जब गुरु इतना प्यारा है, तो जब उस परम-पुरुष से मिलन होगा, तो कैसा होगा! फिर वाणी कह नहीं पाती। फिर शब्द अधूरे पड़ जाते हैं। फिर मौन ही उसे कह सकता है।
जो भी परमात्मा ने दिया है--बेशर्त कह रहा हूं, जो भी परमात्मा ने दिया है--उसे स्वीकार करो। उसे अंगीकार करो। उसके साथ चलो। और तुम्हारी वासना स्वस्थ रहेगी। और स्वस्थ वासना प्रार्थना तक पहुंचा देती है, अनिवार्यरूपेण पहुंचा देती है।
विकृत वासना--भटक गई। न घर के रहे, न घाट के। धोबी के गधे हो जाते हैं लोग--न घर के, न घाट के। संसार भी गया और निर्वाण का कुछ पता नहीं चलता। इसी मुसीबत में पड़े हुए तुम्हारे साधु-संन्यासियों को मैं देखता हूं। वे निश्चित दया के पात्र हैं। उनके हाथ से सब चला गया। माया भी गई और राम मिले नहीं। माया मिली न राम, दुविधा में दोऊ गए। दुविधा पैदा हो गई उनके मन में --यह चुनना है, यह छोड़ना है, यह पकड़ना है, यह हटाना है। दुविधा पैदा हो गई, द्वंद्व पैदा हो गया।
द्वंद्व वासना को रुग्ण कर देता है।
निर्द्वंद्व जीयो! अभय से जीयो! परमात्मा तुम्हारा रक्षक है, इतना भय क्या? इतना घबड़ाना क्या? उसने दिया है तो ठीक ही दिया होगा। इस आस्था से जीयो। और यही आस्था पहुंचाती है।
तीसरा प्रश्न: कुछ दिन से मुझे आपका प्रवचन सुनने का और पुस्तक पढ़ने
का अवसर मिला है। यह मेरा सौभाग्य है। परमात्मा के संबंध में इसके पहले मुझे बिल्कुल खिचड़ी जैसा ज्ञान था। इतनी सरलता और सदविचार से समझाने वाला सदगुरु कभी नहीं मिला था। अब मुझे विश्वास भी हो गया है कि अगर आपका आशीर्वाद मिल जाए तो परमात्मा को जान भी सकूंगा। इस संबंध में एक छोटी सी बात मुझे खटकी हुई है, प्रकाश डालने की अनुकंपा करें। अगर हमारी गलती के बिना कोई हमें नुकसान पहुंचाने आए तो उस समय हमें क्या करना उचित होगा? क्योंकि आपका संन्यास और संसार एक है। और संसार में ऐसे कई बार मौके आते हैं।
पहली तो बातः या तो ज्ञान होता है या नहीं होता, खिचड़ी ज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होती। वह अज्ञान को ही छिपाने का ढंग है। लोग कहते हैंः कुछ-कुछ हमें आता है। कुछ-कुछ आ ही नहीं सकता। या तो पूरा होता है या नहीं होता। अभी कुछ दिन पहले एक वृद्ध सज्जन आए, कोई तीस साल से संन्यासी हैं। कहने लगेः बहुत दिन से आना चाहता था। तीस साल तक हिमालय में रहा हूं। कुछ-कुछ जाना, और आगे बढ़ने की इच्छा है।
मैंने उनसे कहा कि कुछ-कुछ क्या जाना, वह मुझे बता दो, क्योंकि मैंने
यह कभी सुना ही नहीं है कि परमात्मा को कोई थोड़ा-थोड़ा जान सकता है, कि अभी एक छंटाक जाना, फिर दो छंटाक जाना, कि एक सेर जान लिया; या नये मापदंड में एक किलो जान लिया। परमात्मा जाना जाता है तो बस पूरा जाना जाता है, उसके खंड नहीं होते।

लेकिन आदमी का अहंकार बड़ा होशियार है। वह यह नहीं मानना चाहता कि मैं अज्ञानी हूं। वह कहता हैः कुछ-कुछ। इतनी तो, वह कहता है, मुझे सुविधा दो।
मैंने उनसे कहा अगर कुछ-कुछ जानते हो तो जो-जो जाना वह मुझे बता दो।
उसको अपन फिर बात न करें, उसको छोड़ दें। फिर आगे की बात हो।
वे आंख बंद करके बैठ गए। थोड़ा सोचा होगा। बात समझ में उन्हें पड़ी होगी। ईमानदार आदमी थे। आंख खोल कर कहा कि मुझे क्षमा करें! नहीं, कुछ भी नहीं जाना। ये तीस साल ऐसे ही गए।
ज्ञान की यात्रा में पहला कदम यही है कि तुम ठीक से समझ लो कि तुम्हें पता है या नहीं है। अगर पता नहीं है तो इस बात को गहरे उतर जाने दो कि मुझे पता नहीं है। इसी भाव से कि मुझे पता नहीं है, यात्रा शुरू हो सकती है। अगर तुम्हें थोड़ा भी पता है कि थोड़ा-थोड़ा खिचड़ी ज्ञान है, वह ज्ञान नहीं है। वह कचरा है।
ज्ञान की खिचड़ी होती ही नहीं, अज्ञान की ही खिचड़ी होती है। खिचड़ी यानी अज्ञान। उसको ज्ञान कहो ही मत। नहीं तो तुम उसको बचा कर रख लोगे। तुम कहोगेः है; माना कि खिचड़ी है, मगर है तो! ज्ञान है, छांट लेंगे। गेहूं-गेहूं अलग कर लेंगे, दाल-दाल अलग कर देंगे। छाटां जा सकता है।
नहीं, ज्ञान है ही नहीं। ज्ञान, और खिचड़ी! ज्ञान के क्षण में तो सारे द्वंद्व सारी अनेकता, सारे विचार, सब समाप्त हो जाते हैं। न दाल बचती है न गेहूं। खिचड़ी बनाओगे किसकी? दो ही नहीं बचते, मिलाओगे किसको?
अच्छा हुआ, इतना भी समझ में आया खिचड़ी ज्ञान है। यह भी अच्छा हुआ। चलो कुछ तो हुआ। अब एक कदम और आगे उठाओ कि खिचड़ी ज्ञान, ज्ञान नहीं है। नहीं तो खतरा है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, यह तुम्हारी खिचड़ी में पड़ेगा। और यह भी खराब हो जाएगा। तुम्हारी खिचड़ी जीत जाएगी।
सदा ध्यान रखना कि श्रेष्ठ में एक तरह की नाजुकता होती है। अगर पत्थर
और फूल को टकरा दोगे तो फूल मर जाएगा, पत्थर नहीं मरेगा। और पत्थर निकृष्ट है और फूल श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ में एक नाजुकता होती है। निकृष्ट में नाजुकता नहीं होती, कठोरता होती है। इसलिए अपने पात्र को इस खिचड़ी से खाली कर लो। तुम कहते होः ज्ञान की खिचड़ी। मैं कहता हूंः अज्ञान की खिचड़ी। मगर इस खिचड़ी से अपने पात्र को खाली कर लो, ताकि मैं तुम्हारे पात्र में जो डालना चाहता हूं, वह तुम्हारी खिचड़ी में संयुक्त न हो जाए। नहीं तो वह भी विकृत हो जाएगा। उस पर भी रंग चढ़ जाएगा तुम्हारा। उसको भी तुम अपनी भाषा में ढाल लोगे, अपने विचार के अनुकूल बना लोगे। उसको तुम अपने वस्त्र पहना दोगे और उसका सारा रूप खो जाएगा, उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो जाएगा।
फिर, तुमने पूछा है कि "एक बात मुझे खटकी हुई है कि अगर हमारी गलती के बिना कोई हमें नुकसान पहुंचाने आए... "
ऐसा कभी हुआ नहीं। तुम अपवाद नहीं हो सकते। तुम्हारी गलती के बिना कोई तुम्हें नुकसान पहुंचाने आएगा ही क्यों? किसको पड़ी है? गलती, हो सकती है, आज न की हो, कल ही हो, परसों की हो, इस जन्म में न की हो, किसी और जन्म में की हो, मगर गलती की होगी। गलती के बिना किसको पड़ी है? किसको तुम में इतना रस है कि तुम्हें परेशान करे और खुद परेशान हो?
एक आदमी बुद्ध के ऊपर थूक गया। बुद्ध ने चादर से मुंह पोंछ लिया और उससे कहाः भाई, कुछ और कहना है? वह तो हक्का-बक्का रह गया, क्योंकि वह तो सोचता था झगड़ा-फसाद होगा, मार-पीट होगी। वह तो तैयारी करके आया था, गुंडों को बाहर बिठा कर आया था कि अगर मामला बिगड़ जाए तो बुला लूंगा।
मगर बुद्ध ने कहाः भाई, कुछ और कहना है? उसने कहाः और तो कुछ नहीं कहना है। तो बुद्ध ने कहा कि नमस्कार।
बुद्ध के शिष्य आनंद ने कहा कि यह बात क्या है, आपने कुछ कहा नहीं? बुद्ध ने कहा कि मैं इसकी राह देखता था। इसका कभी अपमान किया है किसी जन्म में, राह देखता था। अगर इसका मिलन न हो पाए तो फिर मुझे आना पड़ेगा। आज यह आ गया अपने आप, हिसाब-किताब पूरा हो गया। अब इससे आगे मैं कोई और व्यवसाय जारी नहीं रखना चाहता। इसलिए मैंने कहाः भाई, कुछ और कहना है। नहीं तो नमस्कार। कुछ कहना हो कुछ तो कह दो। मुझे कुछ नहीं कहना है। मुझे इसमें अब

आगे लेन-देन नहीं करना है। अगर मैं कोई भी प्रतिक्रिया करूं, अच्छी या बुरी, दोनों हालत में संबंध बन जाएगा।
यही तुम फर्क समझो। जीसस ने कहा है: तुम्हारे एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना। बुद्ध नहीं कहते कि एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना। बुद्ध कहते हैं: एक गाल पर कोई चांटा मारे, धन्यवाद दे देना। दूसरा गाल मत करना, क्योंकि दूसरा गाल करने में तुम फिर कुछ कर्म कर रहे हो। अच्छा ही सही, मगर अच्छा भी बांध लेता है--उतना ही जितना बुरा बांधता है। तुम कुछ करना ही मत। जो दूसरा कर रहा है उसको चुपचाप स्वीकार कर लेना। तुम्हारे किए का प्रत्युत्तर मिल गया, बात पूरी हो गई, बात समात हो गई यह लेन-देन बंद हुआ। यह खाता समाप्त हुआ। तुम्हारी एक उपद्रव से मुक्ति हो गई।
तुम कहते होः "अगर हमारी गलती के बिना... ।"
ऐसा तो कभी होता नहीं। और अगर कोई तुम्हारी गलती के बिना... समझ लो तुम्हारा मन नहीं मानता, तुम यही सोचते हो कि हमारी गलती के बिना ही कोई हमें परेशान कर गया है, तो अपनी गलती के लिए वह भोगेगा, तुम चिंता में मत पड़ो। तुम उत्तर देने की विचारणा में मत पड़ो, क्योंकि उत्तर देने में तुम उलझ जाओगे, उसके साथ गुंथ जाओगे। यही तो कर्म का जाल है।
समझो, तुम्हारी गलती से या तुम्हारी ना गलती से... मैं तो कहता हूं कि तुम्हारी गलती के बिना नहीं हो सकता, लेकिन तुम्हें अगर यह समझ में न आए, क्योंकि यह समझने के लिए बड़ी अंतर्दृष्टि चाहिए पड़ेगी, तुम्हारी गलती के बिना ही सही, कोई गलती कर रहा है, तुम परमात्मा पर छोड़ दो। उसकी जो मर्जी! तुम इसे एक परीक्षा समझो कि तुम्हें एक अवसर मिला शांत होने के लिए, तुम्हें एक चुनौती मिली कि विपरीत परिस्थिति में तुम मौन रख सकते हो या नहीं? जब कोई उद्विग्न करे, तब तुम निरुद्धिग्न रह सकते हो या नहीं? जब कोई गाली दे, तब तुम शांत रह सकते हो या नहीं? एक तुम्हें अवसर मिला। इस आदमी को धन्यवाद दो। इसने तुम्हें एक अवसर दिया। इसने गाली दी या तुम्हें नुकसान पहुंचाया और तुम अछूते रहे। तुमने कोई जवाब न दिया। जैसे कुछ हुआ ही नहीं। तुम्हारी चेतना ऐसे रही, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। जैसे यह आदमी आया ही नहीं, इसने गाली दी ही नहीं। जैसे एक सपने में हुआ या तुमने एक फिल्म में देखा या कहानी पढ़ी। मगर तुम्हें इससे कुछ भी हुआ नहीं। तुम दूर ही रहे। तुम साक्षी रहे।
यह साक्षीभाव ही मुक्ति का सूत्र है। फिर तुम्हारी गलती से हुआ या न गलती से हुआ, कुछ लेना-देना नहीं। दोनों हालत में एक ही काम करना है-- साक्षी रहना है।
"अगर हमारी गलती के बिना कोई हमें नुकसान पहुंचाने आए तो उस समय हमें क्या करना उचित होगा?"
कुछ भी करोगे तो अनुचित होगा। करना मात्र अनुचित होगा। साक्षी रहना
ही उचित होगा। सिर्प देखते रहना, जैसे तुम द्रष्टा हो; जैसे यह बात किसी और के साथ की जा रही है। तुम दर्शकमात्र हो। तुम इसके भोक्ता नहीं हो। एक। यह तो सबसे ऊंची बात है। अगर हो सके तो साक्षी रहना। अगर यह न हो सके, क्योंकि मैं जानता हूं यह कोई सरल बात नहीं है कि तुम साक्षी रह जाओ। और अगर साक्षी को जिंदगी भर साधोगे, सम्हालोगे, तो ही रह पाओगे। उस दिन के लिए मत बैठे रहना कि जब कोई गाली देगा तब साक्षी हो जाएंगे। उस दिन फिर तुम न हो पाओगे। जब कोई स्तुति कर रहा हो तब भी साक्षी होना। और जब कोई फूलमालाएं पहना रहा हो गले में, तब भी साक्षी होना, तभी गाली देते वक्त साक्षी हो पाओगे। जब खाना खा रहे होओ, स्नान कर रहे होओ, तब भी साक्षी होना। साक्षी को रचने देना, पचने देना। साक्षी को भीतर प्रविष्ट होने देना। तो ही किसी दुर्दिन में, किसी दुर्घटना में, किसी ऐसी घड़ी में, जहां कि आदमी एक क्षण में डांवाडोल हो जाता है, भूल जाता है--बच सकोगे। वह तो आखिरी लक्ष्य है। हो सके, उसके ऊपर फिर कुछ भी नहीं।
अगर यह न हो सके तो नंबर दो की बात। नंबर दो से मुक्त होना है, सिर्प इसलिए कह रहा हूं कि शायद नंबर एक की बात अभी न हो सके। होते-होते होगी।
लेकिन नंबर दो की बात अगर करोगे तो नंबर एक की बात सधने में सहारा मिलेगा।

नंबर दो की बात यह हैः पहले से तय मत करो कि क्या करेंगे; उस घड़ी जो हो जाए परमात्मा के ऊपर छोड़ कर हो जाने देना। पहले से तय करने में तो बड़ी गड़बड़ होगी। वह तो अहंकार का हिस्सा हो गया। तुम पहले से तय करके बैठे हो कि कोई गाली देगा तो हम ऐसा करेंगे। कोई अगर ईंट मारेगा तो हम पत्थर से जवाब देंगे; या कोई एक गाल पर चांटा मारेगा, हम दूसरा गाल कर देंगे। दोंनो में तुमने पहले से इंतजाम कर लिया, तुमने पहले से सोच लिया। तुम कर्ता बन गए। तुमने समय न आने दिया। तुमने समय में सहज स्फुरणा न होने दी।
आने दो समय। जब कोई गाली देगा, तब सहज स्फुरणा से जीना। जो उस क्षण लगे करने जैसा, वह कर लेना। और कृत्य को अपना मत मानना, उसको परमात्मा पर छोड़ देना। यही कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बारबार कहा कि फल उस पर छोड़ दे।
कर्ता वही है, ऐसा जान। तू निमित्त मात्र है।
यह नंबर दो की बात है। लेकिन इससे पहली बात सधने में सहायता मिलेगी। अभी तुम निमित्त बन जाओ। मात्र उपकरण। परमात्मा जो करवाना चाहे करवाए।
तुम सिर्प उसके लिए राजी रहो। फिर न पछताना पीछे लौट कर, न गौरव करना। तुम कर्ता ही नहीं हो, तो पछताना किसको है, गौरव किसको करना है? लौट कर ही मत देखना? जो हो गया हो गया। धीरे-धीरे निमित्त बनते-बनते साक्षी भी बन जाओगे। निमित्त साक्षी बनने की प्रक्रिया है, विधि है।
और इसलिए मैं कहता हूंः संसार से मत भागो। रहो संसार में। क्योंकि
वही निमित्त बनने का उपाय है, निमित्त बनने की चुनौती है। और वही साक्षी बनने की संभावना है।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं कि जो नाचता-गाता जाता है वही परमात्मा के मंदिर में प्रवेश पाता है। लेकिन भक्त-संत तो दर्द और आंसुओं का अर्घ्य लेकर वहां जाने की सलाह देते हैं। यह विरोधाभास स्पष्ट करने की अनुकंपा करें।

दर्द का भी एक गीत है और आंसुओं का भी एक नृत्य है। सच तो यह है, जैसा गीत दर्द से उठता है वैसा गीत और किसी स्रोत से नहीं उठता। और जैसा नृत्य आंसुओं का होता है उतना जीवंत नृत्य किसी और ऊर्जा का नहीं होता। इसलिए विरोधाभास नहीं है।
नाचते-गाते जाओ। नाचने-गाने में सब आ गया--दर्द भी आ गया, रोना भी आ गया, आंसू भी आ गए। जब मैं कहता हूं नाचते-गाते जाओ, तो मैं यही कह रहा हूंः आस्था से भरे हुए जाओ, मिलन होगा। मिलन होना सुनिश्चित है। इसमें रत्ती संदेह नहीं है। दर्द तो होता है। जब तक मिलन नहीं हुआ तो दुख भी होता है, पीड़ा भी होती है।।
कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीरे नीम-कश को
यह खलिश कहां से होती, जो जिगर के पार होता
वह जो तीर लगा है, वह छिद गया है। पार भी नहीं हो गया है, इसलिए बड़ी खलिश होती है।
परमात्मा को पाना है, यह तीर की तरह चुभी है बात हृदय में। जड़-बुद्धियों को पता नहीं चलती, संवेदनशील इसको अनुभव कर लेते हैं कि तीर की तरह चुभी है बात। विरह का अनुभव होता है। हम भटक रहे हैं, खोज रहे हैं, प्यासे हैं, भूखे हैं, शरण चाहते हैं, कोई जगह चाहते हैं जहां निश्चिंत होकर विश्राम को उपलब्ध हो जाएं, कोई आकाश चाहते हैं जहां हम लीन हो जाएं। कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीरे नीम-कश को
यह खलिश कहां से होती जो जिगर के पार होता
लेकिन, भक्त भगवान को इस विरह के लिए भी धन्यवाद देता है। कोई मेरे दिल से पूछे... वह कहता हैः कोई मेरे दिल से पूछे। अच्छा ही किया जो तूने तीर मारा और दिल के पार न हुआ, चुभ कर रह गया। नहीं तो यह खलिश कहां से होती? यह विरह-अग्नि कैसे जलती? यह प्यास कैसे उठती? मैं तेरी खोज पर कैसे निकलता? खूब किया तूने कि जलाया, नहीं तो यह प्रार्थना कैसे जनमती? खूब किया कि तूने तड़फाया, क्योंकि इंतजार के भी मजे हैं।
दर्द से भक्त घबड़ता नहीं, दर्द को गाता है।

शरते कतरा है दरिया में फनां हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना
वह जानता है इस राज को, धीरे-धीरे अनुभव करने लगता है कि जैसे-जैसे दर्द बढ़ता है वैसे-वैसे दर्द की मिठास बढ़ती है। भक्त का दर्द बड़ा मीठा दर्द है। दर्द ही नहीं है, उसमें बड़ा रस भरा हुआ है।
इशरते कतरा है दरिया में फनां हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना
एक हद के पार जब पीड़ा पहुंच जाती है, इतनी बड़ी हो जाती है कि उस पीड़ा में भक्त बिल्कुल डूब जाता है, जैसे बूंद सागर में गिर कर खो जाए। मोहब्बत का एजाज मैं क्या कहूं
बढ़ा दर्द, बढ़ कर दवा हो गया
जानोगे एक दिन कि पीड़ा एक दिन पीड़ा से मुक्ति का कारण हो जाती है--इतनी
बढ़ जाती है!
मुहब्बत का एजाज मैं क्या कहूं
--प्रेम की गरिमा कहीं नहीं जाती, कहना मुश्किल है।
मुहब्बत का एजाज मैं क्या कहूं
बढ़ा दर्द बढ़कर दवा हो गया
बढ़ने दो दर्द! मगर दर्द गीत है दर्द गाता हुआ है, नाचता हुआ है। दर्द उदास नहीं है। पीड़ा मधुर है, मीठी है। और फिर यह जो पीड़ा है, छिपती नहीं।
भक्त के आंसुओं से निकलेगी। भक्त के नृत्य में निकलेगी। भक्त के गीत में निकलेगी। भक्त के मौन में निकलेगी।
प्रेम छिपायो ना छिपे जा घट परकट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं नैन देत हैं रोय।।
शायद शब्द न भी कहें तो आंखे रोकर कह देंगी। मगर वह भी कहने का उपाय है।
तुमने पूछा: "आप कहते हैं, जो नाचता-गाता जाता है वही परमात्मा के मंदिर में प्रवेश पाता है। लेकिन भक्त-संत तो दर्द और आंसुओं का अर्घ्य लेकर वहां जाने की सलाह देते हैं।"
एक ही बात है। मैंने सीधी-सीधी तुमसे आंसुओं और दर्द की बात नहीं कही, क्योंकि उसमें भ्रांति हो जाने की संभावना है। और भ्रांति हुई है संतों के वचन से। लोग समझने लगे कि परमात्मा की तरफ जाने का मतलब बड़े उदास होकर जाना, मुर्दा होकर जाना, लाश की तरह जाना।
रोने-रोने में फर्क है। दर्द-दर्द में भेद है। एक तो रोना है जो दुख से निकलता है, विषाद निकलता है। और एक रोना है जो आह्लाद से भी निकलता है। लेकिन तुमने एक ही रोना जाना है--दुख का। कोई मर गया है, तब तुम रोए हो। घर में बच्चा पैदा हुआ, तब तुम रोए हो? अगर तुम घर में बच्चा पैदा हुआ तब रोए हो, तो तुम मेरी बात समझ सकोगे। और जो घर में बच्चा पैदा होता है तब रोता है, उसे वह दूसरी कला भी आ जाती है कि कोई मरे तो वह हंस भी सकता है। मृत्यु यहां हंसने की बात है, क्योंकि मरता कोई कभी नहीं। मृत्यु से ज्यादा झूठी कोई बात नहीं। जन्म यहां रोने की बात है। फिर जीवन उतरा। फिर सुबह हुई। लेकिन रोने में आह्लाद है, उत्सव है।
तुम कभी आनंद के आंसू रोए हो? तो फिर मेरी बात तुम्हें समझ में आ जाएगी। तुम्हारा प्रेमी तुम्हें मिला है और आंखें झर-झर रो उठीं, जैसे सावन में बादल बरसे हों। अगर वैज्ञानिक के पास दुख के आंसू और सुख के आंसू ले जाओगे तो उसके रासायनिक विश्लेषण में तो एक ही तरह के होंगे, कुछ भेद न पड़ेगा। दोनों में नमक होगा और बराबर मात्रा में होगा। और दोनों में पानी होगा और बराबर मात्रा में होगा। और सब दूसरे तत्त्व भी बराबर मात्रा में होंगे। वैज्ञानिक भेद न बता सकेगा कि कौन सा आंसू सुख में गिरा और कौन सा दुख में गिरा। यही तो बात है समझने की कि कुछ ऐसा भी है जिसको विज्ञान नहीं तौल पाता। कुछ ऐसा भी है जो विज्ञान के तराजू के पार है। कुछ ऐसा भी है जो विज्ञान के विश्लेषण की पकड़ में नहीं आता।
और तुम अनुभव से जानते हो कि कभी तुम प्रेम में भी रोए हो, कभी तुम क्रोध में भी रोए हो। और कभी तुम आनंद में भी रोए हो। और कभी तुम दुख में भी

रोए हो। और दोनों तरह के रोने में भेद है। एक में गीत होता है, एक में सिर्प हताशा होती है। एक नाचता हुआ होता है। एक में पक्षाघात होता है, जैसे पैरालिसिस लग गई।
मेरा जोर-गाने पर है, क्योंकि मैं जानता हूंः नाचने-गाने में दुःख अपने से आ जाएगा, मगर वह नाचता-गाता हुआ होगा; मरघट का नहीं होगा, मंदिर का होगा। और आंसू भी अपने आप सम्मिलित हो जाएंगे, मगर वे आंसू गीत की ही तरन्नुम होंगे, गीत की ही लयबद्धता होंगे, गीत का ही छंद होंगे। वे गीत को ही ताल देंगे, गीत के विपरीत नहीं होंगे।
इसलिए मैंने तुम से नहीं कहा कि रोते हुए जाओ, क्योंकि मैं जानता हूंः रोना तुम्हें पता है एक तरह का और तुम उसी को न समझ लो! उसी को बहुत लोग समझ कर बैठ गए हैं। जाओ, मंदिर-मस्जिदों में बैठे लोगों को देखो। बैठे हैं, उदास, जड़, लाश की तरह। सब सूख गया है, मरुस्थल हो गया है।
नहीं; यह जीवन जीने का सही ढंग नहीं। यह तो आत्महत्या है--धीमी-धीमी आत्महत्या है। मैं आत्महत्या का विरोधी हूं।

आखिरी प्रश्नः मैं आप से बहुत-बहुत दूर चला जाना चाहता हूं। लगता है
कि पास रहा तो आप मिटा कर रहेंगे।

अब बहुत देर हो गई। अब तो समय बीत गया भाग जाने का।
मैंने सुना है, एक महिला अपने जन्म-दिन पर गीत गा रही थी। जन्म-दिन था
तो रात देर तक गाती रही।... वीणावादिनी वर दे, वीणावादिनी वर दे! " मुल्ला नसरुद्दीन उसके पड़ोस में रहता था। उसके सुनने के बरदाश्त के बाहर हो गया। उसने जाकर दरवाजा खटखटाया और कहाः बाई! गाने से कुछ न होगा, अखबार में विज्ञापन दे।
नाराज था बहुत कि यह क्या बकवास लगा रखी है--वर दे, वर दे! मगर उस महिला
ने सुना ही नहीं, वह अपनी मस्ती में थी, वह गाती रही, गाती रही। दो बज गए, मुल्ला करवट बदलता है, मगर नींद नहीं आती। आखिर वह फिर गया। अब की बार बहुत जोर से दरवाजा खटखटाया और कहा कि दरवाजा खोलो। अगर एक बार और कहा वीणावादिनी वर दे, तो मैं पागल हो जाऊंगा।
कोई उठा बिस्तर से, किसी ने दरवाजा खोला। वह महिला खड़ी थी। उसकी आंखें नींद से भरी हुईं। उसने कहा: क्या कह रहे हैं आप? नसरुद्दीन ने कहाः अगर एक बार और कहा कि वीणावादिनी वर दे तो मैं पागल हो जाऊंगा। उस महिला ने कहाः बहुत देर हो गई, मुझे तो गाना बंद किए घंटा भर हो चुका।
यही मैं तुमसे कहता हूंः बहुत देर हो गई। पागल तो तुम अब हो ही चुके।
अब भाग कर कहां जाओगे? अब भागने को कोई जगह न बची।
प्रेम जगह छोड़ता ही नहीं। प्रेम के लिए स्थान का अर्थ ही नहीं होता।
अब तुम जहां जाओगे मैं पीछा करूंगा। अब कोई उपाय नहीं है। अब तुम जहां जाओगे मुझे अपने से पहले पहुंचा हुआ पाओगे। तुम जाकर बैठ जाओगे हिमालय की गुफा में और तुम मुझे गुफा में बैठा हुआ पाओगे। मेरे शब्द तुम्हें वहां सुनाई पड़ेंगे। मेरी आंखें वहां तुम्हें दिखाई पड़ेंगी। अब देर हो गयी। तुम कहते होः "मैं आपसे बहुत-बहुत दूर चला जाना चाहता हूं।"
बहुत-बहुत पास ही आ जाओ। अगर सच में ही मुझसे मुक्त होना है तो बहुत-बहुत पास आ जाओ, तुम मुझसे मुक्त हो जाओगे। वही उपाय है मुक्त होने का। गुरु से मुक्त होने का एक ही उपाय है: उसके इतने पास आ जाओ कि तुम उससे गुजर जाओ और परमात्मा में प्रवेश हो जाए।
गुरु तो द्वार है। द्वार से गुजरना होता है। गुजर गए, फिर बात समाप्त
हो गयी। दूर-दूर जाकर तो और याद आएगी। दूरी से याद बढ़ती है, घटती नहीं।
दूरी कब याद को मिटा पाई है? दूरी ने सदा याद को बढ़ाया है।
वैसे तुम कह ठीक ही रहे हो कि लगता है कि पास रहा तो आप मिटा कर रहेंगे। उससे मैं इनकार नहीं कर सकता। वही मेरा काम है यहां। वही मेरा धंधा है। तुम्हें मिटाऊं, तो ही तुम हो सकते हो।
क्या पसंद है तुम्हें
भय या अभय?

लय दोनों में है
किंतु मैं तो इन दिनों
प्रलय सोच रहा हूं
सो भी छंद में
स्वर में, सुगंध में!
प्रलय! वही तो गुरु के पास आने का अर्थ है। सब नष्ट हो जाएगा। तुमने अब
तक जैसा अपने को जाना है, नहीं बचेगा। तुमने जो अब तक अपने को पहचाना है, वह नहीं बचेगा। तुम्हारा सारा तादात्म्य, तुम्हारा नाम-पता-ठिकाना सब खो जाएगा। लेकिन तभी तुम्हें पहली दफे अपना असली पता चलेगा, अपना असली ठिकाना याद आएगा।
तुम अभी सराय को घर समझ बैठे हो। मैं तुम्हें तुम्हारा घर देना चाहता हूं। लेकिन तुम्हारी सराय तो छिनेगी।
तुम अभी नकली सिक्कों का ढेर लगाए, संपदा समझ रहे हो। मैं तुम्हें असली संपदा देना चाहता हूं। लेकिन तुम्हें कंकड़-पत्थर तो छोड़ने ही होंगे, तभी तुम्हारी झोली में जगह होगी कि हीरे-जवाहरात भर सको।
तो डर लगता है, यह मैं समझता हूं। और जितने करीब आओगे उतना डर बढ़ेगा। जितना प्रेम बढ़ेगा उतना डर बढ़ेगा। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही होता है: अंतिम घड़ी में प्रेम मृत्यु हो जाता है। मगर मृत्यु के बाद ही पुनरुज्जीवन है।
खुदा जाने क्या आफतें सर पर आएं
उन्हें आज फिर महरबां देखता हूं
जैस-जैसे परमात्मा की कृपा तुम पर होगी वैसे-वैसे घबड़ाहट बढ़ेगी।
खुदा जाने क्या आफतें सर पर आएं
उन्हें आज फिर महरबां देखता हूं
आदमी डरता है प्रेम से, सदा से डरता रहा है। इसलिए तो पृथ्वी प्रेम-शून्य हो गई है। इसलिए तो गुरु और शिष्य खो गए हैं, नाम ही रह गए हैं, शब्द ही रह गए हैं। गुरुओं की जगह अध्यापक बचे हैं, शिष्यों की जगह विद्यार्थी। विद्यार्थी और अध्यापक में कोई मृत्यु नहीं घटती, कोई प्रेम नहीं घटता-- लेन-देन की बात है। विद्यार्थी गुरु से कुछ खरीद लेता है, गुरु को कुछ दे देता है। बात खत्म हो गई। प्राणों का आदान-प्रदान नहीं हो पाता।
ए दिल न छेड़ किस्सए-फुर्सुदी इश्क का
उलझा न अहले बज्म को इस खार जार में
लोग डरने लगे हैं। लोग समझते हैं कि यह कांटा है प्रेम। कांटों की झाड़ी है, इसमें उलझ गए तो निकल न पाएंगे। लोग बचकर चलते हैं। साधारण प्रेम भी बहुत उलझा लेता है, तो असाधारण प्रेम का तो कहना ही क्या!
जब तुम्हारे मन में यह भाव उठा है कि अब भाग जाऊं, उसका मतलब ही यह है
कि अब भागने का समय निकल गया। यह भाव ही तब उठता है जब समय निकल जाता है। यह समझ ही तब आती है जब उपाय नहीं रह जाता। जब खतरा इतना हो जाता है तभी तो यह ख्याल आता है कि अब भाग जाऊं। लेकिन तब भाग कर कहां जाओगे?
प्रेम समय और स्थान की दूरी नहीं जानता। प्रेम में समय और स्थान दोनों मिट जाते हैं। प्रेम की निकटता शारीरिक निकटता नहीं है। अगर शारीरिक निकटता ही होती तो तुम दूर जा सकते हो, मगर प्रेम की निकटता तो आत्मिक निकटता है, इसलिए कैसे दूर जाओगे? न तो पास बैठने से कोई पास बैठता है, न दूर जाने से कोई दूर जाता है। प्रेम की निकटता आत्मीय संबंध है। तुम्हारे मन में भय उठा है, स्वाभाविक। तुम भाग भी जाओ, तुम कसम भी खा
लो कि मेरी याद न करोगे, तुम कसम भी खा लो कि अब कभी लौट कर यहां न आओगे, मगर ये कसमें काम न आएंगी। ये कसमें टूट जाएंगी। और तुम न आए तो कोई हर्ज नहीं, मैंने तो कसम नहीं खाई है। मैं तो आ ही सकता हूं।
इस इंतहाए-तर्के-मोहब्बत के बावजूद
हमने लिया है नाम तुम्हारा कभी-कभी
छोड़ भी दोगे, कसम खा लोगे कि अब नहीं नाम लेंगे, मगर फिर भी यह नाम आ जाएगा। फिर भी यह याद आ जाएगी। यह याद बस गयी अब। इसने तुम्हारे भीतर घर कर

लिया। यह घर जब कर लेती है तभी भागने का सवाल उठता है। मगर तब तक सदा देर हो गयी होती है।
मैं तेरे गम से बहुत दूर चली जाऊंगी
--किसी प्रेयसी ने गाया है--
मैं तेरे गम से बहुत दूर चली जाऊंगी
तुझको इक यास का उनवान बना जाऊंगी
नर में डूबी हुई चांदनी रातों की कसम शबनमी भीगी हुई सावनी रातों की कसम बर्प-सी सहमी हुई सुर्मयी रातों की कसम जगमगाते हुए तारों की बरातों की कसम मैं तेरे गम से बहुत दूर चली जाऊंगी तुझको इक यास का उनवान बना जाऊंगी सर्द रातों में चमकते हुए तारों की कसम फूल बरसाती हुई मस्त बहारों की कसम सुबहे-बेदार के शादाब नजारों की कसम रोदे बानास के सरसब्ज किनारों की कसम मैं तेरे गम से बहुत दूर चली जाऊंगी तुझको इक यास की उनवान बना जाऊंगी जल्वए-हुस्न की हर शाने-जमाली की कसम
इश्क में जब्त की आदाते-मिसाली की कसम
बेनियाजी के हर अंदाजे-जमाली की कसम
अर्शे-आजम के फसूं साज कमाली की कसम
मैं तेरे गम से बहुत दूर चली जाऊंगी
तुझको इक यास का उनवान बना जाऊंगी
लेकिन प्रेयसी शायद दूर जा भी सके, क्योंकि वे नाते शरीर के हैं। यद्यपि प्रेयसी भी दूर नहीं जा पाती, प्रेमी भी दूर नहीं जा पाते। प्रेमी कितने ही दूर हो जाएं, उनके हृदय पास ही धड़कते रहते हैं। लेकिन फिर भी शारीरिक प्रेम में तो यह संभव है कि कोई दूर चला जाए, कसमें खा ले, दूर हट जाए, प्रेम का खतरा देखे और अपने को बचा ले; लेकिन आत्मिक प्रेम में तो यह संभव ही नहीं।
तुम्हारा मेरी देह से थोड़े ही नाता है। मेरा तुम्हारी देह से थोड़े ही नाता है। यह नाता किसी और लोक का है। यह नाता किसी दूसरे ही जगत का है। जब एक बार बन जाता है तो बन गया। जिंदगी में भी यह नाता रहेगा, मौत में भी यह नाता रहेगा। तुम शरीर भी छोड़ कर चले जाओगे, तो भी यह नाता टूटने वाला नहीं। इसलिए अब दूर जाने की बजाय, दूर जाने में जितनी शक्ति लगाओगे, अच्छा होगा पास आने में ही लगाओ न! पास ही आ जाओ! इतने पास आ जाओ कि दो-पन न रह जाए, दुई न रह जाए।
और एक बार भी तुम्हारे जीवन में किसी के साथ भी इतनी आत्मीयता की प्रतीति हो जाए कि दुई मिट जाए, तो परमात्मा की पहली झलक तुम्हारे जीवन में आ गयी। क्योंकि परमात्मा दो के पार है। एक झरोखा खुला।
मुझे एक झरोखा बना लो।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
पांचवां प्रवचन

जीवन--ध्यान-मंदिर का सोपान

हीरा जन्म न बारंबार, समुझि मन चेत हो।।
जैसे कीट पतंग पषान, भए पसु पच्छी।
जल तरंग जल माहिं रहे, कच्छा औ मच्छी।।
अंग उघारे रहे सदा, कबहुं न पावै सुक्ख।
सत्य नाम जाने बिना, जनम जनम बड़ दुक्ख।।
सीतल पासा ढारि, दाव खेलो सम्हारी।
जीतौ पक्की सार, आव जनि जैहौ हारी।।
रामै राम पुकारिके, लीनो नरक निवास।
मुड़ गड़ाए रहे जिव, गर्भ माहिं दस मास।।
नाहिं जाने केहि पुण्य, प्रकट भे मानुष-देही।
मन बच कर्म सुभाव, नाम सों कर ले नेही।।
लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह।
सो मिथ्या कस खोवते, झूठी प्रीति-सनेह।।
बालक बुद्धि अजान, कछु मन में नहिं जाने।
खेलै सहज सुभाव, जहीं आपन मन माने।।
अधर कलोले होय रह्यो, ना काहू का मान।
भरी बुरी न चित धरै, बारह बरस समान।।
जीवन रूप अनूप, मसी ऊपर मुख छाई।
अंग सुगंध लगाए, सीस पगिया लटकाई।।
अंध भयो सूझे नहीं, फटि गई हैं चार।
जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी।
संतो हो हुसियार, कियो ना बाहूं गाढ़ी।।
दे गजगीरी प्रेम की, मंदो दसो दुआर।
वा साईं के मिलन में, तुम जनि लावो बार।।
वृद्ध भए पछिताय, जबै तीनों पन हारे।
भई पुरानी प्रीति, बोल अब लागत प्यारे।।
लचपच दुनिया ह्व रही, केस भए सब सेत।
बोलन बोल न आवई, लूटि लिए जम खेत।।

तारों से सोना बरसा था, चश्मों से चांदी बहती थी फूलों पर मोती बिखरे थे, जर्रो की किस्मत चमकी थी कलियों के लब पर नग्मे थे, शाखों पै वज्द-सा तारी था खुशबू के खजाने लुटते थे, और दुनिया बहकी-बहकी थी ऐ दोस्त! तुझे शायद वह दिन अब याद नहीं, अब याद नहीं सूरज की नरम सुआओं से कलियों के रूप निखरते हों सरसों की नाजुक शाखों पर सोने के फूल लचकते हों
जब ऊदे-ऊदे बादल से अमृत की धारें बहती थीं
और हल्की-हल्की खुनकी में दिल धीरे-धीरे तपते थे ऐ दोस्त! तुझे शायद वह दिन अब याद नहीं, अब याद नहीं फूलों के सागर अपने थे, शबनम की सहबा अपनी थी
जर्रो के हीरे अपने थे, तारों की माला अपनी थी
दरिया की लहरें अपनी थीं, लहरों का तरन्नुम अपना था
जर्रो से लेकर तारों तक यह सारी दुनिया अपनी थी
ऐ दोस्त! तुझे शायद वह दिन अब याद नहीं, अब याद नहीं

आदमी जीता है स्वप्नों में।
आदमी के जीवन का ताना-बाना दो चीजों से बना है--एक है स्मृति और एक है आशा। स्मृति है अतीत की ओर आशा है भविष्य की। और दोनों झूठ हैं। क्योंकि न स्मृति का कोई अस्तित्व है और न आशा का। अस्तित्व है वर्तमान का। अतीत वह,

जो जा चुका, और अब नहीं है। और भविष्य वह, जो आया नहीं, अभी नहीं है। दोनों के मध्य में, यह जो क्षण है वर्तमान का, यही क्षण परमात्मा का द्वार है। और आदमी इस क्षण से चूकता रहता है। या तो सोचता है अतीत की, जो बीत गया। अतीत के दुखों के लिए पछताता है, सुखों के लिए फिर-फिर तड़पता है। और या सोचता है भविष्य की। नयी आशाएं, नये सपने संजोता है। नई कल्पनाएं।
अतीत और भविष्य, इनमें आदमी डोलता और जीता है और ऐसे ही जीवन से चूकता चला जाता है। जो वर्तमान में ठहर गया, वही जीवन को उपलब्ध होता है।
आज के सूत्र प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कथा, जीवन की व्यथा के सूत्र हैं। इन्हें ठीक से समझना।
हीरा जन्म न बारंबार समुझि मन चेत हो।
धनी धरमदास कह रहे हैः यह जो जीवन तुम्हें मिला है, हीरे जैसा है और तुम कंकड़ों-पत्थरों में गंवाए दे रहे हो। हीरा जन्म न बारंबार... और फिर मिलेगा या नहीं, कुछ निश्चित नहीं। जो अवसर खो जाता है, बड़ी मुश्किल से मिलता है। बड़ी मुश्किल से यह जीवन भी मिला है। तुम्हें याद भी नहीं कि कितनी पीड़ाएं, कितने संघर्षो, कितनी लंबी यात्राओं के, अनंत यात्राओं के बाद यह जीवन मिला है।
चार्ल्स डार्विन ने तो अभी-अभी कुछ वर्षो पहले पश्चिम को यह विचार दिया कि मनुष्य विकसित होता रहा है; विकास का सिद्धांत दिया। लेकिन पूरब में विकास की दृष्टि बड़ी पुरानी है, बड़ी प्राचीन है। डार्विन ने तो जो विकास की दृष्टि दी, बड़ी छिछली और उथली है। उसमें केवल देह का हिसाब है कि आदमी की देह कैसे विकसित हुई है। पूरब ने जो विकास की दृष्टि दी है, वह बड़ी गहरी हैः आत्मा कैसे विकसित हुई है, मनुष्य का चैतन्य कैसे विकसित हुआ है? वह जो चौरासी कोटियों की बात है, वह काल्पनिक नहीं है। धीरे-धीरे रत्ती-रत्ती लड़ कर हम आदमी हो पाए हैं। इंच-इंच लड़ कर हम आदमी हो पाए हैं। लंबी थी यात्रा। और धन्यभागी हो कि तुम कि आदमी हो पाए हो। अब इसे ऐसे ही मत गंवा देना। इसलिए कहते हैं "हीरा जन्म!"
इस जगत में मनुष्य के जीवन से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं। और जिस बुरी तरह मनुष्य अपने इन बहुमूल्य क्षणों को गंवाता है, उसे देख कर आश्चर्य होता है। इतनी कठिनाई से पायी गयी संपदा कीचड़ में गंवा दी जाती है। इस अवसर का यदि तुम उपयोग कर लो तो तुम्हारे जीवन में परम प्रकाश हो जाए। इस हीरे को अगर तुम ठीक से दांव पर लगा दो तो परमात्मा तुम्हारा है। चूके तो फिर पूरा चक्कर है। चूके तो फिर पूरा चाक घूमेगा। तब दुबारा, न मालूम कब, करीब-करीब असंभव सा मालूम होता है कि फिर दुबारा कब आदमी मनुष्य हो पाए, यह चैतन्य की घड़ी फिर अब कब आएगी! और जब चैतन्य होने का क्षण इतनी आसानी से तुम गंवा देते हो तो इसे कैसे पाओगे दुबारा, कैसे खोजोग, कैसे तलाशोगे? आदमी जिस तरह अपने जीवन का दुरुपयोग करते हैं, उसे देख कर ऐसे लगता है,
वे आदमी हो कैसे गए! चमत्कार मालूम होता है। कैसे पहुंच गए! कैसे उन्होंने इतनी यात्रा पूरी कर ली!
लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है, पाने के लिए तुम तड़पते हो किसी चीज को और
जब उसे पा लेते हो, बस तभी तुम्हारा रस समाप्त हो जाता है। जिंदगी के सामान्य हिसाब में भी यह देखने में आता है। तुम धन पाना चाहते हो, फिर धन पा लेते हो, और फिर तुम्हारा रस धन में समाप्त हो जाता है।
मनसविद कहते हैंः चित्रकार को चित्र बनाते देखो। जब वह चित्र बनाता
है तो इतने श्रम से बनाता है, भूख भूल जाता है, प्यास भूल जाता है, सब भूल जाता है। धूप है कि गरमी है कि शीत है, उसे कुछ पता नहीं चलता। वह अपने चित्र बनाने में तल्लीन है। वह इतने रसविमुग्ध होकर बनाता है कि लगता है जब चित्र बन जाएगा तो नाचेगा, लेकिन जब चित्र बन जाता है तो वह चित्र को सरकाकर रख देता है। कोई नाच पैदा नहीं होता। वह दूसरे चित्र में उत्सुक हो जाता है, दूसरा चित्र बनाने में लग जाता है।
रवींद्रनाथ ने छह हजार गीत लिखे हैं। जब वे एक गीत बनाते थे, जब गीत बनता था, उतरता था, तो वे द्वार-दरवाजे बंद कर लेते थे, ताकि कोई बाधा न दे। कभी दिन बीत जाता, दो दिन बीत जाते, तीन दिन बीत जाते, भोजन भी न लेते, स्नान भी न करते; कब सोते कब उठते, कुछ हिसाब न रह जाता; बिल्कुल दीवाने जैसे उनकी

दशा हो जाती थी; करीब-करीब विक्षिप्त हो जाते थे। और जब गीत पूरा हो जाता तो उसे सरका कर रख देते। शायद ही अपना गीत दुबारा उन्होंने फिर पढ़ा हो। लेकिन यह कथा सारे कलाकारों की है, सारे चित्रकारों, सारे मूर्तिकारों की है। और यही कथा प्रत्येक मनुष्य की भी है। मनुष्य होने के लिए हमने कितनी कठिनाई से यात्रा की है, कितने लड़े हैं! और जब मनुष्य हो गए हैं तो बस बात ही सरका कर रख दी है। अब तो लोग यही पूछते हैं कि समय नहीं कटता, ताश खेलें कि फिल्म देखने चले जाएं, कि किसी से झगड़ें कि गाली-गलौच कर लें, किस तरह समय काटें? और इस समय को पाने के लिए तुमने कितनी लंबी यात्रा की थी, कितना दांव पर लगाया था!
यह आदमी के मन का अनिवार्य अंग है कि जब वह पाने के लिए चलता है तब तो
सब दांव पर लगा देता है, लेकिन जब मिल जाता है तो बस तत्क्षण मिलते ही सारी उत्सुकता समाप्त हो जाती है। एक स्त्री के पीछे तुम दीवाने थे, फिर उसे पा लिया और पाते ही तुम्हारा सारा उत्साह क्षीण हो जाता है। एक मकान तुम बनाना चाहते थे और कितना सोचते थे, रात सोए नहीं, सपने देखते थे, धन इकट्ठा करते थे; फिर मकान बन गया और बस फिर मकान भूल गया। फिर उस मकान को तुम दुबारा देखते भी नहीं। रहते भी हो उसमें तो तुम कुछ रस-विमुग्ध नहीं हो, तुम कुछ आनंदित नहीं हो।
ऐसा ही जीवन के संबंध में भी हुआ है। और चित्र बनाकर न देखो तो चलेगा। कविता लिख कर फिर न गुनगुनाआ, चलेगा। मूर्ति बनाकर एक तरफ सरका दो, कूड़े- कचरे में डाल दो, चलेगा। क्योंकि ये सब छोटी बातें हैं। लेकिन जीवन बहुत बहुमूल्य है। इसकी कोई कीमत नहीं। यह बेशकीमती है। अमूल्य है। मूल्य के पार है। मूल्यातीत है।
हीरा जन्म न बारंबार... इसलिए धनी धरमदास कहते हैं: इस हीरे को.जरा समझ लो। खो दोगे, फिर बहुत पछताओगे। और कुछ चीजें ऐसी हैं कि टूट जाएं तो फिर नहीं जुड़तीं, फिर जोड़े नहीं जुड़तीं। फिर पूरी लंबी यात्रा करनी होती है--उतनी ही जितनी पाने के लिए की थी। फिर वही पहाड़, फिर वही कंटकाकीर्ण मार्ग, फिर वही चढ़ाइयां। फिर जब तक पहुंचोगे तब तक फिर भूल जाओगे कि पहले एक बार जीवन मिला था, उसको मैं गंवा चुका हूं, अब न गंवाऊं।
तुम क्या सोचते हो, तुम पहली बार मनुष्य हुए हो? इस अनंत काल में तुम अनेक बार मनुष्य हुए होगे। इतना लंबा समय बीता है कि तुम बहुत बार इस घड़ी पर आ गए होगे और बहुत बार तुमने यह घड़ी गंवा दी है। और गंवा कर पछताए भी होगे, मरते वक्त रोए भी होगे। खून टपका होगा तुम्हारी आंखों से आंसू बनकर। और तुमने निर्णय किया होगाः अब दुबारा ऐसी भूल न होगी। अगर फिर अवसर मिल जाए तो अब दुबारा ऐसी भूल न होगी। लेकिन जब तक दुबारा अवसर मिलेगा तब तक इतना समय बीत जाता है कि तुम फिर भूल जाते हो।
उपनिषदों में ययाति की कथा है, मुझे बहुत प्रिय है। प्यारी कथा है। कथा ही है, ऐतिहासिक नहीं हो सकती। लेकिन बड़ी मनोवैज्ञानिक है। और पुराण इतिहास हैं भी नहीं। पुराण मनोविज्ञान हैं। मनोविज्ञान की गहराई इतिहास से बहुत ज्यादा है। इतिहास तो कूड़ा-करकट बटोरता है। इसलिए इतिहास में तुम्हें औरंगजेबों और अकबरों और शाहजहां और जहांगीरों की कहानियां मिलती हैं। तैमूरलंग और नादिरशाह, इनकी कहानियां... कूड़ा-करकट! इतिहास में बुद्धों का पता नहीं चलता। इतिहास पर बुद्धों की लकीर बनती नहीं। क्योंकि जब तक कोई उपद्रव न करें तब तक इतिहास पर उसकी लकीर नहीं बनती। तुम हत्या करो तो अखबार में नाम आता है। तुम चोरी करो तो अखबार में नाम आता है। तुम किसी की छाती में छुरा भोंक दो तो तस्वीर छपती हैं। तुम किसी गिरते आदमी को सड़क पर संभाल लो, कोई खबर नहीं आती। और तुम अपनेघर में बैठ कर ध्यान करो, तब तो खबर आएगी ही कैसे। और तुम प्रभु को स्मरण करो तो किसको पता चलेगा? कौन जान पाएगा?
इतिहास अखबारों की कतरन है। पुराने अखबार इतिहास बन जाते हैं। पुराण इतिहास नहीं है। पुराण मनोविज्ञान है। ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं--ऐसा होता है सदा। ऐसी ययाति की कथा है।
ययाति मरने के करीब आया। बड़ा सम्राट था। उसके सौ बेटे थे। अनेक रानियां थीं। सौ वर्ष जिया। पूरी उम्र लेकर मर रहा था। लेकिन जब मौत ने

दरवाजे पर दस्तक दी और मौत ने कहा: ययाति, तैयार हो जाओ... । भले दिनों की कहानी है। अब तो मौत दस्तक भी नहीं देती। तैयारी का अवसर भी नहीं देती। मौत ने कहाः ययाति तैयार हो जाओ, मैं आ गयी। ययाति चौंका। तुम भी चौंको, अगर मौत आकर एक दिन दरवाजे पर दस्तक दे। इसलिए मैं कहता हूं, यह मनोवैज्ञानिक है।
ययाति चौंका। ययाति ने हाथ जोड़ कर कहा कि क्षमा करो, मैं तो जीवन गंवाता रहा। सौ वर्ष ऐसे ही बीत गए, पता न चला। मैंने तो व्यर्थ में गंवा दिए दिन। नहीं-नहीं, मुझे ले मत जाओ। एक अवसर मुझे और दो। यह भूल दुबारा न होगी। करने योग्य कुछ कर लूं। किस मुंह से परमात्मा के सामने खड़ा होऊंगा? क्या जवाब दूंगा?
पुरानी कहानी है, मौत को दया आ गयी। मौत ने कहाः ठीक है। लेकिन किसी को मुझे ले जाना ही होगा। तुम्हारा कोई बेटा जाने को राजी हो?
सौ बेटे थे। ययाति ने अपने बेटों की तरफ देखा। ययाति सौ साल का था, उसका कोई बेटा अस्सी साल का था, कोई सत्तर साल का था। वे भी बूढ़े होने के करीब थे, लेकिन अस्सी साल का बेटा भी नीची नजर कर लिया। सबसे छोटा बेटा उठकर खड़ा हो गया। वह अभी जवान ही था, अभी सत्रह-अठारह का होगा। उसने मौत से कहाः मुझे ले चलो। मौत को उस पर और दया आई। मौत ने कहा कि तेरे और बड़े भाई हैं, वे कोई राजी नहीं होते, तू क्यों जाता है? अपने बड़े भाइयों से क्यों नहीं पूछता, तुम राजी क्यों नहीं होते?
उसने पूछाः अपने बड़े भाइयों से कहाः आप जाने को राजी क्यों नहीं हैं? पिता के लिए जीवन नहीं दे सकते?
बड़े भाइयों ने कहा कि जब पिता सौ साल का होकर जाने को राजी नहीं है, तो
हम अभी केवल अस्सी साल के हैं कि सत्तर साल के हैं। अभी तो हमें जीने को और दिन पड़े हैं। और जिस तरह पिता नहीं कर पाया जो करना था, हम भी कहां कर पाए हैं! पिता को तो सौ वर्ष मिले थे, नहीं कर पाया; हमें तो अभी अस्सी वर्ष ही हुए हैं, अभी बीस वर्ष और कायम हैं। अभी हम कुछ कर लेंगे।
फिर भी जवान बेटा तैयार था। उसने कहाः मुझे ले चलो। मौत ने पूछा कि तू मुझे पागल मालूम होता है। तू तो अभी जवान है, अभी तूने कुछ भी नहीं देखा। उसने कहा: जब सौ वर्ष में मेरे पिता कुछ न देख पाए, तो मैं भी क्या देख पाऊंगा? अस्सी वर्ष में मेरे भाई नहीं देख पाए, सत्तर वर्ष में मेरे भाई नहीं देख पाए, तो मैं भी क्या देख पाऊंगा? मेरे निन्यानबे भाई कुछ नहीं देख पाए, मेरे पिता कुछ नहीं देख पाए। पिता सौ वर्ष में भी मांग कर रहे हैं कि जीवन और चाहिए। इतना ही पर्याप्त है मुझे दिखाने को कि यहां दिन सोए-सोए बीत जाते हैं। तुम मुझे ले ही चलो। मेरा जीवन इतके भी काम आ जाए, मेरे पिता के काम आ जाए, तो भी सार्थक उपयोग हुआ। मैं निरर्थक नहीं गंवाना चाहता। यह कम से कम कुछ सार्थक उपयोग है कि मैं पिता के काम आ गया। इतनी तो सांत्वना रहेगी, संतोष रहेगा।
सौ वर्ष बीत गए, फिर मौत आई और वही की वही बात थी। ययाति फिर रोने लगा। उसने कहा कि क्षमा करो, मैं तो सोचा कि अब सौ वर्ष पड़े हैं, अभी क्या जल्दी है? जी लेंगे। फिर मैं पुराने ही धंधों में लग गया। अभी तो सौ वर्ष थे, बहुत लंबा समय था, वे भी गुजर गए। कब गुजर गए, पता न चला। कैसे गुजर गए, पता न चला। मुझे क्षमा करो। एक अवसर और।
और कहते हैं, कहानी बारबार अवसर देती है। ऐसा एक हजार साल ययाति जिया
और जब हजारवें साल में मरा, तब भी रोता हुआ ही मरा।
तुम भी मरते क्षण में जब मौत तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ी हो जाएगी, रोओगे कि मैं कुछ कर न पाया; राम का स्मरण न कर पाया; कोई पुण्य का अनुभव न कर पाया; कोई ध्यान का झरोखा न खोल पाया; समाधि की मुझे गंध न मिली। मैंने जाना ही नहीं कि मैं कौन था। मैंने जाना ही नहीं कि अस्तित्व क्या था। मेरा कोई तारतम्य न बैठा। अस्तित्व से मेरा कोई मेल न हुआ। मेरा कोई मिलन न हुआ परमात्मा से। मुझे छोड़ो।
मगर जितनी आसानी से ययाति की कहानी में मौत छोड़ देती है, वैसा नहीं होता। वह तो कहानी है, प्रतीक है। मौत तो ले जाएगी। और दुबारा अवसर कब मिलेगा? ययाति तो भूल जाता था हर अवसर के बाद; दुबारा अवसर तुम्हें

मिलेगा, इस बीच न मालूम कितने कल्प बीत गए होंगे, न मालूम कितना समय बह गया होगा, न मालूम गंगा का कितना पानी बह जाएगा! गंगा बचेगी कि नहीं दुबारा जब तुम आओगे! तब तक स्वभावतः तुम फिर भूल गए होओगे।
तुम्हें एक जन्म की स्मृति दूसरे जन्म में नहीं रह जाती। तुम फिर अ ब
स से शुरू कर देते हो। शायद इस बार जैसा गंवा रहे हो वैसा पहले भी गंवाया, आगे भी गंवाओगे।
जागना हो तो अभी जागो, कल पर मत टालो। टालने में ही आदमी भूला है, भटका है। स्थगित किया कि तुमने टाला, टाला कि तुम चूके। कल का कोई भरोसा है? कल कभी आया है? कल कभी आता है? कल उसका नाम है जो कभी नहीं आता।
हीरा जन्म न बारंबार समुझि मन चेत हो।
तो धनी धरमदास कहते हैंः समझ लो ठीक से। यह हीरे जैसा अवसर फिर-फिर मिले न मिले। और चेत जाओ, जाग्रत हो जाओ। चैतन्य को पैदा कर लो। यह अवसर इसीलिए है कि चैतन्य पैदा हो सके। अगर जीवन में ध्यान पैदा हो जाए तो जीवन सार्थक हो गया। ध्यान मिला तो धन मिला। ध्यान मिला तो तुम भी धनी हुए, जैसे धनी धरमदास।
जीवन एक सीढ़ी है--ध्यान के मंदिर की। सीढ़ी पर मत बैठे रहो। सीढ़ी का अपने में कोई अर्थ नहीं है। सीढ़ी का प्रयोजन इतना ही है कि तुम मंदिर में पहुंच जाओ। द्वार पर मत जकड़ कर बैठ जाओ। द्वार व्यर्थ है। मंदिर में प्रवेश करो। मंदिर का देवता भीतर विराजमान है। जीवन को सीढ़ी बनाओ। जीवन को मार्ग समझो। जीवन मंजिल नहीं है। जीवन गंतव्य नहीं है। जीवन मिल गया तो सब मिल गया, ऐसा मत समझो।
जीवन का उतना ही मूल्य होगा जितना तुम उसमें पैदा कर लोगे। जीवन केवल
एक संभावना है। जीवन एक तरह का धन है।
ऐसा समझो, मैंने सुना है, एक कृपण आदमी था। उसके पास सोने की ईंट थीं।
वे उसने अपनी तिजोरी में रख छोड़ी थीं। भूखा-प्यासा, रूखा-सूखा खाता था। बस रोज तिजोरी खोल कर अपनी सोने की ईंटों को देख लेता था। उसका बेटा जवान हुआ। उसने देखा, यह भी क्या पागलपन है! हमें खाने को नहीं, पीने को नहीं, ओढ़ने का ठीक वस्त्र नहीं, घर-द्वार ढंग का नहीं--और हमारे पास इतना धन है और बाप कुल इतना करता है कि तिजोरी खोल कर, जैसे लोग मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन करते हैं। ऐसे सोने की ईंटे का दर्शन कर लेता है, प्रसन्न होकर, फिर तिजोरी बंद कर देता है! ये जो साने की ईंटे है, इनका मूल्य केवल संभावना में है, पोटेंशियल है। अगर इनका उपयोग करो तो ही मूल्य है। अगर उपयोग न करो तो सोने की ईंटे रखी हैं तुमने तिजोरी में कि पत्थर की ईंटें रखी हैं, क्या फर्क पड़ता है?
बेटे ने एक होशियारी की। उसने पीतल की ईंटे बनवाईं, सोने का पालिश चढ़वाया और तिजोरी में बदल दीं। बाप वही करता रहा। रोज खोले तिजोरी--अब तो पीतल की ईंटे थीं--नमस्कार कर लें। बड़ा प्रसन्न हो जाए। बाप को तो कोई फर्क नहीं पड़ा।
धन तभी पता चलता है कि धन है जब तुम उसका उपयोग करो, अन्यथा निर्धन और धनी में क्या फर्क है? तुम अगर करोड़ों रुपये भी अपनी जमीन में गड़ा कर बैठे हो और भीख मांग रहे हो, तो तुम में और उस भिखमंगे में क्या फर्क है जिसके पास एक पैसा नहीं है? धन का मूल्य उपयोग में है। धन का मूल्य धन में नहीं है, उपयोग में है, उसके विनिमय में, एक्सचेंज में है। धन जितना चले उतना उपयोगी हो जाता है। जितना तुम उसका रूपांतरण करो उतनी ही उपयोगिता बढ़ती जाती है।
इसलिए कंजूस के पास धन होता ही नहीं, क्योंकि धन गति में है। इसलिए तो अंग्रेजी में धन के लिए जो शब्द है, वह करेंसी है। करेंसी का मतलबः जो चलता रहे, बहता रहे। बहाव, जैसे नदी की धारा बहती है। चलने में। अगर अमरीका बहुत धनी है तो उसका कुल कारण इतना है कि अमरीका एकमात्र देश है जो धन का करेंसी होने का अर्थ समझता है; चलता रहे, बहता रहे। अगर यह हमारा देश गरीब है तो उसका कारण यही है कि हम धन को पकड़ना जानते हैं। और पकड़ते ही धन व्यर्थ हो जाता है। फिर सोने की ईंट में और पीतल की ईंट में कोई फर्क नहीं होता। बचाओ

कि धन मर गया, तुमने गरदन घोंट दी। फैलाओ, उपयोग कर लो। जितना उपयोग कर लेते हो उतना उसका अर्थ है।
और यही जीवन-धन के संबंध में भी सच है। जीवन को पकड़ कर मत बैठे रहो। कंजूस बन कर मत बैठे रहो। इसका उपयोग करो। फिर उपयोग जितना विराट करना चाहो, कर सकते हो। इससे चाहो तो कचरा खरीद सकते हो, उतना मूल्य होगा तुम्हारे जीवन का। इससे चाहो तो परमात्मा खरीद सकता हो, उतना मूल्य होगा तुम्हारे जीवन का। जीवन तो कोरी किताब है, तुम उस पर जो लिखोगे वही मूल्य हो जाएगा। गालियां लिख सकते हो, गीत लिख सकते हो। सब तुम पर निर्भर है। लोग मुझसे आकर पूछते हैंः जीवन का अर्थ क्या है? मैं उनसे कहता हूंः जीवन का अपने में कोई अर्थ नहीं होता, अर्थ डालना होता है। जीवन कुछ ऐसा थोड़े ही है कि रेडीमेड अर्थ, कि गए बाजार से और खरीद लाए। जीवन में अर्थ डालना होता है। इसलिए बुद्ध के जीवन में कुछ अर्थ होता है, कृष्ण के जीवन में, क्राइस्ट के जीवन में कुछ अर्थ होता है। तैमूरलंग के जीवन में क्या अर्थ होगा? नादिरशाह के जीवन में क्या अर्थ होगा? खून-खराबा है, अर्थ कहां? मार-काट है, अर्थ कहां? आपा-धापी है, अर्थ कहां? अर्थ होता नहीं जीवन में। रखा-रखाया नहीं है कि तुम गए और दरवाजा खोला और अर्थ मिल गया। अर्थ निर्मित करना होता है। अर्थ का सृजन करना होता है। अर्थ के लिए प्रयास करना होता है, प्रार्थना करनी होती है, प्रतीक्षा करनी होती है।
हर आदमी अपने जीवन को अर्थ देता है। अगर तुम्हारे जीवन में अर्थ न हो
तो एक बात ख्याल में ले लेनाः तुमने अर्थ दिया नहीं। अगर तुम्हारी किताब कोरी हो तो उसका अर्थ हैः तुमने गीत लिखा नहीं। अगर तुम एक अनगढ़ पत्थर लिए बैठे हो तो कैसे अर्थ होगा?
माइकल एंजिलो एक रास्ते से गुजरता था। और उसने संगमरमर के पत्थर की दुकान के पास एक बड़ा संगमरमर का पत्थर पड़ा देखा--अनगढ़। राह के किनारे। उसने दुकानदार से पूछा कि और सब पत्थर संहाल कर रखे गए हैं, भीतर रखे गए हैं, यह पत्थर बाहर क्यों डला है?
उसने कहा: यह पत्थर बेकार है। इसे कोई मूर्तिकार खरीदने को राजी नहीं है। आपकी इसमें उत्सुकता है?
माइकल एंजिलो ने कहाः मेरी उत्सुकता है। उसने कहाः आप इसको मुफ्त ले जाए। यह टले यहां से जगह तो खाली हो। बस इतना ही काफी है कि यह टल जाए यहां से। यह आज दस वर्ष से यहां पड़ा है, कोई खरीददार नहीं मिलता। आप ले जाओ। कुछ पैसे देने की जरूरत नहीं है। अगर आप कहो तो आपके घर तक पहुंचवाने का काम भी मैं कर देता हूं।
दो वर्ष बाद माइकल एंजिलो ने उस पत्थर के दुकानदार को अपने घर आमंत्रित किया कि मैंने एक मूर्ति बनाई है, तुम्हें दिखाना चाहूंगा। वह तो उस पत्थर की बात भूल ही गया था। मूर्ति देख कर तो दंग रह गया, ऐसी मूर्ति शायद कभी बनाई नहीं गई थी! मरियम जब जीसस को सूली से उतार रही है, उसकी मूर्ति है। मरियम के हाथों में जीसस की लाश है। इतनी जीवंत है कि उसे भरोसा नहीं आया। उसने कहाः लेकिन यह पत्थर तुम कहां से लाए? इतना अदभुत पत्थर तुम्हें कहां मिला?
माइकल एंजिलो हंसने लगा। उसने कहा: यह वही पत्थर है, जो तुमने व्यर्थ समझकर दुकान के बाहर फेंक दिया था और मुझे मुफ्त में दे दिया था। इतना ही नहीं, मेरे घर तक पहुंचवा दिया था।
वही पत्थर है! उस दुकानदार को तो भरोसा ही नहीं आया। उसने कहा: तुम मजाक करते होओगे। उसको तो कोई लेने को भी तैयार नहीं था, दो पैसा देने को तैयार नहीं था। तुमने उस पत्थर को इतना महिमा, इतना रूप, इतना लावण्य दे दिया! तुम्हें पता कैसे चला कि यह पत्थर इतनी सुंदर प्रतिमा बन सकता है। माइकल एंजिलो ने कहाः आंखें चाहिए। पत्थरों के भीतर देखने वाली आंख चाहिए।
अधिकतर लोगों के जीवन अनगढ़ रह जाते हैं, दो कौड़ी उनका मूल्य होता है। मगर वह तुम्हारे ही कारण। तुमने कभी तराशा नहीं। तुमने कभी छैनी नहीं उठाई। तुमने कभी अपने को गढ़ा नहीं। तुमने कभी इसकी फिकर न की कि यह मेरा जीवन जो अभी अनगढ़ पत्थर है, एक सुंदर मूर्ति बन सकती है। इसके भीतर छिपा

हुआ क्राइस्ट प्रकट हो सकता है। इसके भीतर छिपा हुआ बुद्ध प्रकट हो सकता है।
वस्तुतः माइकल एंजिलो के जो शब्द थे, वे ये थे कि मैंने कुछ नहीं किया है; मैं जब रास्ते से निकलता था, इस पत्थर के भीतर पड़े हुए जीसस ने मुझे पुकारा कि माइकल एंजिलो, मुझे मुक्त करो। उनकी आवाज सुन कर ही मैं इस पत्थर को ले आया। मैंने कुछ किया नहीं है, सिर्प जीसस के आस-पास जो व्यर्थ के पत्थर थे वे छांट दिए हैं, जीसस प्रकट हो गए हैं।
प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा को अपने भीतर लिए बैठा है। थोड़े से पत्थर छांटने हैं, थोड़ी छैनी उठानी है। उस छैनी उठाने का नाम ही साधना है।
और ध्यान रखना, अगर तुम्हें अनगढ़ हीरा भी मिल जाए तो पहचान न सकोगे।
जब पहली दफा कोहिनूर जिसको मिला था, वह पहचाना ही नहीं था कि कोहिनूर है। उसने तो अपने बच्चों को खेलने को दे दिया था। रंगीन पत्थर! सोच भी नहीं सकता था कि इतनी बहूमूल्य चीज है। बच्चे खेलते रहे थे, कई दिनों तक खेलते रहे थे। आज कोहिनूर जगत का सबसे बड़ा हीरा है। और तुम्हें पता है जिस आदमी को मिला था उससे अब वजन कोहिनूर का घट कर एक तिहाई रह गया है। इतना तराशा गया है! वजन घट गया है, कीमत बढ़ गई है। वजन रोज घटता गया है और कीमत रोज बढ़ती गई है।
जब कोई आदमी अपने भीतर के हीरे को तराशता है तो एक दिन वजन बिल्कुल समाप्त हो जाता है, भारहीन हो जाता है। और मूल्य ही मूल्य रह जाता है। पंख लग जाते हैं। आकाश में उड़ने की क्षमता आ जाती है।
हीरा जन्म न बारंबार समुझि मन चेत हो।।
जैसे कीट पतंग पषान, भए पसु पच्छी।
जल तरंग जल मांहि, रहे कच्छा औ मच्छी।।
अंग उघारे रहै सदा, कबहुं न पावै सुक्ख।
सत्य नाम जाने बिना जनम जनम बड़ दुक्ख।।
कहते हैं: .जरा देखो, अपने चारों तरफ देखो, कीट पतंगों को देखो, मगर-मच्छियों को देखो। ये जीवन की जो अलग-अलग योनियां हैं, इनको गौर से देखो, ये सब तुम्हारी योनियां हैं। इनसे तुम होकर आए हो। इनसे बड़ी मुश्किल से तुम मुक्त हो सके हो। बड़ी चेष्टा से, बड़े श्रम से, तुम किसी तरह इन कारागृहों के बाहर आए हो। तुम्हें मनुष्य की स्वतंत्रता और गरिमा मिली है। ऐसा न हो कि बस सोच लो कि घर आ गया। घर अभी आया नहीं। अभी घर आ सकता है। यह पहला मौका है। मनुष्य होने के बाद घर आने का मौका है, क्योंकि अब तुम चेत सकते हो। चेत जाओ तो परमात्मा का पता चल जाए। जितनी तुम्हारी चेतना ऊंची उठेगी उतनी ऊंचाइयों का तुम्हें पता चलेगा।
और मनुष्य की चेतना अंतिम सीमा तक उठ सकती है। यही तो बुद्धों की कथा है। यही तो नानक की। यही तो कबीर की यही तो मोहम्मद की, मंसूर की। यही तो कथा है उनकी, जो जागे, जो चेते, जिन्होंने अपने जीवन को और बड़े जीवन को पाने के लिए समर्पित किया।
है आखिरत का खौफ गमे-दीनवी के बाद
एक और जिंदगी भी है इस जिंदगी के बाद
एक और जिंदगी भी है, इसे याद करो और तुम बिल्कुल आखिरी किनारे पर आकर खड़े हो, जहां से छलांग लग सकती है। इसलिए "हीरा जनम" कहा है।
है आखिरत का खौफ, गमे-दीनवी के बाद
एक और भी जिंदगी है इस जिंदगी के बाद
वाइज! यह बंदगी कहीं बेकार हो न जाए
तू बंदगी पर नाज न कर बंदगी के बाद
लोग अहंकार में जिंदगी गंवा रहे हैं। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि धर्म में भी उत्सुक हो जाते हैं, मगर अहंकार पीछा नहीं छोड़ता, तो अहंकार धर्म को भी नष्ट कर देता है। तब लोग प्रार्थना की अकड़ से भर जाते हैं, साधना की अकड़ से भर जाते हैं।
तू बंदगी पर नाज न कर बंदगी के बाद
अगर नाज किया, अगर अकड़ आ गई, अगर अस्मिता आ गई, अहंकार आ गया, तो बंदगी व्यर्थ हो गई। मनुष्य को इतना चेतना है कि अहंकार के बाहर हो जाए। तुम और

बहुत सी चीजों के बाहर होते आए हो। पत्थर में थे किसी दिन, बाहर हुए; पौधे हुए। पौधे में थे किसी दिन, जमे थे जड़ जमीन में, मुक्त न थे। पशु हुए, चलने की क्षमता आई।
अगर तुम जीवन को गौर से देखो तो जीवन के विकास की कथा स्वातंष्य की कथा है। इसलिए तो हम परम अवस्था को मोक्ष कहते हैं, अंतिम अवस्था को स्वतंत्रता कहते हैं। क्यों? पत्थर से परमात्मा तक की यात्रा को अगर गौर से देखागे तो उसी योनि को हम ऊंची योनि कहते हैं जो पिछली योनि से ज्यादा स्वतंत्र है। चट्टान की स्वतंत्रता पौधों से कम है। पौधे कम से कम हवा में नाच तो सकते हैं, चट्टान उतना भी नहीं कर सकती। पौधे कम से कम ऊपर की तरफ बढ़ तो सकते हैं, चल नहीं सकते, मगर आकाश की तरफ थोड़ी यात्रा तो कर सकते हैं। चट्टान वह भी नहीं कर सकती।
पौधे उदास होते हैं। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण हैं। और आनंदित होते हैं, इसके भी वैज्ञानिक प्रमाण हैं। चट्टान को उतनी भी सुविधा नहीं, उतनी भी स्वतंत्रता नहीं। चट्टान बड़ा कारागृह है। एक कैद। जंजीरें ही जंजीरे हैं। लेकिन पौधे की तकलीफ यह है कि उसके पैर जमीन में गड़े हैं, वह चल नहीं सकता। थोड़ा-थोड़ा सरक सकता है। कुछ पौधे हैं जो थोड़ा-थोड़ा सरकते हैं। अगर जल-स्रोत खत्म हो जाएं तो कुछ पौधे हैं, थोड़ा-बहुत, ज्यादा नहीं, लंबी यात्रा नहीं कर सकते, मगर कुछ फिट सरक सकते हैं। धीरे-धीरे जिस तरफ जलस्रोत हो उस तरफ की जड़ें बड़ी हो जाती हैं; जिस तरफ जलस्रोत न हों, उस तरफ की जड़ें सिकुड़ जाती हैं, टूट जाती हैं। और धीरे-धीरे पौधा सरक पाता है। दलदल में पौधे थोड़ा सरक जाते हैं, क्योंकि जमीन पोली होती है तरल होती है। मगर स्वतंत्रता ज्यादा नहीं है।
पशुओं की स्वतंत्रता ज्यादा है। चल सकते हैं। अगर यहां जल नहीं मिलेगा, तो दस मील दूर जाकर पी सकते हैं। अगर यहां भोजन नहीं मिलेगा तो कहीं और भोजन की तलाश कर लेंगे। स्वतंत्रता बढ़ गई। मगर बहुत ज्यादा नहीं। इसलिए तो बहुत से पशु पृथ्वी पर रहे और मर गए, उनकी सिर्प अब लाशें मिलती हैं। क्योंकि हालतें इतनी बदलीं कि वे पशु नई हालतों के लिए अपने को राजी न कर पाए। हालतें रोज बदलती हैं।
समझो कि अचानक सर्दी आ जाए, तो पशु कोट नहीं बना सकता। इतनी स्वतंत्रता उसकी नहीं है। वह मर जाएगा। या बहुत धूप हो जाए तो वह एरकंडीशनिंग पैदा नहीं कर सकता। वह उतनी स्वतंत्रता उसकी नहीं है। वह बंधा है। उसकी भी एक सीमा है। थोड़ा-बहुत हो तो इंतजाम कर लेता है। धूप हो जाए तो वृक्ष के नीचे बैठ जाता है जाकर। सर्दी हो जाए तो धूप में खड़ा हो जाता है आकर। बस सीमा है।
मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने बड़े अर्थो में स्वतत्रंता पैदा कर ली। वह कई अर्थो में अपना मालिक हो गया। वह प्रकृति से बहुत अर्थो में मुक्त हो गया है। निर्भर नहीं है।
इसलिए मनुष्यों में तुम ख्याल रखना, जो जाति जितनी ज्यादा मुक्त होती
है उतनी विकासमान होती है। जो जाति अतीत से बहुत दबी होती है और परंपरावादी होती है, विकासमान नहीं होती। क्योंकि उसकी स्वतंत्रता उतनी ही कम हो जाती है। अतीत से दबी हुई जातियां देर-अबेर मर जाती हैं, बच नहीं सकतीं। अतीत से दबे होने का अर्थ यह होता है कि उनके पास ऐसे प्रश्नों के उत्तर हैं, जो प्रश्न ही अब नहीं रहे और वे उन्हीं उत्तरों को पकड़े बैठ हैं।
अब जैसे वर्षा नहीं होती तो हिंदू यज्ञ करता है। अब यह उत्तर ही फिजूल
हो गया है। अब वर्षा के बेहतर उपाय हैं, मगर तुम यज्ञ कर रहे हो, उसमें लाखों-करोड़ों रुपए जला रहे हो! और मूढ़ता का तो कोई अंत नहीं है। तुम्हारे मिनिस्टर भी वहां पहुंच जाते हैं यज्ञों में आशीर्वाद लेने।
अगर यह देश मर रहा है, सड़ रहा है, तो उसका कुल कारण इतना है कि जो बातें हमें कभी की छोड़ देनी चाहिए थीं, उनको हम नहीं छोड़ पाते। हम उनको पकड़े हैं। हमारी छोड़ने की स्वतंत्रता बड़ी कम है।
तुम जानकर चकित होओगे, ऐसे उल्लेख हैं इतिहास में कि कोई जाति चावल ही खाती थी। चावल खत्म हो गया तो वह मर गई, मगर वह गेहूं खाने के लिए राजी नहीं

हुई। बड़े सिद्धांतवादी लोग रहे होंगे कि हम तो बस चावल ही खाएंगे, हम गेहूं नहीं खा सकते; कभी हमारे बापदादों ने नहीं खाया, तो हम कैसे खा सकते हैं। हमारे बापदादे जो करते रहे, वहीं हम करेंगे; हालांकि समय बदल गया, स्थिति बदल गई, ढंग बदल गए।
जीवन नये उत्तर मांगता है, लेकिन तुम अपने बापदादों में जड़ें जमाए बैठे हो। तुम्हारे बापदादे यज्ञ करते थे जब पानी नहीं गिरता था। अब ज्यादा बेहतर उपाय हैं। पिपरमिंट का छिड़काव कर दो बादलों में और पानी गिरेगा, था.ेडा बर्प का छिड़काव कर दो बादलों में और पानी गिरेगा। रूस में पानी गिराया जा रहा है। रेगिस्तान लहलहाते हैं, बगीचे हो गए हैं और हिंदुस्तान में लहलहाते बगीचे धीरे-धीरे रेगिस्तान होते जा रहे हैं। और तुम यह यज्ञ कर रहे हो। करोड़ों रुपए यज्ञ में जलाते हो! मजा यह है कि वर्षा होकर और गेहूं तो पैदा नहीं होता; जो तुम्हारे पास थे वे यज्ञ में जल जाते हैं। वर्षा होकर या यज्ञ से गऊ का दूध तो नहीं बढ़ता, लेकिन गऊ के पास जो दूध था, घी था, वह भी यज्ञ में चला जाता है। मूढ़ता है।
जितनी मूढ़ता होती है उतनी परतंत्रता होती है।
मेरे एक मित्र हैं। संस्कृत के बड़े विद्वान हैं। एक प्रोफेसर है किसी विश्वविद्यालय में। पंडित हैं। ब्राह्मण हैं और बड़े रूढ़िवादी। वे कुछ शास्त्रों की खोज करते हुए तिब्बत गए। तिब्बत रहना उनको मुश्किल हो गया, क्योंकि तिब्बत में तुम पांच बजे ठंडे पानी से स्नान करोगे तो मरोगे। मगर उनके बापदादे सदा से करते रहे। तो वह तो पांच बजे ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करना ही है। अब उनको पता नहीं कि बाप-दादे कभी तिब्बत गए नहीं। हिंदुस्तान में जो नहीं करता है सुबह ठंडे पानी से स्नान, वह पागल है और तिब्बत में जो करता है वह पागल है। बस वह जल्दी ही भाग आए। उनकी जो शोध करने गए थे, वह पूरी नहीं कर सके, क्योंकि पांच बजे तो नहाना ही पड़ेगा और पांच बजे नहा लेते तो दिनभर के लिए मुर्दा हो जाते, सब हाथ पैर ठंडे हो जाते। फिर मसाज करो मालिश करो, गरमी दो, तब कहीं वे थोड़े-बहुत गरम होते। तिब्बत के धर्मशास्त्र कहते हैंः साल में एक बार जरूर नहाना चाहिए। मगर मूढ़ताएं कुछ अलग-अलग नहीं है। मेरे पास कुछ तिब्बती लामा आकर एक बार रुके। सारा घर बदबू से भर गया, क्योंकि वे वर्ष में एक बार नहाने का विश्वास रखते हैं। तिब्बत में बिल्कुल ठीक है, वहां धूल भी नहीं जमती, पसीना भी नहीं पैदा होता। भारत में भी आ गए हैं वे, मगर वे अपने लबादे वही पहने हुए हैं--तिब्बती लबादे! यहां आग जल रही है चारों तरफ, वे तिब्बती लबादे पहने हुए हैं। उनके भीतर पसीना ही पसीना इकट्ठा हो रहा है और नहाने का उन्हें ख्याल ही नहीं है। मैंने उनसे कहा कि भई या तो तुम रहो इस घर में या मैं रहूं, दोनों साथ नहीं रह सकते। या तो मैं चला।
वे कहने लगेः क्यों? हम तो आपके ही सत्संग के लिए आए हैं। मैंने कहाः सत्संग यह बहुत महंगा पड़ रहा है। यह इतनी बदबू मैं नहीं सह सकता। तुम नहाओ।
उन्होंने कहाः नहाओ! लेकिन हमारे शास्त्र कहते हैं कि साल में एक दफे जरूर नहाना चाहिए, तो हम एक दफे नहाते हैं। मैंने कहा: यहां तुम्हें दिन में दो बार नहाना पड़ेगा। मगर उनको भी अखरता है। ठंडे मुल्कों में, जैसे रूस में या साइबेरिया में, शराब पीना जीवन का अनिवार्य अंग है, जैसे पानी पीना। लेकिन तुम अगर वहां जाओगे और अपना सिद्धांत लगाओगे कि शराब मैं नहीं पी सकता, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे।
स्वतंत्रता का अर्थ होता हैः चैतन्य, बोध, समझ। मनुष्य सर्वाधिक स्वतंत्र है, लेकिन मनुष्यों में कुछ जातियों ने ज्यादा स्वतंत्रता अनुभव की है बजाय और जातियों के। जिन जातियों ने ज्यादा स्वतंत्रता अनुभव की है वे विकास के शिखर पर चढ़ गईं। इस देश ने तो सैकड़ों वर्ष ऐसे गंवाए कि हम समुद्र-यात्रा पर नहीं जा सकते थे, क्योंकि समुद्र-यात्रा का उल्लेख शास्त्रों में नहीं है। समुद्र-यात्रा पर जो गया वह म्लेच्छ हो गया। स्वाभाविक था कि जो समुद्र-यात्रा कर सकते थे, वे हमारे मालिक हो गए। होना ही था।

मनुष्य सर्वाधिक स्वतंत्र है और मनुष्य और भी स्वतंत्र हो जाता है अगर उसमें समझ हो। अगर वह समझ पूर्वक जिए, रूढ़ि से न जीए... रूढ़ि से जीने वाला मनुष्य ठीक अर्थो में मनुष्य नहीं है। उसमें कुछ कमी है। उसमें कुछ पशुता शेष है।
परंपरावादी में थोड़ी पशुता शेष रहती है। इसलिए ठीक धार्मिक व्यक्ति परंपरावादी नहीं हो सकता। ठीक धार्मिक व्यक्ति विद्रोही होता है, बगावती होता है। वह अपनी समझ से जीता है, शास्त्र से नहीं। अगर समझ और शास्त्र में विरोध हो तो वह समझ के पीछे जाता है, शास्त्र के पीछे नहीं। परंपरावादी समझ को एक तरफ रख देता है, शास्त्र के पीछे जाता है।
मेरी देशना यही है कि तुम अपनी समझ से जियो। तुम्हारा शास्त्र हो सकता है दस हजार साल पहले लिखा गया था और जब लिखा गया था, तो परिस्थितियां बहुत भिन्न थीं, लोग बहुत भिन्न थे, मान्यताएं बहुत भिन्न थीं। दस हजार साल में आदमी बहुत यात्रा कर आया है। अब तुम्हारे पास दस हजार साल की समझ संगृहीत हो गई है। तुम शास्त्र से ज्यादा समझदार हो। अगर तुम उपयोग करना अपनी समझ का सीख लो, तो अब शास्त्र में देख-देख कर लौट कर जाने की कोई जरूरत नहीं है। शास्त्र को दस हजार साल में कोई अनुभव नहीं हुआ, वही के वही पड़ा है। शास्त्र कोई अनुभव कर भी नहीं सकता है--जड़ है। लेकिन दस हजार साल में आदमी की चेतना विकसित होती रही, अनुभव करती रही। अनुभव का अंबार बढ़ता चला गया है।
धनी धरमदास कहते हैंः यह अवसर अवसर है, अंत नहीं। और अभी परम स्वतंत्रता घटनी है।
एक और जिंदगी भी है इस जिंदगी के बाद
है आखिरत का खौफ गमे-दीनवी के बाद
एक और जिंदगी भी है इस जिंदगी के बाद
वाइज! यह बंदगी कहीं बेकार हो न जाए
तू बंदगी पर नाज न कर बंदगी के बाद
पिन्हा हजार गम हैं मसर्रत की ओट में
आंसू कहीं तड़प के न निकलें हंसी के बाद
इंसा को है जरूरते-अम्नो-अमां मगर
पैगामे अम्न दीजे न इंशां-कशी के बाद
क्या उनसे रहबरी की तवक्कअ रखे कोई
जो आ सके न राह पै बे-रहरवी के बाद।
बहुत भटकने का एक ही अर्थ है कि भटक-भटक कर कोई सीखे, समझे, जीवन के कड़वे अनुभव से सार निचोड़े। भटकाव का भी मूल्य है। भटकनेवाले भी पहुंचते हैं। इसलिए भटकाव को मैं पाप नहीं कहता, लेकिन भटकाव तुम्हारी आदत न हो जाए। खूब भटक लिए हो! कितने-कितने जीवन के ढंग देख लिए, कितने-कितने रूप देख लिए, कितने-कितने वासना के प्रकार देख लिए, कितनी शैलियों में जी लिए! काफी भटक चुके हो! अब समझ आनी चाहिए।
और समझ के दो सूत्र हैं। एक, कि यह जीवन अपना गंतव्य अपने-आप में नहीं है। यह जीवन सीढ़ी है--एक और बड़े जीवन के लिए। और दूसरा, कि स्वतंत्रता ही विकास की यात्रा है। स्वतंत्रता ही विकास का आधार है। और स्वतंत्रता ही मापदंड है विकास का। तो अंतिम मुक्ति, अंतिम स्वतंत्रता तो परमात्मा में मिल सकती है--परमात्मा होकर मिल सकती है। उसके पहले तो कुछ न कुछ कमी रह जाएगी, कुछ न कुछ सीमा रह जाएगी, कुछ न कुछ दीवालें घेरे रहेंगी।
आदमी उस जगह है जहां से चाहे तो सारी सीमाएं तोड़ सकता है, एक छलांग में परमात्मा में लीन हो सकता है। आदमी उस जगह है, जहां गंगा पहुंचकर होती है सागर के किनारे। बस एक कदम और कि सागर में उतर जाए।
लेकिन बहुत से लोग जीवन के अवसर को गंवा देते हैं। वे समझ लेते हैं:
बस जीवन मिल गया, सब मिल गया। कुछ धन कमा लें, कुछ पद कमा लें, कुछ प्रतिष्ठा कमा लें, कुछ नाम छोड़ जाएं। लेकिन तब तुम्हारा चाक फिर घूम जाएगा, फिर अ ब स से यात्रा शुरू होगी।
हीरा जन्म न बारंबार समुझि मन चेत हो।
सत्य नाम जाने बिना जनम जनम बड़ दुक्ख।

एक परमात्मा को ही जानकर सुख का अनुभव शुरू होता है। उसके जाने बिना सिर्प दुख है।
दुख की परिभाषा समझ लेना। दुख की परिभाषा का अर्थ होता है: हमें अपने परम स्वभाव का पता नहीं है, इसलिए दुख है। हम जो हैं, हमें उसका पता नहीं है, इसलिए दुख है दुख आत्म-अज्ञान है। इसलिए हम जो भी करते हैं, गलत हो जाता है। हमें पता ही नहीं है कि हमारे साथ किस चीज का तालमेल बैठेगा। इसलिए हम जो भी करते हैं, वह गलत हो जाता है। हमें अपने स्वभाव का पता चल जाए, हमारा परमात्मा से संबंध जुड़ जाए, फिर जो भी हमसे होगा ठीक होगा। फिर गलत होता ही नहीं। छऔर जब गलत होता ही नहीं, दुख कैसे होगा? दुख गलती का फल है। दुख गलती का परिणाम है।
सत्य नाम जाने बिना जनम जनम बड़ दुक्ख।
और बहुत दुख उठा लिया। और यह अब घड़ी आ गई कि सत्य को जाना जा सकता है। इसे चूक मत जाना
सीतल पासा ढारि, दाव खेलो सम्हारी।
धरमदास कहते हैंः अब मौका मत चूको। यह जुआ खेल ही लो। यह जुआ है, क्योंकि यह हिम्मतवरों का काम है, जुआरियों का काम है। इस पर दांव लगाना होगा। और जुआ क्यों कहते हैं इसे? मैं भी इसे जुआ कहता हूं।
धर्म जुआरी का काम है, दुकानदारों का नहीं। दुकानदार हमेशा इस फिकर में रहता हैः कम दांव पर लगाना पड़े और ज्यादा लाभ हो। वही दुकानदारी का अर्थ होता है। लगाना कम पड़े, लाभ ज्यादा हो। जितना कम लगाना पड़े उतना अच्छा। और जितना ज्यादा लाभ हो जाए उतना अच्छा। हानि की संभावना कम से कम रहे, यही दुकानदार की पूरी चित्त दशा है। इसलिए जितना कम लगेगा उतनी कम हानि की संभावना है। दो पैसे लगाए हैं और लाख मिल जाएं, यह उसकी चेष्टा है। अगर खोएंगे तो दो पैसे खोएंगे, कुछ खास नहीं खोएगा; मिलेंगे तो काफी मिल जानेवाले हैं।
दुकानदार का मन पूरे समय लाभ की भाषा में सोचता है, हिसाब-किताब और गणित। जुआरी का एक और ढंग है वह सब लगा देता है। वह कहता हैः सब इकट्ठा लगा दिया। सब लगाने में खतरा है। मिले तो सब मिल जाएगा और गया तो सब चला जाएगा। खतरा यही है। फिर मिलने का क्या पक्का है? किसी को कभी मिला है, इसका भी क्या पक्का है? पता है बुद्ध को मिला कि नहीं मिला? कौन जाने न मिला हो, झूठ ही कहते हों मिल गया! कैसे तुम भरोसा करो? क्योंकि यह बात तो भीतरी है। यह रस तो भीतरी है। बुद्ध के पास भी कोई प्रमाण तो नहीं है कि हाथ पर रखकर बता दें। मान लो तो मान लो। मगर मानना तो फिर जुआरी का ही काम है।
दुकानदार कहता हैः प्रमाण क्या है? आपको ईश्वर मिला, मुझे दिखा दें।
आप को समाधि लगी, प्रमाण क्या है? आपको आत्मा का अनुभव हुआ, प्रमाण क्या है? प्रमाण चाहिए, वस्तुगत प्रमाण चाहिए। विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रमाण चाहिए।
कोई प्रमाण नहीं है। प्रेम का कोई प्रमाण नहीं है। प्रार्थना का कोई प्रमाण नहीं है। समाधि का कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण क्षुद्र के होते हैं, विराट के नहीं होते। प्रमाण बाहर की बातों के होते हैं, भीतर की बातों के नहीं होते। भीतर की बातें तो भीतर तुम अपने जाओगे तो जानोगे। यह तो बड़ी कठिन बात है। बुद्ध होओगे तब तुम जानोगे कि बुद्ध को जो मिला, वह सच मिला था। मगर इसके पहले तुम नहीं जान सकोगे। फिर मिलने के बाद जाना, तो जानने से सार क्या है? सार तो तब था कि जब दांव पर लगाना था तब पक्का प्रमाण हो जाता कि हां मिलता है, तो दांव लगाने में आसानी हो जाती है। फिर तुम दुकानदार होते तो भी दांव लगा देते।
जुआरी का मतलब हैः ज्ञात को अज्ञात के लिए दांव पर लगाना; जो हाथ में
है उसको उसके लिए दांव पर लगा देना, जो हाथ में नहीं है। समझदार तो कहते हैंः हाथ की आधी रोटी अच्छी। हाथ में तो है! पूरी रोटी दूर की, उससे तो आधी हाथ की रोटी अच्छी। जुआरी कहते हैं कि आधे से मन तो कभी भरेगा नहीं, एक बार लगा देना चाहिए। मिले तो पूरी मिले या पूरी जाए। इधर पूर्ण या उधर पूर्ण, किसी तरह पूर्ण हो जाए। या तो बिल्कुल पूरे नंगे हो जाएंगे, कुछ न बचेगा; या पूरे भर जाएंगे, सब कुछ मिल जाएगा।

जुआरी का मतलब होता हैः या तो सब या कुछ भी नहीं। या तो शून्य या पूर्ण।
सीतल पासा ढारि, दाव खेलो सम्हारी।
धनी धरमदास कहते हैं, जुआ तो खेलना होगा। संभाल कर खेलना। संभालने का मतलब यह होता है कि तैयारी से खेलना। दांव लगाने से पहले दांव लगाने योग्य अपने को बना लेना। दांव क्या लगाना है--अपने को ही दांव पर लगाना है। अपनी .जरा कीमत बना लेना, तभी तो दांव पर लगाने का कुछ मजा होगा।
सारी साधनाएं तुम्हें मूल्य देती हैं कि एक दिन तुम अपने को दांव पर लगा सको। एक दिन तुम परमात्मा को कह सकोः अब मैं आने को राजी हूं तुम्हारे चरणों में, मुझे स्वीकार कर लो! लेकिन स्वीकार होने के योग्य तो बनना होगा न! बिना स्वीकार होने के योग्य बने तुम्हें परमात्मा नहीं मिल सकेगा। पात्रता तो चाहिए न! तुम उसके चरण के पास पहुंच सको, इसकी पात्रता अर्जित करनी होगी। इसलिए कहते हैंः सम्हाल कर!
सीतल पासा ढारि... और पांसा भी शील और संतोष का बना लो, तो ही दांव में जीतोगे। यह जुआ कोई साधारण जुआ नहीं है। यह पांसा भी कोई साधारण पांसा नहीं है। शील और संतोष, दो शब्दों का उपयोग किया है।
संतोष का अर्थ होता हैः जो है, उससे मैं तृप्त हूं। जैसा है, उससे वैसा
ही तृप्त हूं। इसमें मुझे कोई ज्यादा परेशानी नहीं है। मकान बड़ा हो कि धन ज्यादा हो कि पत्नी और सुंदर हो, कि पति और स्वस्थ हो, कि बेटा और बुद्धिमान हो, इन सब में मुझे ज्यादा रस नहीं हैः जैसा है ठीक है। क्योंकि इसमें रस हो तो ऊर्जा इसी में लग जाती है। या तो बड़ा मकान बना लो, या बड़ी आत्मा बना लो। या तो बहुत धन इकट्ठा कर लो, या बहुत ध्यान कमा लो। दोनों एक साथ नहीं हो सकेंगे। तुम दोनों हाथ लड्डू नहीं कमा सकोगे; क्योंकि वही ऊर्जा है, चाहे धन कमाने में लग जाए, चाहे ध्यान जमाने में लग जाए।
तो बाहर की तरफ संतोष, ताकि सारी ऊर्जा भीतर की यात्रा पर लग जाए। संतोष और शील।
शील का अर्थ होता है: जीवन को ऐसे जियो कि जीवन एक कला हो, एक प्रसाद हो। लोग जीवन को ऐसे जी रहे हैं जिसमें न कोई कला है न कोई प्रसाद है, न कोई सौंदर्य-बोध है। लोग जीवन को बड़े आदिम ढंग से जी रहे हैं, अविकसित, असंस्कृत। अपने जीवन को संस्कार दो।
अब तुम देखो, संस्कार का क्या अर्थ होता है? और जैसे ही संस्कार में अंतर पड़ना शुरू होता है, चीजें बदलने लगती हैं। एक आदमी है जिसको फिल्मी संगीत ही संगीत मालूम होता है, जो कि संगीत है ही नहीं, सिर्प शोरगुल है--और बेहूदा शोरगुल है! जिसके पास थोड़े भी संगीतपूर्ण कान हैं उसको लगेगाः यह कौन उपद्रव कर रहा है? यह क्या पागलपन हो रहा है? हुड़दंग है, जिसको तुम फिल्मी संगीत कहते हो और जिसके लिए लोग बैठ कर बड़े दीवाने होकर सिर हिलाते हैं। इससे पता चलता है कि इन सिरों के भीतर कुछ भी नहीं है, भुस भरा है। नहीं तो यह संगीत है? और इनको अगर तुम शास्त्रीय संगीत में बिठा दो तो ये इधर देखते हैं कि यह हो क्या रहा है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक शास्त्रीय संगीत-सभा में गया। एकदम सुनते ही रोने लगा। आंख से आंसू झर-झर होने लगे। पास के आदमी ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम शास्त्रीय संगीत के इतने प्रेमी हो, इसका हमें पता नहीं था। उसने कहा कि प्रेमी! भाड़ में जाए शास्त्रीय संगीत! मैं तो इस संगीतज्ञ को देख कर रो रहा हूं।
उसने पूछा: मतलब?
उसने कहा: मतलब! यह जो कर रहा है आऽआऽआऽआ... ऐसे ही मेरा बकरा कर-कर के
मर गया था। यह मरेगा। यह बच नहीं सकता। इसका इलाज होना मुश्किल है। मेरे बकरे का भी नहीं हो सका था।
एक परिष्कार चाहिए। शास्त्रीय संगीत के लिए एक परिष्कार चाहिए। मगर तुम समझते हो? अगर शास्त्रीय संगीत को समझने की तुम में कला आ जाए तो तुम परमात्मा के ज्यादा निकट हो जाओगे, ध्यान के ज्यादा निकट हो जाओगे। तुम्हारे भीतर शील का जन्म होगा, क्योंकि जो उतने स्वरपूर्ण संगीत को

रसमुग्ध होकर सुनेगा, वह स्वयं भी स्वरपूर्ण हो जाएगा। हम वही हो जाते हैं जो हम अपने भीतर आत्मसात करते हैं।
अब फिल्मी हुड़दंग को तुम संगीत समझ रहे हो? तो स्वभावतः तुम्हारे भीतर भी वही हुड़दंग हो जाएगी। शोरगुल को संगीत समझोगे, तो तुम्हारे भीतर कामुकता जगेगी, प्रार्थना नहीं जगेगी। वासना उभार लेगी, साधना नहीं।
इस देश में शास्त्रीय संगीत का जन्म हुआ था; वह अंग था शील का। वह संस्कार का अंग था। तुम क्या देखते हो, तुम क्या सुनते हो, तुम क्या बोलते हो, तुम क्या पढ़ते हो--उस सब का परिणाम होनेवाला है। तुम्हारी उत्सुकताएं क्या हैं? सुबह से उठ कर तुम अखबार मांगते हो, या कि कृष्ण के अदभुत वचन भगवद्गीता पर नजर डालते हो, कि कुरान की प्यारी आयतें दोहराते हो, कि अखबार मांगते हो। अखबार मांगोगे तो दो कोड़ी की आत्मा हो जाएगी, दो कौड़ी का अखबार है। अखबार में पढ़ोगे क्या? यही कि कहां चोरी हुई, कि कहां डाका डाला गया, कि कहां हत्या हुई, कि कौन राजनेता बेईमान सिद्ध हो गया और कौन अभी सिद्ध होने को है आगे। क्या इकट्ठा करोगे? इसको लेकर दिन भर का पाथेय मिल गया! अब तुम चले दिन भर! और न केवल इतना कि तुमने यह कचरा सुबह से अपनी खोपड़ी में भर लिया, अब दिन भर तुम दफ्तर में, बाजार में, दूसरों के दिमाग में यही कचरा डालोगे।
तुम आदमी की बातें सुनकर समझ सकते हो, यह कौन-सा अखबार पढ़ता होगा। वही कचरा दोहराता है वह। कुरान की आयत की बात और है। जीसस के वचनों का सौंदर्य और है, कि गीता के वचन, कि उपनिषद के सूत्र!
थोड़ा परिष्कार दो अपने को, शील दो! धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अपने को निखारो--श्रेष्ठ के लिए, सुंदर के लिए। थोड़े मूल्यों में ऊंचे चढ़ो।
लोग बिल्कुल भौंड़े हो गए हैं। उनके कपड़े भौंड़े हो गए हैं। उनका उठना- बैठना भौंड़ा हो गया है। उनके साज-शृंगार भौंड़े हो गए हैं। शील खो गया है। आज तय करना मुश्किल ही है कि कौन स्त्री वेश्या है और कौन स्त्री वेश्या नहीं है, सभी वेश्याओं जैसी हो गई हैं। सभी वैसी ही भौंड़ा श्रृंगार करके चल रही हैं, सभी बाजार में प्रदर्शन कर रही है।
एक शील चाहिए। क्यों? क्योंकि इसी पात्रता से तुम परमात्मा के करीब पहुंचोगे। दांव पर तो लगाओगे, लेकिन दांव पर लगाने को तो कुछ होना चाहिए।
कुछ मूल्य तो पैदा करो! कुछ अर्थ तो पैदा करो! कुछ संगीत जन्मने दो। कुछ छंद बंधने दो। तुम्हारा जीवन कुछ सार्थकता ले।
सीतल पासा ढारि, दाव खेलो सम्हारी।
जीतौ पक्की सार, आव जनि जैहो हारी।।
जीत पक्की है, होनी ही है। तैयारी करके पूरे जाओ। और समय मत गंवाओ।...
आव जनि जैहो हारी... अगर आयु ऐसे ही गंवा दी तो फिर हार निश्चित है। फिर हार ही जाओगे। कल पर मत टालो। समय को मत गंवाओ। एक-एक क्षण बहुमूल्य है, क्योंकि कौन जाने कल हो न हो, दूसरा क्षण आए न आए! प्रत्येक क्षण को ऐसा जीयो कि जैसे यह आखिरी क्षण है। प्रत्येक क्षण को ऐसे जीयो कि जैसे अब दूसरा क्षण नहीं होगा। हर रात जब सोओ तो आखिरी प्रार्थना करके सोओ। सब तरफ से अपने को समेट लो, संवार लो। इस तरह सोओ कि अगर आज की रात परमात्मा से साक्षात्कार हो और जिंदगी छूट जाए तो तुम उसकी आंखों में आंखे डालकर देख सकोगे। तुम्हें अपराधी की तरह आंख झुका कर खड़ा नहीं हो जाना पड़ेगा। और अगर कल फिर सुबह हो तो फिर सुबह को ऐसा मान कर जीयो, धन्यवाद उसका! फिर एक दिन और मिला! थोड़ा और निखार लूं! ऐसा निखारते-निखारते, ऐसा धीरे-धीरे पखारते- पखारते, तुम्हारे भीतर वह सौंदर्य पैदा हो जाता है। अनगढ़ पत्थर मूर्ति बन जाता है। तब चढ़ाने की योग्यता आ जाती है।
रामै राम पुकारिके लीनो नरक निवास।
लेकिन लोग राम को पुकारने में भी भौंड़े हो गए हैं। वे समझते हैं कि बस राम-नाम की चदरिया ओढ़ ली, कि हो गए, अब और क्या करना है? भीतर वही के वही। सब कूड़ा-करकट वही का वही, उसी में बीच में राम-राम भी दोहरा रहे हैं, एक माला जपने लगे। तुम देखते हो, दुकानों पर लोग बैठकर माला जपते रहते हैं। देखते रहते हैं, ग्राहक तो नहीं आया!

मैं एक गांव में रहता था। मेरे सामने ही एक मिठाईवाला था। वह सुबह से
ही माला जपता रहता था। और बड़े भक्त! "भगतजी" ही वे गांव में कहलाते थे। वे एक झोली में हाथ में दिन भर ही माला लिए रहते थे, उनकी माला सरकती ही रहती थी। मगर मैं उनकी भक्ति देखकर बड़ा हैरान होता था। कुत्ता आ गया, वह अपने नौकर को इशारा करेगा--भगा! माला चल रही है, राम-राम चल रहा है, हाथ से इशारा करेगा--हटा! क्योंकि मिठाई की दुकान, कुत्ता भीतर आ जाए तो माला-वाला सब... । ग्राहक आ गया तो वह इशारा कर देगा आदमी को। दान तक का हाथ से इशारा कर देगा, और माला चल रही है, और राम-राम चल रहा है। उसके ओंठ निष्णात हो गए थे राम-राम दोहराने में। और छोटी-मोटी बात पर उसका लोगों से झगड़ा हो जाता था, तब वह गालियां देने में भी इतना ही कुशल था। उस गांव में "भगत जी" से बड़ा गाली देने वाला नहीं था। गालियां भी बड़ी छांट कर देते थे। राम-राम भी जपते थे।
जिस मन में गालियां भरी हैं, उसमें राम-राम का वास कैसे होगा? तुम नरक में राम को पुकार रहे हो! तुम जहर से भरे हुए पात्र में अमृत की आशा लगाए बैठे हो!
सुनो यह वचन, कठोर है। लेकिन समझना। रामै राम पुकारिके, लीनो नरक निवास। कितने ही लोग राम-राम पुकारते रहे और नरक में पड़े हैं। नरक में निवास ले लिया है--राम पुकार-पुकार कर! कठिन लगता है वचन, लेकिन सच है। ऐसा ही है। यह धोखा नहीं दिया जा सकता परमात्मा को। तुम क्या पुकारते हो, इसमें परमात्मा नहीं मिलता; तुम क्या हो, इससे परमात्मा मिलता है। तुम क्या कहते हो, इसका कोई मूल्य नहीं है--तुम क्या हो? तुम्हारी अंतर-ध्वनि होनी चाहिए राम की। तुम्हारी जीवनचर्या होनी चाहिए राम की। तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि जगत राम से भरा है, फिर तुम जिससे मिलो उसके प्रति भी तुम्हारा वही सम्मान होना चाहिए जैसा राम के प्रति होता है। जब सब में राम ही व्याप्त है तो बात बदल गई। तुम राम से ही घिरे हो, कैसे दुर्व्यवहार करोगे? कैसे दुष वचन बोलोगे? कैसे कठोर होओगे? कैसे गालियां बकोगे? कैसे निंदा करोगे?
रामै राम पुकारिके लीनो नरक निवास।
मुड़ गड़ाए रहे जिव, गर्भ मांहि दस मास।।
और बारबार गर्भ में पड़ना पड़ता है। गर्भ यानी गंदगी, मलमूत्र। उसमें सिर को गड़ाकर पड़े रहना पड़ता है दस महीने तक। और फिर निकलकर तुम फिर वही करने लगते हो जो तुमने पहले किया था।
कब बदलोगे? कब जीवन को नई धुन दोगे?
हीरा जन्म न बारंबार, समुझि मन चेत हो!
नाहिं जाने केहि पुण्य, प्रकट भे मानुष-देही।
मनुष्य की देह मिली और पुण्य का तुम्हें स्वाद ही नहीं है। तुमने जाना ही नहीं कि पुण्य क्या है। पाप ही जाना, बुराई ही जानी; भलाई का तुम्हें कोई अनुभव नहीं। तुम कहोगेः नहीं, ऐसा नहीं। कुछ-कुछ कभी-कभी भला भी करते हैं। राह पर भिखमंगे को कभी कुछ दो पैसे भी दे देते हैं। और कभी मंदिर में दान भी करते हैं। और कभी व्रत-उपवास भी करते हैं।
लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि धनी धरमदास ठीक कह रहे हैंः तुमने पुण्य नहीं जाना। राह पर तुम जब भिखारी को दो पैसे भी देते हो तब भी तुम्हें देने में आनंद नहीं है। तुम भिखारी को सम्मान से भी नहीं देते हो। तुम भिखारी को राम मान कर भी नहीं देते हो। तुम्हारे देने के कारण कुछ और हैं, हेतु कुछ और हैं। देखते हो, अगर भिखारी रास्ते पर अकेला मिल जाए और कोई न हो रास्ते पर, तो तुम नहीं देते। बीच बाजार में भिखारी पकड़ लेता है। इसलिए भिखारियों को बाजार में खड़े रहना पड़ता है। एकांत में तो तुम उनको दुत्कार देते हो कि "चल आगे बढ़!" भाग यहां से! भला-चंगा शरीर, तुझे क्या करना है मांग कर?" हजार उपदेश दे देते हो। लेकिन भीड़ में, बाजार में, दुकानदार जहां सब देख रहे हैं, जहां तुम्हारी प्रतिष्ठा का सवाल है, एक भिखारी आकर तुम्हारा पैर पकड़ लेता है, वहां तुम्हें दो पैसे देने पड़ते हैं, तुम देते नहीं। देने पड़ते हैं, क्योंकि दो पैसे में यह प्रतिष्ठा मिल रही है बाजार में कि आदमी बड़ा दानी है, धार्मिक है, भला आदमी है। इसके लाभ

हैं। यह तुम सच पूछो तो धंधा ही कर रहे हो। कुछ फर्क नहीं है इसमें। लोग देख रहे हैं कि आदमी देनेवाला है, दयालु है। ये दो पैसे की जगह तुम चार पैसे किसी की जेब से जल्दी काट लोगे, क्योंकि लोग तुम पर ज्यादा भरोसा करेंगे। लोग तुम्हें भला समझेंगे तो भरोसा करेंगे। ये तुमने दो पैसे दिए नहीं, धंधे में लगाए। यह इनवेस्टमेंट है। अकेले में तो तुम उसे हटाते हो, भिखमंगे को। ये तुमने भिखमंगे को दिए ही नहीं। ये तुमने दुकान में ही लगाए। यह दुकान का ही फैलाव है। यह अच्छा विज्ञापन हुआ--दो पैसे में धार्मिक, दयालु, पुण्यात्मा होने की खबर पहुंच गई गांव में। या अगर तुम कभी भिखारी को देते भी हो तो इस आशा में कि स्वर्ग मिलेगा।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा। अकड़ से स्वर्ग में प्रवेश किया। द्वारपाल ने पूछा कि भाई, बड़े अकड़ से आ रहे हो, मामला क्या है? क्या पुण्य इत्यादि किए हैं? पुण्य इत्यादि करनेवाले अकड़ से जाते हैं।
उसने कहा कि तीन पैसे मैंने दान दिए हैं। खाते-बही खोले गए। तीन ही पैसे का मामला था कुल। हेडक्लर्क ने सब देखा-दाखा। उसने अपने असिस्टेंट क्लर्क से पूछा कि भाई क्या करें, तीन पैसे इसने दिए जरूर हैं, लिखे हैं। उसके असिस्टेंट ने कहाः इसको तीन पैसे के चार पैसे ब्याज-सहित वापस कर दो और भेजो नरक। है यह नरक के योग्य ही। तीन ही पैसे दिए और ऐसे अकड़ कर आ रहा है जैसे तीन लोक दे दिए हों।
हम दे ही क्या सकते हैं? जो भी हम दे सकते हैं वह तीन ही पैसे का है। ख्याल रखना। कहानी को ऐसे ही मत समझ लेना कि तीन ही पैसे दिए तो क्या अकड़ना था! कोई तीन लाख देता, तीन लाख भी तीन ही पैसे हैं। परमात्मा के समक्ष तुम तीन लाख दो कि तीन करोड़ दो, इससे क्या फर्क पड़ता है? इस जगत की संपदा ही दो कोड़ी की है। सारी संपदा दो कौड़ी की है। इसमें अकड़। ष्ठ लेकिन, लोग सोचते हैं कि स्वर्ग मिल जाएगा। वह भी धंधा है। इस दुनिया में भी दुकान चलाते हैं, वे उस दुनिया में भी दुकान चलाना चाह रहे हैं। पुण्य का तुम्हें पता ही नहीं।
पुण्य का क्या अर्थ होता है? अकारण, आनंद-भाव से किया गया कृत्य। प्रेम से किया गया कृत्य। जिसके पीछे लेने की कोई आकांक्षा ही नहीं है। धन्यवाद की भी आकांक्षा नहीं है। कोई पानी में डूबता था, तुम दौड़ कर उसे निकाल लिए, फिर खड़े होकर यह मत राह देखना कि वह धन्यवाद दे, कि कहे कि आपने मेरा जीवन बचाया, आप मेरे जीवनदाता हो! इतनी भी आकांक्षा रही तो पुण्य खो गया।
तू बंदगी पर नाज न कर बंदगी के बाद
तुमने अपने आनंद से बचाया, बात समात हो गई। तुमने किसी को अपने आनंद
से दिया। इसलिए जब तुम किसी को कुछ दो तो देने के बाद धन्यवाद भी देना कि तूने स्वीकार किया। तू इनकार भी कर सकता था।
देखते हो, इस देश में एक परंपरा है--दान के बाद दक्षिणा देने की! वह बड़ी अदभुत परंपरा है। वह बड़ी प्यारी परंपरा है। "दक्षिणा" का मतलब क्या होता है? दक्षिणा का मतलब होता है: तुमने हमारा दान स्वीकार किया, इसका धन्यवाद। जिसको दिया है वह धन्यवाद दे, इसकी आकांक्षा है ही नहीं; जिसने दिया है वह धन्यवाद दे कि तुमने स्वीकार कर लिया हमारे प्रेम को; दो कौड़ी थी हमारे पास, तुमने स्वीकार कर लिया, इतने प्रेम से, इतने आनंद से--तुमने हमें धन्यभागी किया, तुमने हमें पुण्य का थोड़ा स्वाद दिया।
पुण्य का कोई भविष्य, फलाकांक्षा से संबंध नहीं है। पुण्य का तो स्वाद अभी मिल जाता है, यहां मिल जाता है।
नाहिं जाने केहि पुण्य, प्रकट भे मानुष-देही।
मनुष्य का जीवन मिला और पुण्य का पता न चला, तो सार क्या है? जो तुम कर रहे हो, वह तो पशु भी कर लेते हैं, पशु भी कर रहे हैं। इसमें तुम्हें भेद क्या है? तुम अपनी जिंदगी को कभी बैठकर जांचना, तुम जो कर रहे हो, इसमें और पशु के करने में भेद क्या है? तुम रोटी-रोजी कमा लेते हो, तो तुम सोचते हो कि पशु नहीं कर रहे हैं? तुम से ज्यादा बेहतर ढंग से कर रहे हैं, मजे से कर रहे हैं। तुम बच्चे पैदा कर लेते हो, तुम सोचते हो कि कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हो। इस देश में ऐसे ही समझते हैं लोग। बड़े अकड़ कर कहते हैं कि मेरे

बारह लड़के हैं। जैसे कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हो! अरे, मच्छरों से पूछो! हिसाब ही नहीं संख्या का। कीड़े-मकोड़े कर रहे हैं। तुम इसमें क्या अकड़ ले रहे हो? बारह बेटे कौन सा मामला बड़ा? और मुसीबत बढ़ा दी दुनिया की। एक बारह उपद्रवी और पैदा कर दिए। ये घिराव करेंगे, हड़ताल करेंगे और झंझट खड़ी करेंगे। लेकिन लोग सोचते हैं कि बच्चे पैदा कर दिए तो बड़ा काम कर दिया; मकान बना लिया तो बड़ा काम कर दिया। पशु-पक्षी कितने प्यारे घोंसले बना रहे हैं! उनके लायक पर्याप्त हैं।
तुम.जरा सोचना। क्रोध है, काम है, लोभ है, मद, मोह, मत्सर, सब पशुओं में है! फिर तुममें मनुष्य होने से भेद क्या है? तो एक ही बात की बात कह रहे हैं धरमदास कि पुण्य का स्वाद हो, तो तुम मनुष्य हो, तो मनुष्य होने में कुछ भेद पड़ा। इसे ख्याल रखना।
अरस्तु ने कहा हैः आदमी का भेद यह है कि आदमी में बुद्धि है, विचार है।
हम यह नहीं कहते, क्योंकि विचार तो पशुओं में भी है; थोड़ा कम होगा, मात्रा कम होगी, मगर विचार है। तुम्हारा कुत्ता भी विचार करता है। जब तुम आते हो तो पूंछ हिलाता है। तुम उसे मार भी दो तो भी पूंछ हिलाता है। बड़ा राजनीतिज्ञ है, होशियार है। कूटनीति जानता है कि पूंछ तो हिलानी ही चाहिए।
और कभी-कभी तुमने कुत्ते को देखा! वह संदिग्ध भी होता है कभी-कभी, तो भौंकता भी है, पूंछ भी हिलाता है। दुविधा में है कि मतलब करना क्या? इस वक्त ठीक करना क्या? तो दोनों ही काम कर रहा है कि फिर जो ठीक होगा, वह चलने देंगे; जो ठीक नहीं होगा, वह बंद कर देंगे। अजनबी आदमी आता है तो भौंकता भी है। देखता है, मालिक की तरफ कि मालिक क्या कहता है। पूंछ भी हिलाता है। अगर मालिक प्रेम से बुलाता है अजनबी को, हाथ हिलाता है, भौंकना बंद कर देता है, पूंछ हिलाता रहता है। अगर मालिक हाथ नहीं जोड़ता, नमस्कार नहीं करता, पूंछ हिलना बंद हो जाती है, भौंकना शुरू हो जाता है। कुत्ता भी सोच रहा है, हिसाब लगा रहा है।
चमचागीरी कुत्तों से ही नेताओं ने और नेताओं के चमचों ने सीखी है। कहां से सीखेंगे और?
पशु-पक्षी भी हिसाब कर रहे हैं, सोच रहे हैं। और कभी-कभी तो बड़ा लंबा हिसाब करते हैं। साइबेरिया में पक्षी रहते हैं। जब वहां सर्दी हो जाती है, तब वे हजारों मील की यात्रा करके उन्हीं तटों पर फिर आ जाते हैं जिन पर पिछले वर्ष आए थे, उनके बापदादे आते रहे थे। और हजारों मील की यात्रा फिर पूरी करते हैं, जब बर्प पिघल जाती है। और बड़ा मजे का मामला है। वे इतने फासले पर होते हैं कि उनको पता भी नहीं हो सकता कि बर्प कब पिघलेगी, और कभी- कभी बर्प एक महीने बाद पिघलती है तो वे एक महीने बाद लौटते हैं। और कभी-कभी बर्प जल्दी जमने लगती है तो वे जल्दी लौट आते हैं। हजारों मील दूर से! वैज्ञानिक कहते हैं कि उनके पास जानने का कोई संवेदनशील साधन है। कोई भीतर करीब-करीब जैसे रेडियो यंत्र जैसी उनके पास कोई सुविधा है कि वे जानते हैं। हिसाब से चलते हैं। अब इतने बड़े आकाश में हजारों मील की यात्रा करनी, दिशा का ख्याल रखना! उनके पास दिशा-सूचक यंत्र नहीं है। हवाई जहाज के पाइलट को, हजारों यंत्र हैं उसके पास, सुविधा के लिए। उनके पास कोई यंत्र नहीं है, मगर कभी भूलचूक नहीं होती। उन्हीं तटों पर लौट आते हैं। उन्ही स्थानों पर वापस लौट जाते हैं।
मछलियां हजारों मील की यात्रा करती हैं, उन्हीं तटों पर आ जाती हैं। फिर लौट जाती हैं, अपनी जगह वापस लौट जाती हैं। इस पर प्रयोग किए गए हैं और बड़ी हैरानी हुई। एक मछली की जाति है, जो अंडा देने इंग्लैंड आती है, क्योंकि बापदादों से वही चलता रहा। परंपरावादी है। इसलिए तो मैं रूढ़िवादी को आदमी नहीं मानता। अब वह अंडे वहीं दे सकती है। केनेडा के पास रहने लगी है अब। वहां का वातावरण अनुकूल पड़ा है उसे। मगर सदियों से उसके मां-बाप रहे थे... प्राचीन रूप से वह इंग्लैंड के किनारे की मछली है। अब वहां नहीं रहती, मगर अंडे तो बापदादे वहीं देते रहे थे। तो अब भी आती है। अंडा रखने के पहले, कई दिनों पहले उसे यात्रा शुरू कर देनी पड़ती है कि अब अंडा रखने का वक्त आ गया। और अंडे रख कर वापस चली जाती है। और तुम चकित

होओगे जान कर कि अंडे तो मां रख कर चली जाती है; अंडों से जो बच्चे होते हैं वे केनेडा की तरफ यात्रा शुरू कर देते हैं। उनको तो कोई बताने वाला भी नहीं था। मां जा ही चुकी थी। मगर वे कैसे चले केनेडा की तरफ? इनको कौन कह रहा है? इतनी बड़ी दुनिया में यह हिसाब कैसे चल रहा है?
नहीं, अरस्तु का कहना ठीक नहीं कि मनुष्य की यह विशिष्टता है--विचार करना। विचार तो सारे जगत में छाया हुआ है। मनुष्य की अगर कोई विशिष्टता होती है तो निर्विचार हो सकती है, विचार नहीं हो सकता। ध्यान हो सकता है, पुण्य हो सकता है। पुण्य का भाव सिर्प मनुष्य में है।
नाहिं जाने केहि पुण्य, प्रकट भे मानुष-देही।
मन बच कर्म सुभाव, नाम सों कर ले नेही।।
कहते हैंः मन से, वचन से, कर्म से स्वाभाविक हो जाओ, यही पुण्य है। सरल
हो जाओ और फिर तुम्हारा प्रभु के नाम से अपने-आप नेह बन जाएगा।
लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह।
सो मिथ्या कस खोवते झूठी प्रीति-सनेह।।
इतनी कठिनाइयों से पाई यह परम-देह, यह पुण्य-देह, और इसे व्यर्थ की बातों में खो रहे हो! सो मिथ्या कस खोवते झूठी प्रीति-सनेह। और व्यर्थ के प्रेम में लगे हो!
और लोगों के प्रेम भी खूब अजीब हैं! कोई कहता है, मुझे मेरी कार से बहुत प्रेम है। कोई कहता है, आइसक्रीम से बहुत प्रेम है। किसी को कपड़ों से बहुत प्रेम है।
अभी एक महिला आई। उसके पति ने तो संन्यास लिया। मैंने उससे पूछा कि तू क्यों बैठी है, जब पति संन्यास में जा रहे हैं? उसने कहाः अब आपसे क्या झूठ बोलना, मुझे साड़ियों से बहुत प्रेम है। अभी मेरा मन नहीं भरा।
कैसे-कैसे प्रेम लोग लगा कर बैठे हैं! प्रेम लगाना हो, परमात्मा से लगाओ। ष्ठ झूठी प्रीति-सनेह। बालक बुद्धि अजान... जीवन की पूरी कथा को बांटते हैं धरमदास।
बालक बुद्धि अजान, कछू मन में नहीं आने।
बचपन होता है। अज्ञान के क्षण होते हैं। सरलता के भी, निर्दोषता के भी। कुछ भी मन में विकार नहीं होते।
खेलै सहज सुभाव, जहीं आपन मन माने।।
--सहजता से बच्चा जीता है।
अधर कलोले होए रह्यो ना काहू का मान।
--न कोई अहंकार है।
भली बुरी न चित धरे बारह बरस समान।।
और भले-बुरे में भी कुछ भेद नहीं होता बच्चे को। अभी द्वंद्व पैदा नहीं हुआ। और सब को समान देखता है। अभी गरीब-अमीर में भेद नहीं है। अभी अपने-पराए में भेद नहीं है। यह पहली दशा है बचपन। और यही अंतिम दशा होनी चाहिए, तो मनुष्य ने अपने जीवन का वर्तुल पूरा कर लिया। तो उसने हीरा-जन्म व्यर्थ नहीं खोया। चक्र पूरा हो गया। जैसे पैदा हुए थे सरलचित्त, स्वाभाविक, सहज, वैसे ही मरते वक्त पुनः हो जाओ।
--बस यही धर्म है।
जीसस ने कहा है: जब तक तुम छोटे बच्चों की भांति न हो जाओ, मेरे परमात्मा के राज्य में प्रवेश न कर सकोगे।
जोवन रूप अनूप, मसी ऊपर मुख छाई।
फिर आती है जवानी, मसें भींग जाती है, मूछों की रेख निकलने लगती है।
अंग सुगंध लगाय सीस पगिया लटकाई।।
फिर आदमी अपने को संवारता है, सजाता है।
अंध भयो सूझै नहीं...
और बच्चे के पास जो आंखें थीं, वे खो जाती हैं। वह निर्दोष सरलता विदा
हो जाती है।
अंध भयो सूझै नहीं, फूटि गई हैं चार।... और बाहर की दो फूटती हैं, वह तो ठीक ही है; भीतर की भी दो फूट जाती हैं। चारों आंखें फूट जाती हैं।
झटकै पड़ै पतंग ज्यों...

जैसे पतंगा हर दीये की लौ पर झपट पड़ता है।... देखि बिरानी नार... ऐसे हर स्त्री को देख कर जवान आदमी दीवाना होने लगता है; या स्त्री जवान आदमी को देख कर दीवानी होने लगती है। एक नशे की दुनिया शुरू होती है। एक मादकता की दुनिया शुरू होती है। एक शराब शरीर में, मन में फैलने लगती है।
जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी।
संतो हो हुसियार, कियो न बांहू गाढ़ी।।
धरमदास कहते हैंः यह मौका है होशियार होने का। क्यों? क्योंकि इस समय ऊर्जा का बड़ा प्रवाह है। इस समय शक्ति जगी है। यही शक्ति मोह बन सकती है।
यही शक्ति महत्वाकांक्षा बन सकती है। यही शक्ति आसक्ति बन सकती है। यही शक्ति ध्यान बन सकती है, वीतरागता बन सकती है।
जवानी बड़ा अदभुत क्षण है! चाहो तो लगा दो संसार की व्यर्थ बातों में
और भटक जाओ। और चाहो तो परमात्मा की यात्रा पर निकल जाओ। इस ऊर्जा पर सवार होकर बड़ी यात्रा हो सकती है।
जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी।
यह जो उफान उठ रहा है, यह जो प्रेम का तूफान उठ रहा है, इसे अगर क्षुद्र
पर बिखरा दिया तो व्यर्थ हो जाएगा। इसे अगर विराट पर लगा दिया... अगर प्रेम ही करना हो तो परमात्मा को। अगर प्रेयसी ही खोजना हो तो परमात्मा में।
संतो हो हुसियार, कियो न बाहूं गाढ़ी।
दे गजगीरी प्रेम की मूंदो दसो दुआर।।
प्रेम का तूफान उठ रहा है, दसों द्वार मूद दो। सारी इंद्रियों के, कर्मेदियों के, ज्ञानेंद्रियों के, दसों इंद्रियों के द्वार मूंद दो, ताकि यह प्रेम की ऊर्जा इकट्ठी होकर ऊपर उठने लगे; फैले न, बिखरे न, यहां- वहां न पड़े रेगिस्तान में न खो जाए संसार के।
यह ऊर्जा भीतर इकट्ठी हो, इसकी बाढ़ भीतर बांध की तरह बढ़ने लगे, तो ऊपर उठेगी।
तुमने देखा, एक नदी पर बांध बांध देते हैं, तो फिर गहराई बहुत बढ़ जाती है। जो नदी पहले आगे की तरफ भाग रही थी दसों दिशाओं में, यहां-वहां जा रही थी, वह इकट्ठी हो जाती है। और नदी का जल ऊपर की तरफ उठने लगता है। जल ऊपर की तरफ उठने लगता है, यही परमात्मा से मिलने का उपाय है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर की जीवन-ऊर्जा भी ऊपर की तरफ उठ सकती है, ऊर्ध्वगमन हो सकता है। छेद रोक दो।
हम ऐसे हैं जैसे फूटी बाल्टी से कोई पानी भरता हो कुएं से। भर तो जाता
है हर बार, मगर जब तक खींचते हैं, ऊपर घाट तक आता है, तब तक सब गिर जाता है।
छेद ही छेद हैं। हमारी सारी इंद्रियां छिद्र हैं।
दे गजगीरी प्रेम की मूंदो दसो दुआर।
वा साईं के मिलन में तुम जनि लावो बार।।
देरी मत करो। उस साईं से मिलने का कोई अवसर मत खोओ। सारा प्रेम उसी पर
समर्पित कर दो।
वृद्ध भए पछिताए, जबै तीनों पन हारे।
भई पुरानी प्रीति, बोल अब लागत प्यारे।।
लचपच दुनिया ह्व रही, केस भए सब सेत।
बोलत बोल न आवई, लूटि लिए जम खेत।।
नहीं तो पीछे पछताओगे। और फिर पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गईं खेत! और
जब जीवन की सारी ऊर्जा नष्ट हो गई और जीवन के सारे अवसर खो गए और जब तुम गिरने लगे कब्र में अपनी, फिर पछताने से भी क्या होगा? समय रहते जाग जाओ! वृद्ध भए पछिताए... । बूढ़ा होकर हर आदमी पछताता है। सिर्प वे ही नहीं पछताते, जिन्होंने जीवन का सम्यक उपयोग कर लिया है। वे तो बड़े धन्यभाव से भरे होते हैं। और जब भी कोई व्यक्ति अपनी वृद्धावस्था में धन्यभाव से भरा होता है, तब जानना उसने बाल धूप में नहीं पकाए; नहीं तो शेष सबने धूप में ही पकाए हैं। जब कोई वृद्ध आंतरिक गरिमा से भरा होता है; जीवन को जान लिया, जी लिया, पहचान लिया, बुरा-भला सब देख लिया, समझ लिया, सबसे गुजर कर देख लिया, कांटे और फूल सब अनुभव कर लिए, सुख-दुख, रात-दिन, शीत-ताप, सब द्वंद्वों से गुजर चुका और इन द्वंद्वों से गुजर कर धीरे-धीरे एक बात साफ हो गई कि मैं

केवल साक्षी हूं, मैं केवल द्रष्टा हूं, मैं सिर्प देखने वाला हूं, न मैं कर्ता हूं, न भोक्ता हूं--बस, ऐसी घड़ी में वृद्धावस्था का जैसा सौंदर्य है वैसा किसी अवस्था का नहीं होता।
यह अकारण नहीं है कि इस देश में हमने वृद्धों को बड़ी पूजा दी और सम्मान दिया। उसका कारण यही था। हमने ऐसे वृद्ध देखे हैं, जो जवानी से ज्यादा बड़े सौंदर्य को उपलब्ध हुए थे। हमने ऐसे वृद्ध जाने हैं जिनका वार्द्धक्य मृत्यु का सूचक नहीं था--परम जीवन का प्रतीक था। नहीं तो वृद्ध को कोई कैसे सम्मान देगा? वृद्ध तो मर रहा है, सड़ रहा है, गल रहा है। वृद्ध से तो हम छुटकारा चाहते हैं, पूजा की बात कहां! मौत की कोई पूजा करता है? नहीं; लेकिन हमने ऐसे वृद्ध देखे, जो मर नहीं रहे थे--जो मृत्यु के पार चले गए थे; जो मरने के पहले अमृत का अनुभव कर लिए थे। और तब एक सौंदर्य, एक प्रसाद उतरता है। उसके सामने बच्चे का निर्दोषपन सिर्प अज्ञान है; जवानी का सौंदर्य सिर्प देह का है। वृद्ध के पास आत्मा का सौंदर्य पैदा हो जाता है और, सच, वास्तविक निर्दोषता उत्पन्न होती है।
बच्चे की निर्दोषता तो ऐसी है, जो आज नहीं कल खोएगी ही। अज्ञानवश है। वृद्ध की निर्दोषता ज्ञान के आधार पर खड़ी होती है, फिर खो नहीं सकती। बच्चे ने कमाई नहीं है सरलता, जन्म से मिली है। जल्दी ही समाप्त हो जाएगी।
बच्चे को भटकना ही होगा। बच्चे को अपनी निर्दोषता छोड़नी ही होगी। उसके बचाने का कोई उपाय नहीं है। वृद्ध पुनः लौट आया अपने बचपन में, दूसरा जन्म हुआ। वृद्ध द्विज हुआ। और जब कोई वृद्ध द्विज हो जाता है, दुबारा जन्म ले लेता है--तभी ब्राह्मण।
सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं और सभी को ब्राह्मण की तरह मरना चाहिए। कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। हो ही नहीं सकता। वह दस महीनों की याद करोः मुड़ गड़ाए रहे जिव, गर्भ मांहि दस मास!
शूद्र का अर्थ होता हैः अज्ञानी। देह को ही समझता है--यह मैं हूं। जिसे अपने चैतन्य का कोई पता नहीं। जिसे अभी सुधि नहीं आई है। जो अभी जागा नहीं है।
ब्राह्मण का अर्थ होता हैः जिसने जागा, देखा पहचाना और पाया कि मैं ब्रह्मं हूं। अहं-ब्रह्मास्मि!
सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं और दुर्भाग्य की बात है कि अधिकतर लोग शूद्र की तरह ही मरते हैं। कभी-कभार कोई ब्राह्मण की तरह मरता है कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर। लेकिन हर-एक का अधिकार है, जन्म-सिद्ध अधिकार है। तुम चाहो तो यह तुम्हारी मालकियत है। तुम चाहो तो यह तुम्हारा स्वरूप में ही निर्धारित, स्वरूप से ही निर्धारित अधिकार है। इसको कोई छीन नहीं सकता। लेकिन फिर तुम्हें बुढ़ापे को वैसा ही बना लेना होगा जैसा बचपन था। और बुढ़ापे को अगर बचपन जैसा बनाना हो तो जवानी में ही क्रांति करनी पड़ती है। तुम बुढ़ापे के लिए बैठे मत रह जाना, क्योंकि तब ऊर्जा खो जाएगी। जिस ऊर्जा को तुमने संसार में लगाया है वही तो ऊर्जा है तुम्हारे पास। उसी से परमात्मा को खोज सकते थे। उस ऊर्जा की तो नाव बना ली नरक जाने के लिए, फिर तुम्हारे पास बचेगा क्या?
वृद्ध भए पछिताए... । और जब कुछ नहीं बचता, सब ऊर्जा गई, सब जीवन गया, अवसर गया, तो पछतावा हाथ लगता है।... जब तीनों पन हारे। बचपन भी खो गया, जवानी भी खो गई। अब बुढ़ापा भी जा रहा है। अब सिर्प मौत बची। अब सिर्प अंधकार बचा। पछतावा न घेरेगा तो क्या होगा?
भई पुरानी प्रीति बोल अब लागत प्यारे।... अब तो आदमी लौट-लौट कर पुराना सोचने लगता है। बूढ़े हमेशा पीछे की सोचने लगते हैं, जवानी की याद करते हैं, बचपन की याद करते हैं। वे प्यारे दिन! अब उनके पास कुछ भविष्य नहीं बचा। अब थोथी संपदा रह गई है स्मृति की। अब उसी की उलट-पलट करते रहते हैं।
जिस दिन से तुम पुराने की याद करने लगो, समझना कि बूढ़े होने लगे। जिस दिन से तुम कहने लगो--"आह! वे प्यारे दिन! वे दिन जब दही-दूध की नदियां बहती थीं! वे दिन, जब घी ऐसा बिकता था और गेहूं ऐसा बिकता... ! वे दिन।"--जब तुम पुराने दिनों की बात करने लगो रसपूर्ण ढंग से, समझ लेना तुम बूढ़े हो गए।

जवान भविष्य की बातें करता हैं; बूढ़ा अतीत की बातें करता है। बच्चा वर्तमान में जीता है। अगर बुढ़ापे में तुम अतीत की बातें करो तो सांसारिक बूढ़े; और अगर भविष्य की बातें करने लगो कि स्वर्ग मिलेगा, क्योंकि मैंने इतना पुण्य किया, मंदिर बनवाया, धर्मशाला भी चलवा दीं, प्याऊ खुलवा दी--तो तुम आध्यात्मिक किस्म के जवान, मगर अभी तुम्हारा लोभ नहीं गया। अभी तुम स्वर्ग में आशा कर रहे हो कि "अप्सराएं मिलेंगी और शराब के चश्मे मिलेंगे। और वहां कोई मद्यनिषेध थोड़े ही है। वहां तो अभी भी चश्मे बह रहे हैं शराब के, "मजे से पिएंगे। और फिर यहां हमने इतनी कम पी है और इतने कम बुरे काम किए और अच्छे काम किए, इनका फल तो मिलना ही चाहिए! बैठेंगे कल्पवृक्षों के नीचे और मजा ही मजा करेंगे।" यह आध्यात्मिक किस्म का बूढ़ा। मगर ये दोनों ही बातें गलत हैं।
वास्तविक जीवन की संपदा तब मिलती है, जब वृद्ध फिर बच्चा हो गया और वर्तमान में जीने लगा। अब न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है। अब न कोई स्मृति है और न कोई कल्पना है। ऐसी घड़ी में ही व्यक्ति वर्तमान के द्वार से प्रवेश करता है और कालातीत को उपलब्ध हो जाता है। उस कालातीत का नाम ही परमात्मा है, मोक्ष है।
साक्षी बनो! अन्यथा यह जीवन--हीरा जन्म--ऐसे ही चला जाएगा।
झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर।
ललक गया मैं सुख की बांहों में
जब-जब उसने चुमकारा।
औ ललकारा जब-जब दुख ने
कब मैं अपना पौरुष हारा;
आलिंगन में प्राण निकलते।
खड्ग तले जीवन मिलता है;
झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर। सब सुख का बलिदान, तुम्हारे
पांवों की आहट अब आती
सब दुख का अवसान, तुम्हारी
मूर्ति नयन में ढलती जाती,
जहां न सुख है जहां न दुख है,
तुम हो एक--दूसरा मैं हूं,
जीभ तीसरी जो गाती है ऐसे क्षण को गीत बनाकर!
झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर।
सुख-दुख की सीमा पर साक्षी का जन्म है। सुख-दुख के ठीक मध्य में! न मैं सुख हूं, न मैं दुख हूं। न मैं देह हूं, न मैं मन हूं। न मैं यह हूं, न मैं वह हूं। नेति-नेति। वहीं साक्षी का आविर्भाव है। और जो साक्षी हो जाता है, केवल वही पछताता नहीं, शेष सब पछताते हैं।
हीरा जन्म न बारंबार, समुझि मन चेत हो।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
छठवां प्रवचन

सत्संग की कलाः संन्यास

पहला प्रश्न: क्या यह सच नहीं है कि ज्ञानोपलब्ध लोगों की अनुपस्थिति में--और वे दुर्लभ लोग सदा नहीं होते--पंडित और पुरोहित ही धर्म की मशाल जलाए रखते हैं?

धर्म कोई मशाल नहीं। जिसे जलाए रखना पड़े, वह धर्म नहीं। जिसे हम सम्हालें, वह धर्म नहीं। जो हमें संभालता है, वही धर्म है।
बिन बाती बिन तेल। न तो धर्म की कोई बाती है, न कोई तेल है। धर्म शुद्ध प्रकाश है। उसके लिए किसी ईंधन की कोई जरूरत नहीं। धर्म का ही विस्तार है। धर्म साधे हुए है सारे अस्तित्व को। पंडित-पुरोहित धर्म को साधेगा? फिर वह धर्म न रह जाएगा। हिंदू धर्म को पंडित-पुरोहित सम्हाल कर रखता है।
इस्लाम धर्म को पंडित-पुरोहित सम्हाल कर रखता है। धर्म को नहीं।
धर्म तो तब तुम्हें उपलब्ध होता है जब तुम अपने को सम्हाल लेते हो--बस तत्क्षण धर्म का दीया जल उठता है। धर्म का दीया तो जला ही हुआ था, सिर्प तुम आंखें बंद किए थे। अपने को सम्हाल लेते हो, आंख खुल जाती है।
तुम चेतो। तुम्हारे चेतते ही, तुम्हारे चैतन्य होते ही, तुम चकित हो जाते हो कि मैं जिसे खोज रहा था वह मेरे भीतर सदा से मौजूद था; जिसे मैं दूर खोज रहा था वह मेरे पास था। और जिसे मैं बाहर तलाशता था वह मेरे भीतर था। धर्म तुम्हारा स्वभाव है। धर्म मशाल नहीं। मशाल में तो तेल भी डालना होगा। कभी बुझने लगे मशाल तो सम्हालना भी होगा। किन्हीं हाथों की जरूरत पड़ेगी। धर्म तो वह है जो सब हाथों को सम्हाले हुए है। तुम श्वास धर्म के कारण ले रहे हो। तुम जी धर्म के कारण रहे हो। चांद-तारे धर्म कारण चलते हैं। पृथ्वी सम्हाली है धर्म के कारण। धर्म इस जगत को सम्हालने वाले नियम का नाम है।
धर्म को पंडित-पुरोहित कैसे सम्हालेंगे! और अगर पंडित-पुरोहित धर्म
को सम्हालेंगे, तो पंडित-पुरोहितों को सम्हालेगा? इसे एकबारगी ठीक से समझ लो। पंडित-पुरोहित जिसे संभालते हैं, वह धर्म नहीं है और धर्म नहीं हो सकता है। इसीलिए धर्म नहीं हो सकता क्योंकि पंडित-पुरोहितों के द्वारा सम्हाला गया है।
पंडित-पुरोहित खुद अंधे हैं। इन्हें रोशनी दिखी नहीं। जो इन्हें दिखा नहीं, उसे ये सम्हालेंगे? हां, शास्त्र को सम्हाल लेंगे। शास्त्र में थोड़े ही धर्म है। धर्म शून्य के अनुभव में है। शब्द में धर्म नहीं है, निःशब्द में धर्म है। निःशब्द का इन्हें कुछ पता नहीं है। धर्म मंदिर-मस्जिद में होता तो ये सम्हाल लेते। मगर धर्म मस्जिद-मंदिर में नहीं है। धर्म बहुत विराट है। सब मंदिर-मस्जिद धर्म के भीतर हैं। धर्म किसी के भीतर नहीं है।
धर्म का अर्थ होता हैः हमारे पहले जो था, हमारे बाद भी जो होगा। हम आते हैं, हम जाते हैं--धर्म रहता है। लेकिन निश्चित ही वह धर्म न तो हिंदू हो सकता है, न मुसलमान हो सकता है, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। वह तो शुद्ध धर्म है। उस धर्म को, जब भी तुम जागकर आंख खोलते हो, तुम सदा अपने पास पाते हो, अपने प्राणों में पाते हो, अपनी श्वासों में, अपने हृदय की धड़कनों में। उसे खोजने कहीं भी नहीं जाना पड़ता।
फिर पंडित-पुरोहित क्या सम्हाल रहे हैं। वे धर्म की लाश संभालते हैं, मशाल नहीं। बुद्ध से धर्म बोला, क्योंकि शून्य बोला। बुद्ध के हृदय की वीणा पर वह संगीत उठा जिसको हम अनाहत कहते हैं; वह नाद उठा। धर्म बोला बुद्ध से। बौद्ध धर्म नहीं बोला, ख्याल रखना। बुद्ध बौद्ध नहीं थे और न ईसा ईसाई थे और न कृष्ण हिंदू थे। बुद्ध से धर्म बोला। कृष्ण से धर्म बोला। क्राइस्ट से धर्म बोला। पंडित-पुरोहितों ने शब्द पकड़े, इकट्ठे किए, सम्हाले। जो बोला गया था, उसे सम्हाल कर गठरियां बांध लीं। वेद बने, बाइबिल बनी, कुरान बनी, धम्मपद बना। फिर उन गठरियों को वे सम्हाल रहे हैं

और ढो रहे हैं। और उन पर कचरा जमता जाता है, धूल बैठती जाती है। सदियां उन पर जमती जाती हैं। धूल की परतें पर घनी होती जाती हैं। अब तो शब्द भी कहां खो गए, उनका भी पता नहीं है। अब तो ये शब्द भी बड़ी धूल-धवांस में खो गए हैं। एक-एक शास्त्र पर इतनी व्याख्याएं लद गई हैं... । गीता की एक हजार व्याख्याएं हैं! उन एक हजार व्याख्याओं के जंगल से पता लगाना एकदम असंभव है कि कृष्ण ने कहा क्या था। अगर कृष्ण ने हजार बातें कही थीं तो या तो कृष्ण पागल थे या अर्जुन सुन-सुन कर पागल हो गया होगा। कृष्ण ने तो एक ही बात कही होगी। मगर वह क्या है? कैसे जानोगे?
पंडित-पुरोहितों के पास बड़ी व्याख्याएं हैं, तुम कैसे तय करोगे कि क्या कृष्ण ने कहा? एक ही उपाय है: अपने भीतर जाओ। कृष्ण वहां अब भी बोलते हैं। अर्जुन बनो, कृष्ण अब भी बोलते हैं। आनंद बनो और बुद्ध अब भी कहेंगे। अब भी वही कहेंगे जो तब कहा था। बुद्ध और कृष्ण का सवाल नहीं--धर्म बोलता है। बुद्ध एक ढंग हैं धर्म के बोलने के; कृष्ण एक और ढंग हैं। वही बात बोली जाती है जो बुद्ध ने बोली। वही! भाषा अलग होगी, भाव वही हैं। अभिव्यंजना के रंग-ढंग अलग होंगे, मगर अभिव्यंजित वही है। एक ही कहा गया है। सदा एक ही दोहराया गया है। समय जाता है, भाषाएं बदल जाती हैं, प्रतीक बदल जाते हैं, कथाएं बदल जाती हैं दृष्टांत बदल जाते हैं। मगर जिस तरफ इशारे हो रहे हैं, वह नहीं बदलता। अंगुलियां बदल जाती हैं इशारा करने वाली, मगर जिस चांद की तरफ अंगुलियां उठी हैं वह चांद वही है। इसे कोई नहीं सम्हालता।
लेकिन पंडित-पुरोहित कुछ तो सम्हालते हैं निश्चित--लाश संभालते हैं। बुद्ध चले, उनके चरण-चिह्न बने समय की रेत पर, वे उन चरण-चिह्नों को सम्हालते हैं; वे उन्हीं चरण-चिह्नों की पूजा करते हैं, उन्हीं पर फूल चढ़ाते रहते हैं। बुद्ध के चरण-चिह्नों में बुद्ध नहीं हैं। वह तो गया जो चला था। और जो चला था वह समय की रेत पर पकड़ा नहीं जा सकता। वह शाश्वत है। समय में केवल भनक सुनाई पड़ती है, प्रतिध्वनि आती है। समय में असली चीज पकड़ में नहीं आती।
मैं रास्ते पर चलूं, धूल में मेरे पैर के निशान बन जाएं, तुम उन्हीं निशानों को पकड़ कर बैठ जाओ--चूक हो जाएगी, बड़ी भूल हो जाएगी। उन चरण-चिह्नों की पूजा करने से तुम्हें कुछ भी न मिलेगा। उन्हें भूलो! उसकी तरफ देखो, जो चला। उसे खोजो, जो चला। उसके कोई चरण-चिह्न नहीं हैं, क्योंकि जो चला है वह देह नहीं है। जो चला है वह आकार नहीं है। जो चला है वह शब्द नहीं है। उसकी तरफ ख्याल करो। जरा बुद्ध की आंखों में झांको।
मेरी आंखों में झांको! मेरी देह को भूलो! मैं जो कहता हूं, उसमें बहुत
मत उलझ जाना। मैं जो हूं, उससे उलझ जाओ तो पार हो जाओ।
लाश रह जाती है। लेकिन लाशों को रख कर क्या करोगे? तुम्हारी मां चल बसी, बड़ी प्यारी थी--और कौन चाहता है कि मां चली जाए! लेकिन जब चल बसी तो लाश को ले जाते हो न मरघट? इसी देह में तो थी, यह भी सच है; मगर अब नहीं है, यह और भी ज्यादा सच है। जो इस देह में था वह पक्षी तो उड़ गया; वह हंस अब इस पिंजड़े में नहीं है। पिंजड़ा पड़ा रह गया है, हंस उड़ चुका है। हंस उड़ चुका, अब इस पिंजड़े का क्या करोगे? बांधो अर्थी, ले चलो मरघट। रखो आग में, भस्मीभूत हो जाने दो। राख भी बचे, उसे भी गंगा में डुबा आना। सब स्वाहा कर दो। करना ही पड़ता है।
प्रत्येक शास्ता के बाद यही अड़चन खड़ी होती है। शास्ता तो चला जाता है। हंसा तो उड़ गया! शब्द पड़े रह जाते हैं। समय की धूल पर पैर के निशान रह जाते हैं! स्मृतियां रह जाती हैं। लोगों ने जो देखा था, जो सुना था, उसकी याददाश्तें मन में रह जाती हैं; उन्हीं को लोग संजो कर रख लेते हैं; उन्हीं की पूजा चलने लगती है। उसी को तुम धर्म कहते हो? वह लाश है। उससे छुटकारा होना चाहिए। उससे छुटकारा हो जाए तो तुम असली की तलाश करने लगो। पिंजड़े से मुक्त हो जाओ तो हंस की तरफ आंख उठे। पिंजड़े को ही पूजते रहते हो तो हंस की तरफ देखेगा कौन? तुम्हारी आंखें पिंजड़े से भर जाती हैं। तुम पिंजड़े में ही उलझ जाते हो। तुम पिंजड़े के क्रियाकांड में ही पड़ जाते हो। वही हो रहा है-- मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में, गिरजे में, वही हो रहा है। पिंजड़े पूजे जा रहे हैं।

मशाल नहीं है धर्म। धर्म आविर्भाव है--शाश्वत का समय में; निराकार का आकार में; शून्य का शब्द में। और जब शास्ता जीवित होता है बस तभी पकड़ लेना तो पकड़ लिया; तब चूके तो चूके। फिर लकीरें पीटते रहो जीवनभर जन्मों-जन्मों तक, कुछ भी न होगा।
पंडित पुजारी, पुरोहित, मौलवी, पादरी लकीरें पीटते रहते हैं। लकीरों
पर लकीरें पीटते रहते हैं। लकीरों को सजाते रहते हैं, संवारते रहते हैं। लकीरों का श्रृंगार करते रहते हैं। और बड़ी कुशलता से। सदियों-सदियों में वे बड़े कुशल हो गए हैं। बाल की खाल निकालते रहते हैं और कुछ भी नहीं है। और लाश पड़ी रह गई है, उसमें से बदबू उठ रही है।
देखते नहीं तुम, सभी धर्मों से बदबू उठती हुई? नहीं तो हिंदू-मुसलमान लड़ता क्यों, अगर बदबू न उठती होती? धर्म के नाम पर जितना खून हुआ है, किसी और चीज के नाम पर हुआ है? धर्म के नाम पर जितना अनाचार हुआ है, किसी और चीज के नाम पर हुआ है? धर्म के नाम पर आदमी लड़ता ही तो रहा है। प्रेम की बातें चलती रहीं और तलवारों पर धार रखी जाती रही। प्रेम के गीत गाए जाते रहे और गर्दनें काटी जाती रहीं। धर्म के नाम पर कितना पाखंड हुआ है! अब भी जारी है। इस पाखंड के कारण ही मनुष्यता धार्मिक नहीं हो पा रही है।
जब तक झूठ को तुम झूठ की तरह न जानो, सच को तुम सच की तरह देखने में समर्थ न हो पाओगे।
पंडित-पुरोहित से मुक्त होना जरूरी है। उससे मुक्त होकर ही तुम्हें धर्म की पहली दफा थोड़ी-थोड़ी प्रतीति होना शुरू होगी। छोड़ो पंडित-पुजारी को, चांद-तारों से दोस्ती करो! फूलों से मुलाकात लो! नदियों-सागरों से पूछो! यह आकाश ज्यादा जानता है। इस आकाश के नीचे पड़ जाओ शांत होकर। इस आकाश को अपने भीतर उतरने दो। यह कोयल की आवाज, ये पक्षियों के गीत--इनमें कहीं धर्म ज्यादा जीवंत है!

दूसरा प्रश्नः गुरु की निंदा सुनने का हमेशा निषेध किया गया है। ऐसा
भी कहा गया है कि यदि कोई गुरु की निंदा कर रहा हो तो कान भी धो डालना चाहिए। भगवान, आपका प्रेमी तो कभी ही मिलता है; पर आपके निंदक हर जगह पर मिल जाते हैं। हमारी सामर्थ्य भी नहीं है कि हम उनको कुछ समझाएं। ऐसे बहुधा उपलब्ध मौकों पर हमें क्या करना चाहिए? कृपा करके मार्ग स्पष्ट करें।

देवानंद! जिन्होंने कहा है, गुरु की निंदा नहीं सुननी चाहिए वे गुरु न रहे होंगे, बड़े कमजोर लोग रहे होंगे। यह तो असंभव ही है कि गुरु हो और उसकी निंदा न हो। ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं।
बुद्ध की कितनी निंदा हुई, इसका तुम्हें कुछ पता है? निंदा इतनी भयंकर रूप से हुई कि इस देश से बुद्ध-धर्म को उखड़ ही जाना पड़ा। बुद्ध इस देश में पैदा हुए, इस देश का धन्यभाग होना था कि बुद्ध इस देश में पैदा हुए, क्योंकि मनुष्य-जाति ने इतना ज्वलंत धर्म का आविर्भाव न पहले कभी देखा था, न पीछे कभी देखा। मगर अभागा यह देश! इतनी निंदा किया बुद्ध की कि इस देश से बुद्ध-धर्म को तिरोहित हो जाना पड़ा।
तुम सोचते हो, जीसस को लोगों ने सम्मान दिया था, फूलमालाएं पहनाई थीं?
तो फिर सूली किसको लगी? वही सम्मान था। वही फूलमाला थी।
जीसस अपने गांव गए एक बार। गांव के सिनागॉग में उन्हें बुलाया गया। क्योंकि खबरें पहुंच गई थीं कि जीसस एक तरह के गुरु हैं। और उनसे कहा गया कि बाइबिल से कुछ वचन पढ़ कर हमें सुनाओ। जो वचन जीसस ने पढ़ कर सुनाए, वे बहुत बार पढ़े थे लोगों ने, जन्मों से लोग दोहराते रहे थे, सदियों से लोग दोहराते रहे थे। पुराने वचन थे। ईि.जया नाम के एक पैगंबर के वचन थे। लेकिन जिस ढंग से जीसस ने पढ़े, उस ढंग से किसी ने भी नहीं पढ़े थे। सिवाय ईजिया के उस ढंग से कोई कभी बोला नहीं था।
वचन हैंः "मैं आ गया। पहचानो मुझे! मेरी तरफ देखो! तुम जिसकी राह देखते थे, वह आ गया। यह मैं रहा!" इसको अगर जीसस ने ऐसा कहा होता कि ईजिया ने कहा है, तो कोई अड़चन न हुई होती। लेकिन जीसस ने कहा कि जो ईजिया ने कहा

है, वही मैं भी तुमसे कहता हूंः मैं आ गया जिसकी तुम प्रतीक्षा करते थे! मेरी आंखों में देखो!
और गांव के लोग एकदम पागल हो गए। यह तो कुफ्र हो गया। यह आदमी अपने को पैगंबर कह रहा है! कहां ईजिया और कहां यह गांव के बढ़ई जोसेफ का बेटा! लोगों ने उन्हें खदेड़ दिया चर्च से। उन्हें मारने के लिए पहाड़ी पर ले गए। बामुश्किल जीसस के शिष्य उन्हें बचा सके, नहीं तो वे पहाड़ी से उन्हें फेंक कर उनके ऊपर चट्टान गिरा देना चाहते थे, क्योंकि कुफ्र हो गया। उसी दिन जीसस ने कहा थाः किसी तीर्थंकर, किसी पैगंबर का सम्मान उसके अपने ही गांव में नहीं होता।
फिर दुबारा वे अपने गांव नहीं गए। और उसके दो साल के भीतर ही उनको सूली लग गई। जिस दिन उन्हें सूली लगी, लोगों ने सब तरह का दुर्व्यवहार किया। पहाड़ी पर उस बड़े क्रास को कंधे पर रखवा कर जीसस को खुद क्रास को पहाड़ी पर ढोना पड़ा। बीच में वे गिर पड़े तो उनको कोड़े मार कर उठाया गया कि ढोओ। चढ़ाई थी। भरी धूप थी। भारी क्रास था। उसी दिन जीसस ने अपने शिष्यों की तरफ पीछे फिर कर भीड़ से कहाः जिसे मुझ तक आना है, उसे अपना क्रास अपने कंधे पर ढोना होगा।
जब उन्हें सूली पर लटकाया गया और उनके हाथों में खीले ठोके गए और पैरों में खीले ठोके गए, तो उन्हें बड़े जोर की प्यास लगी। धूप थी, दिन भर से कोई पानी नहीं मिला था, भोजन नहीं मिला था। यह पहाड़ी की चढ़ाई, यह क्रास का ले आना! उन्होंने पानी मांगा, लेकिन कोई पानी देने को नहीं था। किसी ने एक चीथड़े में, गंदी नाली पास में बहती थी, उसमें चीथड़े को डुबा कर, उसे बांस में उठा कर जीसस के मुंह के पास कर दिया कि इस पानी के अतिरिक्त तुम्हारे लिए हमारे पास और कोई पानी नहीं। लोग पत्थर मार रहे थे, गालियां दे रहे थे। यह सम्मान था!
यही तुमने सुकरात के साथ किया। यही तुमने मंसूर के साथ किया। यह तुम्हारी पुरानी आदत है। यह आदमियत का सदा का व्यवहार है सद्गुरु के साथ। तो तुम पूछते हो कि गुरु की निंदा सुनने का हमेशा निषेध किया गया है।
जिन्होंने कहा होगा, वे गुरु न रहे होंगे। क्योंकि गुरु के साथ अगर तुम जुड़े तो निंदा सुननी ही पड़ेगी। निंदा सुनने से ही काम चल जाए तो बहुत।
पत्थर भी खाने पड़ सकते हैं। जीवन भी गंवाना पड़ सकता है। यह सब होगा। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह कीमत चुकानी पड़ती है प्रभु के मार्ग पर।
इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कह सकता कि कोई मेरी निंदा करे तो सुनना मत। प्रेम से सुनना! आनंद से सुनना! चलो, कम से कम इस बहाने मेरी याद तो कर रहा है कोई! उसे धन्यवाद देना कि चलो इस बहाने तुमने चर्चा तो छेड़ी! कौन जाने, आज जो निंदा कर रहा है, कल प्रेम भी करने लगे! उसके प्रति दुर्भाव मत लेना। ख्याल रखना, प्रेम और घृणा में बड़ा फासला नहीं है। प्रेम घृणा बन सकता है; घृणा प्रेम बन सकती है। वे रूपांतरित हो सकते हैं। तुमने देखा नहीं है, दोस्त ही तो दुश्मन बन जाते हैं! तो प्रेम कब घृणा बन जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम प्रेमियों को नहीं देखते? पति-पत्नी सुबह बैठे थे कितने मगन और सांझ झगड़ा हो गया है और एक-दूसरे को मिटा डालने को तत्पर हो गए हैं। और कल सुबह फिर आनंदित हैं और फिर साथ बैठे हैं। तुम प्रेम और घृणा का यह खेल नहीं देखते? धूप-छांव की तरह यह खेल चलता है।
तो जो आदमी मेरी निंदा कर रहा है, एक बात तो पक्की है कि वह मुझमें उत्सुक हो गया है। यह तो अच्छी बात है। मुझमें रस जगा है। मेरी उपेक्षा तो नहीं कर रहा है, इतनी बात पक्की हो गई। इसको सौभाग्य समझो। आनंद से सुनना। शांति से सुनना। तुम्हारी शांति और तुम्हारा आनंद ही शायद उस आदमी की घृणा को प्रेम में बदलने का कारण हो जाए। उससे झगड़ना भी मत। उसे समझाने की, बदलने की, उसे चेष्टा में भी मत लग जाना, क्योंकि ऐसी चेष्टाएं सफल नहीं होतीं। लेकिन अगर तुम शांत रह सको, अगर तुम प्रसादपूर्ण रह सको, अगर तुम उसे धन्यवाद दे सको और कह सको कि "चलो इस बहाने याद तो की, मुझे याद तो करवाई! कांटा ही चुभाया, लेकिन मुझे तो याद आई! फूल से भी याद आती है, कांटे से भी याद आती है! मैं तुम्हारा धन्यवादी हूं!"... तो शायद तुम्हारा ऐसा शांत व्यवहार उसे चौंकाए, उसे झकझोर जाए। उससे इतना ही कहना कि निंदा

जितनी करनी है उतनी करो, मगर कभी पास आकर देखने की कोशिश भी करो! कभी दो क्षण वहां बैठो भी! हो सकता है तुम्हीं ठीक होओ, तो तुम्हारी धारणा और भी मजबूत हो जाएगी चलने से। और कौन जाने तुम गलत होओ तो एक गलती से छुटकारा हो जाएगा।
जब भी कोई निंदा करे, तुम समझाने की कोशिश मत करना। तुम नहीं समझा पाओगे। यह तर्क-वितर्क का काम नहीं है। यह मामला प्रेम का है। उसे पास ले आओ। यह बीमारी संक्रामक है। उसे निमंत्रण दे दो। उससे कहना कि आओ मेरे साथ, तुम भी चलो। तुम ठीक होओगे तो मैं भी तुम्हारे साथ हो लूंगा कल। कौन जाने तुम गलत होओ! मगर निर्णय के पहले निकट आना तो जरूरी है।
और एक बात ख्याल रखना, जो मेरी निंदा कर रहा है वह उत्सुक तो हो गया है। वह निंदा ही इसलिए कर रहा है कि अब अपनी उत्सुकता से घबड़ा रहा है। निंदा एक मनोवैज्ञानिक बचाव का उपाय है। अब वह डर रहा है कि अगर उसने निंदा न की तो कहीं मेरे पास न चला जाए। निंदा के द्वारा वह बीच में दीवालें खड़ी कर रहा है, ताकि जाने के उपाय बंद हो जाएं। मेरे देखे तो शुभ हो रहा है।
तो मैं तुमसे न कहूंगा कि निंदा का निषेध करो और मैं तुमसे यह भी न कहूंगा कि अपने कान भी धो डालना। ऐसे तो दिन भर कान ही धोते-धोते तुम्हारा समय जाया होगा। इन फिजूल की बातों में मत पड़ो। जिन्होंने कहा होगा, दो कौड़ी के लोग रहे होंगे। उन्हें खुद भी अपने होने पर भरोसा न रहा होगा। मुझे भरोसा अपने पर है। तुम चिंता ही न करो। तुम किसी भांति उन्हें मेरे पास ले आओ। और वे आना चाह रहे हैं, इसलिए तो निंदा कर रहे हैं।
एक ही बात ख्याल करोः प्रशंसा करने वाला भी मुझसे जुड़ गया, निंदा करने वाला भी मुझसे जुड़ गया। मुझसे वंचित वही रह सकता है जिसको उपेक्षा है। जो कहे--हमें कोई लेना-देना नहीं, न प्रशंसा न निंदा, हमें कुछ लेना-देना नहीं--उसका जुड़ना बहुत मुश्किल है। वही दया योग्य है। अगर समझाना हो तो उसको समझाना--उपेक्षा वाले को। चाहे तुम्हारी समझाने से उसे निंदा ही पैदा हो जाए तो भी शुभ है; कम से कम निंदा तो होगी, कुछ तो होगा, मेरे खिलाफ तो होगा! मुझसे जुड़ तो गया, मुझसे संबंध तो बन गया।
शत्रुता भी एक तरह की मित्रता है, एक तरह का संबंध है। अब कभी-कभी रात में मैं उसे याद आऊंगा। एकांत बिस्तर पर पड़ा हुआ होगा, कभी सपने में उतरूंगा। कभी सोचेगा भी कि मैंने यह कहा, यह ठीक है या गलत है? तुम उसे सोचने दो, विचारने दो। तुम्हें भयभीत होने का कोई कारण नहीं।
जिन गुरुओं ने तुमसे कहा है कि कान धो डालना, उन्हें दो तरह के डर थे। बड़ा डर तो उन्हें यह था कि कहीं कोई निंदा करता हो तो तुम सुन-सुन कर उससे राजी न हो जाओ। उन्हें डर यह था। मुझे तुम पर भरोसा है। तुम मेरे पास आ ही सके हो उन सब निंदाओं को सुनने के बाद। वे कसौटियां तुम पूरी कर चुके हो। जितनी गालियां तुम सुन सकते थे, वे तुम सुन ही सके हो, अब नई गाली कोई शायद ही खोज पाए। कोई निंदा करता हो तो उससे कहनाः कुछ नई निंदा करो, यह तो मैं सुन चुका हूं, यह तो बहुत बार सुन चुका हूं; इसके बावजूद भी उनसे जुड़ा हूं। कुछ नई निंदा करो, कुछ खोजो, कुछ आविष्कार करो। ये क्या पुरानी पिटी-पिटाई बातें दोहरा रहे हो!
जिन्होंने कहा है, निंदा का निषेध, बचना... और ऐसे शास्त्रों में उल्लेख हैं, वे शास्त्र कमजोरों के लिखे हुए हैं। ऐसे शास्त्र हैं भारत में जिनमें लिखा है... हिंदुओं के पास ऐसे शास्त्र हैं, जैनों के पास ऐसे शास्त्र हैं। हिंदुओं के शास्त्रों में लिखा हैः अगर पागल हाथी भी तुम्हारा पीछा कर रहा हो और जैन मंदिर में शरण मिल सकती हो तो भी भीतर मत जाना। क्योंकि जैन निंदक है हिंदुओं के, कहीं निंदा का कोई शब्द तुम्हारे कान में पड़ जाए। और ठीक यही बात जैनशास्त्रों में भी लिखी है, इसका उत्तर-- ठीक यही कि अगर पागल हाथी तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा हो और तुम खतरे में हो, जीवन गंवाने का खतरा आ गया हो और हिंदू मंदिर में जाकर शरण मिल सकती हो, जीवन बच सकता हो, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना उचित है, मगर हिंदू मंदिर में मत जाना, क्योंकि वहां कोई जैन धर्म की निंदा का विचार तुम्हारे कान में पड़ जाए!

ये बड़े कमजोर लोग रहे होंगे। यह भी कोई बात हुई? ऐसे बच-बच कर कैसे बचोगे? और इतने बचने का कारण क्या है? क्या तुम्हें भरोसा नहीं है? तुम्हारी श्रद्धा इतनी अधूरी है, इतनी नपुंसक है?
जिसने मुझे चाहा है, जिसने मुझे प्रेम किया है, सब निंदाएं उसके प्रेम
की कसौटी होंगी, चुनौतियां होंगी, कि क्या इन सारी निंदाओं के बाद भी प्रेम बच सकता है? बचे तो ही बचाने योग्य था। न बचे तो अच्छा हुआ, झंझट मिटी--तुम भी मुक्त हुए, मैं भी मुक्त हुआ।
मैं कमजोरों से जुड़ा रहना भी नहीं चाहता। और ऐसे लचर-पचर लोगों को मैं चाहता भी नहीं कि मेरे पास हों। उनका कोई मूल्य नहीं है। व्यर्थ भीड़ थोड़े ही बढ़ानी है यहां। यहां कुछ वस्तुतः काम करना है, भीड़ नहीं बढ़ानी है। यहां वस्तुतः जीवन रूपांतरित करना है। यह प्रयोगशाला है। यहां रसायन खोजी जा रही है तुम्हारे रूपांतरण की। यह कोई बाजार नहीं है। यहां हमारी उत्सुकता इसमें नहीं है कि कितने लोग आते हैं। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं कि भीड़ में मेरी उत्सुकता हो। भीड़ में मेरी उत्सुकता ही नहीं है। मेरी उत्सुकता व्यक्तियों में है। और व्यक्ति का मतलब होता है विद्रोही। और व्यक्ति का मतलब होता हैः जो अपने ढंग से सोचता, अपने ढंग से जीता; जो अपनी श्रद्धा के अनुकूल चलता।
और हर निंदा कसौटी होगी। तुम घबड़ाओ मत। और निंदा तो बढ़ेगी। जैसे-जैसे लोगों को मैं बदलूंगा, वैसे-वैसे निंदा बढ़ेगी। कठिनाइयां रोज बढ़ती जाने वाली हैं, कम होने वाली नहीं हैं।
जो मेरे साथ जुड़े हैं, वे यह बात सोच कर ही जुड़ेंः तुम्हें अपनी सूली अपने कंधे पर ढोनी ही होगी। मगर जो जानेंगे, वे आनंदित होंगे कि फिर सूली ढोने का एक मौका आया। क्योंकि वही तो परमात्मा के निकट जाने का उपाय है। मृत्यु ही तो पुनर्जीवन का द्वार है।
तुम धन्यभागी हो कि किसी ऐसे आदमी से तुम जुड़े हो, जिसकी बहुत निंदा होगी, हुई है और बहुत होनी है। कठिनाइयां रोज सख्त होती चली जाएंगी, क्योंकि जितना लोगों को दिखाई पड़ेगा कि मुझमें लोग आकर्षित हो रहे हैं उतनी ही उनकी अड़चनें बढ़ती जाएंगी। और ये अड़चनें एक दिशा से नहीं आएंगी, सब दिशाओं से आएंगी। क्योंकि यहां हिंदू हैं मेरे पास, मुसलमान हैं मेरे पास, ईसाई हैं, यहूदी हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, सिक्ख हैं, पारसी हैं। यहां सब धर्मो के लोग मेरे पास हैं, तो सब धर्मो के गुरु मेरे खिलाफ हो जाने वाले हैं। हैं ही। सब मंदिरों से और सब मस्जिदों से मेरे खिलाफ स्वर उठने ही वाला है। यह स्वाभाविक है। कोई एकाध मेरे खिलाफ नहीं होगा। जीसस के खिलाफ तो सिर्प यहूदी थे और बुद्ध के खिलाफ सिर्फ हिंदू थे। मेरे खिलाफ सारे धर्म होने वाले हैं, क्योंकि सारे धर्मो को चिंता पैदा होने वाली है। यहां मेरे पास पत्र आने शुरू हो गए हैं--सारी दुनिया से पत्र आते हैं। किसी का बेटा आकर संन्यासी हो गया है; वे ईसाई हैं, मां-बाप नाराज हैं। वे धमकियां भेजते हैं कि आपने हमारे बेटे को विकृत कर दिया, विक्षिप्त कर दिया, सम्मोहित कर लिया। किसी की बेटी आकर संन्यस्त हो गई है; परिवार यहूदी है; वह नाराज है। सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं यहां। सारी दुनिया में निंदा होने वाली है। बुद्ध की निंदा तो सिर्प बिहार में हुई थी; सीमित थी। जीसस की निंदा तो सिर्प जेरुसलम के आस-पास के छोटे से इलाके में हुई थी; बड़ी सीमित थी। मेरी निंदा तो असीम होने वाली है वह एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक दुनिया में होने वाली है। उसके लिए तुम्हें तैयार होना चाहिए।
तो मैं तुमसे नहीं कह सकता कि निंदा मत सुनना। सुननी ही पड़ेगी। आनंद
से सुनना, यही कह सकता हूं। और कान वगैरह धोना मत। कान क्या खराब करना है दिन भर धो-धो कर? इतना पानी कान में डालोगे, धीरे-धीरे सुनने इत्यादि की ही क्षमता खो जाएगी। इस फिकर में ही मत पड़ना। मौज से सुनना। आनंद से सुनना। नाचते हुए सुनना। हंसते हुए सुनना। तुम्हारा हंसना, तुम्हारा मुस्कराना, तुम्हारा नाच--बदलाहट का कारण बनेगा। दूसरा सोचेगा--आखिर तुम प्रश्न-चिह्न बन कर खड़े हो जाओगे न! --दूसरा सोचेगा कि मैं निंदा कर रहा हूं, और यह

आदमी उद्विग्न भी नहीं है, जरूर कुछ हो गया है, जरूर कुछ हुआ है। इसे कुछ मिल गया है, जिसका मुझे पता नहीं है। मैं भी जाऊं और एक बार देखूं। "
बस तुम इतना ही कर सको कि तुम्हारा व्यक्तित्व निमंत्रण बन जाए, काफी है; शेष मैं कर लूंगा। तुम ले आओ यहां, शेष तुम मुझ पर छोड़ो। तुम्हें सम्मोहित कर लिया तो उन्हें भी सम्मोहित कर लूंगा। आदमी सब आदमी जैसे हैं।

तीसरा प्रश्नः आपके सत्संग में रह कर बड़े ही आनंद का अनुभव हो रहा है
और जीवन एक उत्सव नजर आ रहा है। लेकिन क्या इस क्षणभंगुर जीवन का आनंद भी क्षणभंगुर नहीं है?

मन बड़ा लोभी है। मन लोभ के कारण ही बहुत कुछ गंवाता है। मन "लेकिन, किंतु, परंतु" उठाता है।
पूछते होः "आपके सत्संग में रह कर बड़े आनंद का अनुभव हो रहा है।"
लेकिन मन बेचैन हो रहा होगा भीतर। वह कह रहा हैः "इतना आनंद अनुभव नहीं होने दूंगा! क्या समझ रखा है?" मन हमेशा, दुखी होओ, तो प्रसन्न होता है। इसको समझ लेना। इस सूत्र को ख्याल में ले लेना। जब भी तुम दुखी होते हो, मन प्रसन्न होता है, क्योंकि तुम्हारे दुखी क्षणों में मन मालिक हो जाता है। तुम मन से सलाह लेने लगते हो।
तुम पूछते होः "मैं क्या करूं, क्या न करूं? मन दिशा देने लगता है।"
दुखी अवस्था में मन की मालकियत कस जाती है तुम्हारे ऊपर। जब तुम आनंदित होते हो तो मन को एक तरफ रख देते हो। कौन फिक्र करता है मन की! अब तुम आनंदित हो तो मन से कुछ पूछना नहीं है। आनंदित चित्त-अवस्था मन के पार ले जाने लगती है। मन चिंतित हो उठता है। मन पीछे खींच लेना चाहता है। मन सवाल उठाता है कि क्या समझ रखा है तुमने, यह आनंद है भी? पहली बात, थोड़ा सोचो तो, कहीं कल्पना ही न हो!
मेरे पास लोग आते हैं। मैं उस आदमी की तलाश में हूं जो कभी मेरे पास आकर कहे कि मैं बहुत दुखी हूं, कहीं यह मेरे मन की कल्पना न हो! आज तक किसी ने कहा नहीं। लेकिन रोज कोई न कोई आकर कहता है कि बड़ी हैरानी हो रही है, मैं आनंदित तो हूं, लेकिन सवाल यह उठता हैः "कहीं यह कल्पना न हो?" दुख पर यह सवाल क्यों नहीं उठता? नरक होता है तो तुम मानते हो कि यथार्थ है और जब स्वर्ग की थोड़ी सी झलक आती है, तत्क्षण मन सवाल उठाता है कि यह कल्पना होगी, यह सपना होगा। सुख ही हो नहीं सकता। आनंद कहीं होता है? दुख ही यथार्थ है।
कांटे को ही मानता है मन, फूल को स्वीकार नहीं करता। घावों को ही मानता है मन, फूल को अंगीकार नहीं करता। और जब कभी भूल-चूक से एक फूल तुम्हारे भीतर उतर आता है और एक सुवास तुम्हारे भीतर लहराती है, तो मन संदिग्ध होकर "किंतु-परंतु" पूछने लगता है। वह कहता हैः कल्पना होगी, सपना होगा, तुम किसी भ्रांति में पड़े हो, तुम किसी भूल में उलझ गए हो। यह वातावरण का प्रभाव है। या तुम सम्मोहित कर लिए गए हो। ठीक से सोच लो, फिर कदम आगे बढ़ाना। यहां खतरा है। तुम किसी भ्रम में तो नहीं पड़े जा रहे हो? तुम किसी माया-जाल में तो नहीं उलझ गए हो? किसी जादूगर के हाथों में तो नहीं पड़ गए हो?
मन आनंद पर सदा प्रश्न उठाता है। अब यह प्रश्न उठाया मन नेः "लेकिन क्या इस क्षणभंगुर जीवन का आनंद भी क्षणभंगुर नहीं है?" दुख पर नहीं पूछते कभी। जब दुख होता है तब तुम यह नहीं कहते कि क्षणभंगुर दुख, क्या चिंता करनी! इतना कहो तो मुक्त हो जाओ। इतना जान लो तो मुक्ति हो जाए। और है क्या मुक्ति?
क्षणभंगुर है। अभी है, अभी चला जाएगा। क्या फिकर करनी!
नहीं; तब तुम बड़े उद्विग्न हो जाते हो। अब आनंद घट रहा है तो मन कह रहा हैः क्षणभंगुर है। मन बड़ा ज्ञानी हो गया है। मन बड़ा महात्मा हो गया है। मन कह रहा है क्षणभंगुर है, इसमें उलझ मत जाना! जैसे कि मन के पास किसी शाश्वत आनंद को देने का उपाय है!

अगर क्षणभंगुर दुख में और क्षणभंगुर सुख में चुनना हो तो क्या चुनोगे? चलो मान लो कि क्षणभंगुर है, दुख तुम्हारे शाश्वत हैं? क्षणभंगुर आनंद और क्षणभंगुर दुख में अगर चुनाव करना हो तो क्या चुनोगे? तो भी क्षणभंगुर आनंद ही चुनना। क्षणभर को ही सही, है तो आनंद!
फिर और बात समझ लोः जो क्षण में उतर रहा है, वह शाश्वत का हिस्सा हो सकता है। जो झील में बन रहा है चांद, झील में तो क्षणभंगुर है, .जरा एक कंकड़ी फेंक दो और कंप जाएगी झील और चांद का प्रतिबिंब टुट जाएगा, बिखर जाएगा, खंड-खंड हो जाएगा। लेकिन जिसका यह प्रतिबिंब है, वह कंकड़ी फेंकने से खंडित नहीं होगा।
तुम्हारे मन में जो छायाएं बनती हैं शाश्वत की, वे क्षणभंगुर होती हैं, क्योंकि मन में सिर्प क्षणभंगुर ही कुछ हो सकता है। मन तरंगित वस्तु है। उसमें तरंगें उठ रही हैं। लेकिन जिसकी छाया बन रही है, वह शाश्वत है। सुख और आनंद का यही भेद है। सुख शाश्वत की छाया नहीं है। सुख किसी की छाया नहीं है। सुख लहरों का नाम है। जैसे दुख लहरों का नाम है। जिन लहरों को तुम पसंद करते हो, वे सुख; और जिन लहरों को तुम नापसंद करते हो, वे दुख। और तुमने देखा, तुम्हारे सुख और दुख में कोई ज्यादा फासला नहीं होता! दुख सुख हो सकते हैं, सुख दुख हो सकते हैं।
एक सम्राट एक गरीब स्त्री के प्रेम में पड़ गया। सम्राट था! स्त्री तो इतनी गरीब थी कि खरीदी जा सकती थी, कोई दिक्कत न थी। उसने स्त्री को बुलाया और उसके बाप को बुलाया और कहाः जो तुझे चाहिए ले-ले खजाने से, लेकिन यह लड़की मुझे दे-दे। मैं इसके प्रेम में पड़ गया हूं। कल मैं घोड़े पर सवार निकलता था, मैंने इसे कुएं पर पानी भरते देखा बस तब से मैं सो नहीं सका हूं।
बाप तो बहुत प्रसन्न हुआ, लेकिन बेटी एकदम उदास हो गई। उसने कहा, मुझे क्षमा करें! आप कहेंगे तो आपके राजमहल में आ जाऊंगी, लेकिन मेरा किसी से प्रेम है। मैं आपकी पत्नी भी हो जाऊंगी, लेकिन यह प्रेम बाधा रहेगा। मैं आपको प्रेम न कर पाऊंगी।
सम्राट विचारशील व्यक्ति था। उसने सोचा कि यह तो कुछ सार न होगा। कैसे प्रेम हो मुझसे इसका? किससे इसका प्रेम है, पता लगवाया गया। एक साधारण आदमी। सम्राट बड़ा हैरान हुआ कि मुझे छोड़ कर उससे इसका प्रेम है! लेकिन प्रेम तो हमेशा बेबूझ होता है। उसने अपने वजीरों को पूछा कि मैं क्या करूं कि यह प्रेम टूट जाए?
तुम चकित होओगे, वजीरों ने जो सलाह दी, वह बड़ी अदभुत थी। तुम मान ही न सकोगे कि यह सलाह कभी दी गई होगी। क्योंकि यह सलाह... यह कहानी पुरानी है, फ्रायड से कोई हजार साल पुरानी। फ्रायड यह सलाह दे सकता था। मनोविज्ञान यह सलाह दे सकता है अब। और मनोविज्ञान भी सलाह देने में थोड़ा झिझकेगा। सलाह वजीरों ने यह दी कि इन दोनों को नग्न करके एक खंभे से बांध दिया जाए, दोनों को एक-दूसरे से बांध दिया जाए और खंभे से बांध दिया जाए।
सम्राट ने कहाः इससे क्या होगा? यही तो उनकी आकांक्षा है कि एक-दूसरे
की बांहों में बंध जाएं।
उन्होंने कहाः आप फिकर न करें। बस फिर उनको छोड़ा न जाए, बंधे रहने दिया जाए।
उनको अलिंगन में बांध कर नग्न एक खंभे से बांध दिया गया।
अब तुम.जरा सोचो, जिस स्त्री से तुम्हारा प्रेम है, फिर वह कोई भी क्यों न हो, वह इस जगत की सबसे सुंदरी क्यों न हो; या किसी पुरुष से तुम्हारा प्रेम है, वह मिस्टर यूनिवर्स क्यों न हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता--कितनी देर आलिंगन कर सकोगे? पहले तो दोनों बड़े खुश हुए, क्योंकि समाज की बाधाओं के कारण मिल भी नहीं पाते थे। जातियां अलग थीं, धर्म अलग थे, चोरी-छिपे कभी यहां-वहां थोड़ी देर को गुफ्तगू कर लेते थे थोड़ी-बहुत। एक-दूसरे के आलिंगन में नग्न! पहले तो बड़े आनंदित हुए, दौड़ कर एक-दूसरे के आलिंगन में बंध गए। लेकिन जब रस्सियों से उन्हें एक खंभे से बांध दिया गया तो कितनी देर सुख सुख रहता है! कुछ ही मिनट बीते होंगे कि वे घबड़ाने लगे कि अब अलग कैसे हों, अब भिन्न कैसे हों, अब छूटें कैसे? मगर वे बंधे ही रहे।

कुछ घंटे बीते और तब और उपद्रव शुरू हो गया। मलमूत्र का विसर्जन भी हो गया। गंदगी फैल गई। एक-दूसरे के मुंह से बदबू भी आने लगी। एक-दूसरे का पसीना भी। ऐसी घबड़ाहट हो गई। और चौबीस घंटे बंधे रहना पड़ा। फिर जैसे ही उनको छोड़ा, कहानी कहती है फिर वे ऐसे भागे एक-दूसरे से, फिर दुबारा कभी एक-दूसरे का दर्शन नहीं किया। वह युवक तो वह गांव ही छोड़ कर चला गया।
यह प्रेम का अंत करने का बड़ा अदभुत उपाय हुआ, लेकिन बड़ा मनोवैज्ञानिक।
तुम देखते हो, पश्चिम में प्रेम उखड़ता जा रहा है, टूटता जा रहा है! कारण? स्त्री और पुरुष के बीच कोई व्यवधान नहीं रहा है, इसलिए प्रेम टूट रहा है। स्त्री और पुरुष इतनी सरलता से उपलब्ध हो गए हैं एक-दूसरे को कि प्रेम बच ही नहीं सकता, प्रेम टूटेगा ही। संयुक्त परिवार नहीं रहा पश्चिम में, तो पति और पत्नी दोनों रह गए हैं एक मकान में अकेले। जब मिलना हो मिलें; जो कहना हो कहें; जितनी देर बैठना हो पास बैठें--कोई रुकावट नहीं, कोई बाधा नहीं। जल्दी ही चुक जाते हैं। जल्दी ही सुख दुख हो जाता है। तुमने देखा, वही संगीत तुम पहली दफा सुनते हो, सुख; दुबारा सुनते हो, उतना सुख नहीं रह जाता। तीसरी बार सुनते हो, सुख और कम हो गया। चौथी बार ऊब पैदा होने लगती है। पांचवीं बार फिर कोई रिकार्ड चढ़ाए तो तुम सोचते हो कि मेरा सिर घूम जाएगा।
तुम कहते होः "अब बंद करो! अब बहुत हो गया।"
यही वही संगीत पहली दफा सुख दिया, दूसरी दफा कम, तीसरी दफा और कम। अर्थशास्त्री एक नियम की बात करते हैंः "लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्नस्।" हर बार उसी चीज को दोहराओगे तो सुख की मात्रा कम होती जाती है।
पुराना ढंग प्रेम को बचाने का ढंग था। पति-पत्नी मिल ही नहीं सकते थे। दिन में तो मिल ही नहीं सकते थे। पति-पत्नी भी नहीं मिल सकते, दूसरे की पत्नी से मिलना तो मामला दूर। पश्चिम में तो दूसरे की पत्नी से मिलना भी इतना सरल हो गया है, जितना पहले अपनी पत्नी से भी मिलना सरल नहीं था। दिनभर तो मिल ही नहीं सकते थे। परिवार में बड़े-बूढ़े थे, बुजुर्ग थे, उनके सामने कैसे मिल सकते थे! रात में भी मिलना बड़ा चोरी-छिपे था। अपनी पत्नी से चोरी- छिपे मिलना! क्योंकि जोर से बोल नहीं सकते थे। छोटे-छोटे घर, जिनमें पचास लोग सोए हुए हैं। चोरी-छिपे, रात के अंधेरे में। ठीक-ठीक पति अपनी पत्नी के चेहरे को जानता भी नहीं था कि वह कैसा है। अंधेरे में जानेगा भी कैसे? कभी घूंघट उठा कर रोशनी में ठीक से देखा भी नहीं था। प्रेम अगर लंबा जिंदा रह जाता था तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि प्रेम को, सुख को क्षीण होने का मौका ही नहीं था। दिन भर अपने काम-धंधे में रहते दोनों और याद जारी रहती।
अभी हालतें उलटी हो गई हैं। चौबीस घंटे एक-दूसरे के सामने बैठे हैं, वही खंभा, बंधे हैं। एक-दूसरे से चिढ़ पैदा होती है। पत्नी चाहती है कि कहीं उठो, कहीं जाओ, कुछ करो, यहीं क्यों बैठे हो?
जीवन के बड़े अदभुत नियम हैं! सुख और दुख में बहुत फर्क नहीं है। वही उत्तेजना सुख है, वही उत्तेजना दुख है। पसंद की तो सुख है, ना पसंद की तो दुख है। बस नापसंद-पसंद का फर्क है। दोनों तरंगें हैं। दोनों समय के भीतर घट रही हैं। दोनों समय की झील की तरंगें हैं।
आनंद का अर्थ हैः समय के पार से कोई चीज आ रही है; समय में उसकी छाया बन रही है। छाया तो क्षणभंगुर छाया होगी। सत्संग में जो आनंद घटता है, वह आनंद क्षणभंगुर है; लेकिन अगर छाया का इशारा समझ लोगे और मूल की तरफ चल पड़ोगे तो शाश्वत मिल जाएगा।
लेकिन लोभी मन है! वह कहता हैः क्षणभंगुर!
फिर और भी एक बात समझ लेनाः अगर क्षण भर को तुम्हें आनंदित रहने की कला आ गई तो तुम पूरे जीवन आनंदित रह सकते हो, क्योंकि एक बार एक ही क्षण तो मिलता है, दो क्षण एक साथ तो मिलते नहीं। अगर एक क्षण को तुम आनंद में रंग लेने की कला जानते हो तो एक ही क्षण मिलता है एक बार, उसको रंग लेना, रंगते जाना, उसमें धुन गुंजाए जाना। कला तो तुम्हारे हाथ में आ गई।

एक बार में एक ही कदम उठता है। और एक बार में एक ही क्षण मिलता है। एक क्षण को आनंदित होने का जिसने राज सीख लिया उसके हाथ से कुंजी मिल गई; वह कुंजी सारे स्वर्गों के द्वार खोल देगी।
लेकिन पूछने वाले के मन में लोभ है। और जहां लोभ है वहां संदेह भी होगा।
फिर से प्रश्न को पढ़ें तो ख्याल में आ जाएगा कहां चूके हैंः "आपके सत्संग में रह कर बड़े ही आनंद का अनुभव हो रहा है।" अनुभव नहीं हो रहा होगा।... "और जीवन एक उत्सव नजर आ रहा है।" "नजर" आ रहा होगा। मान लिया होगा कि होना चाहिए आनंद, हो रहा है आनंद। सत्संग में बैठे हैं तो आनंद होना ही चाहिए; नहीं तो यहां बैठे ही किसलिए हैं? मान लिया होगा। या और लोग तुम्हारे आस-पास आनंदित होंगे, उनके आनंद की तरंग तुम्हें छू रही होगी। अब उनके बीच तुम गैर-आनंदित बैठे रहो तो बुद्धू मालूम पड़ोगे, जड़ मालूम पड़ोगे। जहां लोग मस्त हो रहे हैं वहां तुम भी मस्ती में पड़ जाते हो। लेकिन वह सिर्प भीड़ का संग-साथ होगा, तुम्हारा अपना अनुभव नहीं।
ख्याल रखना, हम भीड़ की भावनाओं से बड़ी जल्दी प्रभावित हो जाते हैं। तुमने देखा, अगर लोग तेजी से चल रहे हों, उनके साथ तुम चलो तो तुम भी तेजी से चलने लगते हो! भीड़ अगर जोश में हो तो तुम भी जोश में आ जाते हो। भीड़ जो करती है वही तुम करने लगते हो। चार हंसते हुए आदमियों के बीच बैठ जाओ, तुम अपनी उदासी भूल जाते हो। और चार उदास लोगों के बीच बैठ जाओ तो तुम अपनी हंसी भूल जाते हो। तुम भीड़ से बड़ी जल्दी प्रभावित हो जाते हो।
यहां सत्संगियों की एक भीड़ है। उसमें यह भी हो सकता है कि तुम्हें कुछ खास आनंद न आ रहा हो; लेकिन दूसरे लोग आनंदित हैं, उनकी तरंग तुम्हें छू जाए, उनकी तरंग तुम्हारी हृदय-वीणा को बजा दे और तुम्हें नजर आने लगे कि आनंद आ रहा है। तभी "किंतु-परंतु" उठ सकते हैं, नहीं तो नहीं उठ सकते। अगर तुम्हें सच ही आनंद आ रहा है, कौन फिकर करता है कि क्षणभंगुर है! आनंद क्षणभंगुर भी हो तो शाश्वत दुखों से बेहतर है। शाश्वत का ही क्या करोगे? खाओगे कि पिओगे, अगर दुख हुआ शाश्वत। शाश्वत नरक को चुनोगे कि क्षणभंगुर स्वर्ग को चुनोगे? और क्षणभंगुर का भी अगर चुनाव कर लिया, ठीक चुनाव हुआ, तो उसी से धीरे-धीरे यात्रा आगे की खुलती है। एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेता है।
नहीं; लेकिन सवाल उठता हैः "लेकिन क्या इस क्षणभंगुर जीवन का आनंद भी क्षणभंगुर नहीं है?"
यह जीवन क्षणभंगुर नहीं है। यह जीवन शाश्वत है। बाहर का जीवन होगा क्षणभंगुर, भीतर का जीवन शाश्वत है। देह का जीवन होगा क्षणभंगुर, आत्मा का जीवन शाश्वत है। तुम बच्चे थे, अब जवान हो, कल बूढ़े हो जाओगे--लेकिन कुछ तुम्हारे भीतर है जो न तो कभी बच्चा था, न जवान हुआ और न बूढ़ा होगा। वही तुम हो। वही तुम्हारा असली जीवन है। सत्संग में उसी की याद दिलाई जाती है, बार-बार उसी की याद दिलाई जाती है। उसकी याद से ही आनंद उमगने लगता है। उसकी याद से ही सुगंध फैलने लगती है।
लेकिन लोभ बड़ा कमजोर होता है।
दरिया की जिंदगी पर सदके हजार जानें
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना
लेकिन भयभीत और लोभी किनारे की मौत ही मरना चाहते हैं, तूफान में जाने
से घबड़ाते हैं। और आनंद तूफान है। तुम्हारी साधारण जिंदगी स्थिर हो गई है, सुरक्षित है। घर है, द्वार है, परिवार है--सब सुरक्षित है। जिस जीवन की तरफ मैं तुम्हें ले चल रहा हूं, वह किनारा छोड़ने का जीवन है; वह मझधार में डूबने का जीवन है।
दरिया की जिंदगी पर सदके हजार जानें
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना
जो किनारे पर नहीं मरना चाहते, वही मेरे साथ आएं। जिन्हें मौज में उतरना है, जिन्हें दरिया के तूफान में उतरना है, जिन्हें जीवन की चुनौतियों में उतरना है, जो असुरक्षा में जाने को तत्पर हैं, जिन्हें अज्ञात की खोज करनी है--वे ही मेरे साथ आएं। खतरनाक रास्ता है यह।

जीवन मुफ्त नहीं मिलता--खतरों से कीमत चुकानी पड़ती है। और जो मेरे साथ आते हैं, वे पीछे लौट-लौट कर न देखें।
रहे हयात में मुड़मुड़ के नक्शे-पा को न देख
मह और सितारे की शाने खिराम पैदा कर।
चंद्र-नक्षत्रों की चाल देखी है? वैसी चाल चाहिए! ... मुड़-मुड़ के नक्शे-
पा को न देखा... पीछे जो चिह्न छूट गए हैं पैरों के, उनको लौट-लौट कर क्या देखना! आंख आगे रखो। और चांद-तारों के प्रसाद से चलो।... मह औ सितारे की शाने खिराम पैदा कर... ।
यह जगत उन्हीं का है जो उस अनंत जीवन के साथ अपने को जोड़ लेने में समर्थ हैं। और अनंत जीवन कोई दूसरा जीवन नहीं है--यही जीवन है, ठीक से देखा गया। क्षणभंगुर ही शाश्वत है--ठीक से देखा जाए तो। और शाश्वत ही क्षणभंगुर मालूम होता है--ठीक से न देखा जाए तो। छाया को पकड़ो तो क्षणभंगुर, मूल को पकड़ लो तो शाश्वत। क्षणभंगुर सही, चलो, इस क्षणभंगुर आनंद के स्वाद को कंठ में उतरने दो। इस क्षणभंगुर आनंद पर श्रद्धा करो। इससे द्वार खुलेगा। तुम देखते नहीं, दरवाजा खोलते हैं हम, बड़े से बड़ा किले का दरवाजा भी खोलें तो छोटी सी चाबी से खुलता है। और चाबी जिस छेद में जाती है, वह जरा सा होता है। मगर विराट दरवाजा खुल जाता है! शुरू में तो आनंद बूंद-बूंद आता है लेकिन बूंद-बूंद से ही तो सागर बन जाता है। बूंद और सागर में कुछ भेद थोड़े ही है। मात्रा का ही भेद है। श्रद्धा रखो।
खिजां की लूट से बरबादिए चमन तो हुई
यकीन आमदे फस्ले-बहार कम न हुआ
बहुत बार आता है पतझड़, लेकिन इससे वसंत पर भरोसा थोड़े ही खो देते हैं। बहुत बार उजड़ जाता है चमन, इससे कुछ आशियां बनाना थोड़े ही छोड़ देते हैं। श्रद्धा रखो! शाश्वत यहां कहीं छिपा है--कुंजी की तलाश! वही कुंजी जहां मिल जाए, उसी का नाम सत्संग है। और जिसने शाश्वत की थोड़ी पहचान कर ली, फिर ऐसा मत समझना कि वह क्षणभंगुर को छोड़ कर भाग जाता है। भाग कर कहां जाओगे? सिर्प क्षणभंगुर को देखने का उसका ढंग बदल जाता है। होता तो यहीं है--इसी जीवन में, इन्हीं लोगों के साथ, इन्ही वृक्षों में, इन्हीं पहाड़ों में, इन्हीं चांद-तारों में। होता तो यहीं है। सब ऐसा ही होता है। बाहर से तो कोई भेद पड़ता नहीं, लेकिन भीतर एक क्रांति हो गई होती है। फिर खेलता रहता है इन्हीं क्षणभंगुर तरंगों से लेकिन अब जानता है कि तरंगें अपने आप में कुछ भी नहीं हैं--विराट सागर के अंग हैं। देखते होः
चमन में छेड़ती है किस मजे से गुंच ओ गुल को
मगर मौजे-सबा की पाक दामानी नहीं जाती
सुबह की हवा को देखा है? और किस मौज से छेड़ती है--फूलों को, पत्तियों को! कैसी खिलवाड़ करती है! लेकिन इससे कुछ सुबह की हवा की पवित्रता नष्ट तो नहीं हो जाती।
जो व्यक्ति एक बार उस परम का अनुभव कर लेता है, फिर सब ऐसा ही चलता है। नहीं तो कृष्ण के रास का अर्थ क्या होगा? कृष्ण की बजती बांसुरी का अर्थ क्या होगा? तुम जैसा कोई व्यक्ति अगर वहां होता कृष्ण की गोपियों में और गोपों में, तो पूछता कि "ठीक है, मगर बांसुरी का स्वर, आखिर है तो बांसुरी का ही सुर, क्षणभंगुर! क्या बजा रहे हो? नाच में क्या रखा है? है तो क्षणभंगुर! इस तुम्हारे आलिंगन में भी क्या रखा है? है तो क्षणभंगुर!" नहीं, अगर तुम पहचानते हो तो क्षणभंगुर नहीं रह जाता। पहचान के साथ ही सब शाश्वत हो जाता है। फिर जीवन एक अपूर्व अभिनय है, लीला है।
मुझको दिल सोज नजारों का ख्याल आता है
उजड़े गुलशन की बहारों का ख्याल आता है
जब कोई गीत मचलता है मेरे ओंठों पर
दिल के टूटे हुए तारों का ख्याल आता है
डूब जाते हैं वही जोरे-तलातुम में नदीम!
जिनको तूफां में कनारों का ख्याल आता है उनको ऐ "साहिरा" मिलती नहीं मंजिल अपनी जिनको तूफां में सहारों का ख्याल आता है।

सुरक्षा छोड़ो! सहारे छोड़ो! किनारे छोड़ो!
डूब जाते हैं, वही जोरे-तलातुम में नदीम!
तूफान में केवल वे ही डूबते हैं, सिर्प वे ही--
डूब जाते हैं वही जोरे-तलातुम में नदीम
जिनको तूफां में कनारों का ख्याल आता है
तूफान में क्या किनारों की याद! तूफान में जूझो और तूफान किनारे हो जाते हैं। और जब तक मझधार किनारा न हो जाए, तब तक समझना तुमने अभी जीवन का ठीक-ठीक अर्थ समझा नहीं, अभिप्राय नहीं समझा। जब तक डूबना, उबरना न हो जाए, तब तक समझना परमात्मा से तुम्हारी पहचान नहीं हुई।
उनको ऐ "साहिरा" मिलती नहीं मंजिल अपनी
जिनको तूफां में सहारों का ख्याल आता है

चौथा प्रश्नः तन्मयता से किया गया प्रत्येक कार्य साधना है। तो क्या जरूरी कि परमात्मा की साधना के लिए संन्यास लिया जाए?

तन्मयता कहां सीखोगे, कैसे सीखोगे? संन्यास और क्या है?
तन्मयता सीखने की एक विधि, एक उपाय। तन्मय होने का एक ढंग, एक शैली। नाम उसे तुम कुछ भी दो।
संन्यास क्या है? जिसे मैं संन्यास कहता हूं, वह क्या है?
मेरे साथ तन्मय होने की एक व्यवस्था।
तुम्हारी तरफ से यह घोषणा कि अब मैं तुम्हारे साथ चलने को राजी हूं जहां ले चलो। तूफान में तो तूफान में। मझधार में तो मझधार में। तुम डुबो तो तुम्हारे साथ डूबने को राजी हूं।
संन्यास का और क्या अर्थ है?
यह खतरा लेना। खतरा ही है। क्योंकि पता नहीं, मैं तुम्हें कहां ले जाऊं! तुम्हें कुछ पता नहीं है कि मैं तुम्हें किस तरफ ले जा रहा हूं। यह नाव कहां जाकर लगेगी, तुम्हें कुछ पता नहीं है। यह नाव मैं बीच में डुबा दूंगा या दूसरे किनारे पर पहुंचाऊंगा, तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुम मेरे पास आए, तुमने मेरे हाथ में हाथ थामा और तुम्हारे भीतर एक श्रद्धा का जन्म हुआ--कि चलूंगा, यह खतरा लेने जैसा है। डूबे तो भी खतरा लेने जैसा है। संन्यास का इतना ही अर्थ होता है कि तुमने अपने अस्त्र-शस्त्र डाल दिए कि तुम मेरे खिलाफ किसी तरह का सुरक्षा का उपाय अब न करोगे।
संन्यास का वही अर्थ होता है जो तुम जब अस्पताल जाते हो और आपरेशन की टेबल पर लेटते हो और सर्जन के हाथ में छोड़ देते हो कि अब जो हो हो, क्योंकि क्या पता, क्या होगा। ये सर्जन नशे में हो सकता है, शराब ज्यादा पी गया हो कुछ का कुछ काट-पीट कर दे। पत्नी से झगड़ कर आया हो। क्रोध में हो। दो इंच की जगह चार इंच काट दे।
मैंने सुना है ऐसा कि एक सर्जन आपरेशन कर रहा था। अपेंडिक्स निकाली। बड़ा कुशल कारीगर था। उसके विद्यार्थी, उसके शिष्य, उसके मित्र सब किनारे खड़े होकर देख रहे थे। उसकी कुशलता की जगत में ख्याति थी। वह जिस ढंग से निकालता था--उनकी श्वासें रुकी रह गईं। जिस कुशलता से, जिस कारीगरी से उसने अपेंडिक्स निकाली। जब अपेंडिक्स निकल गई, उनके हाथों से बेतहाशा तालियां बज गईं। सर्जन को इतना जोश आगया कि जोश में उसने टेबल पर पड़े हुए आदमी के टांसिल भी निकाल दिए। जोश की वजह से! जैसा तुम कह देते हो न कभी, कोई संगीतज्ञ गा रहा हो, कह देते हो "वन्स मोर!" ताली बजा दी तो वह फिर दोहरा देता है।
अब क्या पता! लेकिन सर्जन के हाथ में जब तुम लेट जाते हो, छोड़ देते हो
सब यह तो उससे भी बड़ी सर्जरी है। यहां शरीर के ही काटने की बात नहीं, यहां तो मन को काटने की बात है। यहां तो मन कटेगा तो ही तुम कुछ पा सकोगे। यहां तो तुम्हारे अहंकार को काट डालने की बात है।
तुम कहते होः "तन्मयता से किया गया प्रत्येक कार्य साधना है।"
निश्चित। तन्मयता का तुम्हें पता है क्या अर्थ होता है? अगर तुम सत्य
की खोज में लगे हो तो तन्मयता से लगने का अर्थ होगाः किसी सदगुरु के साथ

एकरूप हो जाना। अगर तुम यहां सुनने बैठे हो तो तन्मयता का अर्थ होगा कि मेरे और तुम्हारे बीच कोई तर्क और कोई विवाद न रह जाए। तुम्हारे-मेरे बीच एक स्वीकार हो। तुम्हारे--मेरे बीच "नहीं" गिर जाए, "हां" का भाव उठे। वही संन्यास है।
संन्यास एक क्रांति है। इसलिए तो देखते हो न--लाल रंग क्रांति का रंग है, संन्यास का रंग है! यह आत्मक्रांति है।
सुर्ख कलियां सुर्ख पत्ते सुर्ख फूल
सुर्ख तूफां सुर्ख आंधी सुर्ख धूल
और हर सुर्खी में सुर्खिए-शराब
इंकिलाबो इंकिलाबो इंकिलाब!
यह एक क्रांति है। यह शराब की सूर्खी है। यह लाल रंग इस बात की सूचना
है कि मैं मिटने को तैयार हूं; मैं नया होने को तैयार हूं; कि मैं अपना क्रास अपने कंधे पर रखने को तैयार हूं; कि मुश्किलें आएं, कि कठिनाइयां आएं, तो भी मैं इस यात्रा को करने को आतुर हूं; कोई भी कीमत चुकानी हो, मैं तैयार हूं।
संन्यास का भाव तो तुम्हारे भीतर उठ आया होगा, इसलिए सवाल उठा है। पूछा है तुमुल पांडे ने। जरूर कहीं भीतर भाव उठता होगा, कहीं प्यास जगती होगी; अन्यथा प्रश्न कैसे बनता? अब अगर तुम डरते हो, भागते हो, घबड़ाते हो... हजार कारण होते हैं डरने, भागने, घबड़ाने के... तो फिर तुम पछताओगे। तो फिर एक मौका आया था, जो तुम चूके। फिर किसी न किसी दिन तुम कहोगे आंसुओं से भरी हुई आंखों सेः
दिल में सोजे-गम की इक दुनिया लिए जाता हूं मैं
आह तेरे मैकदे से बेपिए जाता हूं मैं
जाते-जाते लेकिन इक पैमा किए जाता हूं मैं
अपने अज्मे-सरफरोशी की कसम खाता हूं मैं
फिर तेरी बज्मे-हसीं में लौट कर आऊंगा मैं
आऊंगा मैं और-ब-अंदाजे-दिगर आऊंगा मैं
आह! वे चक्कर दिए हैं, गर्दिशे-ऐयाम ने
खोलकर रख दी हैं आंखें तल्खिए-आलाम ने
फितरते-दिल दुश्मने-नग्मः हुई जाती है अब
जिंदगी इक बर्क इक शोलः हुई जाती है अब
सर से पा तक एक खूनी आग बन कर आऊंगा
लालः जारे रंगो-बू में आग बन कर आऊंगा
जा तो सकते हो, लेकिन खाली हाथ जाओगे। या तो भरे हाथ जाना और या फिर कम
से कम इस प्यास को लेकर जाना कि "जाते-जाते लेकिन इक पैमा किए जाता हूं, मैं एक वादा किए जाता हूं।"
अपने अज्मे-सरफरोशी की कसम खाता हूं मैं
फिर तेरी बज्मे-हसीं में लौट कर आऊंगा मैं
आऊंगा मैं और-ब-अंदाजे-दिगर आऊंगा मैं
आना ही पड़ेगा।
तुम्हारे भाव को मैं समझा। तुम्हारी आकांक्षा को मैं समझा। तुम्हारे
भय को भी समझा। यह सभी का भय है, यह कुछ तुम्हारा ही नहीं। यहां जो संन्यस्त हो गए हैं, उनका भी कभी यही भय थाः क्या लोग कहेंगे? लोग हंसेंगे कि पागल समझेंगे? क्या कैसे काम चलेगा? कपड़े पहन कर गैरिक, दुकान कैसे चलेगी? गैरिक कपड़े पहन कर दफ्तर काम कैसे करने जाऊंगा? पिता क्या कहेंगे, मां क्या कहेगी, पत्नी क्या कहेगी, बेटे-बेटियां क्या कहेंगे? नाते- रिश्ते... हजार-हजार बातें। हजार-हजार चिंताएं।
लेकिन कभी ऐसी घड़ी आ जाती है आदमी की जिंदगी में, जब ये सब बातों का कोई मूल्य नहीं रह जाता; जब यह दिखाई पड़ता है कि ये सब बातें ऐसी ही चलती रहेंगी और एक दिन मौत आ जाएगी।
और तुम देखते हो, जब मुर्दे को उठाते हैं तो उसको लाल कपड़ा ओढ़ा देते हैं! मगर तब बहुत देर हो चुकी। अब कुछ सार नहीं कि अब लाल कपड़ा ओढ़ाओ। और जब मुर्दे को ले जाते हैं तो राम-नाम सत्य! अब बहुत देर हो चुकी, अब यहां सुनने

वाला कोई भी नहीं रहा। मैं तुम्हें जिंदगी में लाल कपड़ा ओढ़ा देता हूं, अरथी पर चढ़ा देता हूं, राम-नाम सत्य करा देता हूं।
संन्यास का अर्थ हैः जीते जी मर जाना। संन्यास का अर्थ हैः ऐसा जो अब
तक का जीवन था, वह व्यर्थ था, ऐसा जान कर अब एक नये जीवन की तलाश शुरू होती है।
और जो आज हो सकता हो, उसको कल पर मत छोड़ना। जो अभी हो सकता हो, उसे स्थगित मत करना। न हो सकता है, मजबूरी है। जबरदस्ती संन्यास लेना, ऐसा नहीं कह रहा हूं। जोर लगा कर संन्यास लेना, ऐसा नहीं कह रहा हूं। ऐसा लिया हुआ संन्यास दो कौड़ी का होगा। सहज भाव उठता हो तो फिर भय की चिंता नहीं लेना। भाव उठता हो तो फिर भाव के साथ बह जाना।
जबरदस्ती भाव मत उठा लेना। भाव उठता ही न हो; औरों ने संन्यास लिया, यह देख कर संन्यास मत ले लेना। अन्यथा वह झूठ होगा, अभिनय होगा, पाखंड होगा। लेकिन तुम्हारे भीतर भाव उठता हो तो फिर दुनिया भी इनकार करती हो तो चिंता मत करना।
जलाले-आतिशो-बर्को-सहाब पैदा कर
अजल भी कांप उठे वह शबाब पैदा कर
तेरे खराम में है जलजलों का राज निहां
हर-एक गाम पर इक इंकिलाब पैदा कर
बहुत लतीफ है ऐ दोस्त! तेग का बोसा
यही है जाने-जहां इसमें आब पैदा कर
तेरा शबाब अमानत है सारी दुनिया की
तू खार-जारे-जहां में गुलाब पैदा कर
तू इंकिलाब की आमद का इंतजार न कर
जो हो सके तो अभी इंकिलाब पैदा कर
तुम प्रतीक्षा मत करो कि क्रांति आएगी। क्रांति कभी नहीं आती। क्रांति में जाना होता है।
तू इंकिलाब की आमद का इंतजार न कर
जो हो सके तो अभी इंकिलाब पैदा कर
और मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूं कोई सामाजिक-राजनीतिक क्रांति नहीं है। वह क्रांति है--व्यक्ति की क्रांति, आत्मिक क्रांति।
तन्मयता से ही जीवन जीया जाए, यही राज है। लेकिन तन्मयता कहां सीखोगे? तन्मयता सीखने के लिए, कोई जो तन्मय हो गया हो, उसके साथ जुड़ जाना होगा। किसी की वीणा बज उठी हो, उसकी वीणा के पास तुम अपनी गैर-बजती वीणा रख दो। पास रखे-रखे ही गैर-बजती वीणा के तार भी कंपने लगते हैं बजती वीणा की चोट से। कोई दीया जल गया हो, उसके पास अपने बुझे दीए को रख दो; कभी निकटता की ऐसी घड़ी आएगी कि जलते दीये से ज्योति लपकेगी और बुझे दीये को पकड़ जाएगी। मेरा कुछ भी नहीं खोता है, तुम्हें बहुत कुछ मिल जाता है। जलता दीया
अब भी जल रहा है। हजार दीए जला लिए हों तो कुछ ऐसा मत सोचना कि जलते दीए की कुछ रोशनी कम हो गई। यही तो मजा है आत्मिक अनुभव का कि बांटो, लुटाओ--न लुटता है, न बंटता है, बढ़ता ही चला जाता है, कुछ खर्च नहीं होता।
उपनिषद का वचन तुम्हें याद है? ईशावास्य उस वचन से शुरू होता हैः पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। तुम्हें जितना मुझसे निकालना हो निकाल लो, तुम जरा भी संकोच मत करना। संन्यास का इतना ही अर्थ है। लेकिन वे ही निकाल पाएंगे जो मेरे करीब आएंगे। करीब आना यानी संन्यास।

पांचवां प्रश्नः इस बार संध्या-दर्शन में लगातार दो दिन प्रभु-पास का सुयोग मिला। पहले दिन कुछ देर आपको देखते रहने के बाद घबड़ाहट होने लगी, धड़कन तेज हो गई, सिर में चक्कर, नशा जैसा और बेचैनी अनुभव हुई। दर्शन के बाद देर तक यह स्थिति रही। दूसरे दिन आपके पास आने पर आपको प्रणाम कर आंखें बंद कर लीं और ध्यान में डूब गया। पहली बार आपका अदभुत सान्निध्य पाया--इतना निकट कि खुली आंखों से आपको कभी नहीं देख पाया था। भीतर शीतलता, गहन मौन और शांति बहुत देर तक छाई रही। यह क्या है?

यही सत्संग है। जो मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूं वह खुली आंखों से नहीं देखा जा सकता; उसे देखने के लिए बंद आंख चाहिए। जो मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूं वह अदृश्य है। इन आंखों के लिए अदृश्य है। बाहर की दो आंखों के लिए अदृश्य है। लेकिन भीतर की आंखों के लिए अदृश्य नहीं है। पहली दफा, धर्मशरणदास! तुम्हें सत्संग का स्वाद आया। अब यह बढ़ता जाएगा। अब इसमें रमो। अब इसको जितना पुकार सको पुकारो। और जल्दी ही तुम अनुभव करोगे कि इसके लिए मेरे पास ही आकर बैठने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी तुम मुझे याद करो, कितने ही दूर हजार मील दूर से, तुम्हारी याद पर निर्भर है। अगर याद तुम्हारी पूरी हो जाए और आंख तुम्हारी सच में बंद हो जाए, तो तुम फिर यही पाओगे, सब जगह पाओगे। तुम्हारी असली दीक्षा अब हुई। एक संन्यास था, जो तुमने पहले लिया था; वह तो केवल शुरुआत थी। अब असली संन्यास घटा। अब तुम मुझसे भीतर से जुड़े।
शुभ हुआ। अब इस पर पानी सींचो। इस पौधे को कुम्हला जाने मत देना।

छठवां प्रश्नः कल प्रवचन के आधे घंटे पहले जब मैंने आपकी ओर गौर से देखा, तब आपके सिर के आस-पास शुभ्र प्रकाश की छाया जैसी कुछ चीज महसूस हुई। पहले इस बात पर मुझे शक हुआ, मगर फिर-फिर देखने की कोशिश की, तब भी वही दिखाई दिया। और अब तक कैसे चूका, यह ख्याल आते ही रोया। कृपया स्पष्ट करें कि यह क्या हुआ?

आनंदतीर्थ! तुम धन्यभागी हो कि जल्दी ही तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ा। वही मैं हूं! जो तुम्हें प्रकाश की छाया की भांति मालूम पड़ा है, वही मैं हूं! यह देह उसकी छाया है। यह देह मूल नहीं है, मूल वही है। वह जो रोशनी तुम्हें दिखाई पड़ी, वही मूल है। यह देह उसके पीछे चलने वाली छाया है।
मगर हम देह से इतने बंधे हैं कि हमने देह को मूल मान लिया है। इसलिए जब पहली दफा मूल दिखाई पड़ता है तो छाया जैसा मालूम होता है। और जो तुम्हें मेरे भीतर दिखाई पड़ा है, वही तुम्हें जल्दी ही सबके भीतर दिखाई पड़ने लगेगा। इसका कोई संबंध उपलब्ध और गैर-उपलब्ध से नहीं है।
यह आभामंडल प्रत्येक के पास है--सिर्प आंख चाहिए देखने की! यह आभामंडल मनुष्यों के पास ही नहीं है, पशु-पक्षियों के पास भी है, और वृक्षों के पास भी है। यह आभामंडल हमारी आत्मा है।
जो तुम्हें हुआ, अब उसका बारबार स्मरण करना। और मेरे ही साथ नहीं, कभी- कभी राह चलते अजनबी के पास भी अनुभव होगा। धीरे-धीरे अनुभव फैलता जाएगा। सभी के भीतर परमात्मा मौजूद है--उतना ही जितना बुद्ध के, जितना कृष्ण के, जितना क्राइस्ट के भीतर। लोगों को पता न हो, यह दूसरी बात है। खजाना तो भीतर है ही। भूल गए हों, यह दूसरी बात है। उस खजाने से यह रोशनी उठती ही रहती है।
मगर पहली बार देखने में आमतौर से सुविधा हो जाती है, अगर तुम्हारा किसी से बहुत गहरा लगाव और श्रद्धा का संबंध हो। नहीं तो यह देखना मुश्किल हो जाता है। पहली दफा गुरु में दिखता है, फिर धीरे-धीरे सब में दिखाई पड़ने लगता है।
ठीक हुआ आनंदतीर्थ! और जब पहली दफा होता है तो शक भी होता है, संदेह भी होता है--भ्रांति तो नहीं हो रही? मन हजार प्रश्न खड़े करता है। और जब पहली दफे होता है, तब यह भी होता है कि अब तक कैसे चूका? और वह ख्याल आते हर एक रोता है। क्योंकि जो इतनी सुगमता से उपलब्ध था, उससे भी हम चूक रहे थे। हम जैसा अभागा कौन!
लेकिन फिकर न करो, जब भी घर लौट आए तभी जल्दी है। क्योंकि अनंत हैं जो अनंतकाल तक लौटने वाले नहीं हैं, ऐसी जिद किए बैठे हैं। जब हो जाए तभी जल्दी है। पछताने की चिंता छोड़ो। अब हुआ है, आभारी होओ! धन्यभागी होओ! अहोभाव से भरो! क्योंकि अहोभाव से भरोगे तो और-और होगा।

सातवां प्रश्नः प्रवचन के समय जब आपको देखती हूं, आपका दर्शन करती हूं, तब आपकी आवाज सुनाई पड़ती है; लेकिन आप क्या कह रहे हैं उसका ध्यान नहीं रहता। तो क्या यह मेरी मूर्च्छा है, बेहोशी है? कृपा कर मेरा मार्ग-दर्शन करें।

नहीं समाधि! बेहोशी नहीं है। अब पहली दफा जैसा मुझे सुनना चाहिए वैसा तुमने सुनना शुरू किया। जो मैं कह रहा हूं वह तो बहाना है--तुम्हें उलझाए रखने का; तुम्हें यहां बिठाए रखने का। जो मैं हूं, उससे ही जुड़ना है। जो शब्द में कहा जा रहा है, वह तो ना-कुछ है। जो शब्दों के बीच में बहा जा रहा है, वही सब कुछ है। दो शब्दों के बीच में जो अंतराल है, जब कभी-कभी मैं क्षण भर को चुप हो जाता हूं, तब सुनोगे--तभी सुना।
मैं क्या कहता हूं वह भूल जाए, उसकी फिकर मत करना। मैं क्या हूं, वह न भूले।
मूर्च्छा नहीं है। मूर्च्छा जैसी ही है बात, लेकिन मूर्च्छा नहीं है। मूर्च्छा जैसी लगेगी। बेखुदी है। आत्म-तल्लीनता है। लेकिन आत्म-तल्लीनता भी मूर्च्छा जैसी लगती है। एक नशा छा रहा है।
जाम गिर पड़ता है साकी थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देख कर नश्शा में आ जाती हूं मैं
नशा तो बढ़ना चाहिए। पियक्कड़ बढ़ें, यही तो मेरी चेष्टा है। इस मधुशाला में ज्यादा से ज्यादा लोग पीकर बेखुद हो जाएं, यही तो उपाय है। सुधि खो जाएगी तुम्हें अपनी, और तभी तो परमात्मा की सुधि आएगी।
जब जब वै सुधि कीजिए, तब-तब सब सुधि जाहिं
आंखिन आंख लगी रहैं, आंखैं लागत नाहिं।।
--मतिराम का प्रसिद्ध वचन है। जब-जब वै सुधि कीजिए! जब-जब उसकी याद आती है, जब-जब उसका स्मरण होता है, तब-तब सब सुधि जाहिं, तब-तब सब याद खो जाती है, सब स्मरण खो जाता है। एक बेखुदी छा जाती है, एक नशा उतर आता है। आंखिन आंखि लगी रहैं... और तब उसकी आंखों से जुड़ जाती है। आंखिन-आंखि लगी रहैं, आंखैं लागत नाहिं। फिर आंख बंद नहीं होती। फिर नींद नहीं आती। फिर आंखें थिर हो जाती हैं, अपलक हो जाती हैं।
ऐसा ही कुछ होता होगा। और फिर बड़ा मुश्किल हो जाता है। मतिराम का दूसरा प्रसिद्ध वचन हैः
कौन बसत है कौन में, यों कछु कही परै न।
पिय नैनन तिय नैन हैं, तिय नैनन पिय नैन।।
कौन किसमें बसता है, कौन किसमें बस गया है--कहना मुश्किल हो जाता है! प्यारे के आंख में प्रेयसी बस गई है, कि प्रेयसी की आंख में प्यारा बस गया है--तय करना मुश्किल हो जाता है।
"कौन बसत है कौन में, यों कछु कही परै न।" कहते नहीं बनता। "पिय नैनन तिय नैन हैं, तिय नैनन पिय नैन।" फिर धीरे-धीरे तो कौन प्यारा है और कौन प्रेयसी, यह भी तय करना मुश्किल हो जाता है। फिर तो दोनों डूब जाते हैं--एक बचता है। उसी एक की तरफ चलना है।
शब्द भी खो जाएंगे। मेरा रूप-रंग, आकार भी खो जाएगा। तुम्हारे शब्द भी
खो जाएंगे। तुम्हारा रूप-रंग, आकार भी खो जाएगा। और तब निराकार तुम्हें सब तरफ से घेर लेगा। बाहर भी वही, भीतर भी वही!

आखिरी प्रश्नः "साहिब एहि विधि ना मिले" की बात ने आज ऐसी चोट मारी कि मैं खलबला गई, धड़कनें बढ़ गईं और मैं आंसू की धार में नहा गई। मेरा भय बह गया। अब कोई आशंका नहीं, कोई भय नहीं। प्रभु, मैं आपकी नाव में बैठ गई। मुझे सम्हालना, मैं गिर न जाऊं! मेरा स्वीकार करो!

पूछा है गुणा ने। यही तो सत्संग का प्रयोजन है--बैठे रहो, सुनते रहो; बैठे रहो, सुनते रहो। कब चोट पड़ जाए, कौन जानता है!
साहिब एहि विधि ना मिले! औरों ने भी सुना, गुणा को चोट पड़ी। चोट पड़ने
का भी समय होता है। कभी-कभी मन उस पकी हुई अवस्था में होता है, जब चोट पड़

जाती है। तब इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, किससे चोट पड़ी। अब यह वचन तो मैंने बहुत बार दोहराया था--साहिब एहि विधि ना मिले--अभी भी दोहरा रहा हूं। इस वचन में कुछ नहीं है। गुणा का चित्त उस समय मेरी तरंग में बंध गया होगा, मेरे साथ जुड़ गया होगा। एक क्षण को भेद टूट गया। फिर मैं क्या कह रहा था उस क्षण में, यह सवाल नहीं है। कुछ भी कह रहा होता, जो कहता, उसी से चोट पड़ जाती।
इसलिए झेन फकीरों की तुमने कहानियां सुनी हैं न। शिष्य ध्यान कर रहा
है और गुरु ने सिर्प पास आकर जोर से ताली बजा दी है। अब ताली तो कोई शब्द भी नहीं है। और एक चौंक और एक सन्नाटा छा गया। और शिष्य ने आंखें खोलीं। पुराना गया, नये का जन्म हो गया। अब शिष्य कहेगा कि "आपने ताली क्या बजा दी, यह ताली अमृत थी!" यह ताली बस ताली जैसी ताली थी। यह घड़ी अमृत की थी। इसमें कुछ भी हो जाता।
झेन फकीर अपने शिष्यों के सिर पर डंडा भी मार देते हैं। और डंडे मारने
से कभी-कभी समाधि फल गई है। कहां से समाधि फल जाएगी, कहना कठिन है। कब तार मिल जाएगा, कहना कठिन है। इसलिए प्रतीक्षा चाहिए।
इक निगाह कर के उसने मोल लिया
बिक गए आह! हम भी क्या सस्ते
कभी-कभी एक निगाह, जरा सी एक निगाह--और सब बिक जाता है, सब दांव पर लग जाता है! मगर कब? उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। इसलिए कहा है कि बैठो गुरु के पास, उठो गुरु के पास, चलने दो यह धारा, यह सत्संग बने रहने दो। कब हो जाएगा, किस शुभ घड़ी में--कोई भी नहीं जानता। उसकी कोई भविष्यवाणी भी नहीं हो सकती। ज्योतिषी भी उसके संबंध में कुछ नहीं कह सकते। सिर्प एक ही चीज है इस जगत में जो ज्योतिष के बाहर है। क्यों ज्योतिष के बाहर है? क्योंकि एक ही चीज है इस जगत में जो कर्म-जाल के बाहर है। एक ही चीज है इस जगत में--समाधि--जिसकी घोषणा नहीं हो सकती। क्योंकि समाधि इस जगत की बात ही नहीं है--उस जगत से आती है। इस जगत में तो हम केवल ग्राहक होते हैं।
"साहब एहि विधि ना मिलै की बात ने आज ऐसी चोट मारी कि मैं खलबला गई।"
चोट तो रोज ही कर रहा हूं कि तुम खलबलाओ, कि तुम्हारी धड़कनें बढ़ें, कि कभी तुम्हारी धड़कनें रुक जाएं, कि कभी तुम्हारी श्वास भीतर जाए और बाहर न आए, और कभी बाहर जाए तो भीतर न आए। कभी एक अंतराल पैदा हो जाए,शृंखला टूट जाए, सिलसिला उखड़ जाए। तुम अतीत से बिल्कुल टूट जाओ और नये हो जाओ।
"और मैं आंसू की धार में नहा गई।" आंसुओं में असली गंगा है। जो आंसुओं में नहाना जान लेता है, उसे गंगा मिल गई। वह जानता है कि पवित्र होने का क्या उपाय है। आंसू चमत्कार है। अगर आंसू ठीक से बह जाएं, आंखों की जन्मों- जन्मों की धूल बहा ले जाते हैं और हृदय का जन्मों-जन्मों का अंधेरा और तमस कट जाता है। रोना जिसने जान लिया उसने प्रार्थना जान ली। अभागे हैं वे, जिन्हें रोने का पता नहीं और जिनकी प्रार्थना कोरे शब्दों की है।
"मेरा भय बह गया।"
जी खोलकर कुछ आज तो रोने दे हमनशीं
मुद्दत हुई है दर्द का दरमां किए हुए
कितने जन्मों से तो रोके बैठे हो आंसुओं को! कितना तो दर्द छिपाए बैठे हो! कहा नहीं, बताया नहीं। बताते भी क्या, कहते भी किससे? कहते भी तो समझता कौन? यहां समझने को कौन है? रोते भी तो लोग हंसते। रोते तो लोग दया करते। इसलिए तो लोगों ने रोक रखा है दर्द, रोक रखे हैं आंसू।
जी खोलकर कुछ आज तो रोने दे हमनशीं
मुद्दत हुई है दर्द का दरमां किए हुए
वह बह गई होगी धारा, फूट गया होगा बांध।
"मेरा भय बह गया। मैं आंसुओं में नहा गई। अब कोई आशंका नहीं, कोई भय नहीं।"
यही तो पुण्य का अनुभव है। कल ही तो हम बात करते थे धनी धरमदास की-- पुण्य का अनुभव! यही पुण्य का अनुभव है। पवित्रता का अनुभव, पुण्य का अनुभव है। पवित्रता में कहां भय, कहां क्रोध, कहां लोभ, कुछ भी नहीं, सब बह जाता है। मगर ध्यान रखना, लौट-लौट कर आजाता है।

इसलिए जो हुआ है, उस पर ही रुक नहीं जाना है। लौट-लौट कर आ जाता है। वे जाल इतने पुराने हैं कि क्षण भर को आकाश खुलता है, मगर फिर बादल घिर जाते हैं, घटाटोप! फिर अंधकार छा जाता है। फिर सूरज छिप जाता है। फिर भरोसा नहीं आता कि सूरज दिखाई पड़ा था या मैंने कल्पना की थी। क्योंकि हमारा बादलों का अनुभव तो बहुत पुराना है और सूरज तो कभी क्षण भर को दिखाई पड़ता है।
तो गुणा! भूलना मत! वह जो हुआ वह सत्य था। फिर बादल घिरेंगे, फिर भय आएगा, फिर आशंका आएगी, फिर संदेह उठेंगे। फिर सारे रोग खड़े होंगे मगर उसे याद रखनाः जो हुआ है, वह सच था। मेरी गवाही है कि जो हुआ है, वह सच था। और उस सच को फिर-फिर खोजना है। बादलों को फिर-फिर छांटना है।
और इसलिए प्रश्न का अंतिम हिस्सा तुम्हारी समझ में आएगाः "प्रभु, मैं, आपकी नाव में बैठ गई। मुझे सम्हालना!" कहीं दूर से भय की धुन आने लगी-- सम्हालना! कहीं से भय ने सिर उठाया। एकदम चला नहीं गया; यही खड़ा है दरवाजे के पास। वह कह रहा हैः "गुणा! इतनी निर्भीक मत हो जाओ, मैं अभी चला नहीं गया, अभी यही हूं, पास ही हूं, फिर लौट आऊंगा। इतनी जल्दी दोस्ती छोड़ नहीं सकता। पुराना नाता-रिश्ता है, जन्म-जन्म का संबंध है। ये फेरे बहुत पुराने हैं।
"प्रभु, मैं आपकी नाव में बैठ गई, मुझे सम्हालना!"
सम्हालने का भाव--आ गया भय! नहीं तो क्या सम्हालना है? क्या सम्हालना है? "मैं गिर न जाऊं"--आ गया भय। गया सूरज, बादल लौट आए। आंसुओं ने जो क्षण भर को आंखें साफ कर दी थीं, धूल-धवांस फिर लौट आई।
ऐसा बारबार होगा। इसके पहले कि आंख सदा के लिए खुल जाए और धूल सदा के लिए बह जाए, बहुत बार होगा।
समाधि के पूर्व बहुत बार समाधि की झलकें आती हैं। यह समाधि की एक झलक
थी, सुंदर थी। कहना भी कठिन है कि किस तरह की थी। लेकिन कहने की जरूरत नहीं। जब तुम्हारे भीतर घटती है तो जो मुझसे जुड़े हैं, मुझे उनकी खबर हो जाती है। जो तुम्हें कह जाता है वही मुझसे कह जाता है।
कागद पर लिखत न बनत कहत संदेश लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।।
कहने की तो बात भी नहीं है। लेकिन जब तुम्हारे हृदय में कुछ घटता है
तो मेरे हृदय में भी घट जाता है। वही संबंध है गुरु और शिष्य का। जिनसे मेरा वैसा संबंध नहीं है, उनके भीतर क्या घटता है, मुझे पता नहीं चलेगा। उनसे मेरे तार नहीं जुड़े हैं। हिम्मत हो तो तार जोड़ लो, पीछे बहुत पछताना होगा।
उठें फिर फस्ले-गुल में आरजुओं को जवां कर दें
चलें फिर बुलबुलों को आशनाए गुलसितां कर दें
बसा लो यह बगिया! खिल जाने दो यह फूल! थोड़ी हिम्मत चाहिए।
और ऐसे भी जिंदगी तो जा रही है, चली ही जाएगी, मौत सब छीन ही लेगी--उसके पहले दांव पर लगा लो।
चश्मेतर! देख गमे-दिल न नुमायां हो जाए
इश्क के सामने और हुस्न पशेमां हो जाए
जानता हूं मैं तमन्ना को गुनाहे-उल्फत
इश्क वह है जो निहां रह के नुमायां हो जाए
प्रेम तो चुपचाप विलीन हो जाता है।
इश्क वह है जो निहां रह के नुमायां हो जाए
--जो बोले भी न, कहे भी न--चुपचाप झुके और लीन हो जाए। अपनी मजबूरिए-उल्फत का फसाना कह कर
डर रहा हूं कि कहीं वह न पशेमां हो जाए
दागे-उल्फत की तज्जली जो नुमायां हो जाए
शोलए-तूर भी इक बार पशेमां हो जाए
जब्ते-गम से नहीं याराए-खामोशी मुझको
तुम जो कुछ पूछो तो मुश्किल मेरी आसां हो जाए
शिष्य तो पूछ भी नहीं सकता। पूछता है तो जानता है कि जो पूछना था वह चूक गया, वह शब्द में नहीं आया। लेकिन शिष्य पूछे या न पूछे, गुरु उत्तर

देता ही है। तुम्हारे बहुत से न पूछे गए प्रश्नों के उत्तर भी रोज मैं देता हूं। जिनने नहीं पूछे हैं, उनके उत्तर भी देता हूं। जो मुझसे जुड़े हैं उनकी खबर तो हो जाती है; उनकी जरूरत मुझे पता चल जाती है।
जब्ते-गम से नहीं याराए-खामोशी मुझको
तुम जो कुछ पूछो तो मुश्किल मेरी आसां हो जाए
काश यूं बर्क गिरे खिरमने-दिल पर मख्फी
.जर्रा-.जर्रा मेरी हस्ती का फरोजां हो जाए
काश यूं बर्क गिरे खिरमने-दिल पर! यह जो दिल की खलिहान है, इस पर कोई बिजली गिरे--ऐसी गिरे, ऐसी गिरे--".जर्रा-.जर्रा मेरी हस्ती का फरोजां हो जाए"... कि मेरा कण-कण रोशन हो उठे।
शिष्य होने में यही आकांक्षा छिपी है--प्रेम का निवेदन और यह आकांक्षा--कि बिजली गिरे मुझ पर ऐसी कि जर्रा-जर्रा फरोजां हो जाए... कि एक-एक कण रोशन हो उठे।
थोड़ी सी चोट गुणा को हुई। अब इस चोट की प्रतीक्षा करना और इस चोट की प्रार्थना करना और इस चोट की अभीप्सा करना। यह चोट बारबार पड़ेगी। एक बार पड़ गई तो पहचान हो जाती है। पहचान हो गई तो फिर बार-बार पड़ने लगती है। तुमने कभी ख्याल किया? एक दिन पैर में चोट लग जाती है, फिर दिन भर उसी जगह चोट लगती है--यह तुमने ख्याल किया? लगती तो रोज थी चोट, लेकिन पता नहीं चलती थी, अब पता चलती है। पैर में चोट लग गई, कुर्सी के पास से निकलते हैं, कुर्सी का पैर भी उसमें लग जाता है, फिर चोट मालूम होती है। दरवाजा लग जाता है। बच्चा आकर तो उसी पैर पर खड़ा हो जाता है। दिन भर चोट लगती है। चोट तो रोज लगती थी, मगर एक बार लग गई तो घाव हो गया। घाव हो गया तो संवेदनशीलता उस स्थल की बढ़ गई। अब जरा सा भी लगेगा तो चोट हो जाएगी। धीरे-धीरे संवेदनशीलता गहन होती जाती है।
शिष्य धीरे-धीरे संवेदनशीलता ही हो जाता है। वही संन्यास है।
आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
सातवां प्रवचन

प्रेम नाव है

सतगुरु सरन में आइ, तो तामस त्यागिए।
ऊंच नीच कहि जाय, तो उठि नहिं लागिए।।
उठि बोलै रारै रार, सो जानो घींच है।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है।।
माला वाके हाथ, कतरनी कांख में।
सूझै नाहिं आगि, दबी है राख में।।
अमृत वाके पास, रुचै नहिं रांड को।
स्वान को यही स्वभाव, गहै निज हाड़ को।।
का भे बात बनाए, परचै नहिं पीव सों।
अंतर की बदफैल, होइ का जीव सों।।
कहै कबीर पुकारि सुनो धरम आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भव सागरा।।
सूतल रहलौं मैं सखियां, तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलै जगाइ, पायौं सुख सागर हो।।
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
जब लौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो।।
एक बुंद से साहेब मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल बहु कल लागल हो।।
इहवां गावं न ठांव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोहि, नहीं हित आपन हो।।
सेमल है संसार, भुवा उघराइल हो।
सुंदर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो।।
नदी बहै अगम अपार, पार कस पाइब हो।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो।।
सतनाम गुन गाइब, सत ना डोलाइब हो।
कहै कबीर धरमदास, अमर घर पाइब हो।।

मोहब्बत एक राज है
वह राज--रूह में रहे जो हुस्न बन के जल्वागर निगाह जिसके दीद की न ताब लाए उम्र-भर
शऊर से बुलंदतर
मोहब्बत एक राज है।
मोहब्बत एक नाज है
वह नाज--जो हयात को निशाते-जाविदां करे
जमीं के रहने वालों को जो अर्शे-आशियां करे न फर्के इ-ओ-आंकरे
मोहब्बत एक नाज है।
मोहब्बत एक ख्वाब है
वह ख्वाब--जिसकी सरखुशी पे जन्नतें निसार हों फसाना साजे-जिंदगी की इशरतें निसार हों हकीकतें निसार हों
मोहब्बत एक ख्वाब है।
मोहब्बत एक निगार है
तमाम सिदको-सादगी, तमाम हुस्नो-काफिरी
तमाम शोरिशो-खलिश मगर ब-तर्जे-दिलबरी
शिकस्त जिसकी बरतरी
मोहब्बत इक निगार है।
प्रेम एक रहस्य है। सबसे बड़ा रहस्य! रहस्यों का रहस्य!

प्रेम से ही बना है अस्तित्व और प्रेम से ही समझ में आता है। प्रेम से
ही हम उतरे हैं जगत में और प्रेम की सीढ़ी से ही हम जगत के पार जा सकते हैं। प्रेम को जिसने समझा उसने परमात्मा को समझा। और जो प्रेम से वंचित रहा वह परमात्मा की लाख बात करे, बात ही रहेगी, परमात्मा उसके अनुभव में न आ सकेगा। प्रेम परमात्मा को अनुभव करने का द्वार है। प्रेम आंख है। मोहब्बत एक राज है--एक भेद, एक कुंजी--जिससे अस्तित्व के सारे ताले खुल जाते हैं।
वह राज--रूह में रहे जो हुस्न बन के जल्वागर
अगर प्रेम भीतर हो तो आत्मा प्रकाशित हो उठती है।
निगाह जिसके दीद की न ताब लाए उम्र-भर
रूह ऐसी रोशनी से भर जाती है, अगर प्रेम हो, कि आंखें उस रोशनी को देखें तो तिलमिला जाएं, देख न पाएं, देखना चाहें तो देख न पाएं। सूरज का प्रकाश उसके सामने फीका है। चांद-तारे टिमटिमाते दीये हैं--उसके सामने, उसके मुकाबले, उसकी तुलना में।
जिसने प्रेम जाना उसने पहली दफा रोशनी जानी। और जिसने प्रेम नहीं जाना उसने जीवन में सिर्प अंधकार जाना, अंधेरी रात जानी, अमावस जानी, उसकी पूर्णिमा से पहचान नहीं हुई।
शऊर से बुलंदतर
मोहब्बत एक राज है।
संस्कृतियां, सयताएं उसके समक्ष कुछ भी नहीं। इन सबसे बुलंद है--धर्म, मजहब, संस्कार, रीति-रिवाज, परंपराएं, रूढ़ियां। इन सबसे बुलंद है। इन सबसे बहुत पार है। किन्हीं रीति-रिवाजों में नहीं समाता। किन्हीं सयताओं में सीमित नहीं होता। किन्हीं संस्कृतियों में आबद्ध नहीं है।
प्रेम मुक्ति है--मुक्त आकाश है।
शऊर से बुलंतर
मोहब्बत एक राज है।
उस प्रेम को खोजो, जो हिंदू के पार है, मुसलमान के पार है, कुरान के ऊपर जाता है, गीताएं जहां से नीचे अंधेरी खाइयां हो जाती हैं। उन शिखरों को तलाशो। उन्हीं शिखरों पर परमात्मा का निवास है।
कोई मुझसे पूछता था एक दिनः परमात्मा को कहां खोजें? मैंने कहाः प्रेम में। शायद उसने चाहा होगा कि कहूं हिमालय में। शायद उसने चाहा होगा कि कहूं चांद-तारों पर। वह कहीं बाहर खोजना चाहता था और परमात्मा भीतर ही खोजा जा सकता है। और भीतर जाने की गैल, उसका नाम प्रेम है।
मोहब्बत एक नाज है--एक गौरव, एक गरिमा है। जिसे मिल जाती है, वह सम्राट
हो जाता है। जो उसके बिना है, गरीब है। जो उसके बिना है, बस वही गरीब है--फिर उसके पास कितनी ही संपदा क्यों न हो, सारे जगत का साम्राज्य ही क्यों न हो। जिसके पास प्रेम नहीं, उसका पात्र खाली है, वह भिखमंगा है।
मोहब्बत एक नाज है
वह नाज--जो हयात को निशाते-जाविंदा करे
प्रेम जीवन को अमरत्व दे देता है, अन्यथा जीवन मरणधर्मा है। इस जीवन में एक ही अनुभव है, जो मरणधर्मा नहीं है। इस जीवन में एक ही स्वाद है, जिसमें अमृत की थोड़ी सी झलक है।
मोहब्बत एक नाज है वह नाज--
जो हयात को निशाते-जाविंदा करे
इस मृत्यु से भरे हुए जीवन को जो अमृत की झलक दे जाता है। रंग देता है इसे अमृत के रंग में। प्रेम की घड़ियों में मृत्यु पर भरोसा नहीं आता। प्रेमी मान ही नहीं सकता कि मृत्यु हो सकती है। जिसने प्रेम जाना, मृत्यु से मुक्त हुआ।
ख्याल रखना, जो आदमी जितना प्रेम से हीन होगा उतना ही मृत्यु से भयभीत होता है--उसी अनुपात में। इस गणित में कभी भूल नहीं होती। जब किसी आदमी को तुम मौत से बहुत डरा देखो तो जान लेना कि उसने जीवन में प्रेम को नहीं जाना। प्रेम को जानता तो मृत्यु से डरता क्यों? क्योंकि प्रेम तो मृत्यु को जानता ही नहीं। प्रेम तो मृत्यु को मानता ही नहीं। प्रेम के लिए मृत्यु

एक झूठ है। भय के लिए जिंदगी एक झूठ है। प्रेम के लिए मृत्यु एक झूठ है। भय केवल मृत्यु जानता है। प्रेम केवल जीवन--शाश्वत जीवन--जानता है।
वह नाज--जो हयात को निशात-जाविंदा करे
जमीं के रहने वालों को जो अर्शे-आशियां करे
प्रेम ही एकमात्र चमत्कार है--एकमात्र जादू! जमीन पर रहने वालों को आसमान में रहना सिखा देता है। जमीन पर रहने वालों को आसमान में नीड़ बनाने की कला सिखा देता है। जमीन पर जो सरकते हैं, अचानक आकाश में उड़ने लगते हैं। जिन्हें अपने पंखों का पता ही नहीं था, उन्हें पंख मिल जाते हैं। जिनके जीवन में कोई दिशा नहीं थी, दिशा मिल जाती है।
वह नाज--जो हयात को निशाते-जाविंदा करे
जमीं के रहनेवालों को जो अर्शे-आशियां करे
न फर्के इ-ओ-आं करे
मुहब्बत एक नाज है।
--एक गौरव है, जहां सब भेद गिर जाते हैं, जहां अभेद प्रकट होता है। जहां मैं-तू गिर जाते हैं। जहां वह प्रकट होता है। उसका ही नाम परमात्मा है। प्रेम में न तो मैं होता है, न तू होता है। जहां मैं-तू है, वहां प्रेम नहीं। इसलिए तो झगड़े को हम कहते हैं तू-तू, मैं-मैं। झगड़े का मतलब होता हैः बहुत तू, बहुत मैं; तू-तू मैं-मैं। प्रेम का अर्थ होता हैः न तू, न मैं; दोनों गए; दुई गई; द्वैत गया। फिर जो शेष रह जाता है, वही तो परमात्मा है। ठीक कहा है जीसस ने कि प्रेम ही परमात्मा है। बहुतों ने परिभाषाएं की हैं परमात्मा की, लेकिन जीसस सब को मात दे गए।
मोहब्बत एक ख्वाब है
और ऐसा ख्वाब कि जिसके समक्ष जीवन की सारी वास्तविकताएं झूठी हो जाती हैं। प्रेम एक सपना है--ऐसा सपना जिसके सामने जिन्हें हमने अब तक सच्चाइयां माना है, वे सब फीकी पड़ जाती हैं। हमारी सच्चाइयां उस सपने के सामने झूठ हो जाती हैं।
प्रेम सत्य का स्वप्न है।
प्रेम सत्य की आकांक्षा है, अभीप्सा है।
प्रेम सत्य के बीज का हृदय में आरोपण है।
प्रेम क्रांति है, क्योंकि तुम उठने लगते हो--जीवन की क्षुद्रता से विराटता की तरफ; सीमा से असीम की तरफ।
मोहब्बत एक ख्वाब है
वह ख्वाब--जिसकी सरखुशी पे जन्नतें निसार हों।
ऐसी मादकता है प्रेम कि उस हजारों स्वर्ग निछावर किए जा सकते हैं। जिसने प्रेम जाना वह स्वर्ग नहीं मांगता। इसलिए तो भक्तों ने कहा हैः हमे तुम्हारा बैकुंठ नहीं चाहिए। हमें तुम्हारे चरण चाहिए। हमें तुम्हारा प्रसाद चाहिए। हमें तुम्हारी प्रेम से भरी नजर चाहिए। हमें तुम्हारे बैकुंठ नहीं चाहिए। रखो अपने बैकुंठ। दे देना त्यागियों-तपस्वियों को। उनको बहुत जरूरत है। तुम अपने स्वर्ग बांट देना किन्हीं और को, जिनको सुखों की आकांक्षा है।
क्यों भक्त इतनी हिम्मत से कह पाता है कि हमें तेरे बैकुंठ नहीं चाहिए? --तेरे स्वर्ग नहीं चाहिए, हमें तेरे चरणों की धूल में रहने को जगह मिल जाए, हमें तेरी छाया में थोड़ा विश्राम मिल जाए, बस पर्याप्त है। हमें तेरी याद मिल जाए। तेरी सुरति बनी रहे। तेरी सुधि न भूले। क्यों? कारण है पीछे। क्योंकि भक्त ने प्रेम जाना है। और प्रेम जानते ही उसने जाना है कि हजार स्वर्ग भी फीके हैं।
मुहब्बत एक ख्वाब है
वह ख्वाब--जिसकी सरखुशी पे जन्नतें निसार हों
फसाना साजे-जिंदगी की इशरतें निसार हों
इस दुनिया के जितने सुख हैं, सब एकदम दुख जैसे हो जाते हैं--जिसने प्रेम जाना। यहां फिर पकड़ने को कुछ भी नहीं रह जाता।

त्यागी को छोड़ना पड़ता है, प्रेमी से छूट जाता है। भेद समझ लेना। भेद बड़ा है, गहरा है। त्यागी को चेष्टा कर-कर के छोड़ना पड़ता है। धन छोड़ूं--बड़ी मुश्किल होती है! गिन-गिन कर छोड़ना पड़ता है।
रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया। एक बड़ी थैली में हजार स्वर्ण-मुद्राएं भर कर लाया था। रामकृष्ण के चरणों में उसने स्वर्ण-मुद्राओं की थैली उंडेली। बड़े जोर से उंडेली, बड़ी ऊंचाई से उंडेली! खनाखन-खनाखन... ! सारे आश्रम के लोग इकट्ठे हो गए।
रुपये की आवाज किसे नहीं खींच लेती! रुपये जैसा सौंदर्य और संगी लोग दूसरी किसी आवाज में देखते ही नहीं। सब सितार लोगों के लिए व्यर्थ हैं। सब वाद्य बेकार हैं। जहां रुपये की खनाखन हो वहां फिर कोई संगीत नहीं रुचता। सारे लोग आ गए। जो अपने पूजा-पाठ में बैठे थे, वे भी उठ कर आ गए कि क्या हुआ? और रामकृष्ण बहुत हंसने लगे। रामकृष्ण ने कहाः मेरे भाई, यह तू यहां क्यों लाया? चल अब ले आया तो ठीक, इतने जोर से क्यों पटका? क्या तू दिखाना चाहता है लोगों को कि धन लाया है? तू त्यागी होने का अहंकार भरना चाहता है? वह आदमी थोड़ा हतप्रभ हुआ। उसने कहाः क्या फिर मैं ले जाऊं? आप स्वीकार नहीं करते?
रामकृष्ण ने कहाः अब ले ही आया, यहां तक बोझ ढोया, अब वापस क्यों बोझ ढोएगा? मैं स्वीकार करता हूं। अब ये स्वर्ण-मुद्राएं मेरी हुईं। इन्हें तू फिर बांध ले पोटली में और जाकर गंगा में डुबा आ।
उस आदमी की तकलीफ तुम समझो। वह लाया था बड़ा ही बहुमूल्य धन और ये पागल रामकृष्ण कहते हैं कि फेंक आ गंगा में! लेकिन अब दे चुका था, अब अपना बस भी न था। बे-मन से गया गंगा की तरफ। बड़ी देर हो गयी, लौटा नहीं तो रामकृष्ण ने कहाः जाओ पता करो, वह आदमी अब तक लौटा क्यों नहीं? इतनी देर लगती है!
लोग गए। वहां उसने भीड़ इकट्ठी कर रखी थी। सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गए थे
घाट पर। वह एक-एक सिक्के को घाट की सीढ़ी पर बजा-बजा कर फेंक रहा था। जब लौटा तो रामकृष्ण ने कहाः पागल! रुपये इकट्ठे करते हैं तो गिन-गिन कर करने होते हैं; जब फेंकते हैं तो गिन-गिन कर थोड़े ही फेंकते हैं! एकबारगी में थैली डाल देनी थी। छोड़ने में भी गिनती! तो छूटा ही नहीं।
और यही त्यागी की दशा हैः छोड़ता है, गिनती रखता है। त्यागी भीतर गिनता रहता है--कितने लाख मैंने छोड़ दिए! पत्नी कितनी सुंदर थी, छोड़ दी! हाथी- घोड़े और असवार... राजमहल! खूब कल्पना में उनको बड़ा कर-कर के सोचता है कि सब छोड़ दिए, बड़ा त्याग किया है! यह त्याग जबरदस्ती है, अन्यथा गिनती न होती। प्रेमी छोड़ता नहीं। प्रेमी की आंख बदल जाती है। उसे दिखाई पड़ने लगता है कि सार यहां नहीं--सार परमात्मा में है। छोड़ना क्या है? छूट गया! राख को तो कोई छोड़ता नहीं। धन को ही लोग छोड़ते हैं। जब धन राख की तरह दिखायी पड़ जाता है, फिर छोड़ना क्या है, फिर पकड़ना क्या है? राख न तो पकड़ी जाती है, न छोड़ी जाती है।
मोहब्बत एक ख्वाब है
वह ख्वाब--जिसकी सरखुशी पे जन्नतें निसार हों
फसाना साजे-जिंदगी की इशरतें निसार हों
हकीकतें निसार हों।
ऐसा ख्वाब, ऐसा स्वप्न, जिस पर जिंदगी के तथाकथित सत्य निछावर किए जा सकते हैं।
मोहब्बत एक ख्वाब है
और धन्यभागी हैं वे जिन्होंने प्रेम के इस सपने को देख लिया, क्योंकि यही सपना सच है। और तुम्हारे सब सच झूठ हैं।
मोहब्बत एक निगार है
मोहब्बत एक झलक है परमात्मा की--एक छवि। जैसे चांद बना हो झील में। प्रतिफलन। जैसे दर्पण में तस्वीर बनी हो। प्रेम एक तस्वीर है परमात्मा की। जिसने प्रेम नहीं जाना, वह परमात्मा को पहचान नहीं सकेगा। क्योंकि परमात्मा की और कोई शक्ल-सूरत नहीं है। परमात्मा का कोई और आकार, रूप-रंग नहीं है। प्रेम उसका रंग है, प्रेम उसका ढंग है, प्रेम उसकी छवि है। जिसने प्रेम को पहचान लिया, उसे परमात्मा सब जगह दिखायी पड़ने लगेगा--फूलों में

और पत्थरों में, चांद-तारों में, नक्षत्रों में, लोगों में, पशु-पक्षियों में।
मोहब्बत एक निगार है
तमाम सिदको-सादगी, तमाम हुस्नो-काफिरी
तमाम शोरिशो-खलिश मगर ब-तर्जे-दिलबरी
शिकस्त जिसकी बरतरी
और प्रेम ऐसा अद्भभुत राज है कि वहां हार-जीत है। शिकस्त जिसकी बरतरी... जहां हार कर आदमी जीत जाता है, ऐसा जादू है प्रेम!
मोहब्बत एक निगार है
और इस प्रेम की सबसे बड़ी अनुभूति सदगुरु के पास होती है। उसी के पास
हो सकती है--जो प्रेमपूर्ण हो गया है, प्रेम-मग्न हो गया है, प्रेममय हो गया है--प्रेम हो गया है।
संसार में तो तुम जिसे प्रेम कहते हो, बड़ा टूटा-फूटा है, खंड-खंड है, बड़ा विकृत है। हजार विक्षिप्तताओं में दबा है। हजार गंदगियों में दबा है। हजार तरह की धूलें उस पर जम गई हैं। हजार बाधाओं में पड़ा है।
जिसे तुम संसार में प्रेम करते हो, वह तो कारागृह का कैदी है। सदगुरु में जिस प्रेम को तुम देखते हो, वह मुक्त आकाश का पक्षी है। उसी के साथ प्रेम हो जाए तो तुम भी आकाश में उड़ने का साहस जुटा पाते हो। वही है यात्रा--अंतर्यात्रा, तीर्थयात्रा।
सतगुरु सरन में आइ... ।
धनी धरमदास कहते हैंः सतगुरु के शरण में आना... तो तामस त्यागिए। अगर सदगुरु की शरण आना हो तो एक ही चीज से छुटकारा होना चाहिए--तामस, अहंकार, अस्मिता, मैं-भाव। प्रेम में वही तो बाधा है। धन बाधा नहीं है, पद बाधा नहीं है; तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा पति बाधा नहीं है; तुम्हारे बच्चे बाधा नहीं हैं। और बड़ा मजा यह है कि लोग पत्नी-बच्चों को छोड़ कर चले जाते हैं, धन-दुकान को छोड़ कर चले जाते हैं, बाजार छोड़ देते हैं, समाज छोड़ देते हैं, पहाड़ों पर बैठ जाते हैं। और जिसे छोड़ना था वह भीतर साथ ही चला जाता है। अहंकार साथ ही चला जाता है।
तुमने देखा, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं में जितना अहंकार जितना सघन होता है, जितना विकृत रूप से प्रकट होता है, उतना साधारण जनों में भी नहीं होता! स्वाभाविक है यह भी, क्योंकि सब छोड़ दिया। दूसरों में तो अहंकार और-और चीजों में दबा था, महात्मा में बिल्कुल शुद्ध हो जाता है--शुद्ध जहर! न धन रहा, न पद रहा, न पत्नी रही, न बच्चे रहे--वे सब बातें गईं। अहंकार पर से सारी बाधाएं हट गईं। अब अहंकार रह गया--खालिस! इसलिए अहंकार गहन हो जाता है त्यागी में। और भक्ति के पहले कदम पर ही उसे छोड़ देना होता है, समझ लेना होता है।
सतगुरु शरण में आइ, तो तामस त्यागिए।
मैं हूं, यह बात ही भ्रांति की है। कल तुम नहीं थे, कल तुम फिर नहीं हो जाओगे--इस बीच में जो थोड़ी देर को यह मैं का बबूला उठा है, इस पर इतना भरोसा! कल तुम मिट्टी में थे, कल फिर मिट्टी में जाओगे। यह जो जरा सी लहर उठ आई है जीवन की, इस पर बहुत शोरगुल न मचाओ।
जिंदगी साज दे रही है मुझे
सहर और ए.जा.ज दे रही है मुझे
और बहुत दूर आसमानों से
मौत आवाज दे रही है मुझे
जिंदगी के हर कदम पर मौत की आहट भी सुनते रहो। वे दोनों साथ-साथ हैं। जिंदगी के हर क्षण में मौत छिपी है। अगर तुम मौत को ठीक से देखते रहो तो अहंकार को बनने का उपाय न रहेगा। अहंकार बनता है इस भ्रांति में कि मुझे सदा रहना है। अहंकार बनता है इस भ्रांति में कि जैसे मैं सदा से हूं।
कुछ है तुम्हारे भीतर, जो सदा से है; लेकिन उसका तो तुम्हें भी पता नहीं। और जिसे तुम समझते हो अपना होना, वह सदा से नहीं है। यह देह अभी कुछ वर्षों पहले निर्मित हुई और यह देह भी रोज बदलती रही है, थिर नहीं है। पानी

की तरह बहती हुई धारा है। और यह मन भी थिर नहीं है; यह भी प्रतिपल बदल रहा है।
जब तुम बच्चे थे, तब की देह में और आज की देह में क्या तारतम्य रह गया है? कल के मन में और आज के मन में क्या संबंध रह गया है? आने वाला कल अपना मन लाएगा, अपनी देह लाएगा। इस बदलती हुई धारा को तुमने अपना अस्तित्व समझ रखा है? इसी भ्रांति के कारण तुम उसे नहीं देख पाते जो जन्म के भी पहले था और मृत्यु के भी बाद में होगा। बबूले में उलझ जाते हो, बबूले के नीचे छिपे सागर को नहीं खोज पाते।
जैसे ही तुम देखोगे--गौर से देखोगे--इस मैं की सच्चाई में झांकोगे, इस मैं की जरा खुदाई करोगे, तुम पाओगे कि यहां कुछ भी पकड़ने जैसा नहीं है। मैं हूं कहां? और ऐसा दिखायी पड़े तो ही सदगुरु की शरण में झुके। झुकने का अर्थ ही यह होता है कि मैं-भाव न रहा।
सतगुरु का क्या अर्थ होता है? --ऐसा कोई व्यक्ति, जिसमें मैं-भाव नहीं रहा है।
अब ध्यान रखना, सतगुरु को भी "मैं" शब्द का उपयोग तो करना ही होगा। वह भाषा की अनिवार्यता है। कृष्ण तक अर्जुन से कहते हैंः मामेकं शरणं व्रज। मुझ की शरण आजा! मेरी शरण आजा! सर्व धर्मान परित्यज्य! सब छोड़-छाड़ दे, सब धर्म इत्यादि, मेरी शरण आजा।
जब कोई पढ़ता है, उसके मन में खटका लगता है कि कृष्ण में बड़ा भयंकर अहंकार मालूम होता है--"मेरी शरण आ जा!" मैं का उपयोग तो कृष्ण को भी करना पड़ रहा है। भाषा की अनिवार्यता है। अन्यथा कृष्ण में कोई मैं नहीं। और मजा ऐसा है कि कृष्ण ने जब कहा "मामेकं शरणं व्रज" तो वहां कोई अहंकार नहीं था। और जब तुम कहते हो "मैं तो आपके पैर की धूल", तब वहां बड़ा अहंकार होता है। "मैं तो कुछ नहीं" जब तुम कहते हो, तब भी वहां अहंकार होता है। "मैं तो ना- कुछ", तब भी वहां अहंकार होता है।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि मैं का उपयोग करोगे कि नहीं--सवाल यह है कि मैं को भीतर निर्मित होने दोगे कि नहीं। मैं को भीतर देख लेना-- अस्तित्वहीन है, सारहीन है, व्यर्थ की चिंताएं लाता है, व्यर्थ के उपद्रव खड़े करता है; जीवन को कलह से और नरक से भर देता है--जिस व्यक्ति को ऐसा दिखाई पड़ गया है, उसको हम कहते हैंः सदगुरु। और उसके पास अगर तुम भी झुक जाओ तो जो उसे दिखायी पड़ गया है वह तुममें भी उतर जाए। उसके पास तुम बैठ जाओ तो जो उसे हुआ है तुम्हें भी होने लगे। तुम्हारा भी रंग बदले, तुम्हारा भी ढंग बदले। उसकी आभा तुम्हारे भीतर सोयी हुई आभा को जगाने लगे। उसकी पुकार तुम्हें सुनाई पड़े।
देखा तेरे कूचे में जो नज्जारे-जन्नत
जन्नत में न देखा तेरे कूचे का नजारा
जिसकी गली में, जिसके आस-पास, जिसके सान्निध्य में, स्वर्ग की तुम्हें पहली दफा थोड़ी सी झलक मिले, एक क्षण को सही, एक क्षण को पर्दा हटे--वही सदगुरु! जिसके पास यह घटना घट जाए, वहीं झुक जाना। फिर फिकर मत करना कि वह हिंदू है कि मुसलमान कि जैन कि ईसाई। फिर फिक्र मत करना। चूकना मत ऐसा अवसर। असली सवाल तो झुकने की कला है; किसके पास झुके, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना झुके।
ऐसी घटनाएं हैं इतिहास में कि कभी-कभी कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति के पास झुक गया, जिसको अभी खुद भी नहीं मिला था; लेकिन उसका झुकाव इतना परिपूर्ण था कि गुरु को नहीं मिला था, लेकिन शिष्य को मिल गया। झुकने की वजह से मिल गया। और ऐसा भी हुआ है कि बड़े से बड़े सदगुरु के पास लोग रहे, अपने अहंकार से भरे हुए, बुद्ध के पास रहे हैं और क्राइस्ट के पास रहे हैं और नानक के पास रहे और कबीर के पास रहे और अपनी अकड़ से भरे रहे और कुछ भी न मिला।
तो कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि वृक्षों के सामने झुक गए आदमी को मिल गया है, पत्थरों के सामने झुक गए आदमी को मिल गया है--और बुद्धों के पास कोई बैठा रहा और नहीं झुका, तो नहीं मिला। इसलिए एक बात ख्याल में ले लेनाः सार की बात है झुकना। गुरु तो केवल एक निमित्त मात्र है, उसके बहाने झुक जाना।

उसके बहाने झुकने में आसानी होगी। झुकने के लिए जो भी बहाना मिल जाए, चूकना ही मत। समझदार का यही काम है। जहां झुकने का बहाना मिल जाए झुक जाना। और अगर तुम झुकने के लिए बहाना खोजो तो अनंत बहाने हैं। किसी सुंदर स्त्री को देख कर झुक जाना, क्योंकि सब सौंदर्य उसी का सौंदर्य है। किसी खिलखिलाते बच्चे को देख कर झुक जाना, क्योंकि सब खिलखिलाहट उसकी है। किसी खिले हुए फूल को देख कर झुक जाना, क्योंकि जब भी कहीं कुछ खिलता है वही खिलता है, उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। सूरज के सामने झुक जाना, क्योंकि सब रोशनी उसकी है।
इस देश में इसीलिए तो सूरज भी देवता हो गया, चांद भी देवता हो गया, बादल के भी देवता हो गए। बिजली चमकी तो उसका भी देवता हो गया। इसके पीछे बड़ा राज है। राज हैः हमने झुकने के कोई निमित्त नहीं छोड़े। आकाश में बिजली चमकी, हमने वह बहाना भी न छोड़ा; हमने घुटने टेक दिए जमीन पर; हम अपनी प्रार्थना में लीन हो गए। बिजली चमक रही थी। भौतिकवादी दृष्टि का आदमी कहेगाः क्या पागलपन कर रहे हो, बिजली बिजली है, इसके सामने क्या झुक रहे हो?
मैं एक घर में मेहमान था--एक ग्रामीण घर में। अब तो बिजली आ गई उस गांव में। बिजली जली, अब घर की बिजली है, खुद ही ग्रामीण ने जलाई और खुद ही सिर झुका कर नमस्कार किया। मेरे साथ एक मित्र बैठे थे--पढ़े-लिखे हैं, डाक्टर हैं। उन्होंने कहाः यह क्या पागलपन है? अब तो बिजली हमारे हाथ में है। अब तो यह कोई इंद्र का धनुष नहीं है। अब तो यह कोई इंद्र के द्वारा लायी गयी चीज नहीं है। यह तो हमारे हाथ में है, हमारे इंजीनियर ला रहे हैं। और तू खुद अभी बटन दबाकर इसको जलाया है।
वह ग्रामीण तो चुप रह गया। उसके पास उत्तर नहीं था। लेकिन मैंने उन डाक्टर को कहा कि उसके पास भला उत्तर न हो, लेकिन उसकी बात में राज है और तुम्हारी बात में राज नहीं है। और तुम्हारी बात बड़ी तर्कपूर्ण मालूम पड़ती है। यह सवाल ही नहीं है कि बिजली कहां से आयी। कुल सवाल इतना है कि झुकने का कोई बहाना मिले तो चूकना मत। जिंदगी जितनी झुकने में लग जाए उतना शुभ है, क्योंकि उतनी ही प्रार्थना पैदा होती है। और जितने तुम झुकते हो उतना ही परमात्मा तुम में झांकने लगता है--झुके हुओं में ही झांकता है!
सतगुरु सरन में आइ तो तामस त्यागिए।
लेकिन सतगुरु उधार नहीं हो सकता। तुम्हें प्रेम का अनुभव हो तो ही... । तुम हिंदू घर में पैदा हुए, हिंदू गुरु के पास गए कि चलो गांव में पुरी के शंकराचार्य आए हुए हैं। मगर तुम्हारा झुकाव सच्चा नहीं हो सकता, औपचारिक होगा। तुम हिंदू की तरह झुक रहे हो, व्यक्ति की तरह नहीं; एक आत्मवान सचेत चेतना की तरह नहीं--हिंदू की तरह। झुक रहे हो, क्योंकि पिता भी झुकते रहे थे, पिता के पिता भी झुकते रहे थे। झुक रहे हो, क्योंकि बचपन से सिखाया गया है कि झुको।
मैं छोटा था तो मेरे पिता को आदत है। घर में कोई भी आए बड़ा-बूढ़ा, कोई भी आए, वे सब बच्चों को बुला कर कहें कि जल्दी झुको, पैर छुओ। मैंने उनसे कहा कि हम पैर तो छू लेते हैं, मगर हम झुकते नहीं। उन्होंने कहाः मतलब? मैंने कहाः झुका हमें कोई नहीं सकता। यह तो बिल्कुल जबरदस्ती है। कोई भी ऐरा- गैरा-नत्थू-खैरा घर में आ जाता, और बस बुलाए कि चलो, झुको! उस दिन तो उनकी बात मेरी समझ में नहीं आती थी, अब समझ में आती हैः वह भी बहाना था। वह भी झुकाना सिखाने का बहाना था। लेकिन उसमें हृदय नहीं हो सकता था। क्योंकि मेरे भीतर कोई प्रीति नहीं उमग रही थी, मेरे भीतर कोई श्रद्धा नहीं जन्म रही थी। तो शरीर झुक जाएगा।
पुरी के शंकराचार्य आ गए, तुम हिंदू हो, तो जाकर शरीर झुक जाएगा। कोई मौलवी आया, तुम मुसलमान हो, तो जाकर झुक जाओगे। मगर क्या तुम्हारा हृदय झुक रहा है? अगर हृदय नहीं झुक रहा है तो इस उपचार से कुछ भी न होगा। और इस उपचार में एक खतरा है कि कहीं तुम इसी उपचार में उलझे न रह जाओ और कहीं ऐसा न हो कि असली झुकने की जगह चूक जाए, तुम वहां जाओ ही नहीं!
मैं सर तो झुकाती हूं तेरे हुक्म में लेकिन
दिल को मेरे राजी व रजा कौन करेगा?

जहां तुम्हारा दिल राजी और रजा हो जाए, जहां अचानक तुम पाओ कि झुकने
की गहन आकांक्षा पैदा हो रही है, वहां बाधा मत डालना, बस। बिना उपचार के, बिना कारण के, अहेतुक झुक जाना। और उसी झुकने से पहली क्रांति घटती है-- तामस छूटता है।
ऊंच नीच कहि जाय तो उठि नहिं लागिए।।
फिर कोई तुम्हें गाली दे जाए, ऊंचा-नीचा कह जाए, तो धरमदास कहते हैंः
अब उसके मुंह मत लगना। क्योंकि तुम हो ही नहीं, कौन तो ऊंचा कहेगा, कौन नीचा कहेगा!
अब ख्याल रखनाः ऊंच नीचे कहि जाय...
यह बड़े मजे की बात है। हमारे पास ऐसे बहुत से शब्द हैं, जिनमें विचार करने जैसी बात छुपी है। कोई गाली दे जाता है तो हम कहते हैंः ऊंच-नीच कह गया। नीच कह गया, यह तो ठीक; मगर ऊंच क्यों लगाते हैं? सच तो यह है कि जब कोई प्रशंसा कर जाता है, तब भी बात उतनी ही झूठी और व्यर्थ है, जितनी जब गाली दे जाता है। तो इसका पूरा अर्थ हुआ कि कोई प्रशंसा करे या कि कोई निंदा करे, ऊंच कि नीच, दोनों हालत में तुम अछूते रह जाना।
सदगुरु के पास झुके हो, इसका प्रमाण क्या होगा? यही प्रमाण होगाः ऊंच नीच कहि जाय तो उठि नहिं लागिए।
उसके मुंह मत लग जाना। उससे जूझने मत लगना। कोई प्रशंसा करे तो आह्लाद से मत भर जाना और कोई गाली दे जाए तो उदास, क्रोध से मत भर जाना। क्योंकि जब अहंकार ही नहीं है तो कैसी प्रशंसा और कैसी निंदा? तुम्हीं नहीं हो तो तुम्हारे संबंध में जो भी कहा गया, सब व्यर्थ है। तुम्हीं नहीं हो तो तुम्हारे नाम जितने पत्र लिखे गए हैं, वे सब व्यर्थ हैं। तुम अनाम, तुम्हारा कोई पता नहीं, तो तुम्हारे नाम जो प्रशंसा आई है, चापलूसी आई है और जो गाली आई है, निंदा आई है--दोनों व्यर्थ हो गयीं।
उठि बोलै रारै रार...
और अगर तुम बोले तो फिर क्रोध से क्रोध बढ़ता है।... रारै रार! वैर से वैर बढ़ता है।... सो जानो घींच। और ऐसा अगर करोगे तो जिंदगी के झगड़े से कभी मुक्त न हो पाओगे, झगड़ा बढ़ता ही जाएगा।
इतना झगड़ा बढ़ गया है जिंदगी में, उसका कारण कहां है? उसका कारण यही है
कि सब अपने-अपने अहंकार में अकड़े खड़े हैं; कोई झुकने को राजी नहीं है। और सब की अहंकार की अकड़ एक-दूसरे से टकराती है। सबके अहंकार की अकड़ अनिवार्य रूप से संघर्ष का कारण हो जाती है। फिर जिंदगी की ऊर्जा इसी में खो जाती है, जैसे कि नदी रेगिस्तान में खो जाए।
उठि बोलै रारै रार, सो जानो घींच है।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है।।
क्रोध को इतना बुरा क्यों कहा है? समस्त धर्मो ने क्रोध की इतनी खिलाफत क्यों की है? कारण है। क्योंकि क्रोध अहंकार का प्रतीक है। अहंकार तो भीतर होता है, क्रोध बाहर आ जाता है। बिना अहंकार के क्रोध आ ही नहीं सकता। अहंकार की दुर्गंध है क्रोध। अहंकार की सड़ांध भीतर हो तो क्रोध की दुर्गंध बाहर आती है।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है।
सावधान होना। अगर गुरु के चरणों में झुके हो, अगर गुरु खोजा है, तो अब थोड़ा गुरुत्व सीखो। अब थोड़े जीवन में प्रसाद को लाओ। ये सब व्यर्थ की बातें आती हैं और चली जाती हैं।
निकल जाएंगे रफ्ता रफ्ता सब अरमां
कोई आह बन कर कोई जान बन कर
यहां कुछ बचता नहीं, सब खो जाता है। जहां सब खो जाना सुनिश्चित है, वहां झगड़ा क्या! जहां मेरा कुछ भी नहीं रहेगा, मेरा नाम-निशान नहीं रहेगा, जहां धूल में मिल जाना नियति है--वहां झगड़ा क्या! झगड़ा किस बात का!
आसमां आज भी नालों से हिला सकता हूं
मैं जो खामोश हूं इसका भी सबब है कोई
जो गुरु के साथ जुड़ गया, खामोश होने लगता है। ऐसा नहीं है कि मर गया। आसमां आज भी नालों से हिला सकता हूं

मैं जो खामोश हूं, इसका भी सबब है कोई
सबब इतना ही है कि अब व्यर्थ हो गया। अब दिखाई पड़ने लगा।
छोटे-छोटे बच्चे खिलौनों पर लड़ते हैं, तुम तो नहीं लड़ते। छोटे-छोटे बच्चे रेत के घर बना लेते हैं नदी के तट पर और लड़ते हैं, तुम तो नहीं लड़ते। और सांझ को तुमने देखा है! छोटे बच्चे भी उन्हीं घरौंदों के लिए बड़े लड़ते थे, दिन भर बड़ा झगड़ा मचाए थे, सांझ हो गई, मां की आवाज आती है कि अब आ जाओ घर, भोजन का समय हुआ, अपने ही बनाए हुए घरों पर उछल-कूद कर के, मिट्टी में मिला कर बच्चे घर लौट आते हैं। वे भी प्रौढ़ हो गए सांझ होते-होते। दिन भर लड़े थे इन्हीं घरगूलों के लिए, इन्हीं रेत के महलों के लिए।
और हमारे महल भी रेत के महल हैं! कितनी ही चट्टानों से बनाओ; क्योंकि
सब चट्टानें रेत हैं, इसलिए सब महल रेत हैं। जो चट्टानें हैं आज, कल रेत हो जाएंगी। जो आज रेत है, कल चट्टानें थीं। यहां कुछ रुकता नहीं, सब बहता चला जाता है। जिसे जीवन की यह प्रतीति होने लगती है, उसके भीतर एक खामोशी... । वह देखता है और हंसता है। कोई गाली दे जाता है तो वह हंस लेता है, चकित होता है।
माला वाके हाथ कतरनी कांख में।
ऐसा आदमी, जो अभी क्रोध से भरा है, अहंकार से भरा है वह बड़े पाखंड में
पड़ गया है। इससे तो अच्छा था गुरु का सत्संग न करता। इससे तो अच्छा था मंदिर न आता। इससे तो अच्छा था माला हाथ में न लेता। माला उसे पवित्र नहीं कर पाई, उसने माला को अपवित्र कर दिया है।
माला वाके हाथ कतरनी कांख में।
मुंह में राम, बगल में छुरी! राम-राम तो सिर्प बहाना है, छुरी चलाने का अवसर खोज रहा है।
सावधानी रखना! ये किसी और के लिए कहे गए वचन नहीं हैं, ये प्रत्येक मनुष्य के लिए सार्थक वचन हैं, संगत वचन हैं। तुम्हारे लिए तो और भी, क्योंकि तुम सत्संग में जुड़े हो।
सूझै नाहिं आगि दबी है राख में।
और कभी-कभी यह भी हो जाता है कि ऊपर-ऊपर से क्रोध भी नहीं करता आदमी, ऊपर-ऊपर से लीप-पोत कर लेता है और भीतर-भीतर आग जलती है। दूसरों को शायद धोखा हो जाए, मगर अपने को तो कैसे धोखा दे पाओगे? अंगारा जो भीतर तुम्हारे है, तुम्हें तो पता ही रहेगा। इसलिए प्रत्येक साधक को अपने भीतर निरंतर आत्म-निरीक्षण में लगे रहना चाहिए; देखते रहना चाहिए कि जो मैं बाहर दिखला रहा हूं वैसा मैं भीतर हूं या नहीं हूं? अगर मेरा बाहर और भीतर, अगर मेरा बहिरंग और अंतरंग एक नहीं है, संगीतबद्ध नहीं है, तो मैं पाखंडी हूं। फिर चाहे मैं दुनिया को धोखा देने में सफल हो जाऊं, पर उसका सार क्या है! परमात्मा को धोखा देने में मैं सफल नहीं हो पाऊंगा। परमात्मा मुझे वैसा ही जान लेगा जैसा मैं अपने को जानता हूं, क्योंकि परमात्मा मेरे भीतर मुझ से भी गहरा बैठा हुआ है। शायद बहुत सी बातें जो मुझे नहीं दिखाई पड़तीं अपने भीतर, वे भी परमात्मा के सामने प्रकट हैं।
ऊपर-ऊपर से लोग बदलाहटें कर लेते हैं और भीतर-भीतर वही के वही रह जाते हैं।
मेरे दिल मायूस में क्योंकर न हो उम्मीद
मुर्झाए हुए फूल में क्या बू नहीं होती?
मुर्झाए फूल में भी बू रह जाती है! सब तरफ से जिंदगी से उदास और हार गए लोग भी, जिंदगी से एकदम मुक्त नहीं हो गए होते, जिंदगी की बू रह जाती है। उस बू को ठीक से पहचानते रहना।
यह बहुत आसान है दुनिया में साधु बन जाना; संत बनना कठिन है। और संत और साधु का फर्क यही है। साधु का मतलबः बाहर, जो सबके लिए साधु हो गया है। जिसके कारण बाहर की दुनिया में अब कोई असाधुता नहीं होती। लेकिन भीतर साधु हुआ कि नहीं? क्योंकि यह हो सकता है तुम बाहर हत्या न करो और भीतर हत्या के विचार करो। अक्सर तो ऐसा होता है जो बाहर हत्या नहीं करते वे भीतर हत्या के बहुत विचार करते हैं। जो बाहर हत्या कर लेते हैं शायद भीतर

विचार भी नहीं करते। अब विचार करने की क्या जरूरत रही जब कर ही लिया? अक्सर ऐसा हो जाता है।
मैं जेलों में बहुत दिन तक जाता रहा। कारागृह के कैदियों से मेरे लंबे नाते-रिश्ते बने। मैं चकित हुआ यह बात जान कर कि कारागृह में जो कैदी हैं--कोई हत्यारा है, कोई चोर है, कोई कुछ है, कोई जीवन भर के लिए कैद में पड़ा है--उनकी आंखों में एक तरह की सरलता दिखाई पड़ती है, जो कि तथाकथित सज्जनों की आंखों में नहीं दिखायी पड़ती। एक तरह का भोलाभालापन मालूम पड़ता है। और मैंने उनसे पूछा, क्योंकि मेरा रस मनोविज्ञान में है, मैं उनसे बार-बार पूछा कि अपने सपने कहो। अनेक कैदी तो मुझे कहे कि हमें सपने आते ही नहीं। किसी ने कहा, कभी-कभी आते हैं।
"किस तरह के आते हैं?"
तो मैं चकित हुआ जान कर यह बात कि अपराधी अकसर सपने देखते हैं कि वे साधु हो गए, कि अब अपराध नहीं करते हैं। और साधु, जिनको तुम कहते हो, अक्सर सपने देखते हैं कि जो-जो अपराध उन्होंने नहीं किए हैं, वे सपनों में कर रहे हैं। जो चोरियां उन्होंने नहीं कीं, वे सपनों में कर लेते हैं। जो काम-भोग उन्होंने जिंदगी में नहीं किया, वह सपने में कर लेते हैं।
तुम्हारा सपना खबर देता है कि तुमने जिंदगी में क्या नहीं किया, क्योंकि सपना परिपूरक है। दिन में उपवास किया तो रात सपने में भोजन कर लेते हो। दिन में पड़ोस की स्त्री को देख कर मन को सम्हाल लिया और कहा कि मैं साधु हूं, ऐसी बात उठनी ही नहीं चाहिए मेरे मन में; लेकिन रात पड़ोस की पत्नी को लेकर भाग गए। सपने में! सुबह हंसते हो; मगर जो रात हुआ है, वह अकारण नहीं हुआ है। सपनों में सम्राट बन जाते हो, विजेता हो जाते हो। सारी दुनिया में यश-कीर्ति फैल जाती है। सोने के महलों में रहने लगते हैं। भिखमंगे अक्सर सम्राट होने के सपने देखते हैं। जो नहीं है, उसका सपना होता है। क्योंकि सपना एक तरह की परिपूर्ति है। सपना मन को सांत्वना है। साधु वह, जो बाहर से तो अच्छा हो गया है। संत वह, जो भीतर से भी अच्छा
हो गया है, जिसकी साधुता बाहर और भीतर सम हो गई है; जिसका तराजू बीच में ठहर गया है; जिसके भीतर सपने में भी बुराई नहीं रही है।
सूझै नाहिं आगि दबी है राख में।
अमृत वाके पास रुचै नहिं रांड को।।
"रांड" शब्द समझना। रांड का अर्थ होता हैः विधवा। जो परमात्मा से नहीं जुड़े हैं, वे सब विधवा हैं। उन्हें अभी दूल्हा मिला ही नहीं। कबीर ने कहा हैः मैं तो राम की दुल्हनियां। कबीर ने कहा है हम तो ब्याहि चले... हमारा तो विवाह हो गया। हम राम की दुल्हनियां हैं!
जब तक राम तुम्हारे हृदय में विराजमान नहीं हो गया है, तब तक विधवा ही हो। विधवा अभागी दशा है। और यह आध्यात्मिक वैधव्य तो और भी अभागी दशा है। और जन्मों-जन्मों से यह वैधव्य चल रहा है। प्यारे से मिलना हुआ ही नहीं। अमृत वाके पास...
और मजा ऐसा है कि प्यारा बिल्कुल पास है, अपने से ज्यादा पास है।
मांगने की बात है और मिल जाए। खटखटाने की बात है और द्वार खुल जाएं।
जीसस का वचन याद करोः खटखटाओ--और द्वार खुल जाएंगे! मांगो--और मिल जाएगा! पूछो--और मिल जाएगा! खोजो--और मिल जाएगा! सिर्प द्वार खटखटाने की बात है।
सूफी फकीर राबिया तो और एक कदम जीसस से आगे बढ़ गयी। फकीर हसन रोज-रोज अपनी प्रार्थनाओं में बैठता था और परमात्मा से कहता थाः कब से तेरा द्वार पीट रहा हूं, दरवाजा खोल! अब मुझे भीतर आने दे! मैं सिर पटक रहा हूं तेरे द्वार पर। कब से सिर पटक रहा हूं! मेरे सिर को देख! मेरे माथे को देख! तेरे द्वार के पत्थर पर पटकते-पटकते निशान बन गए हैं, अब द्वार खोल! रोता था, पुकारता था। एक दिन राबिया वहां से गुजरती थी फकीर हसन के दरवाजे के पास से। वह अपनी सुबह की प्रार्थना कर रहा था--वही रोज की प्रार्थना। राबिया पीछे खड़ी हो गई। उसने कहाः हसन, सुन! दरवाजा खुला है। नाहक सिर न पीट। अगर भीतर जाना है तो जा, नहीं जाना है तो मत जा। मगर दरवाजा खुला है। दरवाजा बंद कब था?

राबिया अदभुत स्त्री हुई! --उसी कोटि में, जिसमें बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट। बड़ी हिम्मतवर स्त्री थी। हसन को पसीना छूट गया था, कहते हैं जब राबिया ने यह कहा कि तू सिर पटक रहा है सिर्फ बचने के लिए; भीतर जाना नहीं है, तो सिर पटकने का बहाना कर रहा है। सिर पटकना क्यों? दरवाजा खुला है।
जीसस ने कहा हैः खटखटाओ और दरवाजा खुलेगा। राबिया कहती हैः खटखटाने
की जरूरत नहीं है, गौर से देखो--दरवाजा खुला है!
अमृत वाके पास, रुचै नहिं रांड को।
प्यारा इतना निकट है, लेकिन हम ऐसे अभागे हैं कि हमें रुचता नहीं। हम कहते हैं परमात्मा कहां? पूछना चाहिए कि परमात्मा कहां नहीं है? हम सोचते हैं परमात्मा होगा कहीं स्वर्ग में। यह तुमने परमात्मा को निष्कासित कर दिया पृथ्वी से। तुमने चालबाजी की। तुम परमात्मा को पास नहीं चाहते, तुमने स्वर्ग में बिठा दिया--दूर, इतने दूर, इतने दूर कि तुम्हारे अंतरिक्षयान भी वहां तक नहीं पहुंच सकेंगे।
हम सदा परमात्मा को दूर बिठाने में बड़ा रस लेते रहे हैं। जब तक हिमालय
पर आदमी नहीं जा सकता था, हमने हिमालय पर बिठा रखा था--कैलाश पर। जब आदमी कैलाश पहुंच गया, हमने कहाः अब तो वहां बिठाना मुश्किल है, फिर पास पड़ जाएगा। चांद पर बिठा दिया था। अब मुश्किल आ गई। अब चांद पर आदमी पहुंच गया। अब हम उसको और आगे सरकाएंगे। हम सरकाते ही रहेंगे। हम परमात्मा को वहां रखते हैं, जहां हम नहीं हैं। क्योंकि परमात्मा के निकट होना खतरनाक है। खतरनाक है इसलिए, कि उस प्यारे पर नजर जाएगी तो तुम्हें मिटना होगा। तुम्हारी बूंद उस सागर में गिर जाएगी तो समाप्त हो जाएगी।
अमृत वाके पास, रुचै नहिं रांड को।
हम ऐसे अभागे हैं कि हमें अमृत नहीं रुचता, हमें जहर रुचता है। हमें जहर का स्वाद लग गया है।
स्वान को यही स्वभाव गहै निज हाड़ को।।
हमारी हालत कुत्ते जैसी हो गयी है। कुत्ते को देखा है? सूखी हड्डियां चूसता है, जिनमें कुछ रस नहीं है। कुत्ते सूखी हड्डियों के पीछे दीवाने होते हैं। एक कुत्ते को सूखी हड्डी मिल जाए तो सारे मोहल्ले के कुत्ते उससे लड़ने को तैयार हो जाते हैं। बड़ी राजनीति फैल जाती है। बड़ा विवाद मच जाता है। बड़ी पार्टियां खड़ी हो जाती हैं। कुत्तों को इतनी सूखी हड्डी में रस क्या है? रस तो उसमें है ही नहीं। फिर यह रस कैसा? हड्डी को तो निचोड़ो भी, मशीनों से, तो भी कुछ निकलने वाला नहीं है--सूखी हड्डी है। फिर होता क्या है?
एक बड़े मजे की घटना घटती है। कुत्ता जब सूखी हड्डी को चूसता है तो उसके मसूढ़े, उसकी जीभ, उसका तालू सूखी हड्डी की चोट से टूट जाता है जगह-जगह, उससे खून बहने लगता है। वह उसी खून को चूसता है और सोचता है हड्डी से आ रहा है। और कुत्ते का तर्क भी ठीक है, क्योंकि कुत्ते को और इससे ज्यादा पता भी क्या चले! खून गले के भीतर जाता हुआ मालूम पड़ता है--प्रमाण हो गया कि हड्डी से ही आता होगा।
तुम.जरा गौर करोगे तो तुमने जिंदगी में जिन बातों को सुख कहा है, वे
सब ऐसी ही हैं। हड्डी से सिर्प तुम्हारा ही खून तुम्हारे गले में उतर रहा है। हड्डी से कुछ नहीं आ रहा है, सिर्प घाव बन रहे हैं। मगर तुम सोच रहे हो कि बड़ा रस आ रहा है। और जिस हड्डी से रस आ रहा है्, उसको छोड़ोगे कैसे? अगर कोई छुड़ाना चाहे तो तुम मरने-मारने को तैयार हो जाओगे। कुत्ते जैसी दशा है आदमी की।
तुम सोचते हो धन के मिलने से सुख आता है? तो तुम उसी गलती में हो, जिसमें कुत्ते हैं। धन से सुख नहीं आता, लेकिन आता तो लगता है। तो जरूर कहीं बात होगी। आता तो लगता है, गले से उतरता तो लगता है। क्योंकि धनी आदमी प्रसन्न दिखता है, प्रफुल्लित दिखता है; उसकी चाल में गति आ जाती है। देखा! पैसे पड़े हों खीसे में तो गर्मी रहती है। सर्दी में भी गरमी रहती है! मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन और उसका बेटा, दोनों एक जंगल
से भाग रहे थे, पीछे शेर लगा था। शिकार को गए थे, लेकिन हालत उलटी हो गई थी।

शेर शिकार कर रहा था। घबड़ाहट में भाग खड़े हुए थे। एक नाले पर छलांग लगाई। बेटा तो बीच नाले में गिर गया, लेकिन मुल्ला बूढ़ा उस पार पहुंच गया। जब दोनों सम्हले, बैठे, तो बेटे ने पूछा कि यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं जवान हूं। मैंने भी छलांग लगाई, पूरी ताकत से लगाई, क्योंकि शेर पीछे लगा है। मगर मैं तो बीच में पड़ गया नाले के और पानी में भीग गया। तुम उस तरफ कैसे निकल गए?
मुल्ला ने कहाः उसके पीछे राज है। उसने अपना खीसा खनखनाया। पुरानी कहानी है। रुपये खनखन-खनखन हुए। उसने कहाः जब भी मैं कहीं जाता हूं तो रुपये खीसे में रखता हूं, इससे गर्मी रहती है। इन रुपयों की वजह से छलांग लग गई। आज अगर खीसे में रुपये न होते, मैं भी गिरता।
तुम देखते हो, जब तुम्हारे पास रुपये होते हैं तो चाल बदल जाती है! चाल में एक शान आ जाती है! चलते जमीन पर हो, पैर नहीं पड़ते जमीन पर। और जब रुपये नहीं होते, जब पास में कुछ नहीं होता, तो बिल्कुल सिकुड़ जाते हो। चाल में गति ही नहीं मालूम होती। जब पद पर होते हो तब देखा, उड़ने लगते हो! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि राजनेता जब तक पद पर होते हैं, तब तक स्वस्थ रहते हैं। जैसे ही पद से उतरे कि बीमार होने शुरू हो जाते हैं। राजनेता जब तक जीतते रहते हैं, जब तक विजय-यात्रा बनती रहती है, तब तक जीते हैं, लंबे जीते हैं। और जैसे ही हार आनी शुरू होती है, वैसे ही मौत आनी शुरू हो जाती है। चीन ने अगर हमला न किया होता तो जवाहरलाल नेहरू ज्यादा जिंदा रह सकते थे। चीन के हमले ने तोड़ दिया। प्रतिष्ठा उखड़ गई। मन डांवाडोल हो गया। राजनेता पद पर होता है तो एक बल मालूम होता है। बल आ तो रहा है कहीं से। हड्डी में रस तो आ रहा है। कहां से आ रहा है, यह पक्का नहीं हो पाता। धन होता है तो आदमी बल में होता है; ताकत होती है, वजन होता है। धन चला जाता है तो सब गड़बड़ हो जाती है। जैसे ही कोई आदमी राज-पद से नीचे उतरता है, उसकी हालत वैसी ही हो जाती है जैसे जब कपड़ा इस्त्री खो देता है, लुंज-पुंज हो जाता है; या जूता बहुत दिन चलते-चलते चलते-चलते टूट-फूट जाता है, सब तरह से सड़-गल जाता है।
और एक बार तुम पद से नीचे उतरे कि फिर तुम्हें कोई नहीं पूछता। तो धन
और पद से कहीं कोई रस बहता जरूर होगा, नहीं तो इतने लोग दीवाने न होते। कहां से बहता होगा? मनोविज्ञान... और धर्म ने तो मनोविज्ञान में बड़ी गहरी खोजें की हैं, जो आधुनिक मनोविज्ञान अभी पकड़ भी नहीं पाया है; लेकिन पकड़ने के रास्ते पर है। क्या खोज है? खोज यह है कि जब तुम्हारे पास धन होता है तो जो रस आता है, वह धन के कारण नहीं आता। धन के कारण आ ही नहीं सकता, नहीं तो बुद्ध को भी आया होता, महावीर को भी आया होता। फिर किस कारण आता है? अहंकार के कारण आता है। अहंकार बलिष्ठ मालूम होता है। मैं कुछ हूं! पद पर होते हो तो लगता हैः मैं कुछ हूं! और मजा यह है कि अहंकार तुम्हारी आत्मा में घाव कर रहा है, तुम्हें मवाद से भर देगा। अहंकार ही नरक पैदा करेगा। लेकिन अहंकार ही रस दे रहा है।
वह हड्डी जो कुत्ता चूस रहा है, वह इसके मुंह में घाव बना रही है। मगर घावों का उसे पता नहीं है। वह तो जब होगा तब देखा जाएगा। और जब उसे पता चलेगा तब शायद वह संबंध भी न जोड़ पाएगा कि हड्डी ने बनाया। हड्डी ने तो रस दिया था। पद पर रस मिल रहा है--वस्तुतः अहंकार मिल रहा है। धन से रस मिल रहा है--वस्तुतः अहंकार मिल रहा है।
और आज नहीं कल, यही अहंकार नरक पैदा करता है, क्योंकि इसी अहंकार से क्रोध पैदा होता है। इसी अहंकार से लोभ पैदा होता है। इसी अहंकार से मत्सर पैदा होता है। इसी अहंकार से ईर्ष्या पैदा होती है। इसी अहंकार से जीवन संघर्ष बन जाता है। जीवन के सारे नरक का फैलाव इसी अहंकार के घाव से होता है। इसमें मवाद बढ़ती ही चली जाती है।
रस तो कुत्ते को मिलता है निश्चित, मगर अपने ही प्राणों का रस मिल रहा है--और चोट पहुंचा कर मिल रहा है--और व्यर्थ की मूढ़ता कुत्ता कर रहा है।
लेकिन आदमी भी वैसा करता है।
अमृत वाके पास रुचै नहिं रांड को।
स्वान को यही स्वभाव गहै निज हाड़ को।।

का भे बात बनाए, परचै नहिं पीव सों।
कहते हैं धनी धरमदासः बातें बनाने से कुछ भी न होगा, जब तक परमात्मा
से परिचय न हो। सिद्धांत और शास्त्र और दर्शन और बड़ी लफ्फाजी और बड़ा पांडित्य! का भे बात बनाय... इन बातें बनाने से कुछ भी न होगा। तुम्हारा ईश्वर भी तुम्हारी बकवास है। और तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी बकवास है। तुम्हें अनुभव कुछ भी नहीं है।... परचै नहिं पीव सों। उस प्यारे से परिचय नहीं हुआ है अभी।
किताब में खोजोगे, परिचय होगा भी कैसे? शब्दों को पकड़ोगे, परिचय होगा
भी कैसे? उधार है तुम्हारा ज्ञान। सब कूड़ा-करकट है। स्वानुभव से कुछ हो तो ही सत्य है, अन्यथा सब असत्य है।
अंतर की बदफैल, होइ का जीव सों।
और फिर तुम जितना भी कर रहे हो वह सब व्यर्थ चला जाएगा, क्योंकि भीतर बुनियादी भ्रांति अभी मौजूद है। अंतर की बदफैल अभी भीतर अहंकार मौजूद है।
अभी जड़ तो मौजूद है, पत्ते काटते रहो, नये पत्ते निकलते आएंगें।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः और कुछ करने के पहले एक बुनियादी बात कर लेना--अहंकार की जड़ काट देना। यही सतगुरु के शरण जाने का अर्थ है। जड़ काट देना, पत्ते मत काटते रहना।
मेरे पास लोग आते हैं। शायद ही कभी कोई आकर यह कहता होः मैं अहंकार से कैसे छुटकारा पाऊं? लोग आते हैं, वे कहते हैंः क्रोध बहुत है, इससे कैसे छुटकारा पाऊं? कोई कहता हैः लोभ बहुत है, इससे कैसे छुटकारा पाऊं? कोई कहता हैः मोह बहुत सताता है, इससे कैसे छुटकारा पाऊं? ये सब पत्ते हैं। इनको तुम काटते रहो, नये पत्ते निकलेंगे। सच तो यह है, एक पत्ता काटो, तीन पत्ते निकलते हैं। इसलिए तो कलम करते हैं। वृक्ष को घना करना हो तो कलम करते हैं। जड़ की कोई बात ही नहीं पूछता। और यह भी हो सकता है कि पत्ते भी तुम इसीलिए काटना चाहते हो, ताकि जड़ और मजबूत हो जाए। क्योंकि क्रोध से अहंकार को चोट लगती है, लोग कहते हैंः अरे, क्रोधी! तो गौरव-गरिमा क्षीण होती है। तुम चाहते हो कि लोग कहें अक्रोधी, यह रहा साधु, संत, महात्मा! तुम तैयार हो--क्रोध भी छोड़ने को--अगर लोग तुम्हें महात्मा कहें। तुम तैयार हो--लोभ भी छोड़ने को--अगर लोग तुम्हें महात्मा कहें। तुम तैयार हो-- मोह भी छोड़ने को--अगर लोग तुम्हें महात्मा कहें। लेकिन यह बड़े मजे की बात हो गई। तुमने पत्ते तो काटे और सब पत्तों की खाद बना कर जड़ में दे दी। जड़ और मजबूत हो गई। मजबूत जड़ नये पत्ते पहुंचा देगी, नये पत्ते बन जाएंगे। जो वृक्ष अभी फूल भी नहीं रहा था, शायद फूलने भी लगे। और जो वृक्ष अभी फलवान न हुआ था, शायद फलवान हो जाए।
अंतर की बदफैल, होइ का जीव सों।
फिर तुम कुछ भी करते रहो, कुछ भी नहीं होगा। भीतर का मूल सूत्र बदलो।
कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
धरमदास कहते हैंः कबीर ने मुझे पुकारा।
गुरु का अर्थ हैः पुकार।
कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
कहा धरमदास को कि तेरे भीतर खान है सारे धनों की। आगरा... आगार! तू घर
है परमात्मा का। तू निवास है उसका। तू मंदिर है उसका। कहां खोजने जाता है? किस धन में? किस पद में? किस पागलपन में पड़ा है? आंख बंद कर और देख! आंख बंद करके देख!
संसार आंख खोल कर देखा जाता है, परमात्मा आंख बंद करके देखा जाता है। संसार दूर-दूर है, उसके लिए यात्रा करनी पड़ती है; परमात्मा पास-पास है, उसके लिए सब यात्रा छोड़ देनी पड़ती है।
कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भवसागरा।।
और कहा धनी धरमदास को कि तूने तो पा लिया, तुझे तो दिखायी पड़ गया, तूने मेरी पुकार सुन ली।
पुकार सुन लो तो क्षण में हो जाता है मिलन, क्योंकि हमने वस्तुतः परमात्मा को कभी खोया नहीं। जैसे मछली ने सागर नहीं खोया है, लेकिन सागर

की याद नहीं है। सागर में ही है और सागर की विस्मृति हो गयी। जिस दिन याद आ जाती है... बस याद की बात है। स्मरण! ... उसी क्षण क्रांति घट जाती है। पुकार सुन ली धरमदास ने तो क्रांति घट गई। तो एक वचन में पहले कहते हैंः कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा। और दूसरे वचन में कहते हैंः बहुत हंस लै साथ उतरो भवसागरा।। --और जब मुझे भी दिखाई पड़ गया तो उन्होंने कहाः अब तू बैठा मत रहना। अब तू इस संपदा को अपने भीतर ही सम्हाल कर मत रख लेना। बहुत हंस लै साथ... ! औरों को जगा! जो-जो सोए हैं, उनको पुकार! जैसे मैंने तुझे पुकारा, तू औरों को पुकार! यह पुकार फैलने दे। ज्योति से ज्योति जले! फैलने दे यह ज्योति। और बहुत हंसों को साथ लेकर भवसागर से उतर जा। जो मिला है उसे बांट।
खुदा अगर दिले-फितरत सनात दे तुझको
सकूते लाला-ओ-गुल से कलाम पैदा कर
अगर परमात्मा संपदा दे तो फिर सब कुछ उस संपदा को लुटाने में लगा देना।
सकूते लाला-ओ-गुल से कलाम पैदा कर
तेरी नजर से चमनजार सरमदी बन जाए
कली-कली की जबां से पयाम पैदा कर
फिर एक-एक जीवन की कली से उसका ही संदेश। आंख से, हाथ से, पैर से, उठने- बैठने से, बोलने से, चुप होने से--उसका ही संदेश!
ऐ जवानाने-वतन! रूह जवां है तो उठो
आंख इश महशरे-नौ की निगरां है तो उठो
खौफे-बेहुरमती-ओ-फिक्रे जियां है तो उठो
पासे-नामूसे-निगाराने-जहां है तो उठो
उट्ठो नक्कारए-अफलाक बजा दो उठ कर
एक सोए हुए आलम को जगा दो उठ कर
दूर इंसान के सर से यह मुसीबत कर दो
आग दोजख की बुझा दो उसे जन्नत कर दो
जिन में भी थोड़ी सामर्थ्य है, वे पहले अपने भीतर जाएं, जगें! और जब जग जाएं तो जगाएं।
बुद्ध ने कहा हैः जो जागे और जगाए न, उसका जागरण अधूरा है। क्योंकि जिसे ध्यान उपलब्ध हो, उसे करुणा उपलब्ध न हो--उसका ध्यान अधूरा है। ध्यान का दीया जलता है तो करुणा का प्रकाश फैलता है।
सूतल रहलौं मैं सखियां, तो विष कर आगर हो।
अगर मैं सोता ही रहता तो विष का घर था। जागा तो अमृत हो गया। बस इतना
ही फर्क है। जागते--अमृत, सोते--विष। विष ही अमृत हो जाता है। इतना ही कीमिया है। इतना ही रसायनशास्त्र है। इतना सा सूत्र है जादू का।
सूतल रहलौं मैं सखियां तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलै जगाइ, पायौं सुखसागर हो।।
सदगुरु ने जगा दिया, पुकारा, और मैंने पुकार सुन ली, और चमत्कार हो गया। जहां जहर था वहां अमृत हो गया। जहां मृत्यु थी वहां परमजीवन हो गया।
जहां अंधेरा था वहां प्रकाश ही प्रकाश हो गया। पदार्थ बचा ही नहीं, परमात्मा ही परमात्मा हो गया।
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
बड़ा प्यारा वचन है! खूब गौर से समझना। जाग कर सुनना।
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
धरमदास कहते हैंः गुरु से संबंधित होना, फिर से गर्भ में प्रवेश करना है; जैसे फिर से मां का गर्भ मिला, क्योंकि गुरु दूसरा जन्म देगा। एक जन्म तो मां से मिला है, जो देह का जन्म है। मां से तो सभी व्यक्ति शूद्र की तरह पैदा होते हैं। दुनिया में कोई ब्राह्मण की तरह न कभी पैदा हुआहै, न होता है; सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं।
दुनिया में दो ही जातियां हैं--शूद्र और ब्राह्मण। पैदा सभी शूद्र की तरह होते हैं और सभी की संभावना है कि ब्राह्मण होकर मरें। लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली ब्राह्मण होकर मरते हैं।

अमृत वाके पास, रुचै नहिं रांड को।
स्वान को यही स्वभाव, गहै निज हाड़ को।।
बिल्कुल पास होती है संपदा हमारी। हम सब ब्राह्मण होकर मर सकते हैं।
ब्राह्मण यानि ब्रह्म को जान कर। शूद्र यानी अपने को देह ही मानकर जो जीता है, वही शूद्र। जिनको तुम शूद्र समझते हो वे शूद्र नहीं हैं। और जिनको तुम ब्राह्मण समझते हो वे ब्राह्मण नहीं हैं। ब्राह्मण तो कोई बुद्ध, कोई कबीर, कोई मोहम्मद, कोई जरथुस्त्र। शूद्र तो सारी दुनिया है।
शूद्र यानी सोया हुआ।
ब्राह्मण यानि जागा हुआ।
एक जन्म तो मां से मिलता है; उससे तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। और एक जन्म गुरु से मिलता है; उस जन्म के बाद ही कोई ब्राह्मण होता है। जो गुरु के गर्भ से गुजरता है वही ब्राह्मण हो पाता है।
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
धनी धरमदास कहते हैंः जब गुरु से संग जुड़ा तो तुम फिर गर्भ में प्रविष्ट हुए, फिर नया गर्भ मिला। नये जीवन का द्वार खुला। अब तुम जान सकोगे अपने सच स्वरूप को, अपनी सच्चाई को। अब पुनरुज्जीवन होगा। बहुत सम्हाल कर रहना। क्योंकि मां के पेट में तो बच्चा सोया रहता है, क्योंकि जन्म शूद्र का होने वाला है। बच्चे को जागने की जरूरत नहीं है। बच्चा चौबीस घंटे सोता है मां के पेट में। जन्म के बाद फिर तेईस घंटे सोता है, फिर बाईस घंटे, फिर अठारह घंटे, फिर आठ घंटे पर ठहर जाता है। आठ घंटे आंख बंद करके सोता है और बाकी सोलह घंटे आंख खोल कर सोता है। मगर नींद जारी रहती है।
गुरु के गर्भ में प्रवेश का अर्थ होता है--ध्यान में प्रवेश। अब जाग
कर जीना।... परन सम्हारल हो! अपने प्रण को सम्हालना।
जब लौं तन में प्रान, न तेहि बिसराइब हो।
और जब तक प्राण रहें, तब तक भूले न गुरु। भूले न गुरु का संदेश। भूले न उसकी पुकार। सुधि जगती रहे।
गुरु जन्म है और मृत्यु भी। दूसरी बात भी ख्याल में ले लेना। मां से
जो जन्म मिला था--देह का--उसकी तो मृत्यु हो जाएगी गुरु के साथ। और गुरु से नया जन्म मिलेगा। नया जन्म तभी मिल सकता है जब पुराने की मृत्यु हो जाए। जब तुम जान लो कि मैं देह नहीं हूं, तभी तुम जान सकोगे कि मैं कौन हूं। पदार्थ नहीं हो तो जान सकोगे कि मैं परमात्मा हूं। तत्वमसि श्वेतकेतु! श्वेतकेतु, वह तू है! तू वह है! लेकिन उसे जानने के पहले इस देह के तादात्म्य से छूटना होगा। यही मृत्यु है।
जहां उजड़ा वहीं तामीर होगा आशियां अपना
तड़पती बिजलियों पर हंस रहा है गुलसितां अपना
एक तरफ तो उजड़ जाएगा आशियां। एक तरफ तो सब जल जाएगा। उसी राख से उठेगा नया जीवन।
तो गुरु कठोर भी होगा। गुरु चोट भी करेगा, तो ही तो जगा सकता है। इसलिए
जो गुरु सिर्फ सांत्वना देता हो, बचना, सावधान रहना! वहां से तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटने वाली नहीं है। जो गुरु तुम्हें सांत्वना देता हो, वह तुम्हें लोरी का गीत सुना रहा है। उससे तुम्हारी नींद और गहरी हो जाएगी। जो गुरु तुम्हें जगाना चाहता है, कठोर होगा, झकझोरेगा।
सुबह देखते हो न, तीन बजे रात उठना है, अलार्म बजता है, कैसा क्रोध आता है! अपनी ही घड़ी को पटक देते हैं लोग उठाकर! खुद ही अलार्म भर कर रात सोए थे, अलार्म दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है। तुम्हीं जाकर गुरु से प्रार्थना करते हो मुझे जगाओ! लेकिन जब वह जगाएगा तो जन्मों-जन्मों की नींद टूटेगी, बड़ी पीड़ा होगी, बड़े कष्ट होंगे। अगर अपने प्रण की याद रखी तो ही जग पाओगे, अन्यथा भाग जाओगे। करोड़ों में एकाध गुरु के पास पहुंचता है। फिर जो पहुंचते हैं गुरु के पास, सब टिक नहीं पाते; उनमें से बहुसंख्यक भाग जाते हैं।

पुरानी तिब्बत में कहावत हैः हजार बुलाए जाते हैं तो दस पहुंचते हैं;
जो दस पहुंचते हैं, उनमें से नौ भाग जाते हैं, एक ही बचता है। मगर जो बच जाए, वह धन्यभागी है। वही ब्राह्मण हो पाता है।
एक बुंद से साहेब मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल बहु कल लागल हो।।
इसके दो अर्थ हैं। एक तो अर्थ है, बूंद का अर्थ होता हैः वीर्य-बिंदु।
परमात्मा ने चमत्कार किया है, एक छोटे से वीर्य-बिंदु से... सच तो यह है पूरे बिंदु से भी नहीं, क्योंकि एक वीर्य के बिंदु में करोड़ों जीवाणु होते हैं, करोड़ों कोष्ठ होते हैं, सेल होते हैं। एक सेल से ही जीवन निर्मित होता है, पूरे बिंदु से नहीं। एक बार के संभोग में करीब एक करोड़ सेल होते हैं। एक करोड़ व्यक्ति पैदा हो सकते थे, उनमें से एक, वह भी हमेशा नहीं, कभी-कभार पैदा होता है। जो कोष्ठ जीवन बनता है, वह आंख से, नंगी आंख से तो देखा ही नहीं जा सकता; उसके लिए खुर्दबीन चाहिए।
बड़ा चमत्कार किया है! एक अदृश्य--छोटे से कण से सारा जीवन निर्मित हुआ है। देह, मन, तन सब उससे फैले हैं। यह तो एक अर्थ है। एक बूंद से साहेब मंदिल बनावल हो। यह जीवन का मंदिर बनाया है। एक छोटी सी ईंट है, उस पर सारा मंदिर खड़ा है।
बिना नेंव के मंदिल, बहु कल लागल हो।।
बड़ा चमत्कार मालूम होता है, बड़ा विस्मय मालूम होता है। लेकिन यह कुछ
भी नहीं है उस दूसरे चमत्कार के मुकाबले। क्योंकि गुरु ध्यान की एक ही छोटी बूंद से, फिर एक मंदिर बनाता है। वही मंदिर परमात्मा का आवास बनता है। एक छोटी सी बूंद... अदृश्य बूंद ध्यान की, गुरु से शिष्य में गिर जाती है। जो झुका है, उसमें गिर जाती है। बस उसी बूंद के आस-पास मंदिर बनना शुरू हो जाता है।
इसलिए श्रद्धा को इतना प्रशंसित किया गया है, इतना गुण गाया गया है श्रद्धा का। क्योंकि श्रद्धा के ही किसी क्षण में बूंद सरक सकती है गुरु से शिष्य में। अगर शिष्य जरा भी संघर्षशील है, विवादी है, जरा भी संदेह से भरा है, संभ्रम में है, तो अपनी सुरक्षा करेगा, बूंद प्रवेश नहीं कर पाएगी। जैसे स्त्री-पुरुष के बीच संभोग घटता है, उस संभोग में पुरुष से जीवन-ऊर्जा स्त्री में प्रवेश करती है--ठीक वैसा ही संभोग गुरु और शिष्य के बीच बड़े आत्मिक तल पर घटता है। श्रद्धा हो परिपूर्ण, शिष्य बिल्कुल झुका हो, जरा भी संदेह न हो, भरोसा पूरा हो, तो ही वह परम संभोग घट सकता है। उसके घटते ही मंदिर बनना शुरू हो जाता है। कब बूंद सरकती है, इसका तो पता भी नहीं चलता, क्योंकि अदृश्य है। जब मंदिर बन जाता है तभी पता चलता है। तभी लौट कर शिष्य देखता है कि जरूर कभी बूंद प्रवेश कर गई होगी। कब पहली ईंट रखी गई, पता नहीं--और बिना नींव के मंदिर बन जाता है! एक चमत्कार है।
एक बूंद से साहेब मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल बहु कल लागल हो।।
बड़ा विस्मय होता है।
इहवां गांव न ठांव... ।
और एक ऐसे लोक में प्रवेश हो जाता है, जहां न कोई गांव है, न कोई ठांव, न कोई सीमा है, न कोई पता-ठिकाना है।... नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोही नहीं हित आपन हो।।
न कोई संगी-साथी है, न कोई अपना-पराया है। एक ऐसे लोक में प्रवेश होता है, जहां मैं-तू के पार हो गए; जहां समय और क्षेत्र के पार हो गए; जहां टाइम और स्पेस दोनों ही विदा हो जाते हैं।
इहवां गांव न ठांव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोही, नहीं हित आपन हो।।
सेमल है संसार भुवा उधराइल हो।
सेमर का वृक्ष देखा न! सेमर का फूल है संसार। उड़ जाती है कभी भी रुई।
ऐसा ही संसार बिखर जाता है। हम बना भी नहीं पाते और बिखर जाता है। हम बनाते ही रहते हैं और बिखर जाता है। सभी अपनी यात्रा के मध्य में ही गिर पड़ते हैं

और समाप्त हो जाते हैं। और बना भी हम क्या रहे हैं? बादलों को मुट्ठियों में बांध रहे हैं, कि ओस-कणों को इकट्ठा कर रहे हैं।
सेमल है संसार, भुवा उघराइल हो।
सुंदर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो।
और जिसने इसमें ही अपने को उलझाया, वह पछताएगा बहुत। बहुत-बहुत पछताएगा। क्योंकि यह अवसर अपूर्व था। इस अवसर में सुंदर भक्ति अनूप... प्रेम का दीया जल सकता था, परमात्मा-प्रेम की ज्योति बन सकती थी। मगर हम अंधेरे को ही इकट्ठा करते रहे। हम अंधेरे की ही गठरियां बांधते रहे। हम अंधेरे को तिजोड़ियों में सम्हालते रहे।
सुंदर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो।।
नदी बहै अगम अपार, पार कस पाइब हो।
यह जो अपार सागर है--अंधेरे का, मृत्यु का--इसे पार कैसे करोगे? यह कैसे पार होगा? प्रेम की नाव बनाओ। और सब नावें डूब जाएंगी। धन की नाव डूब जाती है। पद की नाव डूब जाती है। बस एक नाव नहीं डूबी कभी--प्रेम की नाव।
सतगुरु बैठे मुख मोरि काहि गोहराइब हो।।
प्रेम के माध्यम से यह घटना घट गई कि अब सतगुरु मेरे भीतर बैठ गए हैं। धनी धरमदास कहते हैंः सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो। अब तो पुकारने की भी जरूरत नहीं रही। अब तो प्रार्थना की भी जरूरत नहीं रही। अब कैसा भजन, अब कैसा कीर्तन! अब तो स्वास-स्वास उसी में पगी है, उसी में रमी है। रक्त में वही बह रहा है। हृदय में वही धड़क रहा है।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो। ऐसी घड़ी जरूर आती है अगर शिष्य झुक जाए। और उस छोटी सी बूंद को--अदृश्य बूंद--को अपने भीतर ले-ले। जैसे सीप बूंद को अपने भीतर ले लेती है और बूंद फिर मोती बन जाती है--ऐसे गुरु की अदृश्य बूंद को शिष्य जब भीतर अपने ले-ले तो मोती बनता है--मोती, जिससे बहुमूल्य और कोई मोती नहीं होता। ऐसी संपदा मिलती है जो अकूत है। ऐसा साम्राज्य मिलता है, जो शाश्वत है। फिर कैसी प्रार्थना! फिर कैसी पूजा! फिर सत्संग पर्याप्त है। और सत्संग भीतर होने लगा तो बाहर की भी जरूरत नहीं रह जाती। जहां शिष्य मगन होकर बैठ जाता है वहीं गुरु से जुड़ जाता है।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो।।
सतनाम गुन गाइब, सत ना डोलाइब हो।
अब गाऊं कि न गाऊं, पुकारूं कि न पुकारूं, मगर मेरे भीतर जो सत्य जम कर बैठ गया है वह डुलता नहीं, हिलता नहीं। निस्पंद! निस्तरंग! सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो।। अब मैं क्यों पुकारूं? लेकिन कभी-कभी मौज में, कभी-कभी आनंद में पुकारूं भी, तो भी कुछ हर्ज नहीं। भजन करूं या न करूं?
सतनाम गुन गाइब...
कभी-कभी गुण भी गाता हूं। वह भी बहने लगता है, जैसे बाढ़ आ जाती है। रोके नहीं रुकता।
सतनाम गुन गाइब सत न डोलाइब हो। अब चाहे चुप रहूं चाहे बोलूं, उठूं कि बैठूं, कि सोऊं कि जागूं... सत न डोलाइब हो... वह जो भीतर ठहर गया है सत, अब डोलता नहीं। उसके ठहरते ही सारा जगत ठहर जाता है। समय ठहर जाता है। उसके ठहरते ही सारे उपद्रव ठहर जाते हैं। उसी ठहराव का नाम मोक्ष है। कृष्ण ने उसी को स्थिर-धीः कहा है, स्थितिप्रज्ञ कहा है।
कहै कबीर धरमदास, अमर घर पाइव हो।।
देखा जब गुरु ने कि सत्य ठहर गया है शिष्य में, तो गुरु ने कहा। गुरु कहेगा। शिष्य को घोषणा नहीं करनी पड़ती। शिष्य को कहने नहीं जाना पड़ता।
गुरु ही कह देता है एक दिन कि बस बात हो गयी... अमर घर पाइब हो... कि तूने पा लिया अमर घर! तू अपने घर लौट आया। अब कहीं जाने को नहीं है।
फिर जो मिला है, उसे बांटो।
कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भव सागरा।।
बहके सब जिय की कहत, ठौर कुठौर लखै न।

छिन औरे छिन और से, ए छवि छाके नैन।।
और जब उस परमात्मा की छवि से नैन छक जाते हैं... ए छवि छाके नैन... जब उस परमात्मा की छवि से आंखें भर जाती हैं... बहके सब जिय की कहत... फिर तो एक बहक आ जाती है। जो भी सुनने को राजी हो, जो भी जरा अवसर दे, उसी से कहने का मन होता है। सुसमाचार! बहके सब जिय की कहत... । एक मतवालापन होता है, एक मस्ती होती है। उनको भी कह दें, जो भटकते हैं। उनको भी कह दें जो अभी खोजते हैं, जिनके जीवन में अभी कोई आनंद नहीं आया। बहके सब जिय की कहतष्ठ। लेकिन वह एक तरह की बहक है। भक्त जो कहता हैः वह कोई पांडित्य नहीं है, वह कोई सुविचारित, रेखाबद्ध, तर्कयुक्त वक्तव्य नहीं है--बहक है। मस्ती है। बेखुदी है।
बहके सब जिय की कहत ठौर कुठौर लखै न।
फिर वह यह भी फिक्र नहीं करता कि कौन पात्र है कौन अपात्र है। ठौर कुठौर लखै न! वह यह भी फिकर नहीं करता--किससे कहना है, किससे नहीं कहना।
फुरसत कहां है? भेद की सुविधा कहां है। पात्र-अपात्र को देखने वाला अहंकार कहां? जो कहता है ये पात्र ये अपात्र, उसके भीतर अभी अहंकार शेष है।
मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि आप किसी को भी संन्यास दे देते हैं! पात्र हो कि अपात्र, इसकी फिकर ही नहीं करते!
बहके सब जिय की कहत ठौर कुठौर लखै न।
अब कौन ठीक, कौन गलत! सभी ठीक है अब। छिन औरे छिन और... । एक क्षण इससे कह रहा है भक्त, दूसरे क्षण उससे कह रहा है।
छिन औरे छिन और से, ए छवि छाके नैन।।
ये आंखें जो उसकी छवि से भर गई हैं, अब सब जगह लुटाने लगती हैं। यह हृदय जो उसकी सुगंध से भर जाता है, उसकी सुवास को लुटाने लगता है। यह भीतर का दीया जो उसके प्रकाश से जगमगा उठता है, यह रोशनी को बांटने लगता है।
कहै कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भवसागरा।।
यही मैं तुमसे भी कहता हूं। तुम्हें रस आए तो बांटना। तुम्हें ज्योति मिले तो कृपणता मत करना। तुम्हें कुछ दिखाई पड़े तो औरों को भी खबर पहुंचा देना। इसकी भी फिक्र मत करना कि वे मानेंगे भी कि नहीं मानेंगे। इसकी भी फिकर मत करना कि वे पात्र हैं या अपात्र। तुम तो अपनी मस्ती से देना।
तुम्हें देने से और मिलेगा। तुम्हें देने से हजार गुना मिलेगा। तुम तो बाढ़ बन जाना एक मस्ती की।
बहके सब जिय की कहत, ठौर कुठौर लखै न।
छिन औरे छिन और से, ए छवि छाके नैन।।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
आठवां प्रवचन

चित्त की आठ अवस्थाएं

पहला प्रश्नः श्री यू. जी. कृष्णमूर्ति समझाते हैं कि समस्त साधनाएं-- योग, ध्यान, संन्यास, गुरु-शिष्य संबंध और आध्यात्मिक विकास इत्यादि मनुष्य के मन के संभ्रम, हेल्यूसिनेशंस हैं, मन के खेल मात्र हैं। और इन सब में खूब-खूब भटक कर अंत में आदमी के हाथ में एक पूर्ण असहाय दशा भर आती है।

इन श्री यू. जी. कृष्णमूर्ति के संबंध में अनेकों के मन में साधना के प्रति तीखी अनास्था का जन्म हुआ है। अनेक मित्रों ने मुझसे कहा है कि वे इस स्थिति पर आप से मार्गनिर्देश चाहते हैं।
योगचिंमय! जे कृष्णमूर्ति तो एक सद्गुरु हैं--उसी कोटि में जहां बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट। यू. जी. कृष्णमूर्ति--सिर्प एक झूठा सिक्का! यू जी का अर्थ करोः "उधार गुरु।" लेकिन जहां असली सिक्के होते हैं, वहां नकली सिक्के भी चल पड़ते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है।
यू. जी. कृष्णमूर्ति के शब्दों में एक शब्द भी उनका स्वयं का नहीं है,
सब उधार है, सब बासा है। कृष्णमूर्ति के ओंठों पर तो वे शब्द जीवित हैं। शब्द वही हैं। इसलिए भ्रांति हो सकती है। कृष्णमूर्ति के ओंठों पर तो शब्द जीवंत हैं, क्योंकि उनके अनुभव से आते हैं। उन शब्दों की जड़ें हैं उनकी आत्मा में। यू. जी. कृष्णमूर्ति ने केवल सुना है। हृदय से नहीं आते वे शब्द, वे ओंठ पर ही हैं।
यू जी कृष्णमूर्ति एक तोता हैं। कृष्णमूर्ति के साथ कोई बीस-पच्चीस वर्षो से उनका संबंध रहा। कृष्णमूर्ति के शिष्य रहे बीस-पच्चीस वर्षो तक। सुनते रहे, सुनते रहे, उनके साथ यात्रा करते रहे। जो-जो सुना, जड़बुद्धि आदमी भी अगर बीस-पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति के पास रहे, तो यंत्रवत दोहराने लगेगा। वही वमन चल रहा है। यू जी कृष्णमूर्ति के पास कुछ भी अपना नहीं है। इसे कैसे पहचानोगे कि अपना नहीं है? एक मापदंड सदा याद रखोः
इस दुनिया में सत्य की एक अभिव्यक्ति बस एक ही बार होती है, दुबारा नहीं होती। वैसी अभिव्यक्ति फिर कभी नहीं होती। नानक जिस ढंग से बोले, बस नानक बोले। अगर कोई व्यक्ति बिल्कुल नानक के ढंग से बोलता हो--बिल्कुल वैसा का वैसा--तो समझ लेना कि झूठ है। अगर स्वानुभव से बोलेगा तो फर्क पड़ ही जाएंगे क्योंकि परमात्मा दो व्यक्ति एक जैसे बनाता ही नहीं; परमात्मा की आदत नहीं। परमात्मा मौलिक है। अपने को दोहराता नहीं। कृष्ण को एक बार बनाया। अब अगर तुमको बाजार में कोई मोरमुकुटधारी और बांसुरी रखे हुए और पीतांबर पहने हुए कृष्ण खड़े मिल जाएं, तो समझ लेना कोई अभिनेता है, रासलीला कर रहा है। कृष्ण फिर दुबारा नहीं हुए। बुद्ध दुबारा नहीं हुए। दुबारा यहां कुछ होता ही नहीं। जैसी सुबह आज हुई, फिर कभी न होगी। जो
इस क्षण हो रहा है, फिर कभी पुनरुक्त नहीं होगा। प्रत्येक क्षण अद्वितीय है, बेजोड़ है। और प्रत्येक व्यक्ति तो स्वभावतः बेजोड़ है। वैसी तरंग फिर कभी नहीं आती।
इसलिए इसको मापदंड समझोः अगर तुम्हें कोई व्यक्ति किसी दूसरे को रत्ती-रत्ती दोहराता मिल जाए, तो समझ लेना नकली है। और यह भी हो सकता है कि दोहराने वाला बड़ी कुशलता से दोहराए। दोहराने वाला बहुत कुशल हो सकता है, खूब रिहर्सल किया हो सकता है, उसकी भाव-भंगिमाएं बिल्कुल परिपूर्ण हो सकती हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि असली से ज्यादा परिपूर्ण मालूम हो सकती हैं नकली की भाव-भंगिमाएं। क्योंकि असली ने उनका अयास नहीं किया है, नकली ने उनका अयास किया है।
ऐसा हुआ कि चार्ली चैप्लिन के एक जन्म दिन पर उसके मित्रों ने सोचाः
एक प्रतियोगिता की जाए, जिसमें सारी दुनिया के अभिनेता भाग ले सकें। अभिनय करना है चार्ली चैपलिन का। लंदन में प्रतियोगिता आयोजित होगी।
पहले अलग-अलग देशों में आयोजित होगी। वहां से जो प्रथम चुने जाएंगे, वे

आकर लंदन में प्रतियोगिता करेंगे। सौ लोग चुने जाएंगे। इन सौ में से फिर एक चुना जाएगा, जो चार्ली चैप्लिन का अभिनय कर सके।
चार्ली चैप्लिन को मजाक सूझी। इंग्लैंड में होती प्रतियोगिता में वह
भी पीछे से प्रवेश कर गया; किसी दूसरे नाम से प्रवेश कर गया। उसे तो पक्का भरोसा था कि प्रथम पुरस्कार मुझे मिलेगा ही। चार्ली चैप्लिन ही चार्ली चैप्लिन का अभिनय करे, तो फिर किसी दूसरे को प्रथम पुरस्कार कैसे मिल सकता है? उसकी गलती थी। जब निर्णय हुए तो वह बहुत हैरान हुआ। उसको नंबर दो का पुरस्कार मिला, प्रथम कोई और मार ले गया था। चार्ली चैप्लिन--नंबर दो!
यह असंभव मालूम होती है घटना, मगर घटी। यह मजाक खूब गहरा, अपने पर ही
पड़ गया मजाक। जब पता चला तो आयोजकों को भी भरोसा नहीं आया कि हमने जिसको चुना है नंबर दो, वह चार्ली चैप्लिन है।
कारण साफ है। चार्ली चैप्लिन ने तो कोई अयास किया नहीं। चार्ली चैप्लिन ही था, तो अयास क्या करना है? जैसा था, वैसा चला गया। जो भी करेगा वही चार्ली चैप्लिन का अभिनय है। लेकिन जिसने अभिनय किया, उसने चार्ली चैप्लिन के सारे अभिनयों का अध्ययन किया, सारी फिल्में देखीं, एक-एक भाव-भंगिमा का ठीक-ठीक अयास किया। वे भाव-भंगिमाएं चार्ली चैप्लिन की तो सहजस्फूर्त थीं, लेकिन जिसने अयास किया उसने उनमें और-और कुशलता लायी, उनको और सजाया।
यू. जी. कृष्णमूर्ति, कृष्णमूर्ति की नकल हैं--पांखड हैं। कृष्णमूर्ति एक बार हो गए, अब दुबारा नहीं हो सकते। कृष्णमूर्ति के वक्तव्य दिए जा चुके, अब परमात्मा को उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। वह गीत गाया जा चुका है। अब परमात्मा नए गीत गाएगा। परमात्मा हमेशा नए गीत गाता है।
तो एक तो ख्याल रखना कि जब भी तुम्हें ऐसा लगे कि कोई आदमी किसी दूसरे
को रत्ती-रत्ती दोहरा रहा है, तो झूठा है। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि कृष्णमूर्ति के अनुभव से मिलता-जुलता अनुभव किसी का नहीं हो सकता। मगर मिलता-जुलता ही होगा; उसमें भेद सुनिश्चित है। और भेद गहरे होंगे, क्योंकि दो व्यक्तियों के अनुभव गहरे भेद को अनिवार्य रूप से अपने में लिए होते हैं।
अब यह बीस-पच्चीस वर्ष का साथ! जड़बुद्धि से जड़बुद्धि आदमी भी दोहराने में कुशल हो जाता है। तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः यू. जी. कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं वह तो ठीक है, लेकिन यू जी कृष्णमूर्ति खुद ठीक नहीं हैं। वे जो कह रहे हैं, ठीक है--ठीक है कृष्णमूर्ति के संदर्भ में; उनके संदर्भ में ठीक नहीं है।
और सत्य अपने संदर्भ में ही ठीक होता है। जो फूल अभी गुलाब की झाड़ी पर खिला है, यह उस गुलाब की झाड़ी के संदर्भ में बिल्कुल ठीक है। जीवंत है, इसमें रसधार बह रही है, यह वृक्ष से जुड़ा है; यह वृक्ष की जड़ों से जुड़ा है; जड़ों के माध्यम से पृथ्वी से जुड़ा है; पत्तों के माध्यम से आकाश से, सूरज-चांद-तारों से जुड़ा है। यह अभी जीवंत है। यह अस्तित्व का हिस्सा है। फिर तुम इसे तोड़ लो। और फिर तुम इसे अपनी जेब में लगा लो, तब यह संदर्भ के बाहर हो गया। यह अस्तित्व का हिस्सा नहीं रहा। यह मुर्दा है। यह एक लाश है।
जे. कृष्णमूर्ति एक जीवंत, जाग्रत, प्रबुद्ध पुरुष हैं। यू जी कृष्णमूर्ति--उधार गुरु। वही दोहरा रहे हैं जो कृष्णमूर्ति ने कहा है। और ध्यान रखना, जो आदमी दोहराता है किसी को, यह अनिवार्य रूप से भीतर अपराधी अनुभव करता है। क्योंकि उसे यह तो बना ही रहता है शक कि आज नहीं कल पकड़ा जाऊंगा; जो जानते हैं वे पहचान लेंगे। इसलिए जिसको वह दोहराता है, उसके खिलाफ बोलता है। यह अनिवार्य है, ताकि वह अपनी सुरक्षा कर सके कि मैं तो कृष्णमूर्ति के खिलाफ बोल रहा हूं!
इस तर्क को ठीक से समझ लेना। अगर कोई व्यक्ति कृष्णमूर्ति को रत्ती- रत्ती दोहरा रहा है, तो वह तो जानता ही है, दुनिया जाने या न जाने कि मैं दोहरा रहा हूं। उसकी सबसे बड़ी दुश्मनी कृष्णमूर्ति से होगी। क्योंकि यही आदमी, इसी की वजह से मैं झूठा मालूम हो रहा हूं; नकली सिक्का मालूम हो रहा हूं। तो वह असली सिक्के को नकली कहने की कोशिश करेगा। यू. जी. कृष्णमूर्ति

वह भी कर रहे हैं। वे कहना चाहते हैं कि मैं असली हूं और कृष्णमूर्ति नकली हैं।
पाखंड ही नहीं है, यह तो कृतघ्नता हो गई। यह तो बड़ा दगा हो गया। यह तो नमकहरामी हो गई। जिस आदमी के साथ पच्चीस वर्षो तक रहे, जिसके चरणों में बैठे, आज उसको तुम कहो कि वह गलत है... ! अब वे लोगों को समझा रहे हैं कि कृष्णमूर्ति के पास कुछ भी नहीं है, सिर्प बातचीत है। अनुभव मेरे पास है। कृष्णमूर्ति केवल एक दार्शनिक हैं, द्रष्टा मैं हूं।
कृष्णमूर्ति की खिलाफत इस बात की सूचना देती है कि भीतर उन्हें भय हैः अगर मैंने खिलाफत न की, तो आज नहीं कल पकड़ा जाऊंगा। इसके पहले कि नकली पकड़ा जाए कि नकली है, वह असली को नकली सिद्ध करने की कोशिश करेगा।
फिर पच्चीस वर्ष तक कृष्णमूर्ति के साथ क्या कर रहे थे? किस प्रयोजन
से जुड़े थे? पच्चीस वर्ष तक मूढ़ थे? तो अचानक मूढ़ता प्रबुद्धता कैसे हो गई? पच्चीस साल तक जो मूढ़ था, वह महामूढ़ हो जाएगा पच्चीस साल के बाद-- पच्चीस साल का अयास! पच्चीस साल तक धोखा खाया, फिर अचानक जाग कैसे गए? और जाग कर तुम जो कह रहे हो, वह बिल्कुल तोता-रटंत है। उसमें एक शब्द भी तुम्हारा नहीं है, एक भाव भी तुम्हारा नहीं है।
लेकिन अब वे कृष्णमूर्ति का विरोध भी करते हैं, मजाक भी उड़ाते हैं। यह अनिवार्य है। यह करना ही पड़ेगा। यह आत्मरक्षा का उपाय है।
यू. जी. कृष्णमूर्ति ने कहा है कि उनके बच्चे को कुछ बीमारी थी, बचपन
से जन्म से कुछ बीमारी थी। वे कृष्णमूर्ति के पास ले गए। ले ही किसलिए गए? और सात वर्षों तक कृष्णमूर्ति अपनी करुणा से उस बच्चे के सिर पर हाथ रखते रहे। और अब यू. जी. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मुझे तब भी पता था कि इससे कुछ भी होने वाला नहीं है। और कुछ भी नहीं हुआ। और मेरा बच्चा बीमार का बीमार रहा।
जब तुम्हें उसी समय पता था, तो तुम सात वर्ष तक बच्चे को ले किसलिए गए? थोड़ा सोचना! आज तुम यह दावा कर रहे हो कि मुझे पता था, कि इससे कुछ नहीं होना जाना है। तो फिर तुम ले किसलिए गए? और एकाध दफे की बात नहीं, सात वर्ष तक निरंतर! और कृष्णमूर्ति अपनी करुणा से हाथ रखते रहे। हुआ या नहीं, यह बात गौण है। और कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति आग्रह नहीं करते कि ऐसा होना ही चाहिए। कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति जब किसी के सिर पर हाथ रखते हैं, तो वे यह नहीं कहते कि ऐसा होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए। ये तो सिर्प यह कहते हैं कि जो शुभ हो, वह हो। अगर परमात्मा की यही मर्जी है कि बच्चा बीमार रहे, तो बीमार रहे। कृष्णमूर्ति इसके विपरीत नहीं हाथ रखते हैं। जिनकी अस्तित्व के साथ तथाता सध गई है, वे तो कहते हैंः जो शुभ हो, वही हो। तुम मेरे पास ले आए हो, मैं अपना आशीर्वाद देता हूं, मैं बरसता हूं अपनी करुणा से। जो शुभ हो वही हो। अगर जीना शुभ हो तो जीना हो; अगर मृत्यु शुभ हो तो मृत्यु हो।
कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्तियों को जीवन में और मृत्यु में, बीमारी में
और स्वास्थ्य में क्या भेद है? लेकिन इस आदमी की क्षुद्रता देखते हो! सात वर्षो तक कृष्णमूर्ति के पास बच्चे को ले जाना, और अब यह दावा करना कि मुझे तब भी पता था कि इससे कुछ भी नहीं होगा।
कृष्णमूर्ति को वर्षो तक सुनने के बाद, उनके पीछे दुनिया भर की यात्रा करने के बाद, आज यह आदमी कहता है कि "कृष्णमूर्ति की बातचीत में सिर्प दर्शनशास्त्र है; लफ्फाजी है; बौद्धिकता है; अनुभव नहीं है। अनुभव मेरे पास है।" और अनुभव से जो बातें निकलती हैं, वे वही की वही हैं जो कृष्णमूर्ति ने कही हैं। उसमें एक शब्द भी नया नहीं है। उसमें एक कण भी नहीं जोड़ा है--वही का वही है।
इतना ही नहीं, लोग कृष्णमूर्ति के पास न जाएं, इसकी चेष्टा यू जी की चलती है। क्योंकि जाएंगे असली के पास तो नकली की पहचान हो जाएगी। यू. जी. कृष्णमूर्ति ने लिखा है कि पेरिस में कृष्णमूर्ति के प्रवचन चलते थे। कुछ मित्र मुझे ले गए। लेकिन मैंने उन्हें रास्ते में समझाया कि कहां जाते हो बकवास में! मैंने काफी सुन ली यह बकवास। इसमें कुछ सार नहीं है। बेहतर हो हम किसी फिल्म में चलें। और मैंने उन्हें समझा लिया और फिल्म में ले गया।

कृष्णमूर्ति के पास लोग जाएंगे, तो यू जी की उधारी साफ हो जाएगी। अब लोग कृष्णमूर्ति के पास न जाएं, इसकी भी चेष्टा चलती है।
ख्याल करना, यह नकली आदमी का सदा का व्यवहार रहा है। यही देवदत्त ने बुद्ध के साथ किया। वही बोलता था, जो बुद्ध बोलते थे। लेकिन लोगों को समझाता थाः मैं असली बुद्ध हूं; यह गौतम सिद्धार्थ धोखा दे रहा है।
वही मक्खली गोशाल ने अपने गुरु, महावीर के साथ किया। लोगों को समझाता थाः मैं असली तीर्थंकर हूं। चौबीसवां तीर्थंकर मैं हूं! यह महावीर लोगों को धोखा दे रहा है।
ख्याल रखना, जो आदमी जिससे सीख कर जाएगा, उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। कैसे क्षमा करे? मक्खली गोशाल को तो बड़ी मुश्किल आई। वर्षों महावीर के साथ रहा, जैसे यू जी कृष्णमूर्ति, कृष्णमूर्ति के साथ रहे। वर्षों के समागम से, जो भी महावीर कहते थे, सुना, समझा, पचाया। बुद्धि ने ही पचाया। क्योंकि अंतर में उतर जाता तो महावीर को छोड़ने का सवाल क्या था? अंतर में तो उतरा नहीं। धीरे-धीरे मक्खली गोशाल भी पंडित हो गया। उसे लगाः अब तो मैं अपनी ही घोषणा कर सकता हूं। महावीर जो समझाते हैं, वह तो मैं भी समझा सकता हूं। तो फिर अब इनके पीछे क्या चलना?
उसने जाकर दूसरे गांव में घोषणा कर दी कि मैं असली तीर्थंकर हूं, महावीर धोखेबाज हैं। और कहता वह भी वही था, जो महावीर कहते थे। महावीर को जब पता चला, तो वे चकित हुए। वे उस दूसरे गांव गए। वे मक्खली गोशाल को मिले। उन्होंने कहा कि मेरे भाई! तू भूल गया? तू मेरे चरणों में, मेरे पास, मेरे सत्संग में वर्षो रहा, तू भूल गया?
मक्खली गोशाल ने पता है क्या कहा? मक्खली गोशाल ने कहाः इससे सिद्ध होता है कि तुम अज्ञानी हो, क्योंकि वह मक्खली गोशाल, जो तुम्हारे साथ रहता था, वह तो मर चुका। उसकी देह में यह चौबीसवां तीर्थंकर प्रविष्ट हुआ है।
अब धोखे की भी सीमाएं होती हैं! ... "मैं वह नहीं हूं, जो तुम्हारे साथ रहता था। सिर्प देह वह है। मैं तो मर चुका। जिसको तुम सोच रहे हो मैं हूं, वह तो जा चुका। यह तो चौबीसवें तीर्थंकर का अवतरण हुआ है मेरी देह में। इससे सिद्ध होता है कि तुम अज्ञानी हो। इतनी सी बात तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती? देह वही है, आत्मा तो बदल गयी है--इतनी सी बात तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती?"
आदमी जब पाखंड पर उतरता है, तो कुछ भी करेगा।
यू जी कृष्णमूर्ति कहते हैं कि उनका आत्म-अनुभव, उनकी सिद्धि--स्वयं
की है, उसका कृष्णमूर्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। और हर सात वर्ष में उनकी सिद्धि बढ़ती रही है, क्योंकि हर सात वर्ष में एक चक्र खुलता रहा है। उनचासवें वर्ष में वे परमबोधि को उपलब्ध हो गए हैं।
जब हर सात वर्ष में चक्र खुलता रहा था, तो पच्चीस वर्ष तक कृष्णमूर्ति
के साथ क्या करते रहे? क्योंकि तुम्हारे अनेक चक्र तो खुल ही चुके थे, और अनेक खुल रहे थे। तुम कृष्णमूर्ति के पीछे किसलिए घूम रहे थे? क्या प्रयोजन था? और आज तुम दोहराते हो यह।
मैं जानता हूं, मेरे दो-तीन संन्यासी उनके पास जाते हैं। वही उनके खास शिष्य हैं दो-तीन संन्यासी। वे भी ऐसे संन्यासी हैं, जिनकी कोई आंतरिक साधना नहीं है। जो यहां आते भी हैं तो बस आने-जाने के लिए। और उनकी तकलीफ यह है कि वे चाहते हैं मेरे साथ उनका विशेष संबंध हो। विशेष संबंध का मतलब? --जब वे आएं, आधी रात आएं तो मुझ से मिल सकें; जिस समय आएं, उस समय मिल सकें; मुझे अपने घर खाने पर बुला सकें; मुझे यहां-वहां ले जा सकें; जिसको मेरे पास लाएं, उसे मिला सकें। चूंकि यह यहां संभव नहीं है, उन्हें यू. जी. कृष्णमूर्ति जमते हैं। यू जी कृष्णमूर्ति उनके घर जाते हैं, उनके पास बैठते हैं, उनका खाना खाते हैं, उनके साथ कार में यात्रा करते हैं। वे जमते हैं। उनके अहंकार की तृप्ति यहां नहीं हो पाती है, वहां अहंकार की तृप्ति हो रही है। उन्होंने समझा ही नहीं है कुछ अभी। साधना तो की नहीं है, अभी वे यह कैसे समझेंगे कि साधना व्यर्थ है?

साधना निश्चित एक दिन व्यर्थ हो जाती है, मगर सदा व्यर्थ नहीं है। एक दिन व्यर्थ होती है--होनी ही चाहिए। रास्ता एक दिन व्यर्थ हो ही जाना चाहिए जब मंजिल आ जाए। सीढ़ी को पकड़ कर थोड़े ही बैठे रहोगे! सब साधना सीढ़ी है। सब विधियां उपाय हैं। एक न एक दिन उनको छोड़ ही देना है। लेकिन सावधान! किसी की बातचीत में आकर, सीढ़ी को मंजिल पर पहुंचने के पहले मत छोड़ देना। छोड़ना तो जरूर है। मैं भी कहता हूं, निरंतर कहता हूंः छोड़ना है। लेकिन मैं दो बातें कहता हूं, पकड़ना है इतना कि तुम आखिरी सोपान तक पहुंच जाओ फिर छोड़ना है।
पूछा है तुमने कि श्री यू. जी. कृष्णमूर्ति समझाते हैं कि समस्त साधनाएं--योग, ध्यान, संन्यास, गुरु-शिष्य संबंध, आध्यात्मिक विकास इत्यादि मनुष्य के मन के संभ्रम हैं; मन के खेल मात्र हैं।
फिर किसको समझाते हैं? समझाना संभ्रम नहीं है? और समझाना ही तो गुरु
और शिष्य का संबंध है; और है क्या? जिनको समझा रहे हैं, वे कौन हैं? वे यू. जी. कृष्णमूर्ति के गुरु हैं या शिष्य हैं? जिनको वे समझा रहे हैं, वे क्यों समझा रहे हैं उनको? उन्हें कुछ पता नहीं है, जो कुछ यू जी कृष्णमूर्ति को पता है। यही तो फर्क है।
गुरु और शिष्य में संबंध क्या है? --कोई जानता है, कोई नहीं जानता है।
जो जानता है, वह अपने जानने को न जाननेवाले को सौंप रहा है। सत्संग का और क्या अर्थ होता है? --जानने वाले के पास बैठना।
अगर यह बात सच है, तो समझाना बंद कर देना चाहिए, क्योंकि समझाने में क्या सार है? सब मन का ही खेल है। समझाने में शब्द ही होंगे। अगर योग मन का खेल है, ध्यान मन का खेल है, साधना मन का खेल है--तो जो तुम समझा रहे हो, वह मन का खेल नहीं है?
ध्यान से तो कोई शून्य में उतरेगा, शब्दों से तो सिर्प पांडित्य बढ़ेगा। अब यू जी कृष्णमूर्ति जो सीख लिए हैं--कृष्णमूर्ति को सुन-सुन कर-- वही ये जो दो-तीन उनके आगे-पीछे घूमन वाले लोग हैं, ये उनसे सीख लेंगे और दोहराने लगेंगे। और उन्होंने दोहराना शुरू कर दिया है।
एक या दो दिन पहले ही मैंने आनंदतीर्थ के प्रश्न का उत्तर दिया। आनंदतीर्थ ने कहा कि मुझे आपके चेहरे के पास प्रकाश की छाया दिखाई पड़ी। और मैंने कहा कि ठीक हुआ, शुभ हुआ। ऐसा ही सबके चेहरे के पास एक दिन दिखाई पड़े, इसकी चेष्टा में संलग्न रहो। क्योंकि असल में वह प्रकाश मेरी छाया नहीं है, मैं उस प्रकाश की छाया हूं। और तुम भी उसी प्रकाश की छाया हो। सारा खेल उसी प्रकाश का है। सारा अस्तित्व उसी प्रकाश की छाया है।
आनंद तीर्थ ने प्रश्न पूछा है कि यहां से उठ कर गया, बड़ा आनंदित था। यू. जी. कृष्णमूर्ति को मानने वाले एक सज्जन दरवाजे पर ही मिल गए। (यहां से सुन रहे थे वे, यहां क्या कर रहे थे सुन कर?) और उन्होंने कहाः ये सब मन के खेल हैं, संभ्रम, हेल्यूसिनेशन।
आनंद तीर्थ की भाव-दशा को उन्होंने खंडित कर दिया।
लेकिन यू जी कृष्णमूर्ति समझा क्या रहे हैं? समझाना ही तो गुरु का कृत्य है। और जो समझने जाते हैं वे शिष्य हो गए। फिर शिष्य कहो न कहो, गुरु- शिष्य शब्द का उपयोग करो न करो--इससे क्या फर्क पड़ता है? फिर समझाना क्या है? अगर साधना भ्रम है, तो साधना भ्रम है, ऐसा समझना भी भ्रम ही होगा। फिर सभी कुछ भ्रम है। फिर यह यू जी कृष्णमूर्ति का दावा कि मुझे उपलब्धि हो गई है, संबोधि हो गई है--यह भ्रम नहीं है? यह भ्रांति नहीं है? मैं सिद्ध हो गया, यह भ्रांति नहीं है? ये सात-सात वर्ष में जो चक्र खुलते रहे, ये भ्रांतियां नहीं हैं? ये हेल्यूसिनेशंस नहीं हैं? कहां के चक्र? कौन-से चक्र? यह सात-सात साल में जो एक-एक चक्र खुलता रहा, ये चक्र असलियत हैं? और किसी के आभामंडल को देखना भ्रम है?
थोड़ा सोचना, थोड़ा विचार करना। समस्त साधनाएं भ्रम हैं... । कृष्णमूर्ति भी यही कहते हैंः समस्त साधनाएं भ्रम हैं। क्यों? क्योंकि यह भी एक साधना है। समस्त साधनाओं को भ्रम मान लिया जाए, समस्त उपायों को भ्रम मान लिया जाए, समस्त विधियों को भ्रम मान लिया जाए--तो आदमी निर्विधि हो जाता है, निरुपाय हो जाता है। और निर्विधि और निरुपाय हो जाने में ही

ध्यान फलित होता है। यह भी साधना की एक विधि है--नकारात्मक विधि है।
विधायक विधि नहीं है।
और दुनिया में सदा से दो प्रकार की विधियां रही हैंः नकारात्मक और विधायक। विधायक को सीखना हो, पंतजलि से सीखो। नकारात्मक को सीखना हो, अष्टावक्र से सीखो। हर चीज के दो पहलू होते हैं--या तो हां कहो या ना कहो।
ये दो ही उपाय हैं। लेकिन यह मत सोचना कि नकारात्मक विधि, विधि नहीं होती।
नकारात्मक होने के कारण ही यह मत समझ लेना कि विधि नहीं होती। कृष्णमूर्ति जब कह रहे हैं, तो ठीक कह रहे हैं। इसको मैं फिर दोहरा दूं कि मेरे लिए व्यक्तियों का ज्यादा मूल्य है, उनके वक्तव्यों से। वक्तव्य का कोई मूल्य नहीं होता। क्योंकि हो सकता है कि वक्तव्य उधार हो, सीखा गया हो। वक्तव्य अपना होना चाहिए, अनुभव से आना चाहिए। कृष्णमूर्ति ठीक कह रहे हैं कि सब साधनाएं भ्रम हैं। मगर मैं तुमसे यह बात कह देना चाहता हूंः यह साधना की नकारात्मक विधि है, और कुछ भी नहीं। यह भी एक विधि है। सारी विधियों को छोड़ देना--एक विधि है। और कोई आसान विधि नहीं है, ख्याल रखना।
इसलिए कृष्णमूर्ति जिंदगी भर समझाते रहे। ज्यादा से ज्यादा इस तरह के लोग पैदा हुए--यू जी कृष्णमूर्ति! जो दोहराने लगे हैं। नकार की विधि तो बड़ी कठिन है। क्योंकि शून्य में उतरना--साहस की जरूरत है, दुःसाहस की जरूरत है। सब सहारे छोड़ देना। सब आलंबन त्याग देना। बड़े दुःसाहस की जरूरत है। विधायक विधि में धीरे-धीरे आलंबन छुड़ाया जाता है; एक-एक करके छुड़ाया जाता है; एकदम नहीं छुड़ा लिया जाता। पहले कहा जाता हैः यह देह मैं नहीं हूं, इसलिए फिर देह की विधियां छोड़ दो। शीर्षासन करना और सिद्धासन लगाना और सर्वांगासन करना, इनसे कुछ न होगा। फिर धीरे-धीरे मैं मन नहीं हूं, फिर मन की विधियां छोड़ो; मंत्र, जाप, इनसे कुछ न होगा। फिर मन की विधियां चली जाएं, तो फिर आत्मा की जो प्रतीतियां हैं--मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण--ये भी व्यर्थ हैं। इनको भी छोड़ दो। ऐसे छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते, काटते-काटते-काटते-- बचेगा क्या? सिर्प एक शून्य बच रहेगा। वही शून्य मोक्ष है। वही शून्य निर्वाण है। यह नकारात्मक विधि है। निर्वाण तक आने की, मगर विधि ही है मैं तुमसे कह देना चाहता हूं, विधि ही है। "नहीं" का उपयोग करती है--"मेथड ऑफ इलिमिनेशन।" एक-एक को छोड़ते चले जाओ।
ऐसा समझो कि कोई मुझसे पूछे कि यहां इतने लोग बैठे हैं, इसमें तरु कौन है? तो दो उपाय है। या तो मैं सीधा तरु की तरफ इशारा कर दूं कि यह रही तरु। यह विधायक विधि हैं। और दूसरा उपाय यह है कि यहां बैठे पांच सौ लोगों को, एक-एक को मैं कहूं कि यह तरु नहीं है, यह तरु नहीं है, यह तरु नहीं है। और जब चार सौ निन्यानबे का निषेध हो जाए, तब मैं कहूं कि जो शेष बचा--वही। यह लंबा मार्ग है। कृष्णमूर्ति का मार्ग लंबा से लंबा मार्ग है।
विधेय सीधा संबंध जोड़ता है। नकार बड़े घूमकर कान को पकड़ता है। लेकिन
जो लोग प्रतिभाशाली हैं, उन्हें नकार का रास्ता रुचता है। प्रतिभा को हमेशा इनकार का रास्ता रुचता है। जो लोग बुद्धि से भरे हैं, उनको इनकार का रास्ता आकर्षक मालूम होता है। जो लोग हृदय से भरे हैं, उन्हें विधेय का रास्ता आकर्षक मालूम होता है।
यही तो दो पुरानी विधियां हैंः एक का नाम ज्ञान-योग, एक का नाम भक्ति- योग। ज्ञान सदा निषेध करता है; और भक्ति सदा विधेय करती है। ज्ञान शून्य तक पहुंचा देता है; भक्ति पूर्ण तक पहुंचा देती है। यद्यपि अंतिम अर्थो में शून्य और पूर्ण एक ही अनुभव के दो नाम हैं।.जरा भी भेद नहीं है। शून्य पूर्ण है; पूर्ण शून्य है।
लेकिन यू जी कृष्णमूर्ति के ओंठों से ये शब्द झूठे हैं। इस व्यक्तित्व में गरिमा ही नहीं है। अनुग्रह का भाव नहीं है। जिससे सीखा है, उसके प्रति सम्मान भी नहीं है। अगर सच में अनुभव घटा होता, तो अपूर्व सम्मान होता।
कहते हैंः समस्त साधनाएं--योग, ध्यान, संन्यास, गुरु-शिष्य संबंध, आध्यात्मिक विकास इत्यादि मनुष्य के संभ्रम हैं; मन के खेल मात्र हैं।

मैं भी कहता हूंः मन के खेल हैं। लेकिन बिना खेले इनके पार कोई कभी जाता नहीं। खेल में बुरा क्या है? खेल में निंदा-योग्य क्या है? धन भी खेल है; ध्यान भी खेल है। धन बाहर का खेल है; ध्यान भीतर का खेल है। धन का खेल भी एक दिन टूटेगा, तब ध्यान का खेल शुरू होगा। और फिर ध्यान का खेल भी एक दिन टूटेगा, तब समाधि का अवतरण होगा। खेले बिना उपाय नहीं है खेल के पार जाने का।
इसलिए मैं तुम्हें इतनी विधियां देता हूं कि खेल ही लो, जब तक खेलने
का मन है।
छोटा बच्चा अपने खिलौनों से खेल रहा है। हम कहते हैंः खिलौने, ये सब खेल हैं। लेकिन अभी छोटे बच्चे को इनमें रस है। तुम उससे खिलौने छीन लो, तुम हानि पहुंचा दोगे बच्चे को। अगर छोटे बच्चे से खिलौने छीन लिए गए, तो वह बड़ा होकर भी खिलौनों में उलझा रहेगा, क्योंकि खिलौनों से मन नहीं भर पाया। दौड़ा लेना था उसे रेलगाड़ियां, चला लेने थे हवाई जहाज, मोटरकारें, गुड्डे-गुड्डियों का विवाह रचा लेना था--सब कर लेना था। जब समय था, तब सब कर लेना उचित था। अन्यथा बाद में वह यहीं सोचेगा। यहीं अटका रहेगा उसका मन। फिर हो सकता है छोटी कारों की जगह बड़ी कारें हों, लेकिन खेल जारी रहेगा। तुमने देखा है, ऐसे लोग, जो अपनी कारों के दीवाने हैं, कैसा झाड़-पोंछ
कर कार को रखते हैं--जरा सी खरोंच न लग जाए! निकालते भी नहीं। कार उपयोग की चीज है; उसे पोर्च से बाहर भी नहीं निकालते, उसे पोर्च में ही रखे रहते हैं। शोभा है। जरूर ये बच्चे, अधूरे बच्चे रह गए। इनके भीतर कुछ अटका रह गया है। ये बचपन में खिलौनों से खेल नहीं पाए। इनको अभी खिलौने चाहिए। अब छोटे-छोटे खिलौनों से खेलेंगे तो.जरा भद्दा लगता है; तो बड़े खिलौने चाहिए; इनकी उम्र के योग्य खिलौने चाहिए। लेकिन ये खिलौने हैं, तुम.जरा गौर कर लेना। छोटी कार हो कि बड़ी कार हो, क्या फर्क पड़ता है?
पश्चिम में जब किसी कार का कोई माडल बहुत प्रसिद्ध हो जाता है, तो उसके छोटे माडल बनाए जाते हैं। खिलौनों की तरह। कैडिलक और राल्सरायस और लिंकन के छोटे माडल मिलते हैं। उनकी भी कीमत काफी होती है। क्योंकि वे बिल्कुल हू-बहू बड़े की नकल होते हैं। उनमें उतने ही पार्ट्स होते हैं, जितने बड़े में होते हैं। छोटे ही होते हैं, लेकिन सब वैसा का वैसा होता है। हजारों की उनकी कीमत होती है। मगर उनको भी लोग खरीदते हैं और उनको सजा कर संदूकचों में रखते हैं, या अपने बैठकखानों में सजाते हैं।
जो बचपन में हो जाना चाहिए, वह बचपन में कर लेना। कहीं सरकती हुई बात न
रह जाए। कहीं कोई तार अटका न रह जाए।
मनोविज्ञान से पूछो। मनोविज्ञान कहता हैः जो-जो बातें बचपन में अटकी
रह गई हैं, वे कभी न कभी पूरी करनी पड़ती हैं। और जब तुम बाद में पूरी करोगे, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। बड़ी मुश्किल हो जाती है!
जैसे समझो, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन बच्चों को मां का स्तन जल्दी छुड़ा लिया जाता है, वे जिंदगी-भर स्त्रियों के स्तन में उत्सुक रहते हैं। रहेंगे ही। वह बचपन में जो स्तन छुड़ा लिया गया, वह झंझट की बात हो गई। मन स्तन से भर नहीं पाया। अब जो कवि सिर्प स्तन ही स्तन की कविताएं लिखता है और जो चित्रकार स्तन ही स्तन के चित्र बनाता है, और जो मूर्तिकार स्तन ही स्तन खोदता है--जरूर कहीं अड़चन है, जरूर कहीं कोई बात अटकी रह गई है। उसे स्त्री दिखाई ही नहीं पड़ती, स्तन ही दिखाई पड़ते हैं। उसका सारा संसार स्तनों से भरा हुआ है। उसके सपनों में स्तन गुब्बारों की तरह तैरते हैं। यह रुग्ण है। इसे कहीं अटकी बात रह गई। इसकी मां ने स्तन जल्दी छुड़ा लिया। यह बच्चा पक नहीं पाया था।
अब तुम चकित होओगे जान करः आदिवासी जातियों में--यहां अभी ऐसी जातियां मौजूद हैं, इस देश में भी मौजूद हैं--जिनमें स्त्रियां स्तन नहीं ढांकतीं। ढांकने की जरूरत नहीं है। यहां स्त्रियां, सय समाजों में, स्तन क्यों ढांकती हैं? क्यों ढांक कर चलना पड़ता है उन्हें? क्योंकि चारों तरफ जिनके स्तन बचपन में छीन लिए गए हैं, वे चल रहे हैं; उनकी आंखें उनके स्तनों पर ही गड़ी हैं। कहीं पल्लू न सरक जाए, स्त्री घबड़ाई रहती है। क्योंकि चारों तरफ बच्चे हैं--कम उम्र के बच्चे! जिनकी शरीर की उम्र बढ़ गई

है, लेकिन मानसिक उम्र जिनकी बहुत छोटी है। उनकी नजर ही स्तन पर लगी है। वे और कुछ देखते ही नहीं।
आदिवासी जातियां स्तन को नहीं ढांकतीं। और कोई आदिवासी स्तन में उत्सुक नहीं है। कारण? बच्चे नौ साल और दस साल के हो जाते हैं, तब तक स्तन पीते रहते हैं। जब चुक ही जाते हैं बिल्कुल मां नहीं छुड़ाती स्तन, जब बच्चा ही भागने लगता है स्तन से कि अब नहीं, मुझे नहीं पीना, अब बहुत हो गया, अब मुझे छोड़ो--जब बच्चा ही भागने लगता है स्तन से, तो उसकी बात समाप्त हो गई। बात खत्म हो गई। अब उसका कोई रस न रहा। अब जिंदगी भर उसको स्तन में न कोई कविता दिखाई पड़ेगी, न काव्य, न सौंदर्य--कुछ भी नहीं। स्तन उसके लिए थन हो गए। अब उसको और कुछ नहीं रहा उनमें।
तुम.जरा अपने मन की खोज-बीन करना। तुम किन बातों में अटके हो, .जरा भीतर उनके पीछे जाना।.जरा विश्लेषण करना, .जरा अतीत में उतरना। और तुम चकित हो जाओगेः वे वही बातें हैं, जो बचपन में तुम करना चाहते थे और नहीं कर पाए। अब करना चाहते हो, लेकिन अब बेहूदी मालूम पड़ती हैं।
हर चीज एक उम्र में संगत मालूम होती है; एक उम्र के बाद असंगत हो जाती
ही है।
पश्चिम में तुम देखते हो, नग्न क्लब बन रहे हैं। उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। और उसका मौलिक मनोवैज्ञानिक कारण? --क्योंकि बच्चों को हम जबरदस्ती कपड़े पहना देते हैं। जब वे नंगे होना चाहते थे, हमने कपड़े पहना दिए। बच्चा भाग रहा है, और मां उसको कपड़े पहना रही है। वह कह रहा है कि मुझे गर्मी लग रही है; मगर मां कह रही हैः घर में मेहमान आए हुए हैं। बच्चे को समझ में नहीं आता कि मेहमानों से और कपड़े का क्या लेना-देना है? वह कहता हैः मुझे बगीचे में जाने दो। वह नंगा ही बगीचे में जाना चाहता है।
लेकिन छोटे-छोटे बच्चों को हम जबरदस्ती कपड़े थोप देते हैं। फिर जिंदगी भर कपड़े उनको एक तरह का बोझ होते हैं। जहां भी उन्हें मौका मिल जाएगा, जब भी मिल जाएगा, वे कपड़े उतार देना चाहेंगे। फिर इससे हजार विकृतियां पैदा होती हैं। हजार विकृतियां पैदा होती हैं! वे अपने भी कपड़े उतार देना चाहते हैं, वे दूसरों के कपड़ों के भीतर जो शरीर छिपा है, उसको देखना चाहते हैं। वे दूसरों के भीतर कपड़े उतारते रहते हैं--मानसिक रूप से। तुमने देखा? जब तुम रास्ते से गुजरते हो, एक सुंदर स्त्री गई, तुम तत्क्षण उसके कपड़े उतार लेते हो भीतर! तुम्हारे दिमाग में, जल्दी से तुम सब कपड़े अलग कर देते हो। तुम उसे नग्न देखना चाहते हो। कैसा पागलपन है? इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ हैः जो बचपन में हो जाना था वह नहीं हो पाया। और यही आध्यात्मिक विकास में भी स्मरण रखना। जीवन के नियम समान हैं।
तल बदलते हैं, नियम नहीं बदलते। जब विधियों की जरूरत है, तब विधियां पूरी कर लेना, नहीं तो वे अटकी रह जाएंगी।
मेरे एक मित्र हैं। कृष्णमूर्ति के भक्त हैं। जब भी मेरे पास आते थे,
वे कहते थे कि मैं आपकी बातें सुनने आता हूं, लेकिन आपका ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान में क्या है? ध्यान से कुछ नहीं हो सकता। कृष्णमूर्ति तो कहते हैं कि ध्यान से कोई सार नहीं है। विधि इत्यादि, योग इत्यादि में कोई सार नहीं है। मैं न तो ध्यान करता हूं--वे कहते हैं--न जप करता हूं, न मंत्र करता हूं। ब्राह्मण हैं, निष्णात ब्राह्मण हैं; लेकिन बड़े हिम्मतवर हैं, सब छोड़ दिया।
एक दिन उनका बेटा मुझे बुलाने आया। उसने कहा कि आप जल्दी चलें, हार्ट-अटैक हो गया है पिता को। मैं गया। वे पड़े थे बिस्तर पर और राम-राम जप रहे थे। मैंने उनका सिर हिलाया। मैंने कहाः क्या करते हो? मरते वक्त काफिर हुए जा रहे हो! जिंदगी भर सम्हाला। क्रांति! मरते वक्त अब भ्रष्ट हुए जा रहे हो?
उन्होंने कहाः अब छोड़िए यह बातचीत। कौन जाने राम हो ही! फिर हर्जा क्या है? फिर अभी हार्ट-अटैक का मामला है, अभी मैं सिद्धांत की बात नहीं करना चाहता।
मैंने कहाः लेकिन कृष्णमूर्ति कहते हैं कि राम-राम जपने से कुछ नहीं होगा।

उन्होंने कहाः इस समय बात न करिए।
जब वे ठीक हो गए, फिर बात आ गई वापस। मैंने उनसे पूछा कि सोचो थोड़ा, तुम्हारे भीतर कहीं अटका है। कृष्णमूर्ति के कहने से क्या होगा? तुम्हारे भीतर अटकन है। तुम्हारे भीतर कृष्णमूर्ति के कहने से समाधि तो हो नहीं गई है। सुन ली बात, पकड़ ली बात; लेकिन तुम्हारे भीतर उससे कोई अनुभव तो नहीं आ गया है। जब मरने लगे, जब मौत ने द्वार पर दस्तक दी, तब सवाल था कि कृष्णमूर्ति को चुनना कि मौत को। तब तुमने कृष्णमूर्ति को छोड़ा। मौत जब सामने खड़ी है, कृष्णमूर्ति कहां साथ देंगे? अभी तो राम की याद कर लूं! तब तुम्हारा बचपन लौट आया होगा। बचपन में सुना होगा पिता को राम-राम दोहराते, मां को राम-राम दोहराते। जिंदगी भर समझा कि वे मूढ़ थे, लेकिन मरते वक्त एकदम वही सार्थक हो गए। यह बीच की सारी बौद्धिकता, यह सारा सिद्धांत-जाल दो कौड़ी का हो गया था।
तो मैं तुमसे कहता हूंः हर स्थिति की अपनी संयोजना है। उसका उपयोग कर लो। उसके पार निश्चित जाना है।
महर्षि महेश योगी कहते हैं कि मंत्र ही जपते रहना, और कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मंत्र कभी मत जपना। और मैं कहता हूंः मंत्र जपना और मंत्र छोड़ना भी। जब तक तुम्हारा मन है, तब तक मंत्र जपना ही पड़ेगा।
"मंत्र" उसी शब्दों से बनता है, जिससे "मन" बनता है। मन और मंत्र एक ही धातु से बनते हैं। मन मंत्र की विधि है। और अगर तुम राम-राम न जपोगे तो तुम कुछ और जपोगे। ख्याल रखना। जपने से बच नहीं सकते। फिल्मी गाना दोहराओगे। कोई आदमी स्नान करता है बाथरूम में और राम-राम, राम-राम जपता है, और तुम कोई फिल्मी धुन दोहराते हो। फर्क क्या है? तुम दोनों मंत्र जप रहे हो। और राम-राम जपने वाला कम से कम तुमसे बेहतर मंत्र जप रहा है।
ठंडा पानी जब छूता है शरीर को, मंत्र जपने की इच्छा अचानक होती है। मंत्र जप लेने से ठंडा पानी भूल जाता है। तुम मंत्र में लग गए हो, जल्दी से पानी ठंडा डाल लिया। लेकिन जब जपना ही है कुछ, तो फिल्मी गाने के बजाय अच्छा था कि राम का स्मरण हो जाता। कौन जाने आकस्मिक स्मरण में कभी-कभी द्वार भी खुल जाते हैं।
तो मैं तुमसे कहता हूं कि घबड़ाओ मत, विधियों का उपयोग कर लो। विधियों
को सुंदर करते जाओ, श्रेष्ठतर करते जाओ। विधियों को शुभ और शिव होने दो। और एक दिन शुद्ध होते-होते, होते-होते वह घड़ी जरूर आ जाती है, जब तुम विधियों के पार चले जाओगे। जाना तो विधि के पार ही है। क्योंकि विधियों से मिलती है सविकल्प समाधि; विधियों के पार जा कर मिलती है निर्विकल्प समाधि।
विधियां कितने ही दूर ले जाएं, मंजिल थोड़े फासले पर रह जाती है। विधि
का और मंजिल का फासला रह जाता है। विधि तुम्हारे और मंजिल के बीच में खड़ी रह जाती है।।
ऐसा समझो कि राम-राम जपने का खूब अयास हो गया। अब एक दिन राम के सामने पहुंच गए, तुम अपना राम-राम ही जपे जा रहे हो। रामचंद्रजी वहां खड़े हैं हाथ जोड़े तुम राम ही राम जपे जा रहे हो। वे कहते हैंः "भई अब चुप भी हो, अब मैं आ गया।" मगर अब तुम छोड़ो कैसे? तुम कहते होः मंत्र तो मैं छोड़ नहीं सकता। तो तुम्हारा राम-राम जपना ही बाधा हो जाएगा। जब राम प्रकट हो जाएं, फिर क्या राम जपना! राम पुकार लो, लेकिन जब घड़ी घटने लगे, फिर पुकार बंद कर देना। कहीं ऐसा न हो कि पुकार विक्षिप्त हो जाए और तुम चिल्लाते ही रहो, चिल्लाते ही रहो। तुम्हारा चिल्लाना ही फिर बाधा बन जाएगा। फिर तुम्हारे मंत्र ही बाधा बन जाएंगे।
जो एक दिन साधक है, वही एक दिन बाधक बन जाता है। तो कोई चीज न तो सिर्प साधक है न सिर्प बाधक है। हर चीज का उपयोग कर लेता है समझदार आदमी।
"यू. जी. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि समस्त साधनाएं--योग, ध्यान, संन्यास, गुरु-शिष्य संबंध आध्यात्मिक विकास इत्यादि मनुष्य के मन के संभ्रम हैं।" आध्यात्मिक विकास भी! तो फिर वे किसलिए समझा रहे हैं लोगों को? आध्यात्मिक पतन करवाना है? आध्यात्मिक विकास भ्रम है, तो आध्यात्मिक पतन सत्य है? फिर यह फिजूल की परेशानी क्यों कर रहे हैं? इतनी मेहनत क्यों उठा

रहे हैं? क्या समझा रहे हो? किसलिए समझा रहे हो? क्या प्रयोजन है? जरूर कुछ घट जाए; जिसको तुम समझा रहे हो उसमें कुछ घटे--वही तो विकास है।
लगता है ऐसा, यू. जी. को कृष्णमूर्ति समझ में तो नहीं आएः रट लिया है।
और कुछ बुद्धू जरूर उनके चक्कर में पड़ेंगे और परेशान होंगे।
"और इन सब में खूब-खूब भटक कर अंत में आदमी के हाथ में एक पूर्ण असहाय दशा भर जाती है।"
वही दशा तो बहुमूल्य दशा है। जिस दिन तुम्हारी सारी विधियों को करके
भी पाते हो, अभी कुछ शेष रह गया... शेष रह गया... जिस दिन तुम पाते हो सब कर लिया, फिर भी कुछ अनकिया रह गया--उस दिन तुम्हें यह दृष्टि मिलती है कि कुछ ऐसा भी है जो करने से मिलता ही नहीं--न करने से मिलता है। बहुत कुछ करने से मिलता है; परमात्मा करने से नहीं मिलता।
करने से छोटी चीजें मिलती हैं। धन मिलता है, पद मिलता है, प्रतिष्ठा मिलती है। परमात्मा, मुक्ति बड़ी बातें हैं--तुमसे बहुत बड़ी हैं। तुम्हारी मुट्ठी में नहीं समा सकतीं। तुम्हारा कृत्य नहीं हो सकतीं। तुम जब अक्रिया में होते हो, जब तुम बिल्कुल ही शांत होते हो, सारी क्रिया शून्य हो गयी होती है--उस अक्रिया में घटती हैं। जब तुम अकर्ता होते हो, तब घटती हैं।
संसार घटता है कृत्य से, और परमात्मा घटता है अकृत्य से। मगर उस अकृत्य तक पहुंचने के लिए इन सारी विधियों से गुजरना जरूरी है--एकदम जरूरी है। गुजर-गुजर कर ही तुम पाओगे कि कुछ दूरी रह जाती है। पहुंचता हूं, और नहीं पहुंच पाता। पहुंचा-पहुंचा लगता हूं और फिर कुछ फासला रह जाता है। यह खुला द्वार--और नहीं खुलता। सीढ़ी चढ़ भी जाता हूं और मंदिर में प्रवेश नहीं हो पाता। तब अंततः बहुत बार भटक कर ही यह बात समझ में आती है कि अब असहाय हो कर गिर पडूं; अब अपने पर सहारा छोड़ दूं; अब यह भ्रांति छोड़ दूं कि मेरे किए कुछ होगा। मैंने सब करके देख लिया।
और ध्यान रखना, अगर तुमने सब करके नहीं देखा तो यह भ्रांति मिट नहीं सकती। तुम्हें लगता ही रहेगा कि अभी मैंने पंतजलि-योग नहीं किया, अगर कर लेता तो शायद उससे हो जाता। कौन जाने, शीर्षासन में खड़े होने से समाधि लग जाती हो! कौन जाने! कौन जाने कि राम-राम जपने से अनुभूति हो जाती हो! कौन जाने, कौन सी विधि कारगर हो! मन में संदेह बना ही रहेगा।
लेकिन जिसने सारी विधियां कर लीं, जिसने सब उपाय कर लिए, एक दिन पाएगाः कोई उपाय, कोई विधि, उस परम तक नहीं पहुंचती। असहाय हो जाता है। यह असहाय अवस्था बड़ी बहुमूल्य अवस्था है। इसी असहाय अवस्था में परमात्मा घटता है। इसी को भक्तों ने निरालंब दशा कहा है, निराधार अवस्था कहा है, निराश्रय अवस्था कहा है। जब आदमी बिल्कुल असहाय हो जाता है, तभी समर्पण घटता है। लेकिन असहाय वही होता है, जिसने सब तरह के सहारे खोज लिए और पाया है कि उनसे कुछ भी नहीं पाया जाता है।
अब तुम.जरा चकित होओगे। मेरी प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए ठीक से। मैं तुम्हें यहां विधियां दे रहा हूं सब प्रकार की। जितनी विधियां यहां तुम्हें उपलब्ध की जा रही हैं, उतनी दुनिया में न कभी की गई हैं और न की जा रही हैं। मेरा प्रयास यही है कि जब तुम खोजने चल ही पड़े तो, तो तुम जो भी खोजना चाहते हो, वह विधि तुम्हें यहां उपलब्ध होनी चाहिए। सारी विधियों से गुजर कर तुम्हें एक अपूर्व अनुभव होगा, कि विधियां ले जाती हैं--बहुत दूर ले जाती हैं--मगर मन के पार नहीं ले जातीं। मन की सूक्ष्मतम दशाओं में ले जाती हैं, मन के बड़े प्यारे अनुभवों में ले जाती हैं, बड़ी प्रीतिकर अनुभूतियों में ले जाती हैं; लेकिन मन के पार नहीं ले जातीं। दुख समाप्त हो जाता है, सुख ही सुख छा जाता है। सब धूप विलीन हो जाती है, सब गर्मी खो जाती है। एक शीतलता आ जाती है। मगर यह भी मन की है। क्रोध चला जाता है, करुणा आ जाती है--लेकिन यह भी मन की है। मन शुद्ध हो जाता है, लेकिन है तो मन ही! और तब आखिरी बात समझ में आती हैः अब इस शुद्ध मन के पार कैसे जाऊं? इस साधु मन के पार कैसे जाऊं? मेरे किए तो सब हो चुका, अब मेरे किए कुछ भी नहीं होता।

यहीं असहाय अवस्था में आदमी झुकता है, समर्पित होता है। यहीं प्रार्थना पैदा होती है।
ध्यान रखना, जहां ध्यान हार जाते हैं, वहां प्रार्थना पैदा होती है।
जहां योग, साधनाएं पराजित हो जाती हैं, वहां प्रार्थना पैदा होती है।
प्रार्थना कोई विधि नहीं है--सब विधियों की पराजय है। झुक जाता है आदमी। ऐसा नहीं है कि चिल्लाता है कुछ। क्योंकि अगर कुछ कहे, चिल्लाए, तो अभी भी विधियां चल रही हैं। प्रार्थना का मतलब है, मौन में झुक जाता है; समर्पित हो जाता है। कह देता हैः "अब मेरे किए कुछ भी न होगा, अब जो करना हो... । दाइ किंगडम कम, दाइ विल बी डन। तेरा राज्य आए! तेरी इच्छा पूरी हो!" यही प्रार्थना है। जीसस ने सूली पर आखिरी क्षण यही प्रार्थना की।
विधियों के द्वारा तुम एक दिन इस अवस्था में आते हो। इसलिए मैं विधियों का निषेध नहीं करता। और मैं यह भी नहीं कहता कि विधियां पर्याप्त हैं।
"यू. जी. कृष्णमूर्ति कहते हैंः और इन सब में खूब भटक कर अंत में आदमी
के हाथ में एक पूर्ण असहाय दशा भर आती है। "
वही तो मूल्यवान बात है। वही तो संपदा है। उसीसे तो भक्ति का आविर्भाव है। मगर जो पहले से ही छोड़ देगा, उसे यह नहीं हो पाएगा।
अब जैसे यू जी कृष्णमूर्ति के पास जा कौन रहे हैं? ... हिम्मत भाई जा रहे हैं। हिम्मत भाई ने विधि ही कोई नहीं की। विधि छोड़ देंगे। पकड़ी थी ही नहीं कभी, छोड़ेंगे क्या खाक? छोड़ने के लिए, होना तो चाहिए! पहले करो तो, तब छोड़ देना! योग में कुछ नहीं है--मगर योग किया हो तो! ध्यान में कुछ नहीं है-- ध्यान किया हो तो!
लेकिन ये बातें अपील करती हैं; इनका आकर्षण है। क्यों? क्योंकि इनसे लगता हैः चलो झंझट मिटी; न ध्यान करना है, न योग करना है, न प्रार्थना करनी है, न पूजा करनी है। यही तो आदमी का आलसी मन सदा से चाहता हैः कुछ न करना पड़े। यह अच्छा रहा! कुछ करना ही नहीं है। तो जो कर रहे हैं वही नासमझ हैं; हम समझदार हैं, क्योंकि हम कुछ कर ही नहीं रहे। खूब मजा आ गया! अहंकार को भी तृप्ति हुई कि करने वाले नासमझ हैं। और अभी तक तो यह अड़चन थी कि करने वाले कहीं पा न जाएं, मैं कर नहीं रहा हूं; वह अड़चन भी बदल गई। इस आदमी ने बड़ी राहत दे दी। इस आदमी ने कहाः इससे कुछ होता ही नहीं। असल बात तो यह है कि जो कर रहे हैं, वे गलत कर रहे हैं। वे गलत रास्ते पर हैं। तुम ठीक रास्ते पर हो, क्योंकि नहीं कर रहे हो। बड़ी सांत्वना मिली। बड़ा सहारा मिला। तुमने कहा कि गुरु हो तो ऐसा! तो यह आदमी पकड़ लेने जैसा है।
इसने तुम्हारे अहंकार को पुरुज्जीवित कर दिया। किसी को ध्यान करते देख कर तुम्हारे अहंकार को चोट लगी थी, ख्याल करना। तुम्हें लगा था, मैं नहीं कर रहा हूं। कहीं से मिल जाए और मुझे न मिले! किसी को प्रार्थना में डूबे हुए, आंसुओं से गदगद देख कर, तुम्हारे भीतर पीड़ा नहीं उठी थी? तुम्हें यह नहीं लगा था कि... कहीं ऐसा न हो कि मैं क्षुद्र को ही खोजता रहूं, और दूसरे परम को पा जाएं। ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, अहंकार--सब को चोट लगी थी। फिर किसी ने कहा कि नहीं, प्रार्थना से कुछ नहीं होता, ध्यान से कुछ नहीं होता, योग से कुछ नहीं होता--ये सब व्यर्थ हैं। तुम आश्वस्त हुए। तुमने कहाः यह बात जंचती है। यह तो मुझे पहले से ही जंचती थी, मगर किसी ने कही नहीं थी। अब कहनेवाला आप्त व्यक्ति मिल गया। अब एक गवाह भी मिल गया। क्योंकि हिम्मत भाई खुद ही कहें कि ध्यान में कुछ नहीं है, कौन मानेगा? लोग पूछेंगे, ध्यान किया? "यू. जी. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि ध्यान में कुछ नहीं है।" और यू. जी. कृष्णमूर्ति--प्रबुद्ध व्यक्ति! इनकी बात में बल है, प्रमाण है, अथारिटी है, आप्तता है! जंचती है बात।
जंचाना तुम सदा से चाहते थे, कोई जंचाने वाला नहीं मिला था। यह अच्छा समझौता हो गया! यू. जी. कृष्णमूर्ति को एक शिष्य मिल गया; तुमको ऐसे गुरु मिल गए, जो एकदम मीठे ही मीठे हैं। दोनों के बीच एक शड्यंत्र चल गया। उन्हें शिष्य मिल गया, उनके अहंकार को तृप्ति हुई। तुम्हें गुरु मिल गए, तुम्हारे अहंकार को जो अड़चनें आ रही थीं, वे अलग हो गईं। यह दोस्ती गहरी बन गई।

मगर ऐसे ही मीठे जहरों में आदमी खो जाता है और नष्ट हो जाता है। सावधान!
ध्यान कर लो। मैं कहता हूं कि ध्यान एक दिन छोड़ना है। निरंतर तो कहता हूं तुमसेः संन्यासी बन लो, एक दिन संन्यास के पार जाना है। निरंतर तो कहता हूं तुमसेः शिष्य हो लो, ताकि शिष्यत्व से छुटकारा मिल जाए। छुटकारा मिलता ही अनुभव से है; और कोई उपाय नहीं है छुटकारे का। लेकिन काहिल लोग हैं; सुस्त लोग हैं; आलसी लोग हैं--कुछ करना नहीं चाहते। मुफ्त कुछ मिलता हो... उनको ये बातें जंच जाती हैं। और ये अहंकार को बड़ी तृप्तिदायी हैं। तब दूसरे को ध्यान करते देख कर वे मस्त अपनी पकड़ से चले जाते हैं कि "बेचारा! ध्यान कर रहा है, ध्यान से कहीं कुछ मिलता है? यह आनंदतीर्थ, इसको आभा-मंडल दिखाई पड़ रहे हैं! सब मन की बकवास है!" और यू. जी. कृष्णमूर्ति को हर सात साल में जो चक्र खुल रहे हैं, वे मन की बकवास नहीं हैं? और यू जी कृष्णमूर्ति का दावा कि मैं प्रबुद्ध हो गया हूं, कि मैं सिद्ध हो गया हूं--वह मन की बकवास नहीं है? वे मन के विकार नहीं हैं?
थोड़ा सोचो। थोड़ा साहसपूर्वक सोचो। अपनी बेईमानियों पर थोड़ा विचार करो।
अब जो दो-तीन लोग यू. जी. कृष्णमूर्ति के आस-पास घूम रहे हैं, वे लोगों
को कहते हैं कि यू. जी. कृष्णमूर्ति बड़े सरल हैं। घर बुलाओ तो घर आ जाते हैं।
उनको मेरे पास आने में अड़चन होती है। मैं उनके घर जानेवाला नहीं हूं। इसलिए नहीं कि उनके घर में कुछ खराबी है, बल्कि इसीलिए कि उनके अहंकार को मैं किसी तरह का सहारा नहीं देना चाहता हूं। मुझे उनके अहंकार को मिटाना है, सहारे को बढ़ाना नहीं है। तो वे लोग, लोगों से कहते फिर रहे हैं कि बड़े मानवीय हैं यू जी कृष्णमूर्ति!
लेकिन तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिल रही है। तुम्हारा अहंकार बढ़ रहा हैः मेरे घर फलां आदमी आया, फलां आदमी आया!
इधर मेंरे पास भी लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः एक बार हमारे घर चले चलें। " तुम्हारे घर जाने से क्या होगा? तुम मेरे घर आओ। तुम्हारे घर मैं आऊं, इससे क्या होगा? तुम्हें वहां कुछ रह कर नहीं मिला है, मुझे लाकर और क्या करोगे? मेरे घर आओ, तुम्हें कुछ मिले।
और ध्यान रखना, झुकोगे नहीं तो कुछ न पाओगे।
लेकिन तब उन्हें अड़चन होती है। जहां उनके अहंकार को चोट लगती है, वहां उन्हें अड़चन होती है। जहां उनके अहंकार को मलहम लगती है, वहां उन्हें बड़ा सुख आता है।
"इन श्री यू जी कृष्णमूर्ति के सत्संग में अनेकों के मन में साधना के प्रति तीखी अनास्था का जन्म हुआ है। "
न तो उन्होंने कभी साधना की है और न उन्हें साधना पर कोई कभी आस्था रही है। अनास्था कहां से हो जाएगी?
ध्यान रखना, आमतौर से लोग... कोई कहता है कि मुझे ईश्वर में अश्रद्धा है। वह गलत शब्द का उपयोग कर रहा है। श्रद्धा रही हो तो ही अश्रद्धा हो सकती है। और जिसको श्रद्धा रही है, कैसे अश्रद्धा होगी? श्रद्धा के बाद ही अश्रद्धा हो सकती है। किसी को मित्र बनाओ, तो ही शत्रुता हो सकती है। नहीं तो कैसे शत्रुता होगी? विधेय पहले आता है, नकार पीछे। नकार छाया है। किसी से विवाह करो तो तलाक हो सकता है। तुम कहने लगो दूसरे की स्त्री को देख कर कि इससे मेरा तलाक हो गया--और विवाह कभी हुआ ही नहीं था--तो तुम्हें लोग पागल समझेंगे। जो कहता है मुझे ईश्वर पर अश्रद्धा है, वह सिर्प इतना ही कह रहा है कि मुझे ईश्वर पर श्रद्धा नहीं है। अश्रद्धा तो हो ही नहीं सकती। अश्रद्धा तो तब होती है, जब श्रद्धा की जाए और श्रद्धा व्यर्थ जाए। और अनुभव से पाया जाए कि श्रद्धा काम की नहीं थी।
मगर ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं--पूरे मनुष्य-जाति इतिहास में नहीं हुआ है। जिसने श्रद्धा की, उसकी श्रद्धा और बढ़ी। अश्रद्धा कभी आई नहीं। तुम श्रद्धा के अभाव को अश्रद्धा कह रहे हो, तो ठीक शब्द का उपयोग नहीं कर रहे हो। अश्रद्धा में श्रद्धा का निषेध है, अभाव नहीं है। इनकार है, विरोध है,

आक्रमण है, हिंसा है। आदमी इतना ही कह सकता है कि अभी श्रद्धा नहीं है। यह बात ठीक है। इसमें अश्रद्धा का सवाल ही नहीं उठ रहा है। मैं जानता ही नहीं हूं, अश्रद्धा कैसे करूं? ईश्वर है ही नहीं मेरे लिए अभी, तो मैं अश्रद्धा कैसे करूं? अभी मैंने प्रेम ही नहीं किया तो घृणा कैसे करूं?
और जिसने प्रेम किया, कैसे घृणा करेगा? जिसने श्रद्धा की, कैसे अश्रद्धा करेगा? हां, अगर श्रद्धा की और अश्रद्धा कर ले, तो उसका एक ही अर्थ होता है कि श्रद्धा कहीं न कहीं झूठी थी, थोथी थी, ऊपरी थी वस्तुतः नहीं थी।
अब तुम कहते होः "अनेकों के मन में साधना के प्रति तीखी अनास्था का जन्म हुआ है। " साधना कोई करना नहीं चाहता। साधना कठोर है। साधना हिम्मतवरों का काम है, नपुंसकों का नहीं। साधना कोई करना नहीं चाहता। लोग सुविधा चाहते हैं--साधना नहीं। लोग चाहते हैंः कोई कह दे, साधना की जरूरत नहीं है।
इसलिए तो सदियों-सदियों में आदमी ने बड़े नपुंसक उपाय खोज लिए हैं। किसी ने कह दिया कि मरते वक्त राम-राम का जप कर लो कि बस पहुंच जाओगे। जिंदगी भर क्या करना है! कहानियां गढ़ ली हैं कि अजामिल मर रहा था। उसने अपने बेटे को पुकारा। बेटे का नाम नारायण था। संयोग की बात कि नारायण था। उसने कहा कि नारायण, तू कहां है? और ऊपर के नारायण को धोखा हो गया। हद हो गई! कहां के बुद्धू नारायण को ऊपर बिठा रखा है, इतनी भी जिनमें अक्ल नहीं है कि वह किसको बुला रहा है! वह अपने बेटे को बुला रहा है। और जिंदगीभर का हत्यारा, बेईमान और चोर आदमी! वह बुला ही इसलिए रहा होगा कि चोरी का धन कहां गढ़ा दिया है, किस-किस की और हत्या करनी है; कौन-कौन सा बदला मैं नहीं ले पाया हूं, तू बेटा ले लेना, अपनी परंपरा टूट न जाए। यह वसीयत तुझे दे जाता हूं। बुला रहा होगा किसी गलत काम के लिए ही। और बेटे को बुला रहा है, और ऊपर के नारायण धोखे में आ गए। और अजामिल मरा और स्वर्ग चला गया। जिन्होंने यह कहानी गढ़ी है, हद के बेईमान रहे होंगे। मगर ये जंचती हैं कहानियां, लोगों को। लोग कहते हैं कि अजामिल को पार कर दिया तो मुझे पार न करोगे?
तुम कुछ करना नहीं चाहते। फिर हालतें ऐसी आ जाती हैं कि मौत का पता तो होता नहीं, कब मरोगे, कब मौत आ जाएगी, कोई खबर तो देती नहीं। मौत तो अतिथि है, बिना तिथि बताए आती है। एकदम आ जाती है। मर गए, नारायण को भी न बुला पाए। और अब तो बेटों के नाम भी नारायण नहीं--पिंकी इत्यादि। अब तुम बुलाओगे भी कि हे पिंकी, कहां हो? तो परमात्मा को कोई धोखा भी नहीं होगा। कि हे डबलू, कहां हो? ... मौत आई--और तुम गए!
तो दूसरे उपाय खोजने पड़े, कि मर तो गया आदमी, दूसरे उसके कान में मंत्र
पढ़ रहे हैं। पुजारी, पंडित, पुरोहित गंगाजल डाल रहे हैं। वह आदमी मर चुका है। अब वहां पीने वाला भी कोई नहीं है। अब उस मुर्दा लाश में गंगाजल डाल रहे हैं। नमोकार कान में पढ़ा जा रहा है, कि गायत्री मंत्र दोहराया जा रहा है। ले चले मुर्दे को। कहने लगेः "राम-नाम सत्य है!" अब किससे कह रहे हो? अब वहां कोई है नहीं। जिंदगीभर राम-नाम असत्य रहा; अब मुर्दे को कह रहे होः राम-नाम सत्य है!
लोगों ने सस्ती तरकीबें सदा खोज ली हैं। इन सदी की सबसे सस्ती तरकीब
यह है कि "साधना से क्या होगा? विधि से क्या होगा? उपाय से क्या होगा? कोई जरूरत नहीं है। आध्यात्मिक विकास मन का जाल है।" फिर कौन सा विकास है, जो मन का जाल नहीं है? और कोई विकास भी है आध्यात्मिक विकास के अतिरिक्त?
और फिर ऐसे लोग जो कहते हैं, बड़ा मजा यह है कि सुननेवाले इन सब बातों
को कैसे सुनते रहते हैं! सुनना ही चाहते होंगे, मानना ही चाहते होंगे।.जरा भी बुद्धि हो, .जरा भी विश्लेषण करें, तो कहना चाहिएः फिर तुम मेहनत किसलिए कर रहे हो? हे उधार गुरु, कृष्णमूर्ति! मेहनत क्यों कर रहे हो? किसलिए सिर पचा रहे हो? सब भ्रम है; और तुम्हारा आध्यात्मिक विकास भ्रम नहीं है? तुम्हारा दावा भ्रम नहीं है कि तुम सिद्ध हो गए?
इन थोथी बातों में मत पड़ना। ऐसे थोथे जाल सदा से रहे हैं और सदा रहेंगे। आदमी की मांग है, इसलिए इनकी पूर्ति होती रहती है।

इसके पहले कि इस प्रश्न का उत्तर मैं पूरा करूं, चित्त की आठ अवस्थाएं हैं, वे समझ लेनी जरूरी हैं। बुद्ध ने चित्त की आठ अवस्थाओं की बात की है। वह बड़ी उपयोगी है। पांच चित्त की अवस्थाएं, पांच इंद्रियों से बंधी हैं। बुद्ध ने कहाः एक-एक इंद्रिय एक-एक मन है। और यह बात सच है। यह मनोविज्ञान भी इस बात के समर्थन में है। तुम्हारी जीभ का एक मन है, लेकिन वह मन केवल स्वाद की भाषा समझता है। तुम्हारे कान का भी एक मन है, लेकिन वह मन केवल ध्वनि की भाषा समझता है। तुम्हारा कान भी चुनाव करता है। सभी ध्वनियां नहीं ले लेता भीतर। सिर्प दो प्रतिशत भीतर लेता है, अट्ठानवे प्रतिशत बाहर छोड़ देता है। अगर सारी ध्वनियों को भीतर ले ले तो तुम विक्षिप्त हो जाओ।
तुम्हारी आंखें भी सब नहीं देखतीं। सब को देखने लगे तो तुम मुश्किल में पड़ जाओ। चुनाव करती है। वही देखती है जो देखना चाहती है। वही देखती है जो देखने योग्य हो। वही देखती है, जिसमें कोई प्रयोजन है।
और तुम इस बात को अनुभव कर सकते हो कि तुम्हारे अपने अनुभव से भी यह बात सिद्ध हो जाएगी। जिस दिन तुमने उपवास किया है, उस दिन भोजन ज्यादा दिखाई पड़ेगा। बाहर भी और भीतर भी। आंख बंद करो तो भी दिखाई पड़ेगा। आंख खोलो तो भी दिखाई पड़ेगा।
हेनरिख हेन ने कहा है कि मैं एक दफे जंगल में तीन दिन के लिए भटक गया
और रास्ता न मिला। फिर पूर्णिमा का चांद निकला, तो मैं चकित हुआ। जिंदगी में मैंने बहुत सी कविताएं लिखीं। चांद पर बहुत कविताएं लिखीं। कवियों को चांद से पुराना संबंध रहा है। तो सदा मैंने चांद में कभी अपनी प्रेयसी का बिंब देखा, कभी परमात्मा की छवि देखी, और क्या-क्या नहीं देखा। मगर तीन दिनों की भूख के बाद जब चांद निकला, तो मैंने देखाः एक सफेद रोटी आकाश में तैर रही है। मैं खुद भी चौंका कि यह कौन सा प्रतीक है! यह किस कविता में आता है? सफेट रोटी! आकाश में तैर रही है?
मगर तीन दिन का भूखा आदमी और क्या देखेगा? तीन दिन के भूखे आदमी की आंख सिर्प रोटी की तलाश कर रही है। हर जगह उसे रोटी दिखाई पड़ेगी।
तुम वही देखते हो, जिसकी जरूरत है। छोटे बच्चे कुछ और देखते हैं; उनकी जरूरतें अलग हैं। जवान कुछ और देखते हैं; उनकी जरूरतें अलग हैं। बूढ़े कुछ और देखते हैं, उनकी जरूरतें अलग हैं।
आंख के पास एक मन है, जो पूरे वक्त अनुशासन देता रहता है। इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है कि बूढ़े और जवान आदमी में बातचीत नहीं हो पाती; बातचीत मुश्किल हो जाती है, क्योंकि जवान कुछ देखता है, बूढ़ा कुछ देखता है। जवान कहता हैः आह, कितनी सुंदर स्त्री है! और बूढ़ा कहता हैः क्या रखा है--हड्डी- मांस-मज्जा! दोनों की बात में मेल नहीं पड़ता। जवान कहता है। "कहां की बात छेड़ दी, कहां की अभद्र बात छेड़ दी! इतनी सुंदर स्त्री, और तुम्हें मांस-मज्जा दिखाई पड़ रही है?" और बूढ़ा कहता हैः कुछ नहीं है सौंदर्य में! मल-मूत्र भरा है भीतर, चमड़ी पर है सौंदर्य। सब आकृति है, और कुछ भी नहीं है। बूढ़े के देखने का ढंग बदल गया है। असल में बूढ़े की आंख ने एक नया मन विकसित कर लिया है, जो जवान के पास नहीं है।
पांच इंद्रियों के पास पांच मन हैं। और इन पांचों को जोड़ने वाला, संगृहीत रखने वाला--अन्यथा ये बिखर जाएं--छठवां मन है तुम्हारे भीतर।
जिसको तुम मन कहते हो, वह छठवां मन है।
इसलिए बुद्ध ने छह मन की बात कही, कि छह मन हैं। ये मन की छह अवस्थाएं हैं। पांच के पार उठ कर, छठवें को जानना है। यही ध्यान की प्रक्रिया है। पांच के पार उठकर छठवें को जानना है। जिसको पंतजलि ने धारणा कहा है। पंतजलि के तीन सूत्र हैंः धारणा, ध्यान, समाधि। धारणा शुरू होती है-- इंद्रियों से मुक्त होने से। छठवें को पहचाना है, जो सब का नियंता है। और जब तुम छठवें को पहचान लेते हो, तब तुम छठवें से जांच-पड़ताल कर लेते हो--बैठ कर शांत छठवें को देखते हो, उसकी भाव-भंगिमाओं को, तरंगों को, विचारों को, लहरों को, भावनाओं को, स्मृतियां, कल्पनाओं को, सपनों को--जब तुम छठवें को उघाड़ते हो पूरा, तो तुम्हें सातवें का पता चलना धीरे-धीरे शुरू होता है। सातवां है साक्षी। वह जो छठवें को भी देख रहा है, वह सातवां है। जब

तुम्हारे भीतर क्रोध उठा, वह छठवें में उठ रहा है। क्रोध आंख में नहीं उठता, ख्याल रखना। क्रोध कान में नहीं उठता, ख्याल रखना।
तुम चकित होओगे जान कर, वासना भी कामेंद्रिय में नहीं उठती। उठती तो छठवें में है--फिर कामेंद्रिय में सक्रिय होती है। क्रोध उठता तो छठवें में है, फिर आंख तक लाली फैल जाती है, खून फैल जाता है। उठता तो छठवें में है सब, और फिर पांचों तक जाता है। बाहर से जो भी आता है, वह पांचों से होकर आकर छठवें में इकट्ठा होता है। और भीतर से जो भी आता है, वह छठवें से उठता है और पांचों से बाहर जाता है। तो ये पांच मन देहरे काम करते हैं, दरवाजे का काम करते हैंः जो बाहर है उसे भीतर लाते हैं; जो भीतर है उसे बाहर ले जाते हैं। और छठवां इनका गवर्नर, इनका अनुशासक है।
अगर तुम छठवें का धीरे-धीरे विश्लेषण करो, बैठ कर छठवें को देखो, तो सातवें का जन्म होता है--साक्षी। तब क्रोध उठा भीतर, एक क्रोध की बदली उठी, तुम बैठे देख रहे हो। तो जो देख रहा है, वह सातवां है। और यह सातवां सर्वाधिक मूल्यवान है। इसी सातवें को पंतजलि ने ध्यान कहा है। इसी सातवें को बुद्ध ने सम्यक स्मृति कहा है। जागरण कहो, होश कहो, साक्षी कहो-- कृष्णमूर्ति जिसको "अवेयरनेस" कहते हैं, वह कहो! यह सातवां सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि सातवें के इस तरफ छह मनों का जाल है, जो कि संसार है; और सातवें के उस तरफ आठवां है, जो कि निर्वाण है। और ये आठों ही चित्त की दशाएं हैं। यह सातवें को जिसने समझ लिया, उसने सारी विधियों का राज समझ लिया। और सातवें के पार जो उठ गया, वह सारी विधियों के पार उठ गया। लेकिन जब तक तुम सातवें मन तक नहीं पहुंचे हो, तब तक यू. जी. कृष्णमूर्ति या ऐसे और बकवासियों की बातों में मत पड़ जाना। सातवें तक पहुंचो, तब ये बातें सार्थक हैं। मैं भी तुम से कहना चाहता हूं यही बातें। लेकिन सातवें तक पहुंचाऊं तो तुमसे कहूं। तुम्हें इतना प्रौढ़ करूं तो तुम से कहूं। कच्चे मन में तुमसे कहूं तो शायद नुकसान ही हो, हानि हो; तुम कभी पहुंच ही न पाओ।
सातवें को समझने के लिए एक उदाहरण तुम्हारे काम आएगा। अमरीका में, डिस्नेलैंड में, उन्होंने बहुत तरह के खेल ईजाद किए हैं। उसमें एक कमरा बहुत सुंदर है। अमरीका कभी जाओ, और कहीं जाना या न जाना, डिस्नेलैंड जरूर जाना। और वह कमरा जरूर देखना जहां उन्होंने एक अदभुत ईजाद की है, जो भविष्य में काम आएगी सारी दुनिया के। वह ईजाद है एक गोल कमरा, बड़ा कमरा, जैसे इतना कक्ष गोल। और जैसे तुम फिल्म देखने जाते हो, तो फिल्म तो सामने पर्दे पर होती है। उस कमरे में सब तरफ प्रोजेक्टर लगे हैं। इसलिए फिल्म पूरे दीवालों पर होती है--चारों तरफ; सामने ही नहीं होती। पीछे लौट कर देखो तो वहां भी फिल्म होती है, बगल में देखो, तो वहां भी फिल्म होती है; इस तरफ देखो तो यहां भी फिल्म होती है। और व्यवस्था ऐसी की है कि कुछ घटनाओं के लिए उन्होंने फिल्म बनाई है।
जैसे तुम हवाई जहाज पर न्याग्रा जलप्रपात के पास उड़ रहे हो। तो तुम्हें बता दिया जाता है कि तुम हवाई जहाज में बैठे हो। और तुम चारों तरफ देखते हो, और तुम पाते हो हवाई जहाज का वातावरण। इस तरफ देखो तो यह खिड़की हवाई जहाज की। इस तरफ देखो तो एअर होस्टेस जा रही है। पीछे लौट कर देखो तो यात्री बैठे हुए हैं। आगे देखो तो पायलट है, और इंजिन की आवाज सुनाई पड़ रही है। चारों तरफ, एक क्षण को तुम्हें पूरी भ्रांति हो जाती है कि तुम हवाई जहाज में बैठे हुए हो। तुम जानते भी हो कि मैं अपनी कुर्सी में बैठा हुआ हूं। तुम टटोल कर भी देख लेते हो। मगर बगल में यह आदमी बैठा है, बगल में यह औरत बैठी है। यह एअर होस्टेस जा रही है। यह हवाई जहाज की आवाज, यह हवाई जहाज उड़े जा रहे हैं। फिर तुम खिड़की से झांक कर देखते हो, और तुम्हें इस तरफ के दृश्य दिखाई पड़ते हैं--सूरज उग रहा है, पहाड़ियां... । और तुम पीछे लौट कर देखते हो खिड़की से और खिड़की के पीछे जो दिखाई पड़ना चाहिए, जो छूटा जा रहा है पीछे हवाई जहाज से, वह दिखाई पड़ता है। और तुम आगे देखते हो, और आगे जो दिखाई पड़ना चाहिए हवाई जहाज से, वह दिखाई पड़ता है।
जिन लोगों ने इस कमरे में जाकर बैठ कर देखा है, उनकी प्रतीति यह है कि
कई बार ऐसा मौका आ जाता है कि बिल्कुल भूल हो जाती है... बिल्कुल भूल हो

जाती है! स्मरण ही भूल जाता है कि मैं सिर्प खेल देख रहा हूं। बिल्कुल वास्तविक हो जाता है। हालांकि किसी मन के कोने में यह याद भी बनी रहती है कि यह सब है, सब दीवारों पर फिल्में चल रही हैं।
यह सातवीं दशा है, जहां नीचे छह मनों का खेल चल रहा है। और सातवीं दशा, जहां खेल चल रहा है यह भी दिखाई पड़ रहा है, और धीमी सी यह भी स्मृति बनी है कि यह सब खेल है--मैं देखने वाला हूं; मैं द्रष्टा हूं! जो व्यक्ति सातवें में प्रवेश करता है उसके सामने दो बातें हो जाती हैंः एक तरफ आठवां, साक्षी की परम अनुभूति, और दूसरी तरफ छह का जाल। संसार और निर्वाण के बीच में खड़ा हो जाता है--सातवें मन में जो खड़ा होता है। एक क्षण को यह भी याद आ जाती है कि हां, मैं अलग हूं।
तुम बैठो कभी शांत होकर। क्रोध आया, वासना उठी--देखो जरा गौर से! समझ लेना कि डिस्नेलैंड में बैठे हो। मन के पर्दे पर सब सारे खेल चल रहे हैं। एक क्षण को ऐसा लगेगा कि हां, मैं देखने वाला। यह मैं नहीं हूं। यह क्रोध मैं नहीं हूं, मैं सिर्प देखने वाला हूं। यह सिर्प मेरा सपना है, जो मैं देख रहा हूं। लेकिन फिर भूल जाएगा, और क्रोध तुम्हें पकड़ लेगा। उसका धुआं तुम्हें जकड़ लेगा, और तुम भोक्ता हो जाओगे, कर्ता हो जाओगे। फिर सरकोगे, फिर हो जाओगे।
ध्यान की यही कशमकश है। ध्यान का यही संघर्ष है, कि ध्यान में याद भी बनी रहती है साक्षी की, और भूल-भूल जाती है। जब भूल जाते हो तब तादात्म्य हो जाता है नीचे लोक से। जब याद आ जाती है, तब तादात्म्य हो जाता है ऊपर के लोक से।
सातवीं अवस्था को पहुंचाने तक विधियों का उपयोग है। साधनाओं का, योग का, ध्यान का, पूजा-अर्चना का, मंत्र का, यंत्र का, तंत्र का, सब का उपयोग है--सातवें तक पहुंचाने में। और सातवें के बाद सब छोड़ देना है। आठवें पर ध्यान करना है। आठवें तक कोई विधि नहीं जाती; सातवें तक सब विधियां ले जाती हैं। अब तो सिर्प साक्षी है, जिसको कृष्णमूर्ति च्वाइसलेस अवेयरनेस कहते हैं। विकल्प-रहित साक्षी। कोई चुनाव नहीं! चुपचाप इस साक्षीभाव में प्रवेश हो जाना है।
जब तुम इतने साक्षीभाव में प्रविष्ट हो जाओ कि एक क्षण को भी भ्रांति पैदा न हो तादात्म्य की, तो तुम आठवीं अवस्था में पहुंच गए। यही निर्वाण है। यही मोक्ष है। यही कैवल्य है।
अगर इस आठवें तक जाना हो, तो विधियों का उपयोग करके सातवें तक पहुंचना। और फिर सातवें में विधियों को त्याग देना।
लेकिन जो लोग सुन लेते हैं किसी से, जैसे कृष्णमूर्ति से सुन लिया यू.
जी. कृष्णमूर्ति ने, और आकर लोगों को समझाने लगे, उन्हें कुछ भी पता नहीं है वे क्या कर रहे हैं।
ध्यान रहे, इस जगत में जो लोग बिना जाने लोगों को समझाने लगते हैं, उनसे बड़ा अहित और कोई भी नहीं करता। हत्यारे भी नहीं करते! क्योंकि हत्यारे तुम्हारा शरीर काट सकते हैं, तुम्हें नहीं काट सकते। लेकिन इस तरह के लोग तुम्हारी आत्मा को विकृत कर सकते हैं। ये तुम्हें ऐसी भ्रांत धारणाएं दे सकते हैं कि तुम जहां हो वहीं के वहीं रह जाओ; जो हो वैसे के वैसे रह जाओ।
तुम अभी पांच इंद्रियों में भटके हो, छठवें पर भी नहीं पहुंचे। मंत्र तुम्हें छठवें पर पहुंचा सकता है। फिर छठवें पर पहुंच गए, तो सम्यक स्मृति, सम्मासति, तुम्हें सातवें पर पहुंचा सकती है। फिर सातवें पर पहुंच गए तो सब का विसर्जन। उसके आगे कोई विधि नहीं जाती। उसके आगे कोई उपाय नहीं जाता। उसके आगे कोई गुरु नहीं है, कोई शिष्य नहीं है। उसके आगे बस शुद्ध चैतन्य है। उसके आगे सब रूप खो जाते हैं; सब आकार खो जाते हैं-- सिर्प निराकार है।
सातवें तक उपयोग करना; सातवें पर छोड़ देना और आठवें में प्रवेश कर जाना।
दूसरा प्रश्नः संत कबीर का एक पद है--हीरा पायो, गांठ गठियायो, बाको बार-बार तू क्यों खोले? फिर अंयत्र उनका दूसरा पद है--दोनों हाथ उलीचिए,

यही सयानो काम। भगवान, ये विरोधाभासी लगने वाले पद क्या साधना और सिद्धि के भिन्न-भिन्न तलों पर लागू होते हैं? इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें। ये दोनों वक्तव्य भिन्न-भिन्न तलों पर लागू नहीं होते, एक ही तल पर लागू होते हैं। और विरोधाभासी भी नहीं हैं। इनका प्रयोजन अलग-अलग है। एक ही तल पर लागू होते हैं, लेकिन प्रयोजन अलग-अलग है।
समझना। पहला पद--हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको बारबार तू क्यों खोले?
जब पहली दफे किसी को आत्मिक अनुभूति का हीरा हाथ लगता है, तो उसे बार-बार खोल कर देखने की इच्छा होती है। ऐसा प्यारा अनुभव है, ऐसा अपूर्व अनुभव है कि बार-बार टटोलने का मन होता है, कि है न अभी, खो तो नहीं गया? फिर खोली गांठ, फिर देख लिया। फिर बांधी गांठ, फिर देख लिया।
कबीर कहते हैंः ऐसा बार-बार खोल कर देखना घातक है। घातक दो कारणों से है। एकः अगर तुम उसे बार-बार खोल कर देख रहे हो, तो उसका अर्थ हुआ तुम बारबार उसकी आकांक्षा कर रहे हो। और अगर तुम बार-बार आकांक्षा कर रहे हो, तो बस वहीं अवरुद्ध हो जाओगे। और भी हीरे हैं अभी। अभी और बड़े हीरे हैं, उनका कोई अंत नहीं है। इसी पर मत रुक जाना। तुम्हारे अनुभव में यह सर्वाधिक मूल्यवान है। शायद तुम इसी पर रुक जाओ। तुम सोचो बस आगए, पहुंच गए, बात खत्म हो गई। अब और कहां जाना है? और तुम इसी में अटक जाओ और इसी में रसलीन हो जाओ, तुम्हारी आसक्ति इतनी बढ़ जाए इससे कि यही बाधा बन जाए।
आत्मिक अनुभवों का कोई अंत नहीं है--विस्तीर्ण होते चले जाते हैं, विराट होते चले जाते हैं! इसकी तुम्हें याद रहे। तो इसलिए जो हो गया, हो गया; अब आगे की तलाश करो। अब उसी को लौट-लौट कर मत देखते रहो। उसको खोल-खोल कर देखने का मतलब है, अतीत में देखना।
ऐसा रोज हो जाता है। किसी को पहली दफा ध्यान का अनुभव होता है, बस फिर मुश्किल शुरू होती है। फिर वह मेरे पास आता है, रोता है; कहता है कि अब नहीं हो रहा। अब वह कहता है, फिर दिखा दें, वही होना चाहिए।
मैं उससे कहता हूंः उससे बड़ा होगा। अगर तुम उसी में अटके, तो दो खतरे हैं। अगर वह हो भी, तो भी उतना सुंदर नहीं होगा, जितना पहली दफे मालूम हुआ था। कोई चीज दुबारा उसी अनुभव में उतनी सुंदर नहीं होती।
तुमने एक गीत सुना। पहली दफे बड़ा प्यारा था। दुबारा सुना, थोड़ा कम हो जाएगा प्यारापन। अनिवार्य है। तीसरी दफे सुना, साधारण हो जाएगा। चौथी दफे सुना, ऊब आएगी, जंहाई लोगे। पांचवीं दफे सुना, चीख निकल जाएगी, कि बंद करो यह बकवास! क्या मुझे पागल कर देना है?
मुल्ला नसरुद्दीन भोजन कर रहा था। एकदम उसने थाली देखी। थाली आकर रखी गई, और उसने थाली को उठा कर फेंक दिया और एकदम चिल्लाने लगा और सामान फेंकने लगा। उसकी पत्नी बोलीः क्या मामला है? उसने कहाः क्या मुझे पागल करना है? भिंडी, भिंडी, भिंडी... !
उसकी पत्नी ने कहाः अरे, हद हो गई! जब मैंने सोमवार को भिंडी बनाई थी
तो तुमने कहा था--बड़ी प्यारी, बड़ी अच्छी! जब मैंने मंगल को बनाई थी, तब भी तुमने कहा कि स्वादिष्ट। जब मैंने बुधवार को बनाई थी, तब भी तुम कुछ बोले नहीं; चुप रहे थे। जब मैंने बृहस्पतिवार को बनाई थी, तब यद्यपि तुम कुछ बोले नहीं थे, लेकिन तुम्हारा चेहरा कुछ उदास जरूर था। फिर मैंने शुक्रवार को भी बनाई थी, तुमने ठीक से खाई भी नहीं थी। आज शनिवार है। मैंने फिर भिंडी बनाई, तो तुम इतने चिल्ला क्यों रहे हो? इतने पागल क्यों हो रहे हो? और यह वही भिंडी है, जो सोमवार को बनाई थी। तुम इतना असंगत व्यवहार क्यों कर रहे हो?
यह असंगत व्यवहार नहीं है। हर चीज अगर दोहरती रहे तो व्यर्थ हो जाती है। तुम जब जाते हो कश्मीर--और हिमालय का सौंदर्य, और डल झील--तुम्हें जैसी सुंदर मालूम होती है, तुम यह मत समझना कि डल झील में जो तुम्हारी नौका चला रहा है माझी, उसको भी इतनी सुंदर मालूम होती है। उसको कुछ पता ही नहीं चलता--कहां की डल झील! वह तो यह सोचता है कि ये बुद्धू, क्यों चले आते हैं? मैं कश्मीर में था। मेरे साथ कोई बीस-पच्चीस मित्र थे कश्मीर में। बंबई के सारे मित्र थे। जिस बजरे पर हम रुके थे, उस बजरे का मल्लाह, जब

आखिरी दिन हम चलने लगे, कहने लगाः बाबा! एक दफे बंबई दिखा दो। बंबई देखनी ही है। बस आपकी कृपा हो जाए, तो बंबई देख लूं।
मैंने कहाः तू बंबई देख कर क्या करेगा? ये बंबई के बीस-पच्चीस लोग, ये
तो कश्मीर देखने आए हैं।
वह बोला कि हो गया कश्मीर बहुत, देख लिया बहुत। यहीं जन्मे हैं, क्या यहीं मरना है? और रखा क्या है यहां?
वह कहने लगा कि मैं तो कहता नहीं, लेकिन मुझे हैरानी होती है कि लोग बंबई से यहां किसलिए आते हैं?
जिस अनुभव को तुम रोज-रोज दोहराओगे, व्यर्थ हो जाएगा, असार हो जाएगा। इसलिए कबीर ने कहा है--हीरा पायो, गांठ गठियायो, बाको बार-बार तू क्यों खोले? इसलिए पीछे लौट-लौट मत देखो। उसी अनुभव को बारबार मत मांगो। अगर मिलेगा, तो भी खत्म हो जाएगा।
और दूसरी बात और महत्वपूर्ण है कि दुबारा मांगने से मिलता नहीं। ये अनुभव ऐसे हैं कि मांगने से नहीं मिलते। मांगने से अटकाव हो जाता है। यह पहली दफे जब तुम्हें ध्यान घटता है, तो तुमने मांगा थोड़े ही था। तुम्हें पता ही नहीं था, ध्यान क्या है? तुम निर्दोष थे; तुम बालक जैसे थे। उस निर्दोषता में ध्यान घट गया। अब तुम चालाक हो गए। अब तुम बालक नहीं हो। अब तुम मांग कर रहे हो कि वही अनुभव चाहिए। बस यही भेद अब रुकावट बन जाएगा। यह अनुभव दुबारा नहीं होगा। तुम अड़चन में पड़ जाओगे।
इसलिए कबीर कहते हैंः जो अनुभव में आ गया, उस पर गांठ बांधो और भूल जाओ। आगे बढ़ो, अभी बहुत यात्रा है।
मुहब्बत में कुछ कामरां और भी हैं
तेरे गम के कुछ राजदां और भी हैं
संभल कर जरा जल्वए-तूरे-मूसा
हरीफे रुखे कहकशां और भी हैं
कमर को हैं बेवजह क्यों नाजे बेजा
सबाबे गुलो-गुलसितां और भी हैं
और भी बगीचे हैं, और भी पर्वत-मालाएं हैं।
"कमर को है बेवजह क्यों नाजे बेजा?" इस चंद्रमा में ही मत अटक जाना। यह चंद्रमा व्यर्थ ही गुमान कर रहा है।
कमर को है बेवजह क्यों नाजे बेजा
सबाबे गुलो-गुलसितां और भी हैं
उद्यान और भी हैं, फूल और भी हैं।
अभी नामुकम्मल-सी बरबादियां हैं
निगाहों में कुछ बिजलियां और भी हैं
लबों पर ही रक्सां नहीं गीत उनके
निगाहों में राजे निहां और भी हैं
मयस्सर नहीं सर्पे-गम तुमको रैना
तुम्हारे सिवा कामरां और भी हैं
बहुत है अभी शेष। अभी और बड़ी मंजिलें हैं। अभी और बड़ी ज्योतियां हैं। अभी और सुंदर पर्वत-शृंखलाएं हैं। अभी और फूल खिलेंगे। अभी और कमल खिलने को हैं।
इसलिए जो छोटा सा फूल खिला है, उसी को पकड़ कर मत बैठ जाना। मंजिल का अंत मत समझ लेना। यह तो पहली बात का अर्थ हैः "हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको बार-बार तू क्यों खोले?" यह साधक को स्वयं के लिए कहा है कि तू अपने ही देखने के लिए हीरे को बारबार मत टटोलना। उसी टटोलने में हीरा खो जाएगा। और इसी टटोलने में तू उलझ जाएगा। जो अनुभव हो जाए, उसे भूल जाना, उसकी दुबारा मांग मत करना। पुनरुक्ति की आकांक्षा मत करना।
और फिर दूसरा पद हैः "दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम।"... यही सयानो काम!
यह दूसरे के लिए है। जिसको मिला हो, वह खुद अपने अतीत को तो बार-बार लौट कर न देखे; लेकिन जो मिला हो, उसको बांट दे। फर्क समझ लेना। इनमें विरोध नहीं है। ये भिन्न-भिन्न बातें हैं--एक ही तल पर काम की। जो तुम्हें

मिला है, उसी-उसी को गुनगुनाते मत रहना उसी-उसी को मुट्ठी में बांध कर मत बैठ जाना। उसे मंजिल मत समझ लेना। अभी मंजिलें और भी हैं! लेकिन जो तुम्हें मिला है, उसे बांट देना। उसे दूसरों को दे देना। उसे लुटा देना। जो आनंद तुम्हें मिले, उसे साझी बना लेना किसी को।
जब तुम्हारे भीतर ध्यान की खुशबू फैले, तो तुम उसे अपने भीतर सम्हाल
कर मत रख लेना। इस अर्थ में नहीं है पहला वाक्य, कि तुम कंजूसी कर लेना, कि तुम कृपण हो जाना। यह मत समझ लेना इसका अर्थ--हीरा पायो गांठ गठियायो--कि हो गए कंजूस, कि लगा लिया ताला, कि चले गए बैंक में और लाकर में बंद कर आए। यह मतलब नहीं है। इतना ही मतलब है कि तुम अपने लिए उस तरफ अब मत देखना। मगर जो मिला है, उसे बांट दो।
इसलिए दूसरा वचन भी कहा कि यही सज्जन का, सयाने का काम है कि जो हाथ आ जाए, उसे दोनों हाथ उलीचिए। क्यों? क्योंकि जितना उलीचोगे, उतना ज्यादा पाओगे। जैसे कुएं का पानी उलिचता चला जाए, तो नए झरने फूटते हैं; नये जल-स्रोत आते हैं। कुआं भरता चला जाता है। अगर कुएं का पानी न उलीचो, कृपण हो जाओ कि कहीं खर्चा न हो जाए कुएं का पानी, तो सड़ जाएगा पानी। पीने योग्य न रह जाएगा। विषाक्त हो जाएगा। तो कुएं का जल विषाक्त न हो जाए।
उलीचो! जो तुम्हारी अनुभव की संपदा है, बांट दो। चढ़ जाओ घरों की मुंडेरों पर और चिल्लाओ! जो तुम्हें मिला है, खबर कर दो औरों को कि तुम्हें भी मिल सकता है।
दस से कहोगे, शायद एकाध सुनेगा, समझेगा; नौ हंसेंगे। उनकी फिकर मत करना। वस्तुतः वे तुम पर नहीं हंस रहे हैं, वे हंस कर सिर्प अपनी मूढ़ता जाहिर कर रहे हैं। जो एक समझेगा, उसके जीवन में क्रांति की किरण उतर जाएगी। और उतना पर्याप्त है। अगर दस को पुकारा और एक ने समझ लिया तो पर्याप्त है। इतना भी बहुत है।
और तुम्हें बड़ी धन्यता का अनुभव होगा। तुम्हारे द्वारा अगर किसी के जीवन में एक छोटी-सी किरण भी आ जाए, तो तुम्हें इतनी धन्यता का अनुभव होगा, जितनी धन्यता का अनुभव जब तुम्हारे जीवन में वह किरण आती है तो नहीं होता। जब तुम्हें मिलती है तब एक बात, खूब आनंद होता है। मगर उस आनंद के मुकाबले कुछ भी नहीं, जब तुम दूसरे को बांट देते हो। यह आनंद और भी बड़ा है, और भी विशालतर है, और भी श्रेष्ठतर है।
देने का मजा, पाने के मजे से सदा से ज्यादा रहा है।
ख्याल करो, जब तुम किसी से कुछ पाते हो तो एक सुख मिलता है। मगर तुमने देखा है, जब तुम किसी को कुछ देते हो, उसके मुकाबले? इसलिए तो लोग भेंट देते हैं। भेंट का एक सुख है। देने में एक मजा है। जिनको हमने प्रेम किया, उन्हें कुछ दिया। और परमात्मा से बड़ी भेंट और क्या होगी? अगर यह हीरा तुम बांट सको, तो तुम धन्यभागी हो।
ये एक ही तल पर दिए गए वक्तव्य हैं। ये अलग-अलग साधक को नहीं कहे गए हैं। अपने लिए भूल जाना। जो हुआ, हुआ। आगे बढ़ो। दूसरे के लिए बांट देना। और मेरे हिसाब से दोनों में एक संगति है। अगर तुम बांट दो, तो तुम लौट कर देखोगे नहीं। अगर रोक लो, तो ही लौट कर देखोगे।
रोकना क्या है? परमात्मा देनेवाला है। श्रद्धा रखो, और देगा। और जितना पाएगा कि तुम देने में कुशल हो गए हो, उतना ज्यादा देगा। जितना पाएगा कि तुम बांटने में आनंद लेने लगे हो, उतनी तुम्हारी संपदा बढ़ती चली जाएगी। तुम परमात्मा के हाथ हो जाआगे। क्योंकि परमात्मा बांटना चाहता है। वह हाथों की तलाश में है। उसने सदियों से विज्ञापन दिए हैं, लेकिन बहुत मुश्किल से हाथ मिलते हैं। कभी कोई बुद्ध का हाथ, कृष्ण का हाथ, कभी किसी कृष्णमूर्ति का हाथ, कभी क्राइस्ट का हाथ--बड़ी मुश्किल से कोई हाथ मिलते हैं। तुम भी उसके हाथ बन जाओ।
तुमने परमात्मा की मूर्तियां देखी हैं हजार हाथोंवाली? हजार हाथ कहां से लाएगा? उन मूर्तियों में एक सत्य छिपा है--हमारे हजारों हाथ उसके हाथ बन जाएं। और कहां से लाएगा? हम ही उसके हाथ हैं।
पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआः इंग्लैंड के एक नगर में, बीच चौरास्ते
पर क्राइस्ट की एक मूर्ति थी। बम गिरा और वह मूर्ति खंड-खंड हो कर गिर गई।

बड़ी प्यारी मूर्ति थी। और गांव के लोगों ने सारे खंड इकट्ठे किए और फिर से मूर्ति को रचा, जोड़ा खंडों को। और सब तो टुकड़े मिल गए, दो हाथ मूर्ति के न मिले। शायद बिल्कुल चकनाचूर हो गए होंगे। तो उन्होंने एक मूर्तिकार को कहा कि ये दो हाथ तू बना दे। मूर्तिकार ने बहुत सोचा। और उसने कहाः हाथ की बजाय, मैंने बहुत सोचा, बहुत खोजा, मैं ये पत्थर पर दो शब्द खोद लाया हूं। यह पत्थर वहां लगा दें।
और वह पत्थर वहां लगा दिया गया। वह हाथों से ज्यादा प्रीतिकर पत्थर है। उस पत्थर पर लिखा हुआ हैः मेरे अपने हाथ नहीं हैं, तुम्हारे हाथों का ही मुझे भरोसा है।
परमात्मा के अपने हाथ नहीं हैं। तुम्हारे हाथ ही उसके हाथ बनते हैं।
इसलिए--दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।
ये दोनों वक्तव्य, दो अलग बातों को, एक ही साधना की अवस्था में समझाने
के लिए हैं। अपने लिए--बारबार मत खोलना हीरे को। दूसरों के लिए--लुटा देना।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
नौवां प्रवचन

सत्संग की मधुशाला

कहंवां से जीव आइल, कहंवां समाइल हो।
कहंवां कइल मुकाम, कहां लपटाइल हो।।
निरगुन से जिव आइल, सरगुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो।।
एक बूंद से काया-महल उठावल हो।
बूंद पड़े गलि जाय, पाछे पछतावल हो।।
हंस कहै, भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुरि नहिं पाइब हो।।
इहवां कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो।
बिच तरवर मैदान, अकेला हंस डोलै हो।।
लख चौरासी भरनि, मनुष-तन पाइल हो।
मानुष जनम अमोल, अपन सों खोइल हो।।
साहेब कबीर सोहर सुगावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धरमदास, रही चित चेतहु हो।।

सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे।।
यह संसार कांट की बारी, अरुझि-अरुझि के मरने दे।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुंकै तो भुंकने दे।।
यह संसार भादो की नदिया, डूब मरै तेहि मरने दे।
धरमदास के साहेब कबीरा, पत्थर पूजै तो पुजने दे।।

यह मैकदा है मगर अब वह लुत्फे-आम कहां?
वह रक्शे-जाम वह रिंदाने-तिश्नाकाम कहां? गुदाजे-सीनए-मुतरिब न सोजे-नग्मए-नै
वह बेकरारिए-महफिल का एहतमाम कहां?
इधर तही है सुबू, उस तरफ तही सागर!
वह बादा-रेजिए-महफिल की सुबहो-शाम कहां? मिटे हुए-से हैं कुछ नक्शे-पा जरूर मगर
रहे तलब में वह याराने-तेजगाम कहां?
नवाए-वक्त बहुत गुलफिशां सही लेकिन
वह जां नवाज मुहब्बत अदा पयाम कहां?
श्मीमे-शामे-मुहब्बत को क्या करूं "अख्तर!"
नसीमे-सुबहे-तमन्ना का वह खराम कहां?

सत्संग की मधुशालाएं थीं। सत्य की शराब ढलती थी। लोग पीते थे--जागते थे। बेहोश होते थे--और होश में आते थे। वे दिन चले गए।
यह मैकदा है मगर अब वह लुत्फे-आम कहां?
मधुशालाएं पड़ी रह गई हैं, लेकिन खाली हैं अब। अब मंदिरों में जाता कौन! अब मस्जिदों में रिश्ता किसका रहा! गुरुद्वारे-गिरजे उजड़ गए हैं। और जाते भी हैं जो, वे भी कहां जाते हैं! जाते हैं और आ जाते हैं।
कुछ एक सूक्ष्म तंतु टूट गया है। कोई एक खोज जो सदियों से मनुष्य के प्राणों को आंदोलित किए रही थी, अचानक खो गई है। आदमी व्यर्थ में उलझ गया है। सार्थक की तलाश, सार्थक की तरफ नजरें उठाने का साहस खो गया है। आदमी ज्ञात में जकड़ गया है। अज्ञात का अभियान उसके प्राणों को अब चुनौती नहीं देता।
यह मैकदा है मगर अब वह लुत्फे-आम कहां?
मधुशाला है जरूर, मगर अब वे सारे पीने वाले लोग कहां! वह रक्शे-जाम...
वह हाथों से हाथों में शराब की प्यालियों का जाना। वह रक्शे-जाम वह रिंदाने-तिश्नाकाम कहां? और अब वे पियक्कड़ और वे पीने वाले और वे प्यासे

लोग कहां! गुदाजे-सीनए-मुतरिब... । न तो गायक के गले में अब वह दर्द है।
गुदाजे-सीनए मुतरिब न सोजे-नग्मए-न। और न वाद्य में वह तड़प है।
वह बेकरारिए-महफिल का एहतमाम कहां?
और वह पियक्कड़ों की बैठक और उस बैठक का नशा और उस बैठक में खिलते हुए फूल, उस बैठक का वातावरण कहां! कुछ खो गया है पृथ्वी से। मंदिर खो गए हैं। मस्जिदें खो गई हैं। मस्जिदें हैं और मंदिर हैं, मगर वे सब घर रह गए हैं; उनके भीतर अब शराब नहीं ढलती, शराब नहीं बनती। शराब बनाने की कला खो गई है। इधर तही है सुबू... इधर मदिरा का घड़ा खाली पड़ा है। उस तरफ तही सागर... उधर मदिरा का प्याला खाली पड़ा है। ऐसे ही तुम्हारे मंदिर और मस्जिद हैं अब।
इधर तही है सुबू, उस तरफ तही सागर
वह बादा-रेजिए-महफिल की सुबहो-शाम कहां?
वह मदिरा से परिपूर्ण, मदिरा की गंध से भरी हुई परिपूर्ण न तो अब सुबह है, न अब सांझ है। वे महफिलें न रहीं।
कुछ बड़ा बहुमूल्य इस पृथ्वी से टूट गया है, जिसे फिर से बनाना जरूरी है। मंदिर को फिर से उठाना जरूरी है। मंदिर के बिना मनुष्य मनुष्य हो ही नहीं पाता। और परमात्मा का रस जब तक न बहे जीवन में, तब तक हम जिए भी--और जीए भी नहीं। यूं ही जिए। व्यर्थ ही जिए। धूल-धवांस में जिए। आनंद-उल्लास में नहीं। तब तक जिए हम जरूर, क्योंकि सांसें चलती थीं, छाती धड़कती थी, भोजन करते थे, सोते थे, उठते-बैठते थे। लेकिन ऐसे ही जैसे वृक्ष हो, पत्ते भी आएं, शाखाएं भी निकलें, लेकिन फूल कभी न खिलें।
मिटे हुए-से हैं कुछ नक्शे-पा जरूर मगर
लेकन मधुशालाएं उजड़ गई हों, मंदिर समाप्त हो गए हों, पुरोहितों ने हत्या कर दी हो मंदिरों की और पंडितों ने मनुष्य से सत्य की खोज छीन ली हो... क्योंकि पंडितों ने इतना व्यर्थ का ज्ञान दे दिया है कि अब प्रत्येक को ऐसा लगता हैः सत्य की खोज की जरूरत क्या? किताब से ही मिल जाता है, तो जीवन में कौन उतरे! उतनी झंझट कौन ले! ... तो पंडित और पुरोहितों ने धर्म को मार डाला हो भला, लेकिन चरण-चिह्न नहीं खो गए हैं। जहां बुद्ध पुरुष चले, जहां कबीर उठे-बैठे, वहां कुछ नक्शे-पा हैं।
मिटे हुए-से हैं कुछ नक्शे-पा जरूर मगर
कुछ चरण-चिह्न हैं, मिटे हुए जरूर हैं, मगर हैं। और गौर से कोई खोजे तो मिल जाते हैं।
रहे तलब में वह याराने-तेजगाम कहां?
हालांकि अब उस प्यारे के खोजने के रास्ते पर, प्रेम-मार्ग में तेज चलने वाले लोग नहीं रह गए हैं, मगर कुछ चरण-चिह्न अब भी समय की रेत पर हैं। संतों के वचनों पर बोलने का मेरा प्रयोजन यही है कि ये नक्शे पा, ये चरण-चिह्न तुम्हें थोड़े स्पष्ट हो जाएं; याद आ जाए कि और भी रास्ताी है कुछ चलने का और भी रास्ता है कुछ जीने का, और भी ढंग है, और भी शैली है। यही जिंदगी नहीं है, जिसे तुमने जिंदगी समझ रखा है। यह तो जिंदगी की केवल एक सुविधा है, अवसर है। यहां असली जिंदगी निचोड़नी है।
अंगूर शराब नहीं हैं। अंगूर केवल शराब की सुविधा है। अंगूर के बिना शराब नहीं हो सकती, यह सच है; लेकिन अंगूर ही शराब नहीं है। शराब बनानी पड़ेगी। अंगूर से शराब बनाने की प्रक्रिया का नाम साधना है।
इन सूत्रों को समझना।
कहंवां से जीव आइल, कहंवां समाइल हो।
धनी धरमदास कहते हैंः कहां से आना हुआ तुम्हारा? किस लोक से आए हो? याद करो उस स्रोत को, क्योंकि स्रोत ही अंतिम लक्ष्य है। जहां से हम आए हैं वहीं हमें पहुंचना है--तभी वर्तुल पूरा होता है, यात्रा समाप्त होती है। प्रथम चरण और अंतिम चरण एक है। बीज से वृक्ष होता है, फिर वृक्ष में बीज लगते हैं। फिर वृक्ष से बीज पृथ्वी में गिर जाते हैं, जहां से आए थे। गंगोत्री से गंगा निकलती है, सागर में उतरती है, फिर बादलों पर चढ़ती है, फिर वर्षा होती है हिमालय पर, फिर गंगोत्री में प्रवेश हो जाता है। जहां वर्तुल पूरा होता है।

वर्तुल कहां पूरा होगा? जहां से हम आए हैं वहीं हमें पहुंच जाना होगा। वहीं हमारा घर है। उसके अतिरिक्त सब भटकाव है। और हमें भूल ही गया है कि हम कहां से आए हैं।
कहंवां से जीव आइल, ...
यह बुनियादी प्रश्न है कि हम कहां से आए हैं? हमारा मूल उदगम क्या है? हमारा स्रोत क्या है? यह जीवन-वृक्ष किस बीज से पैदा हुआ है?
ऊपर-ऊपर खोजें, जैसे कि भौतिकवादी करता है, पदार्थवादी करता है, शरीरवादी करता है--तो यात्रा बस वहां तक हो सकती है जहां मां के पेट में तुम्हारे मां और पिता के जीवाणु मिले थे। लेकिन वहां से तो देह बनी, तुम्हारा चैतन्य कहां से आया है? देह ही तो तुम नहीं हो। काश, तुम देह ही होते तो फिर चिंता क्या थी! फिर परेशानी क्या थी! फिर मृत्यु का भय क्या था! मरता ही कौन! काश तुम देह ही होते, तो यंत्र होते! फिर यह बोध कहां होता! फिर यह वेदना कहां होती! काश देह ही तुम होते, तब तो सब झंझट मिट गई होती! लेकिन तुम देह नहीं हो। देह तो तुम्हारा आवरण है। तुम देह में बसे हो।
वह जो बसा है, कहां से आया है, कौन है? जिस आदमी ने इस प्रश्न को नहीं पूछा, वह आदमी अभी आदमी नहीं है। और इस प्रश्न को पूछने में डर लगता है जरूर। इस प्रश्न से आदमी बचना चाहता है जरूर। कारण है, क्योंकि प्रश्न बड़ा खतरनाक है। इसे पूछने में विक्षित हो जाने का डर है। इसे उठाने का मतलब है--तहलका। इसे उठाने का मतलब हैः एक भूचाल। इस प्रश्न को उठाने का मतलब हैः एक तूफान, एक आंधी। फिर जब तक उत्तर न मिलेगा, तब तक आंधी और आंधी... । फिर तुम एक तिनके की तरह आंधी में हो जाओगे।
इसलिए लोग बुनियादी प्रश्न नहीं उठाते। लोग फिजूल के प्रश्न उठाते हैं। फिजूल के प्रश्न इसलिए उठाते हैं कि उनके उत्तर हैं। सार्थक प्रश्न का उत्तर नहीं होता। यही फिजूल और सार्थक का भेद है। सार्थक प्रश्न का अनुभव होता है, उत्तर नहीं होता। अनुभव ही उत्तर होता है। फिजूल प्रश्न के उत्तर होते हैं।
लोग न मालूम कैसे-कैसे प्रश्नों में उलझे रहते हैं! क्रासवर्ड, पहेलियां भरते रहते हैं। इस जिंदगी की पहेली उलझी पड़ी है, किसी अखबार में छपी पहेली को सुलझा रहे हैं! अभी भीतर जो पहेली है वह भी सुलझी नहीं। खुद सुलझे नहीं हैं, लोग दूसरों को सुलझाने चल पड़ते हैं। दूसरे को सुलझाने में झंझट नहीं है। अपना क्या बिगड़ता-बनता है! दूसरे को सुलझाने में तुम बाहर ही रहते हो प्रश्नों के।
एक चमत्कार की घटना रोज यहां घट रही है। पश्चिम से मनोवैज्ञानिक आ रहे हैं, मनोविश्लेषक आ रहे हैं, मनोचिकित्सक आ रहे हैं--जिन्होंने जिंदगी भर दूसरों को, दूसरों की समस्याएं सुलझाने का काम किया है। जब वे मेरे पास आते हैं तो मैं उनसे पूछता हूंः "तुम करते क्या रहे? तुम ख्यातिनाम हो। तुमने हजारों मरीजों की मानसिक चिकित्सा की है। " तब उनकी आंखें झुक जाती हैं। वे कहते हैंः हम दूसरों के प्रश्न तो सुलझाते रहे, लेकिन अपना प्रश्न उलझा पड़ा है।
मगर यह हो कैसे सकता है कि तुम्हारा प्रश्न उलझा पड़ा हो और तुम दूसरे
का सुलझाओ? और तुम्हारा सुलझाना किस काम का होगा? तुम्हारे सुलझाने से और बात उलझेगी, और गांठ लग जाएगी, धागे और उलझ जाएंगे। और यही हो रहा है, धागे आदमी के उलझते जा रहे हैं। क्योंकि जिनके खुद नहीं सुलझे हैं, वे दूसरों को सुलझाने चले गए।
लेकिन आदमी दूसरे के प्रश्नों के सुलझाने में इतनी उत्सुकता क्यों लेता है? कारण यही हैः दूसरे का प्रश्न सुलझाने में अपने प्रश्न से बचने की सुविधा है, उपाय है। भूल ही गए अपने प्रश्न।
धार्मिक व्यक्ति वही है, जो यह झंझट लेता है; जो इस उपद्रव में उतरता है; जो कहता हैः पहले मैं अपने प्रश्न को सुलझा लूं।
और प्रश्न क्या है--कहंवां से जीव आइल? आए तुम कहां से? यह बात ही डराती है। मैं कौन हूं? हमारा मन होता है नाम बता दें--अ ब स। गांव बता दें-- पता-ठिकाना बता दें। सस्ता कोई उत्तर दे दें--स्त्री हूं, पुरुष हूं; जवान

हूं, बूढ़ा हूं; प्रसिद्ध हूं, अप्रसिद्ध हूं; नाम है, बदनाम है। कुछ... ऐसा कुछ उत्तर देकर हम निपट लेना चाहते हैं।
तुम्हारा नाम तुम हो? तुम्हारा गांव तुम हो? तुम्हारा पता-ठिकाना तुम हो? किसे धोखा दे रहे हो? ये ऊपर से चिपका ली गई बातें हैं। तुम्हारे जीवन की समस्या को हल करेंगी, समाधान देंगी? इनसे समाधि फलेगी? हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं, भारतीय हूं, चीनी हूं, जापानी हूं--क्या उत्तर दे रहे हो तुम? इनसे क्या पता चलता है? कुछ भी पता नहीं चलता।
जब बच्चा पैदा होता है, न हिंदू होता है न मुसलमान होता है। कोई बच्चा जनेऊ लेकर तो आता नहीं और न किसी बच्चे का खतना भगवान करता है। बच्चा भारतीय भी नहीं होता, पाकिस्तानी भी नहीं होता। बच्चे के पास कोई भाषा भी नहीं होती--न हिंदी, न अंग्रेजी, न मराठी, न गुजराती। यह कौन है? यह चैतन्य क्या है? यह निर्मल दर्पण क्या है? यह कहां से आ रहा है? यह बिना लिखी किताब क्या है? इस पर अभी कुछ नहीं लिखा गया है; जल्दी ही आइडेंटिटी-कार्ड बनेगा, पासपोर्ट बनेगा। जल्दी नाम-पता-ठिकाना लिख जाएगा। जल्दी इस आदमी को हम एक कोटि में रख देंगे कि यह कौन है। यह डाक्टर हो जाएगा, इंजीनियर हो जाएगा, दुकानदार हो जाएगा, इस राजनीतिक पार्टी में सम्मिलित हो जाएगा, उस राजनीतिक पार्टी में सम्मिलित हो जाएगा। कम्युनिस्ट हो जाएगा, सोशलिस्ट हो जाएगा। यह हजार चीजें हो जाएगा। इस क्लब का मेंबर हो जाएगा, रोटेरियन हो जाएगा, लायन हो जाएगा--और न मालूम क्या-क्या हो जाएगा! और इसके चारों तरफ पर्त-दर-पर्त झूठी बातें जुड़ती चली जाएंगी और उन्हीं में यह खो जाएगा। और कभी यह प्रश्न भी नहीं उठेगा इसके भीतर कि आखिर मैं हूं कौन!
लोग इस प्रश्न को पूछते डरते हैं। और यह प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रश्न से महत्वपूर्ण और कोई प्रश्न नहीं है। और जिसने यह नहीं पूछा, उसने अपनी मनुष्यता की चुनौती स्वीकार नहीं की। पशु नहीं पूछ सकते हैं, क्षम्य हैं। वृक्ष नहीं पूछ सकते हैं, क्षम्य हैं! आदमी पूछ सकता है और नहीं पूछता, यही उसका अक्षम्य अपराध है, यही उसका पाप है।
ईसाई मूल पाप की चर्चा करते हैं। मैं इसी को मूल पाप कहता हूं-- ओरिजिनल सिन--जो तुम हो सकते हो, नहीं हो पाते। जो तुम पूछ सकते हो, पूछना ही था, जिसके पूछने में ही तुम्हारी नियति छिपी थी, वह भी नहीं पूछते! और सस्ते उत्तर, बड़े सस्ते उत्तर, दो कौड़ी के उत्तर संभालकर रख लेते हो। फिर उन पर लड़ते भी हो। मैं हिंदू हूं, इस पर झगड़े हो जाते हैं। मैं ईसाई हूं, इस पर तलवारें खिंच जाती हैं। मैं भारतीय हूं, मैं पाकिस्तानी हूं--इस पर लाखों लोग मर जाते हैं। तुम्हें पता ही नहीं तुम कौन हो। लेकिन इन बातों पर लोग बड़ा आग्रह रखते हैं, क्योंकि घबड़ाहट है। अगर ये बातें ढीली पड़ जाएं तो शंका उठेगी भीतर कि मुझे मेरा अब तक पता नहीं है! तब भीतर एक ज्वालामुखी धधकेगा। और उससे बचना है। उससे बचने का सरल उपाय है--झंडा ऊंचा रहे हमारा! झंडे पर नजर रखो, नीचे देखो ही मत! झंडों झंडों में झगड़ा होने दो। पूछो ही मत कि यह झंडे को कौन पकड़े हुए है?
ये सब झंडे हैं--भारतीय, हिंदू, मुसलमान, ईसाई। ये सब झंडे हैं। और इन्हीं के झंडों के झगड़ों में तुम खो गए हो।
कहंवां से जीव आइल कहंवां समाइल हो।
कहां से आना हुआ है और किसमें समा गए हो? यह पक्षी कहां से आया है? यह
जो आज पिंजड़े में बैठा है, यह हंस कहां से आया है? इसका यात्रा-पथ क्या है? यह कैसे प्रविष्ट हो गया है देह में? इसने देह की संकीर्णता कैसे स्वीकार कर ली है? यह देह के कारागृह में कैसे पड़ा? इसके हाथ-पैर में जंजीरें कैसे पड़ गईं? यह पक्षी आकाश का है। यह होमा पक्षी है, जो दूर आकाश का ही निवासी है, जो अनंत का निवासी है। आकाश में ही इसका घर है।
आकाश यानी निराकार। आकाश यानी असीम। आकाश यानी जिसकी कोई मृत्यु नहीं, न कोई प्रारंभ, न कोई अंत। पृथ्वियां बनती हैं, बिगड़ जाती हैं--आकाश सदा है। चांद-तारे आते हैं, मिट जाते हैं--आकाश सदा है। आदमी आते हैं, जाते हैं; संस्कृतियां उठती हैं, बिखरती हैं, सब होता रहता है--आकाश सबका साक्षी है। आकाश ने सब देखा है जो हुआ है और सब देखेगा जो होगा। और जब नहीं था देखने को कुछ, तब भी आकाश था और जब नहीं देखने को कुछ होगा तब भी आकाश होगा।

सृष्टि भी देखता है, आकाश और प्रलय भी देखता है आकाश। उसी आकाश से हमारा आना हुआ है। हम उसी आकाश के हिस्से हैं।
लेकिन मेरे कहने से इसका तुम्हें पता नहीं चलेगा, न धनी धरमदास के कहने से, न कबीर के कहने से, न नानक के कहने से। तुम्हें अपने भीतर के आकाश में उतरना पड़ेगा, तो ही तुम जान सकोगे।
जैसे तुमने अपने आंगन में दीवाल उठा ली है और आकाश को कैद कर लिया है, ऐसे ही प्रत्येक देह के भीतर छोटे-छोटे आंगन में आकाश कैद हो गया है। जैसे बाहर एक आकाश है, वैसा भीतर भी एक आकाश है। उस अंतराकाश का नाम ही आत्मा है या जो भी नाम देना तुम पसंद करो।
कहंवां से जीव आइल...
किस दूर लोक से आना हुआ है?
यह प्रश्न क्यों उठता है? यह प्रश्न इसलिए उठता है... और जो भी ईमानदार
है उनके लिए उठेगा ही। यही प्रश्न उठता है, तो ही पता चलता है कि आदमी ईमानदार है। मैं तुम्हारी दो कौड़ी की ईमानदारी की परिभाषाएं नहीं मानता कि किसी आदमी ने तुमसे दो पैसे लिए थे और लौटा दिए, तुम कहते हो बड़ा ईमानदार है! ईमानदार जैसा बड़ा शब्द...! ईमान का अर्थ होता हैः धर्म। ईमानदार का अर्थ होता हैः जिसे धर्म का पता है। ईमानदार बड़ा शब्द है! तुम्हारे दो पैसे लेने-देने से क्या लेना-देना है? ईमान बड़ा कीमती शब्द है।
मैं किसे ईमानदार कहता हूं? मैं उस आदमी को ईमानदार कहता हूं, जो जीवन
के अस्तित्वगत प्रश्नों को उठाता है, उनसे जूझता है, टक्कर लेता है, समाधान खोजता है। ईमानदार आदमी सबसे पहला प्रश्न उठाता हैः मैं कौन हूं? फिर सारी बातें नंबर दो हैं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः ईश्वर कहां है? मैं उनसे पूछता हूंः तुमने पहला प्रश्न पूछा या नहीं? वे कहते हैं; पहला प्रश्न और कौन-सा है?
तुम ईश्वर को खोजने चल पड़े, तुमने अभी यह भी नहीं पूछा कि यह खोजने वाला कौन है! तुम दूर की यात्रा पर निकल पड़े, तुमने पास की तलाश नहीं की। और जिसने स्वयं को नहीं जाना वह कभी परमात्मा को नहीं जान पाएगा, क्योंकि परमात्मा स्वयं का ही विराट रूप है। जो अपने आंगन में छोटे से आकाश से भी परिचित न हो सका, वह विराट आकाश से परिचित हो सकेगा? जो अपने छोटे से पिंजड़े में भी पर नहीं फड़फड़ाता है, वह आकाश में कैसे उड़ेगा? इसलिए पहली उड़ान तो अपने पिंजड़े में ही पर फड़फड़ाने से करनी होती है।
मैं कौन हूं, यह प्रश्न पर का फड़फड़ाना है। यह उठता क्यों है? और जो ईमानदार है, मैंने कहा, उसे उठेगा ही। यह उठता इसलिए है कि यहां जो भी आदमी थोड़ा सोच-विचार करेगा, उसे एक बात समझ में आती है कि मैं यहां विदेशी हूं। यहां कुछ भी ऐसा नहीं लगता जिससे तृप्ति मिलती हो। ऐसा लगता है कि मैं किन्हीं और जल-स्रोतों का पीने का आदी रहा हूं, यहां का कोई जल तृप्त करता नहीं मालूम होता। ऐसा लगता है मैंने कुछ प्रेम के और रूप जाने हैं, यहां का कोई प्रेम संतुष्टि देता नहीं मालूम पड़ता। ऐसा लगता है मैंने कुछ और फूल देखे हैं, यहां के सब फूल फीके मालूम पड़ते, रंगहीन मालूम पड़ते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मैंने कुछ शाश्वत का कभी अनुभव किया है। यहां हर चीज क्षणभंगुर मालूम होती है, पानी का बबूला मालूम होती है। चाहे याद न रह गई हो मुझे, चाहे उस लोक को खोए बहुत दिन हो गए हों; होमा पक्षी गिरते-गिरते आकाश से बहुत नीचे आ गया हो, जमीन पर आ गया हो... ।
ऐसा ही समझो कि मानसरोवर का हंस उड़कर आ गया है और एक गंदी तलैया में बैठ गया है। उसे कुछ भी रुचेगा नहीं। पानी भी पिएगा, क्योंकि प्यास लगेगी तो पानी पीना ही पड़ेगा, लेकिन नाक-भौं सिकोड़ेगा। चाहे मानसरोवर भूल ही क्यों न गया हो, लेकिन फिर भी एक बात उसे खटकती रहेगी कि कुछ गड़बड़ है। जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। जैसा है, इससे तृप्ति नहीं होती। एक बेचैनी, एक संताप उसे पकड़ा रहेगा। मानसरोवर का स्वच्छ जल जिसने पिया है, आज गंदी तलैया में बैठा है, जिसमें गांवभर की गंदगी आकर पड़ती है--बास भी आएगी उसे, गंदगी भी दिखाई पड़ेगी उसे, उसे बेचैनी भी अनुभव होगी। प्यास लगेगी तो पानी

पीना भी पड़ेगा, यह भी सच है। आज तो मानसरोवर नहीं है तो पानी जो है वही पीना पड़ेगा। प्यास हो तो आदमी गंदी नाली का भी पानी पी लेगा। मरने से तो वही बेहतर है। अगर और कहीं रहने का कोई उपाय नहीं है तो कीचड़ में भी जी लेगा। मरने से तो वही बेहतर है। लेकिन कहीं न कहीं कोई न कोई स्वर कहता रहेगाः यह मेरा घर नहीं है। मैं यहां अजनबी हूं।
तुम्हारे मन में यह सवाल नहीं उठता रहा है? एक स्त्री को प्रेम किया
और पाया कि कुछ कम है। एक पुरुष को प्रेम किया और पाया कि कुछ कम है। कौन पुरुष किस स्त्री को तृप्त कर पाया है? कौन स्त्री किस पुरुष को तृप्त कर पाई है? इसका मतलब क्या है? इसका इतना ही मतलब हैः हमारे प्रेम का मापदंड कुछ बहुत बड़ा है, जिसकी वजह से कोई तृप्ति नहीं हो पाती। और क्या अर्थ है? हम किसी ऐसे बड़े सौंदर्य की अपेक्षा कर रहे हैं, जो यहां स्त्री-पुरुषों में होता ही नहीं। इसमें कुछ स्त्री-पुरुषों का कसूर नहीं। तलैया का क्या कसूर है, अगर गंदी है? तलैया तलैया है। तलैया ने कहा कब कि मैं मानसरोवर हूं? लेकिन हंस का भी क्या कसूर है, अगर तलैया से मन नहीं भरता? समझाता होगा अपने को। देखता होगा आसपास बतखों को--मजे से घूमते हुए, फिरते हुए, कीचड़ में आनंद मनाते हुए। और तड़पता भी होगा कि मुझमें कुछ गड़बड़ है। मैं ही कुछ गड़बड़ हूं। देखो बतखें कितना मजा कर रही हैं।
तुम देखते हो, यहां वृक्ष बेचैन नहीं हैं। यहां पशु-पक्षी बेचैन नहीं हैं। यहां सिर्प मनुष्य बेचैन है। यहां चट्टानें बेचैन नहीं हैं। मनुष्य को छोड़कर सारी प्रकृति शांत है। सब ठीक है। जैसा होना था वैसा है। मनुष्य भर में एक तनाव है--एक गहरा तनाव है! जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। और इस तनाव से दो रास्ते निकलते हैं--एक रास्ता राजनीति का और एक धर्म का। जैसा है वैसा नहीं है, तो मनुष्य सोचता हैः वैसा करके दिखा दूं! उससे राजनीति पैदा होती है। तो तलैया को मानसरोवर बना लें, और क्या करें, कीचड़ छांटें, तलैया को स्वच्छ करें। यही तो है सोशलिज्म, कम्युनिज्म और दुनिया के सारे राजनीतिक सिद्धांत। आशा क्या है? आशा यह है कि किसी तरह हम ठीक कर लेंगे; वैसा कर लेंगे जैसी हमारी आकांक्षा है।
लेकिन तलैया तलैया है--और मानसरोवर नहीं हो सकती। इसलिए राजनीति हमेशा असफल होती है। यद्यपि अनंत-अनंत लोगों को प्रभावित करती है, लेकिन सदा असफल होती है। उसकी असफलता सुनिश्चित है।
कुछ भी उपाय करो, पृथ्वी आकाश नहीं हो सकती। और कुछ भी उपाय करो, आंगन
की दीवालें मुक्ति का रस नहीं दे सकतीं। कुछ भी करो, पिंजड़े को कितना ही सजाओ, सोने से मढ़ो, हीरे-जवाहरात लगाओ, पिंजड़ा पिंजड़ा है। ज्यादा से ज्यादा पंख फड़फड़ा सकते हो। और ज्यादा फड़फड़ाए तो पंख तोड़ लोगे। खुले आकाश का आनंद कहां?
जिस मनुष्य में थोड़ी भी ईमानदारी है, ईमानदार चिंतन है, उसे यह बात समझ में आए ज्यादा देर नहीं लगती कि मैं जो भी करता हूं उसी में अतृप्ति हाथ लगती है। धन की दौड़ में गया, धन पा लिया और फिर पाया कि कुछ नहीं मिला। धन की दौड़ भी स्वतंत्रता की दौड़ है।
समझनाः धन पाकर आदमी स्वतंत्रता पाना चाहता है, मोक्ष पाना चाहता है।
उसे ऐसी भ्रांति है कि धन होगा तो मेरे पास स्वतंत्रता होगी; जो चाहूंगा खरीदूंगा; जो चाहूंगा पहनूंगा; जिस स्त्री से प्रेम होगा, विवाह करूंगा; जिस मकान में रहना है, वह मकान लूंगा; जिस कार में चलना है, वह कार लूंगा। धन होगा तो स्वतंत्रता होगी, चुनाव की सुविधा होगी।
निर्धन की तकलीफ क्या है? --चुनाव की सुविधा नहीं है। उसे इसी झोपड़ी में रहना होगा। वह लाख चाहे कि इस झोपड़े को बदल लूं, नहीं बदल सकता। धन ही नहीं है पास। उसे यही कपड़े पहने जिंदगी गुजारनी होगी। इससे बेहतर कपड़े नहीं हो सकते। उसे यही भोजन करना होगा सदा और एक बार ही भोजन करके दूसरी बार पेट को मार कर सो जाना पड़ेगा। सुविधा नहीं है, स्वतंत्रता नहीं है। धन की आशा में आदमी सोचता है स्वतंत्रता हो जाएगी; जैसा करना है वैसा करूंगा। धन की दौड़ स्वतंत्रता की ही खोज है; यद्यपि भ्रांत खोज है। धन मिल जाता है, स्वतंत्रता नहीं मिलती। धन मिलकर यह पता चलता हैः एक तरह की स्वतंत्रता मिली कि मैं चाहूं तो यह दुख उठाऊं और चाहे तो वह दुख उठाऊं।

दुख में चुनाव करने की स्वतंत्रता मिली। गरीब का दुख बंधा-बंधाया होता है। वह वही-वही दुख उठाता है रोज। अमीर नये-नये दुख उठाता है, बस इतना ही फर्क होता है। गरीब उन्हीं कपड़ों में परेशान होता है, अमीर रोज-रोज नए कपड़ों में परेशान होता है। बस इतना ही फर्क होता है। गरीब उसी स्त्री के साथ सिर फोड़ता है, उसी पति के साथ सिर तोड़ती है स्त्री; अमीर नई-नई स्त्रियों के साथ सर फोड़ता है। बस इतना ही फर्क होता है। स्वतंत्रता मिलती है एक तरह की--एक नकारात्मक तरह की स्वतंत्रता! अब दुख चुनने का उपाय है। इस बोतल में जहर पियो या उस बोतल से जहर पियो, स्वतंत्रता है। हजार तरह की बोतलें रख सकते हो, रंग-बिरंगी बोतलें, मगर जहर वही है।
गरीब-अमीर का फर्क क्या है? बस इतना ही फर्क है। न तो गरीब सुखी है न अमीर सुखी है। दोनों दुःखी हैं। इस पृथ्वी पर कोई सुखी नहीं है। इससे ही सबूत मिलता है कि यह पृथ्वी हमारा घर नहीं है। हम कहीं और से आते हैं। हम कहीं दूर से आते हैं। हमें भूल ही गया होगा अपना घर शायद। लेकिन कहीं दूर अचेतन की पर्तो में याद्भदाश्त है! कहीं दूर हमारे भीतर छिपी हुई किसी तलहटी में अब भी पुरानी स्मृति जगती है, कोई दीया जलता है। उसी दीए से हम तौल रहे हैं।
जब भी कोई आदमी किसी के प्रेम में पड़ता है तो उसे प्रेयसी परमात्मा दिखाई पड़ती है, अपना प्रेमी परमात्मा दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे करीब आते हैं, बात गड़बड़ होने लगती है। जब बहुत करीब आ जाते हैं, तब पता चलता है कि साधारण से मनुष्य हैं। वही सब चूकें, वही सब भूलें वही कमियां, वही सीमाएं, वही उपद्रव! एक प्रेम फिर असफल हुआ। मगर तुम्हारी यह आकांक्षा कैसी है? यह असंभव की आकांक्षा तुममें कहां से है? इसी आकांक्षा को जो समझ लेता है, वह ईमानदार है। उसकी दुनिया में क्रांति होनी शुरू हो जाती है।
राजनीति दुनिया को बदलने में लग जाती है और धार्मिक व्यक्ति अपने भीतर तलाश करने लगता है कि मैं उस मापदंड को खोजूं जो मेरे भीतर पड़ा है। उसी मापदंड में मेरी सारी कथा है और मेरे सारी कथा का राज है। मेरी असली आत्मकथा वहीं है। अगर मैं अपने भीतर उतर-उतर कर कुएं में सीढ़ी-सीढ़ी गहरे तक पहुंच कर उस जगह को पा लूं, जहां मेरा मापदंड पड़ा है कि सौंदर्य कैसा होना चाहिए, कि प्रेम कैसा होना चाहिए, कि मैं आनंद किसको कहूंगा, कि जीवन क्या है, मैं किस बात से तृप्त हो सकूंगा, उसका आधार क्या है मेरे भीतर, मापदंड क्या है, मूल्यांकन क्या है, तराजू कहां है--जो व्यक्ति अपने भीतर उसको, उस तराजू को खोज लेता है, वह चकित हो जाता है। उस तराजू को खोजते ही उसे याद अपने घर की आनी शुरू हो जाती है।
कहंवां से जीव आइल, कहंवां समाइल हो।
कहंवां कइल मुकाम, कहां लपटाइल हो।।
कहां रुक गया है जीव? कहां ठहर गया है? कहां मुकाम कर लिया है? इस जिंदगी में किसी को भी तो नहीं लगता कि हम मंजिल पर आ गए। बस ऐसे ही लगता है कि फिर एक पड़ाव, कल सुबह चलना होगा।
तुम्हें कभी लगा मंजिल पर आ गए? धन भी मिल गया, पद भी मिल गया, प्रतिष्ठा भी मिल गई--तुम्हें यह लगा, मंजिल पर आ गए? सब मिल जाता है, मंजिल कहां मिलती है? बस यही भाव बना रहता है कि कल सुबह फिर चलना होगा। एक रातभर का पड़ाव। एक सराए में रुक गए, सुबह फिर यात्रा करनी होगी। यात्रा जारी रहती है। सब मिलता जाता है, मगर यात्रा का अंत नहीं होता।
धरमदास कहते हैंः सोचो, कहां से आए, कहां उलझ गए, कहां पड़ाव बना लिया, कहां लपटाइल हो? किस चीज से अपने बंधन निर्मित कर लिए हैं? कहां अपनी जड़ें जमा ली हैं? किसी ताल-तलैया में तो नहीं अटक गए हो? ताल तलैया के कारण ही तो मानसरोवर नहीं भूल गया है? याद करो! स्मरण करो! अपनी स्मृति में तलाशो! अपने भीतर उतरो।.जरा गौर से देखोगे तो समझ में आएगा।
मुझे खुद भी खबर नहीं "अख्तर"
जी रहा हूं कि मर रहा हूं मैं।
पता नहीं चलता कि वस्तुतः तुम जी रहे हो कि मर रहे हो। क्या कर रहे हो?
डर के कारण आदमी यह सवाल नहीं उठाता। यह सवाल कभी अपने-आप सिर उठाने लगता है, तो आदमी भाग कर कहीं छिप जाना चाहता है। सिनेमा-घर में चला जाता है।

शराब पी लेता है। असली शराब से बचने के लिए नकली शराब पी लेता है। नाच-गाने में बैठ जाता है। रेडियो खोल लेता है। अखबार पढ़ने लगता है। मित्रों के पास जाकर गपशप करने लगता है--वही गपशप जो हजार बार हो चुकी है। फिर उन्हीं बातों में हंसता है, जिनमें पहले भी हंस चुका और हंसने जैसा कुछ भी नहीं रहा। वही बातें सुनता है, वही बातें दोहराता है। किसी तरह अपने को उलझाता है। थका-मांदा रात सो जाता है, सुबह उठकर फिर बाजार की तरफ निकल जाता है। करना ही ऐसा पड़ेगा, नहीं तो यह सवाल उठेगा कि मैं जी रहा हूं या मर रहा हूं? और घबड़ाहट यह लगती है कि अगर मैंने गौर से देखा तो जो-जो मैंने सपने बनाए हैं, कहीं उखड़ न जाएं!
चमन अपना न गुल अपना न कोई बागवां अपना
तबीयत बुझ गई उजड़ा खुशी का गुलसितां अपना।
--कहीं यह पता न चल जाए कि यह पत्नी मेरी नहीं है, कि ये बच्चे मेरे नहीं हैं, कि यह मकान मेरा नहीं है, कि यह सब चला जाएगा! यह मैंने नाहक सोच रखा है मेरा है! डरता है कि अगर ऐसे विचार उठे तो फिर बड़ी उदासी घेर लेगी। अच्छा है ऐसे प्रश्न न उठाओ।
इसलिए लोग सद्गुरु के पास जाने से डरते हैं!
महावीर के जीवन में उल्लेख है। महावीर जिस नगर में वर्षाकाल बिता रहे
थे उस वर्ष उस नगर में एक बड़ा चोर था, बड़ा प्रसिद्ध चोर था! अब स्वभावतः; चोर था, इसलिए अपने बेटे को उसने कहा कि एक बात ख्याल रखना--यह महावीर आया हुआ है, इसके विचार सुनने मत जाना। अपना और इसके धंधे में पुश्तैनी झगड़ा है। और अगर कभी भूल-चूक से तू उस रास्ते भी निकलता हो जहां महावीर बोलते हों, तो जल्दी से अपने कान बंद कर लेना। भाग जाना वहां से, क्योंकि यह खतरनाक आदमी है। इसकी बातें ऐसी हैं कि आदमी उदास हो जाते हैं। इसकी बातें ऐसी हैं कि लोग जीवन में रस खो देते हैं। इसकी बातें ऐसी हैं कि जिसने सुन लीं, उसकी जिंदगी डगमगा जाती है। कई की डगमगा गई है। तू इस झंझट में मत पड़ना।
और बाप ठीक ही कह रहा था, क्योंकि कई जवान महावीर में उत्सुक हो गए थे, संन्यस्त हो गए थे। चल पड़े थे उस अनूठी खोज पर।
और ख्याल रखना, जब भी धर्म जीवित होता है--महावीर या बुद्ध या कृष्ण--
तो जो लोग सबसे पहले उनमें उत्सुक होते हैं वे जवान होते हैं। स्वाभाविक है, क्योंकि जवान ही हिम्मत कर सकता है उतनी जोखिम लेने की। या जो वृद्ध भी उत्सुक होते हैं वे भी किसी गहरे अर्थ में जवान होते हैं, तभी उत्सुक होते हैं, नहीं तो नहीं उत्सुक होते। और जब धर्म मर जाता है तब वहां सिर्प बूढ़े ही बूढ़े इकट्ठे होते हैं; वहां कोई जवान दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारे मंदिरों में देखो, जो मर गए हैं, वहां तुम्हें बूढ़ियां और बूढ़े बैठे हुए मिलेंगे। शरीर से ही नहीं, आत्मा से भी जराजीर्ण। वहां जवान नहीं फटकते। क्यों? जवान को वहां चुनौती नहीं है।
महावीर के पास जाना मत--इतना तो कहा ही बाप ने; इतना भी कहा कि कभी भूल-चूक से, संयोगवशात, तू निकलता हो और महावीर बोलते हों और कोई बात कान में पड़ जाए तो जल्दी से कान बंद कर लेना। मगर एक छोटी सी बात पड़ गई और जिंदगी बदल गई। निकलता था। महावीर के कहीं प्रवचन होते थे गांव में और वह निकलता था। महावीर समझा रहे थे, योनियों की बातें समझा रहे थे कि कितनी योनियां होती हैं, उसमें प्रेत-योनि की भी बात कर रहे थे। देवयोनि की भी बात कर रहे थे। जब यह निकला चोर का बेटा, तो वे समझा रहे थे कि देवताओं की छाया नहीं पड़ती।
यह बड़ा प्यारा अर्थ है इसका। छाया तो जो ठोसपन है, उससे ही पैदा होती
है न। पत्थर की छाया होती है, कांच की छाया नहीं होती। पत्थर ठोस है, अपारदर्शी है; इसलिए उसकी छाया बनती है। उसमें से किरणें पार नहीं हो सकतीं, इसलिए छाया बनती है। छाया बनने का और क्या अर्थ होता है कि, किरणें पार नहीं हो सकीं; किरणें अटक गईं तो पीछे अंधेरा हो जाता है। कांच... कांच की छाया नहीं बनती। और जितना शुद्ध कांच हो उतनी ही छाया नहीं बनेगी। अगर कांच बिल्कुल पूरा शुद्ध है तो कोई छाया नहीं बनती, क्योंकि किरणें पार ही हो जाती हैं, पीछे अंधेरा बनेगा कैसे?

यह सिद्धांत बड़ा महत्वपूर्ण है। देवता होते हैं कि नहीं, यह सवाल नहीं है; मगर जब भी कहीं कोई देवता होता है तो छाया नहीं बनती। क्योंकि देवता का अर्थ है--चेतना का पारदर्शी हो जाना, टांस्पेरेंट हो जाना।
यह राह से गुजर रहा था, इसने इतना ही भर सुना कि देवता की छाया नहीं बनती, इसने जल्दी से अपने कान बंद कर लिए कि बाप ने कहा था। और भागा वहां से। मगर घटना ऐसी घटी कि सम्राट बहुत परेशान इस बाप और बेटे से। बाप तो अब बूढ़ा हो गया था, ज्यादा चोरी इत्यादि करने नहीं जाता था; लेकिन बेटे को निष्णात कर रहा था। बेटे को पकड़ने के बहुत उपाय किए गए थे, लेकिन पकड़ा नहीं जा सका था। वजीरों ने सलाह दी कि थोड़ा मनोवैज्ञानिक उपाय करें। हम पकड़ तो पाए नहीं, हमारे पास इसके खिलाफ एक भी सबूत नहीं है। इसलिए हम इसे अदालत में ले जा भी नहीं सकते हैं। और यह इतना कुशल है और इसका बाप तो महाकारीगर है और उसी की दीक्षा ले रहा है यह। बाप से तो जल्दी छुटकारा हो जाएगा, वह मरने के करीब है; मगर वह बेटा किए जा रहा है पैदा, जो उससे भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होगा। इसको जल्दी ही हमें फांस लेना चाहिए।
तो उन्होंने एक तरकीब की। किसी के घर उसको भोजन पर बुलाया और वहां खूब शराब पिलाई। इतनी पिला दी शराब कि वह बिल्कुल बेहोश हो गया। उसको बेहोशी की हालत में वे राजमहल ले आए। एक विशेष कमरे में उसे रखा गया, जैसा कमरा उसने न कभी देखा था न सोचा था। सुंदर से सुंदर स्त्रियां, फूलों से सजीं, उसकी सेवा कर रही हैं। जब उसकी थोड़ी नींंद उखड़ी, आधा-आधा नशा, थोड़ा सा दिखाई भी पड़ने लगा, थोड़ा दिखाई भी नहीं पड़ रहा, सब धुंधला-धुंधला--उसने देखाः अपूर्व सुंदर स्त्रियां, फूलों से सजीं, बड़ी सुगंध, बड़ी प्यारी रोशनी, बड़ा प्यारा भवन! समझ ही नहीं सका कि क्या हो रहा है! उसने पास खड़ी एक युवती से पूछा कि मैं कहां हूं? उसने कहाः आप देख कर ही समझ सकते हैं कि कहां हैं? आप स्वर्ग आ गए।
वह तरकीब थी उसे फांसने की कि आप स्वर्ग आ गए हैं। और दूसरी स्त्री ने कहाः लेकिन अभी स्वर्ग के बाहर ही आपको रखा गया है, दरवाजे पर। जब तक आप अपने कर्मो का पूरा लेखा-जोखा न दे दें, जो भी अच्छा-बुरा किया है... । सब क्षमा हो जाएगा, क्योंकि परमात्मा महाकरुणावान है। जल्दी से अपना सब लेखा-जोखा लिखवा दें, तो आपको भीतर प्रवेश हो जाए।
लिखवाने ही जा रहा था चोर कि उसे याद आया महावीर का वचन कि देवताओं की छाया नहीं पड़ती। और उन देवियों की छाया पड़ रही थी। वह एकदम उचक कर बैठ गया, सम्हल गया, होश पकड़ लिया, नशा उतर गया। हंसने लगा। समझ गया चाल। और उसने अपने पुण्यों की लंबी कथाएं लिखवाईं कि लिखो--इतना दान किया, इतनी धर्मशालाएं बनवाईं--जो उसने कभी नहीं बनवाई थीं, न कभी दान किया था। और जैसे ही वहां से छूटा, बाप को जाकर कहा कि बस क्षमा करो, अब आप से कुछ संबंध न रहा। अब मैं उस आदमी के पास जाता हुं, जिनके एक वचन ने मुझे बचा लिया। सिर्प एक वचन ने, जो अकस्मात सुना था!
वह दीक्षित हो गया। वह महावीर के बड़े संन्यासियों में एक संन्यासी हुआ।
डरते हैं चोर। डरते हैं बेईमान। डरते हैं, वे जिन्होंने रेत पर अपने भवन बना रखे हैं--उनकी बातें सुनने से, जिनकी बातें सुनकर याद आ ही जाएगी कि यह भवन रेत पर बनाया है और गिरेगा; जिनकी बात सुनने से यह समझ आते देर न लगेगी कि जिस नाव में हम बैठे हैं वह कागज की है और डूबी, और अब डूबी तब डूबी, डूबने ही वाली है!
चमन अपना न गुल अपना न कोई बागवां अपना
तबीयत बुझ गयी उजड़ा खुशी का गुलसितां अपना।
सदगुरु के वचन सुनोगे तो यह तो याद आ ही जाएगा कि जिसे तुम अपना समझते
हो, अपना नहीं है। जिसे तुम मेरा समझते हो, मेरा नहीं है। अभी तुम्हें यही पता नहीं है कि तुम कौन हो, तो तुम्हें यह कैसे पता हो सकता है कि मेरा क्या है? मेरा है परमात्मा। और तुमने समझ रखा है मेरा है संसार। और भूल कहां है? भूल इसमें है कि तुम्हें अभी मैं का ठीक-ठीक पता नहीं है। इसलिए तुमने मेरे की भ्रांति खड़ी कर रखी है।

गलत धर्म तुम्हें सिखाएगाः छोड़ दो, भाग जाओ पहाड़ों में। वह कहता हैः मेरे को छोड़ दो।
ठीक धर्म तुम्हें सिखाता हैः मैं को जान लो, फिर मेरे की क्या फिकर है? मैं को जानते ही जो असली मेरा है, वह दिखाई पड़ता है--आकाश, मोक्ष, परमात्मा! जो असली मेरा है। और उसके दिखाई पड़ने से जो नकली मेरा है, वह मेरा नहीं रह जाता। मगर इसीलिए लोग डरते भी हैं। लोग भयभीत भी होते हैं। लोग नाराज भी होते हैं। जो भी तुम्हारी नींद तोड़े, उससे तुम नाराज होओगे ही। जो तुम्हारे सपने तोड़ दे... और तुम्हारे पास सपनों के सिवाय है क्या?
चांदनी, मौसमे-गुल, सहने-चमन, खिलवते-नाज
ख्वाब देखा था कि कुछ याद है कुछ याद नहीं।
एक दिन समझ में आएगा। सभी को समझ में आता है। लेकिन कुछ है नासमझ, जिनको इतनी देर से समझ में आता है कि फिर करने का कोई उपाय नहीं बचता, समय नहीं बचता। मौत की घड़ी में सबको समझ में आता है।
चांदनी, मौसमे-गुल, सहने-चमन, खिलवते-नाज
ख्वाब देखा था कि कुछ याद है कुछ याद नहीं।
जो, जब ऊर्जा है बलवती और जीवन हाथ में है, समय हाथ में है, तब जाग जाता है, वह कुछ कर लेता है, रूपांतरण कर लेता है।
निरगुन से जीव आइल, सरगुन समाइल हो।
काया गढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो।।
सीधे-सीधे वचन हैं--एक सीधे-साधे आदमी के! मगर बड़े गहरे भी। सच्चाइयां सदा सीधी होती हैं और गहरी भी। सत्य सदा सुगम होते हैं, सरल होते हैं--और गहरे भी! झूठ ही जटिल होते हैं--और उलझे हुए होते हैं।
निरगुन से जीव आइल, ...
उस विराट स्रोत से हमारा आना हुआ है--जहां रूप है न रंग है, न गंध है, न स्वाद है; जहां कोई गुण नहीं है--न रज है, न तम है, न सत्व है; जहां रोशनी नहीं, अंधेरा नहीं; जहां दिन नहीं, रात नहीं; जहां कोई सीमा नहीं; जहां कोई विशेषण नहीं; जहां कोई परिभाषा नहीं। हम उस अपरिभाष्य से आए हैं। हमारा आना उस जगह से हो रहा है--जहां रूप अभी उठे नहीं थे; जहां लहरें अभी जगी नहीं थीं। हम उस शांत सागर से आए हैं, जिस पर कोई तरंग न थी। हम उस क्षीरसागर से आए हैं।
निरगुन से जीव आइल, ...
हम आए तो परमात्मा से हैं।... सरगुन समाइल हो। और समा गए हैं छोटी-सी देह में। किरण उतरी है सूरज से और समा गई है एक छोटी सी गुफा में। नाच रही है वहीं गुफा में।
तुमने देखा? कभी तुम्हारे घर में खपड़ों में थोड़ी रंध्र रह जाती है, सूरज की एक किरण भीतर आ जाती है, अंधेरे कमरे में नाचती रहती है। ऐसी हमारी दशा है। आए हैं सूरज से, महासूर्य से--समा गए हैं एक अंधेरी गुफा में। और बहुत दिन हो गए उस अंधेरी गुफा में रहते, बहुत जन्म हो गए। धीरे-धीरे भूल ही गए हैं कि कहां से आए हैं, कहां हमारा घर है, कहां हमारा मूल निवास स्थान है? अब तो इसी अंधेरी कोठरी को अपना घर समझ लिया है।
निरगुन से जीव आइल, सरगुन समाइल हो।
काया गढ़ कइल मुकाम...
और इसी काया को, इसी सराय को, इसी देह को मुकाम बना लिया है, पड़ाव बना लिया है। सोचते हैं कि बस पहुंच गए। अब कहां जाना है और? अब इसी काया को पकड़े हुए हैं। अब इसी काया को सजाने-संवारने में जीवन गंवा रहे हैं। अब इस काया को ही सब कुछ मान लिया है, यही हमारा सर्वस्व हो गई है। और यह कोठरी है। और इससे सिवाय दुख के हमें सुख कभी मिलता नहीं। दुख मिलता, बीमारी मिलती, जरा मिलता, मृत्यु मिलती--बस यही मिलता है। इस शरीर के साथ हमें मिला क्या है?
काया गढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो।
और, शरीर में रुक गए हैं, शरीर को अपना समझ लिया है, शरीर को ही अपना होना समझ लिया है। और फिर मेरे का बड़ा, ममत्व का बड़ा जाल फैला लिया है। वही माया है। जिसे मैं का पता नहीं है, उसे माया का जाल पैदा होता है। वह मेरे

में जीने लगता है। मेरी पत्नी, मेरा बच्चा, मेरा मकान, मेरा धन, मेरा पद--वह मेरा-मेरा करता रहता है। वह मेरा-मेरा करते ही मर जाता है।
यह जो "माया" है शब्द, बड़ा अर्थपूर्ण है। इसका अर्थ हैः जादू। अंग्रेजी में जो मैजिक शब्द है, वह माया से ही आया है। माया का अर्थ हैः जहां नहीं है कुछ, वहां कुछ दिखाई पड़ जाना।
जादू का खेल देखा है! जादू के खेल का मतलब क्या होता है? वहां कुछ है नहीं, मगर दिखाई पड़ता है। जादूगर आम की गुही रोप देता है एक गमले में, कपड़ा ढांक देता है, जमूरे से दो-चार बातें करता है, डमरू बजाता है कि जमूरा आम खाएगा... । बातचीत थोड़ी चली। चादर उठाता है, आम का पौधा हो गया है! ऐसे आम के पौधे बढ़ते नहीं। फिर कुछ थोड़ी बात चलती है, जमूरे से फिर कुछ वार्तालाप होता है। लोगों को फिर थोड़ी बातचीत में उलझाए रखता है। फिर चादर उठाता हैः आम लग गया!
जादू का अर्थ होता हैः जो नहीं होता, जो नहीं हो सकता है, वह दिखाई पड़ रहा है। उसका आभास हो रहा है।
माया का अर्थ हैः जो नहीं है, नहीं हो सकता है, लेकिन जिसका आभास होता है। और आभास का हम रोज-रोज पोषण करते हैं।
एक स्त्री के तुम प्रेम में पड़ गए। फिर विवाह का संयोजन किया। चला, जादू शुरू हुआ! विवाह का आयोजन जादू की शुरुआत है। अब एक भ्रांति पैदा करनी है। यह स्त्री तुम्हारी नहीं है, यह तुम्हें पता है अभी। अब एक भ्रांति पैदा करनी है कि मेरी है, तो बैंड-बाजे बजाए, बारात चली, घोड़े पर तुम्हें दुल्हा बना कर बिठाया। अब ऐसे कोई घोड़े पर बैठता भी नहीं। अब तो सिर्प दुल्हा जब बनते हैं, तभी घोड़े पर बैठते हैं। छुरी इत्यादि लटका दी। चाहे छुरी निकालना भी न आता हो, चाहे छुरी से साग-सब्जी भी न कट सकती हो; मगर छुरी लटका दी। मोरमुकुट बांध दिए। बड़े बैंड-बाजे, बड़ा शोरगुल--चली बारात! यह भ्रांति पैदा करने का उपाय है। यह एक मनोवैज्ञानिक उपाय है। तुम्हें यह विश्वास दिलाया जा रहा हैः कोई बड़ी महत्वपूर्ण घटना घट रही है! भारी घटना घट रही है! फिर मंत्र, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ... चलती है प्रक्रिया लंबी। वह प्रक्रिया सिर्फ मनोवैज्ञानिक है, हिप्नोटिक है। उसका पूरा उपाय इतना है कि यह सम्मोहन गहरा बैठ जाए, कि घटना ऐसी घट गई कि अब टूट नहीं सकती। गांठ ऐसी बंध गई कि अब खुल नहीं सकती। फिर कसकर गांठ बांध दी गई है। फिर वेदी के सात चक्कर लगवाए गए हैं और मंत्र पढ़े जा रहे हैं और पंडित-पुरोहित भ्रम पैदा कर रहे हैं कि कोई भारी घटना घट रही है। और सारे समाज के सामने घट रही है। तुम्हारे भीतर विश्वास बिठाया जा रहा है धीरे-धीरे। यह सुझाव की प्रक्रिया है, जिसको मनोवैज्ञानिक सजेशन कहते हैं। यह मंत्र डाला जा रहा है तुम्हारे भीतर कि अब तुम दोनों के एक-दूसरे के हो गए सदा के लिए। अब मृत्यु ही तुम्हें अलग कर सकती है।
इकट्ठे तुम कभी थे ही नहीं, अब मृत्यु अलग कर सकती है--और कोई अलग नहीं
कर सकता! फिर तुम घर आ गए। अब तुम इस भ्रांति में पड़ गए हो कि तुम पति हो गए हो और तुमने यह मान लिया है कि यह मेरी पत्नी हो गई है। अब तुम इस भ्रांति में जियोगे। यह जादू! ... जमूरा आम खाएगा? ... चादर उठाई, आम हो गया। अब यह सारा समाज इसका समर्थन करेगा। अब तुम सेच भी नहीं सकते अलग होने की। अब तो बंध गए--सुख में, दुख में। अब तो हर हाल में बंध गए। अब छूटने का कोई उपाय ही नहीं है।
वह प्रतीति इतनी गहरी बिठाई जाती है कि पत्नी मेरी हो गई, पति मेरा हो गया। कौन किसका है!
फिर एक दिन तुम्हारा बच्चा पैदा होता है। न पत्नी तुम्हारी थी न पति तुम्हारा था। दो झूठों पर एक तीसरा झूठ चला कि यह बच्चा मेरा है, हमारा है। सब परमात्मा का है। तुम्हारा कैसे हो सकता है? बच्चे तुमसे आते हैं, तुम्हारे नहीं हैं। तुम केवल मार्ग हो उनके आने के। भेजनेवाला कोई और है। तुम बनानेवाले नहीं हो, बनानेवाला कोई और है। मगर भ्रांतियां चलती चली जाती हैंः मेरा बेटा! फिर मेरे बेटे की प्रतिष्ठा, मेरी प्रतिष्ठा; मेरे बेटे का अपमान, मेरा अपमान। फिर चले तुम। फिर लगे तुम चेष्टा में। अब बेटे

को बनाना है ऐसा कि तुम्हारा अहंकार भरे इससे। तुम तो चले जाओ, लेकिन लोग याद करें कि एक बेटा छोड़ गए। उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए!
एक भ्रांति से दूसरी भ्रांति, तीसरी भ्रांति हम खड़ी करते चले जाते हैं। हम एक महल खड़ा कर देते हैं भ्रांतियों का। इस भ्रांति का नाम माया है।
काया गढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो।
एक बुंद से काया-महल उठावल हो।
एक छोटी सी बूंद--रज और वीर्य का मिलन--उस छोटी सी बूंद पर कितना बड़ा विस्तार हो गया है!
बुंद पड़े गलि जाय पाछे पछतावल हो।।
और जैसे यह खड़ा हो गया है माया का जाल, ऐसे ही एक दिन खो भी जाएगा। आम विदा हो जाएंगे, पौधा पता नहीं चलेगा कहां गया। था ही नहीं। एक भ्रांति थी, एक गहरी भ्रांति थी--जिसको सबने मिल कर पोसा था; जिसको सबने मिल कर सहारा दिया था, पानी डाला था।
कैसी-कैसी भ्रांतियां हैं! --मेरा देश! लोग मर जाते हैं देश के लिए, क्योंकि मेरा देश! जो मर जाते हैं, उनकी हम पूजा करते हैं सदियों तक। वह भ्रांति का पोषण करना है। कहते हैंः शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! भ्रांति को कैसा खींचते हैं! पहले हम लोगों को मरने के लिए राजी करते हैं कि शहीद हो जाओ; फिर यह भ्रांति पैदा करते हैं कि घबड़ाना मत, अगर मर भी गए तो मेला जुड़ेगा, तुम्हारी चिता पूजा का स्थल हो जाएगी।... मेरा देश! मेरी जाति! मेरा धर्म! .जरा खबर कर दो कि इस्लाम खतरे में है कि बस चले लोग; कि हिंदू धर्म खतरे में है कि चले लोग।
कहीं धर्म खतरे में होते हैं? धर्म कोई चीज है, जिसको तलवार से काट सकोगे? धर्म कोई चीज है, जिसको आग से जला सकोगे? याद नहीं, कृष्ण ने क्या कहा है? नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। कौन मुझे जलाएगा, कौन मुझे शस्त्रों से बीधेगा! धर्म कहीं खतरे में होता है? लेकिन बस उकसा दो आग लोगों में कि धर्म खतरे में है, चले झगड़ा शुरू हो अब।
धर्म तो खतरे में नहीं, लोगों की जिंदगी खतरे में हो जाती है। मगर लोग अपनी जिंदगी गंवाने को बिल्कुल तैयार हैं। कारण है उसके पीछे। जिंदगी में कुछ सार नहीं है; कोई भी बहाना मिल जाए गंवाने का तो देर नहीं करते लोग। मैंने सुना है, एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ दूसरे महायुद्ध के पहले हिटलर
से मिलने गया। तीसरी मंजिल पर हिटलर का दफ्तर था, वहां खड़े होकर दोनों बातें कर रहे थे। हिटलर ने अपना रोब दिखाने के लिए और अंग्रेज राजनीतिज्ञ को घबड़ाने के लिए कहा कि "तुम्हें पता नहीं, तुम किससे झंझट ले रहो हो! दो दिन में घुटने टिक जाएंगे तुम्हारे।" ऐसा कह कर उसने पीछे की तरफ देखा। ड्रामेटिक आदमी था। थोड़ा नाटकीय ढंग का आदमी था। पीछे एक उसका बाडीगार्ड खड़ा है! उसने उसको आज्ञा दी कि इसी समय कूद जा छत से! "हेल हिटलर" कह कर वह बाडीगार्ड उस छत से कूद गया। नीचे जाकर पत्थर पर बिखर गई उसकी हड्डी, मांस-मज्जा। अंग्रेज राजनीतिज्ञ थोड़ा घबड़ा गया कि यह क्या किया! इसकी क्या जरूरत थी?
और तभी हिटलर ने और रोब बांधने के लिए दूसरे बाडीगार्ड को कहा, तू भी कूद जा। वह भी कूद गया। अंग्रेज राजनीतिज्ञ को तो पसीना आ गया कि ऐसे आदमियों से उलझना जरूर खतरनाक है, जब इस तरह मरने को लोग तत्पर हैं! और तभी हिटलर ने तीसरे को भी कहा। अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने तब तक भाग कर उस तीसरे का हाथ पकड़ लिया। कहाः भाई, इतनी मरने की जल्दी क्या? उसने कहाः हिटलर के राज में जीने से मरना बेहतर। जीने में रखा क्या है?
यहां लोग मरने को तत्पर बैठे हैं, कोई बहाना मिल जाए। हिंदू धर्म खतरे में है, मुसलमान धर्म खतरे में है कि भारत-पाकिस्तान का झगड़ा, कि भारत-चीन का झगड़ा--कोई बहाना मिल जाए, चले। जिंदगी में कुछ नहीं है--कोरी-कोरी है। ऐसे ही ऊबे हुए हैं लोग। क्षुद्र-सी बातों पर मरने को तैयार हैं। ऐसी विराट संपदा जीवन की, ऐसे क्षुद्र गंवाने को तैयार हैं--एक ही कारण होगा, इन्हें संपदा का पता नहीं। और जिसे इन्होंने संपदा समझ रखा है वह केवल भ्रांति है; उससे कुछ मिलता नहीं।

विपत्ति आती है तुम्हारी संपत्ति से। तुम्हारी संपदा विपदा बन जाती है, और क्या?
बुंद पड़े गलि जाय, पाछे पछतावल हो।
और फिर बहुत पछताओगे, जब यह बूंद के ऊपर खड़ा हुआ महल, सपने जैसा महल सब गिर जाएगा। गिरेगा ही। मौत क्या करती है? मौत तुमसे वह नहीं छीनती जो तुम हो। वह तो छीना ही नहीं जा सकता। उसे कौन छीनेगा जो तुम हो? वह तो शाश्वत है। मौत तुमसे वही छीनती है जो तुम नहीं हो। जो भ्रांतियां तुमने खड़ी कर रखी थीं, मौत उन्हीं को छीन सकती है। जो जादू तुमने अपने आस-पास बना रखा था, जो भ्रांतियां तुमने आरोपित और पोषित कर रखी थीं--मौत उन्हीं को छीनती है। मौत तुम्हारा अहंकार छीनेगी, तुम्हारी आत्मा नहीं। मौत तुम्हारी देह छीनेगी, तुम्हारी देह में बसे हुए को नहीं। मौत तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा छीनेगी, तुम्हें नहीं। मौत तुम्हारी धन-दौलत छीन लेगी, तुम्हें नहीं। मौत तुम्हारा मेरा-तेरा छीन लेगी, तुम्हें नहीं। पछताओगे बहुत जब मौत आकर सब छीनने लगेगी और एक-एक भवन गिरने लगेगा--जिस पर तुमने जीवन लगा दिया था, जिस पर तुमने सब गंवाया था--तब तुम बहुत पछताओगे। लेकिन तब बहुत देर हो गई होगी। जो पहले ही जाग जाता है, वह भ्रांतियां नहीं खड़ी करता है। जो भ्रांतियां खड़ी नहीं करता, उसके पास कुछ होता ही नहीं जिसको मौत छीन ले। उसी आदमी को हम ज्ञानी कहते हैं जिसके पास ऐसा कुछ है जो मौत नहीं छीन सकती।
बुंद परे गलि जाय, पाछे पछतावल हो।
लेकिन बस हम भ्रांतियों में बड़ा रस लेते हैं।
हमारे भीतर वासनाओं का जाल है। उन वासनाओं के कारण हम चीजों में अर्थ डाल देते हैं, जो वहां नहीं है।
एक तूफाने-सबाब और इस पर यह तूफाने-इश्क
बहरे उल्फत का नजर आता नहीं साहिल मुझे।
एक से एक पागलपन हैं। एक तूफाने-सबाब... । एक तो जवानी का तूफान, एक तो जवानी का नशा... । जवान जितने सपने देखते हैं, कोई नहीं देखता। नशा चाहिए न देखने को सपने! ... एक तूफाने-सबाब और इस पर यह तूफाने-इश्क। और फिर इस पागलपन में सौंदर्य दिखाई पड़ता है। और फिर एक तूफान सौंदर्य का।... बहरे- उल्फत का नजर आता नहीं साहिल मुझे। फिर प्रेम के, इस तथाकथित प्रेम के सागर का कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता। फिर तैरते रहो, तैरते रहो, मर जाओ, डूब जाओ। और फिर मिलता क्या है? इस सारी दौड़-धूप के बाद मिलता क्या है? वस्ल का दिन और इतना मुख्तसर
दिन गिने जाते थे इस दिन के लिए।
क्षण आते हैं, पाते क्या हो? और कितनी गिनती की थी कितनी प्रतीक्षा की थी!
वस्ल का दिन और इतना मुख्तसर
दिन गिने जाते थे इस दिन के लिए।
कितनी प्रतीक्षा, कितनी प्रार्थना, कितना आयोजन! हाथ क्या लगता है? बूंद भी तो नहीं लगती। लेकिन आदमी यह भी स्वीकार नहीं करना चाहता है कि हाथ कुछ नहीं लगता, क्योंकि उससे भी बड़ी चोट लगती है। उससे भी बड़ी चोट लगती है, क्योंकि उससे लगता हैः तो फिर मेरी जिंदगी मूर्खता में गई? इसलिए तुम्हारे प्रधानमंत्री, तुम्हारे राष्ट्रपति कह नहीं पाते लोगों से कि हमें कुछ मिला नहीं।
उनकी हालत वैसी ही है जैसी तुमने कहानी में सुनी होगी, कि एक आदमी चोर था। एक रात किसी के घर में चोरी कर रहा था। लोग जाग गए। हत्या करने नहीं आया था, लेकिन पकड़े जाने के डर से उसने हत्या कर दी। बाहर निकला तो पुलिस पीछे पड़ गई। कोई और उपाय दिखाई नहीं पड़ा, भागते-भागते नदी के किनारे आया। पीछे पुलिस चली आ रही थी। भारी नदी थी। वर्षा के दिन थे। उतरना संभव नहीं था। चोर तैरना भी जानता नहीं था। उसे कुछ न सूझा। उसने सारे कपड़े नदी में फेंक दिए। पास ही एक संन्यासी बैठा हुआ था अपनी धूनी रमाए, वह तो अपनी आंख बंद किए बैठा था, उसने भी जल्दी से अपने शरीर पर भभूत रमा ली और उसी के पास आंख बंद करके बैठ गया। पुलिस वाले आए, दोनों महात्माओं के चरण छुए। पूछा

कि यहां कोई आया तो नहीं? तो जो पहला महात्मा था वह तो अपने ध्यान में था, वह तो कुछ बोला नहीं; दूसरा महात्मा बोला कि यहां कौन आया, यहां कोई नहीं आया।
"कब से आप यहां बैठे हैं?"
उसने कहाः हम तो यहां वर्षो से रहते हैं।
उन्होंने कहाः एक चोर यहां भागता हुआ आया था, पता नहीं क्या हुआ! नदी में कूद गया या मर गया!
नदी में इतनी बाढ़ थी कि पुलिसवालों ने उस अंधेरी रात में उस बाढ़ में उतरना ठीक भी नहीं समझा। वे वापस चले गए। उन्होंने फिर महात्मा के पैर छुए। चोर बड़ा हैरान हुआ कि मैं एक झूठा महात्मा हूं, लेकिन लोग मेरे पैर छू रहे हैं! तो मैं असली ही महात्मा क्यों न हो जाऊं। जब नकली को इस तरह पूजा जा रहा है तो असली होकर कितनी पूजा न मिलेगी!
धीरे-धीरे और लोग आने लगे। खुद सम्राट भी आया। सम्राट ने भी उसके चरण छुए। चोर के मित्रों को भी खबर लगी; वे तो जानते थे कि चोर है। वे भी आए। उन्होंने कहाः यह हो क्या गया? अब चोर यह नहीं कह सकता कि क्या हो गया। कुछ हुआ भी नहीं है; चोर का चोर है, वैसे का वैसा है। अब भी नजर जब कोई उसके पैर छूता है तो उसकी जेब पर लगी रहती है उसकी, अब भी जब कोई उसके पैर छूता है तो वह पैर छूने का ध्यान नहीं रखता; कितने नोट चढ़ा रहा है, उसका ध्यान रखता है, उसकी गिनती कर लेता है। इधर आदमी गया कि जल्दी से रुपए अपनी चटाई के नीचे सरका लेता है। जब कोई नहीं होता तो रुपयों की गिनती करता रहता है। चोर का चोर है। कुछ फर्क नहीं हुआ। लेकिन अब चोरों के सामने यह तो कैसे स्वीकार करेगा! वह कहने लगा कि बड़ी शांति है, बड़ा आनंद! समाधि का मजा ही कुछ और है! क्या रखा है चोरी में! सब व्यर्थ, सब असार है।
और चोर भी उसकी बातों में आकर धीरे-धीरे धूनी रमाने लगे और उनको भी ऐसे ही रस आने लगा। वे भी लोगों को कहने लगे। एक जमात खड़ी होती जाती है और कोई यह स्वीकार करने को राजी नहीं होता कि मुझे कुछ मिला नहीं, कि मैं कुछ बदला नहीं। क्योंकि अब सार क्या कहने से! अब अर्थ क्या!
दुनिया के राजनीतिज्ञ अगर ईमानदारी से अपने वक्तव्य दे दें, जो कि वे
दे ही नहीं सकते, नहीं तो वे कभी राजनीतिज्ञ ही कैसे होते! जिंदगीभर तो बेईमानी के वक्तव्य दिए, उससे तो वे सीढ़ियां चढ़े। सबसे आखिरी वक्तव्य, अगर वे एक भी सच वक्तव्य दे दें, तो वह यही होगा कि उन्होंने कुछ पाया नहीं। लेकिन तब प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगेगा। दिखाए जाते हैं। भीतर चिताओं से जलते रहते हैं। भीतर ईर्ष्याओं से जलते रहते हैं। भीतर मार-काट करते रहते हैं। भीतर सब तरह की चोरियां ओर बेईमानियां चलती रहती हैं। और बाहर एक महात्मा का वेश बनाए रखते हैं।
तुम देखते हो, जो राजनेता ताकत में नहीं रह जाते, वे पार्लियामेंट में गुंडों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। और जब वे राजनेता ताकत में होते हैं, तब वे एक दिन दूसरों को समझाने लगते हैं कि अनुशासन होना चाहिए; लोगों को सम्यक व्यवहार करना चाहिए। जो सत्ता में पहुंच जाता है वही दुनिया को समझाने लगता है कि अनुशासन चाहिए। और जो सत्ता के बाहर गया वही अनुशासन को बिगाड़ने लगता है। वही घिराव, हड़ताल, उपद्रव, दंगा-फसाद; क्योंकि सत्ता में पहुंचने का उपाय ही यही है कि तुम इतने उपद्रव कर दो कि लोग तुम्हें सत्ता में बिठाने को मजबूर हो जाएं। क्योंकि तुमसे बचने का फिर एक ही उपाय है कि तुम्हें सत्ता दे दी जाए।
जो शिक्षक होशियार होते हैं, वे अपनी कक्षा में जो सबसे ज्यादा बदमाश लड़के होते हैं उनको कप्तान और इत्यादि बना देते हैं; बस फिर शांति हो जाती है कक्षा में। क्योंकि जिनको शरारत करनी थी, वही जब कप्तान हो गए, तो वे किसी को शरारत नहीं करने देते; उन्हें शरारतों का सब राज भी मालूम होता है। फिर वे सबसे ज्यादा उपद्रवी होते हैं, दुष्ट भी होते हैं।
जब राजनेता इतना उपद्रव मचा देते हैं कि मार-काट, गोली और सब तरफ हिंसा फैल जाती है--मजबूरी में जनता को कहना पड़ता है कि भाई, अब तुम्हीं राज्य करो। तुम्हीं बैठो! अब तुमसे ही सम्हल सकता है। अब किसी और से नहीं सम्हल सकता।

पहली आजादी आई थी, दूसरी आ गई, अब तीसरी लाओ। आजादी पर आजादी आने दो।
और आजादी कुछ नहीं होती। एक तरह के उपद्रवी दूसरी तरह के उपद्रवियों से बदल दिए जाते हैं।
जिन्होंने धन पा लिया है, वे भी कभी नहीं कहते ईमानदारी से कि हमें कुछ मिला या नहीं मिला? कहें तो ऐसा लगता है जिंदगी भर हम मूढ़ रहे। अहंकार को चोट लगती है। इसलिए अब जो बात चल गई, चल गई। लोग मानते हैं कि इन्हें बहुत कुछ मिला, इसी में सार है कि चुप रहो और कहते चले जाओ कि हां मिला; हां में हां भरे चले जाओ।
बुंद पड़े गलि जाय पाछे पछतावल हो।
हंस कहे भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
जिसको यह समझ में आ जाता है कि यह घर हमारा घर नहीं और यह गंदी तलैया हमारा निवास नहीं; जिसे मानसरोवर की याद आ जाती है--वही हंस। जब तक मानसरोवर की याद नहीं आई, तब तक तुम कुछ और हो। बगुले हो सकते हो, हंस नहीं। बगुले और हंस का इतना ही अर्थ है। बगुला ऐसा हंस है जो भूल गया है मानसरोवर को। हंस ऐसा बगुला है जिसे अपने घर की ठीक-ठीक याद आ गई। क्रांति घट जाती है, क्योंकि दिशा बदल जाती है।
हंस कहै, भाई सरवर, ...
और जिसको यह हंस-पन पैदा होता है, जिसको मानसरोवर की याद आ गई और जो कहता है बस अब चले--तो वह इस तलैया से कहता हैः भाई सरवर!
ख्याल रखना, यह "भाई" शब्द प्यारा है। इस पृथ्वी से कोई दुश्मनी नहीं है--सिर्प यह हमारा घर नहीं है। इस संसार से कोई दुश्मनी नहीं है--सिर्प यह कि यह हमारी तृप्ति नहीं है। इसके और हमारे बीच कोई शत्रुता नहीं है।
हंस कहे भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
अब हमारे उड़ने का समय आ गया। अब हम उड़ जाएंगे।
मोर तोर एतन दिदार, ...
और अब मेरे-तेरे मिलने की कोई संभावना आगे नहीं है।
... बहुरि नहिं पाइब हो।
अब दुबारा मेरा आना नहीं होगा। मुझे अपने घर की याद आ गई। मैंने अपने
घर को पहचान लिया। मैंने अपने स्वभाव को परख लिया। मैं कौन हूं, कहां से हूं और कहां मुझे तृप्ति मिल सकती है, कहां मेरा परम संतोष है--अब मैं उसी झील में जाकर बैठूंगा।
हंस कहे भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुरि नहिं पाइब हो।
इहवां कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो।
और जिसको मानसरोवर की याद आती है उसे पहली दफा पता चलता है, इस पृथ्वी
पर कि वह विदेशी है। यह अपना देश नहीं, स्वदेश नहीं। इहवां कोई नहिं आपन।
यहां कोई अपना नहीं है। यहां अपना हो ही नहीं सकता। यहां अपना तो सब सपना है। अपना तो सिर्प परमात्मा है। परमात्मा में होकर तुम भी अपने हो। मगर परमात्मा से अलग होकर कोई अपना नहीं।
सेंटपाल--ईसाइयों का एक विचारशील मनीषी--जब दस्तखत करता था अपने पत्रों में, तो दस्तखत में नीचे लिखता थाः "योर्स इन दि क्राइस्ट!" जीसस में तुम्हारा! यह प्यारा संबोधन मालूम पड़ता है। अलग से तुम्हारा नहीं-- जीसस में तुम्हारा! तुम्हारी पत्नी तुम्हारी नहीं है और न पति तुम्हारा है। लेकिन परमात्मा के तुम दोनों हो, परमात्मा में तुम दोनों एक हो। अगर परमात्मा के माध्यम से पत्नी को देखोगे तो तुम्हारी है और तुम पत्नी के हो। और परमात्मा को छोड़ कर देखो तो यहां कोई अपना नहीं है। परमात्मा ही अपना है और उसके माध्यम से सब अपना हो जाता है। और हमने सबको तो अपना बना लिया है, परमात्मा भर को अपना नहीं बनाया है।
इहवां कोइ नहिं आपन केहि संग बोलै हो।
किसके साथ बोलें? किससे बतियाए?; यहां भाषा ही अपनी नहीं है। हंस की भाषा यहां कोई बोलता नहीं है। बगुलों की भाषा है। कौवों की कांव-कांव है।
यहां किससे बोलो?

बुद्ध को ज्ञान हुआ, चुप रहा जाना चाहते थे। सवाल उठा थाः किससे बोलूं? कौन समझेगा? लोग हंसेंगे। सभी ज्ञानियों को यह घड़ी आती है। जब उन्हें ज्ञान होता है, जब पहली दफे उन्हें स्मरण आता है, तब उन्हें यह भी समझ में आता है कि अब चुप ही रहना, किसी से कहना मत, कौन समझेगा! लोग नासमझी करेंगे। लोग हंसेंगे। लोग भरोसा न करेंगे। लोग विरोध करेंगे, उपेक्षा करेंगे; पूजा भी करेंगे, मगर सुनेगा कोई भी नहीं। समझेगा कोई भी नहीं। मानेगा कोई भी नहीं। संवाद हो ही नहीं पाता। विवाद करेंगे लोग।
लेकिन फिर भी बुद्ध बोले। सभी बुद्ध बोले। क्योंकि फिर यह भी ख्याल आता है कि शायद किसी को थोड़ी सी समझ आ जाए; शायद थोड़ी-सी स्मृति आ जाए। एक कण भी अगर आ जाए तो उसी कण के सहारे यात्रा शुरू हो जाएगी। सौ से कहेंगे, शायद एकाध समझ ले। सौ समझेंगे, शायद एकाध चल पड़े। सौ चलेंगे शायद एकाध पहुंच जाए। इतना भी क्या कम है?
इहवां कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो।
बिच तरवर मैदान अकेला हंस डोलै हो।।
जैसे ही कोई हंस हो गया, जैसे ही मानसरोवर की याद आई और बगुलापन गया, झूठापन गया, माया गई, आत्म-बोध हुआ--वैसे ही इस भरे बाजार में आदमी अकेला हो जाता है। भीड़ में अकेला हो जाता है। बिच तरवर मैदान... जैसे पूरे बड़े मैदान में एक वृक्ष अकेला खड़ा हो... अकेला हंस डोलै हो।
लखि चौरासी भरनि, मनुष-तन पाइल हो।
कितनी-कितनी यात्रा की है मानसरोवर से इस डबरे तक आने में! चौरासी लाख योनियों से आदमी गुजरा है। इसलिए तो भूल गया। बड़ी पुरानी बात हो गई।
... मनुष-तन पाइल हो।
इन चौरासी लाख योनियों में कभी यह अवसर नहीं था कि मानसरोवर की याद आ सके। मनुष्य को ही यह अवसर है।
मनुष्य, ऐसा समझो कि परमात्मा से सर्वाधिक दूरी है। और चूंकि सर्वाधिक दूरी है, इसलिए सर्वाधिक पीड़ा मनुष्य अनुभव करता है परमात्मा की। मनुष्य उस जगह है जहां से लौटना संभव है, क्योंकि पीड़ा इतनी सघन है कि लौटना ही पड़ेगा। बीमारी इतनी सघन हो जाती है कि औषधि खोजनी ही पड़ेगी। बिना इलाज किए कोई उपाय नहीं है।
मानुष जनम अमोल, ...
इसलिए मनुष्य के जन्म को अमोल कहा है।
पशु हैं, पक्षी हैं, पौधे हैं--प्यारे हैं, मगर एक कमी हैः बोध नहीं है।
और बोध ही न हो तो लौटोगे कैसे? ऐसा समझो कि गहरी नींद में पड़े हैं। सभी मनुष्य जाग गए हैं, ऐसा नहीं कह रहा हूं; लेकिन मनुष्य जाग सकता है। पौधे चाहें तो भी जाग नहीं सकते। यह नहीं कह रहा हूं कि सभी मनुष्य जाग ही जाएंगे। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। चाहें तो जग सकते हैं, और न चाहें तो सोए रह सकते हैं। इसलिए बहुत से मनुष्य पौधों जैसे जीते हैं, बहुत से मनुष्य पशुओं जैसे जीते हैं, बहुत-से मनुष्य पत्थरों जैसे जीते हैं। मनुष्य जब मनुष्य जैसा जीता है, तभी उसको हम, भगवत्ता उपलब्ध हो गई, इसकी घोषणा करते हैं।
मानुष जनम अमोल अपन सों खोइल हो।
और अपने ही हाथ से आदमी खोता चला जाता है। इस अमूल्य अवसर को। और एक बार खो जाए यह अवसर, तो फिर कौन जाने कब मिले! एक बार खो जाए, फिर बड़ी लंबी यात्रा हो; फिर कुछ पक्का नहीं कि दुबारा कब हाथ आए! और एक बार खो जाए तो दुबारा भी खो जाने की आदत हो जाएगी, तिबारा भी खो जाने की आदत हो जाएगी। बहुत हैं, जो कई बार खो चुके हैं; अब खोने की भी उनकी आदत हो गई है, लत हो गई है।
बुद्ध एक उल्लेख करते थे कि एक महल है जिसमें एक हजार दरवाजे हैं। और
एक अंधा आदमी उस महल में बंद है। और एक ही दरवाजा खुला है और अंधा आदमी टटोलता है, टटोलता है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं; उसकी आशा क्षीण होती चली जाती है कि कोई दरवाजा खुला होगा। और तब वह खुले दरवाजे के करीब आता है, एक मक्खी उसके सिर पर बैठ जाती है। वह मक्खी को खुजलाता हुआ आगे निकल जाता है। वह खुला दरवाजा था। फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजे हैं। फिर

टटोलता है। फिर न मालूम कब उस हजारवें दरवाजे के करीब आएगा! और फिर कौन जाने कौन सा बहाना मिल जाए! बहानों का कोई हिसाब है?
एक सूफी कहानी है। उस राजधानी में एक ही गरीब आदमी था, एक ही भिखमंगा था। और राजधानी के वजीर ने अपने सम्राट को कहा कि एक ही भिखमंगा है, वह हमारी बदनामी है। इसको धन दे दें।
एक फकीर बैठा था दरबार में, वह हंसने लगा। उसने कहाः देने से कुछ भी न होगा।
सम्राट ने कहाः क्यों नहीं होगा।
फकीर ने कहाः एक उपाय करें। यह आदमी रोज निकलता है जिस रास्ते से, उस
पर ठीक हंडा भर कर अशर्फियां रख दी जाएं और देखें क्या होता है! एक पुल से वह आदमी रोज गुजरता था। अपने भीख मांग कर वहीं बैठता था पुल के पास, दिन भर भीख मांगता, सांझ सूरज ढलने को होता, तब अपने घर की तरफ जाता। उस पुल पर बीच में एक बड़ी गागर सोने की अशर्फियों से भर कर रख दी गई। काफी था उस भिखारी के लिए जन्मों-जन्मों के लिए, इतना धन था। राजा, फकीर, वजीर सब दूसरे किनारे खड़े होकर देख रहे हैं। वे बड़े चकित हुए। जब वह भिखारी वहां से निकला तो आंखें बंद किए निकला! आंखें बंद किए टटोलते-टटोलते! भला-चंगा था, आंखें ठीक थीं उसकी।
जब वह इस किनारे आया तो राजा ने पूछा कि भई भिखारी, हद हो गई, तुम आंख बंद करके क्यों आए?
उसने कहा कि मेरे मन में यह ख्याल कई दिन से उठता था कि एक दफे पुल पर
से आंख बंद करके गुजरा जाए। मेरा एक मित्र अंधा है, वह कैसे गुजरता होगा-- यह जानने के लिए, यह अनुभव करने के लिए मैं कई दफे सोच चुका था कि एक दफा इस पुल से मैं भी आंख बंद करके गुजरूंगा। आज मैंने कहा, आज गुजर ही लिया जाए। फकीर ने कहाः आप देखते हैं? सोने का घड़ा भरा रखा था आज, आज इसको यह ख्याल आ गया। यह संयोगवशात, नहीं है। इस आदमी की गरीब होने की आदत हो गई है, गहरी आदत हो गई है, लत हो गई है। यह अवसर गंवाता रहा है।
लतें हो जाती हैं। तुम फिर से हजारों दरवाजे के पार आओगे, कौन जाने कौन सा तुम्हारे दिमाग में ख्याल आ जाए! या यही ख्याल आ जाए कि "नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद थे, अब हजारवां क्या खुला होगा? चलो कौन टटोले, ऐसे ही निकल चलो।" कोई भी बहाना आ सकता है।
स्मरण रखना, जो अवसर अभी हाथ में है उसे किसी भी कारण गंवाना नहीं है। मानुष जनम अमोल अपन सों खोइल हो। अपने ही हाथ से लोग खोते रहे हैं।
साहेब कबीर सोहर सुगावल, गाइ सुनावल हो।
धनी धरमदास कहते हैंः मैं तो बच गया गंवाने से, क्योंकि साहब कबीर ने ऐसा प्यारा गीत सुनाया उस मानसरोवर का कि मेरी स्मृति जगा दी!
सदगुरु का काम यही है कि गीत गाए--गीत गाए मानसरोवर के! उनके कानों में फुसफुसाए, जो डबरों से राजी हो गए हैं। उन्हें असली संपदा की याद दिलाए, जो कूड़ा-करकट बटोर रहे हैं। उन्हें उनके साम्राज्य की सुधि दिलाए, जो भिखमंगे हो गए हैं।
साहेब कबीर सोहर सुगावल...
ऐसी प्यारी स्मृति जगा दी है कबीर ने! ऐसा गीत गाया है, ऐसी धुन बजा दी है, हृदय-तंत्री छेड़ दी है!
गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धरमदास एहि चित चेतहु हो।।
इसी बार चेतना है, अभी चेतना है! इसी जनम में चेतना है! इसी जीवन को रूपांतरण करना है! आज ही पहुंचना है मानसरोवर! कल पर नहीं टालना है। बहुत टाल चुके।
सुनहु हो धरमदास ऐहि चित चेतहु हो।।
इसी मन में, इसी तन में, चेत जाना है। जो आज चेतेगा वही चेतेगा। कल पर
मत टालना। और टालने के बहुत बहाने आते हैं। कई बार तो बहुत अच्छे बहाने आते हैं।
सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे।।

अच्छे बहाने ऐसे आते हैं कि आदमी सोचता है कि दुनिया में इतना दुख है,
और मैं ध्यान करूं?
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः आप ध्यान सिखाते हैं! और संसार में इतना दुख है! लोग इतने पीड़ित और परेशान हैं! इतनी गरीबी, इतना अकाल, इतनी बाढ़, इतने युद्ध--और आप ध्यान सिखाते हैं! आप लोगों को स्वार्थी बनना सिखाते हैं!
... जैसे कि तुम्हारे ध्यान न करने से दुख कम हो जाएंगे! कैसा तर्क है! .जरा सोचना। जैसे तुमने ध्यान नहीं किया तो दुनिया में गरीबी कम हो जाएगी। जैसे तुमने ध्यान नहीं किया तो दुनिया में हिंसा कम हो जाएगी! हिंसा बढ़ेगी। तुम्हारे ध्यान न करने से घटेगी कैसे? दुनिया में दुःख है, क्योंकि लोग ध्यान में नहीं हैं। और दुनिया में युद्ध है, क्योंकि लोग ध्यान में नहीं हैं। लेकिन इसको लोग बहाना बनाते हैं। वे कहते हैंः ध्यान हम कर कैसे सकते हैं?
अभी जापान से एक महिला आई, कम्युनिस्ट है। उसने कहाः आपकी बातें तो अच्छी लगती हैं, लेकिन मैं कम्युनिस्ट हूं। मैं संन्यास नहीं ले सकती हूं और मैं ध्यान भी नहीं कर सकती हूं। दुनिया में इतना दुख है! जब तक दुनिया से गरीबी नहीं मिटेगी तब तक कैसा ध्यान, तब तक कैसा संन्यास!
... जैसे उसके ध्यान न करने से गरीबी मिट जाएगी! आदमी अच्छे बहाने खोज लेता है।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैंः सेवा सिखाइए, ध्यान क्यों सिखाते हैं? कोढ़ियों के पैर दबवाइए। अंधे, लूले, लंगड़े हैं। अनाथालय खुलवाइए। ध्यान क्यों सिखाते हैं?
ध्यान नहीं है, इसलिए अंधे, लूले-लंगड़े हैं। तुम्हें यह बात चौंकाने वाली लगेगी। क्योंकि वह जो अंधा है, काश उसने कभी ध्यान किया होता! भीतर की तो फोड़ ही लीं, अब बाहर की भी फोड़ लीं! वह उसके कृत्यों का फल है। वह उसके ध्यान शून्य कृत्यों और कर्मो का फल है। अकारण नहीं हो गया है--इस जगत में कुछ भी अकारण नहीं हो रहा है।
और तुम अगर बिना ध्यान किए पैर दबाओगे, पैर दबाते-दबाते कब गरदन तक पहुंच जाओगे, कहना मुश्किल है। जो ध्यान न जानता हो, उससे पैर मत दबवाना। दबाते-दबाते गरदन दबा देगा। सभी सेवक अंत में गरदन दबाते हैं। पहले सर्वोदय का काम करते हैं, फिर गरदन दबाते हैं। पहले कहते हैंः हम सेवा करेंगे। हमसे सेवा करवानी ही पड़ेगी।
अब सेवा ऐसी चीज है कि इनकार भी नहीं कर सकते। कोई कहता हैः हम सेवा करेंगे। फिर वह कहता हैः अब तो हम प्रधानमंत्री बनेंगे। अब तो हम बिना प्रधानमंत्री बने सेवा कर ही नहीं सकते। और जब इतने दिन तक सेवा कराई है तो अब मौका भी हमें दो, हमें भी सेवा करने का मौका दो।
मैंने सुना, एक चुनाव की सभा में एक राजनेता बोल रहा था कि हमसे पहले
जो सत्ता में थे, सब भ्रष्टाचारी हैं, सब चोर, सब बेईमान। इनसे देश का मुक्त होना जरूरी है। और हमें भी एक सेवा का अवसर दीजिए।
सेवा का अवसर पहले उनको दिया था। अब वह कह रहा हैः हमें भी अब सेवा का अवसर दीजिए।
सेवा, ध्यान-रहित की, खतरनाक है। खुद को भी धोखा दे रहा है और दूसरे को
भी धोखा देगा। मगर ये बातें तर्कयुक्त मालूम होती हैं।
सत्तना मै जपु...
सत्य के नाम को जपो। ध्यान में उतरो। मानसरोवर का स्मरण करो। जग लड़ने दे। यह जगत तो लड़ता ही रहा है।
यह वचन बहुत कठोर लगेगा, लेकिन बड़ा सार्थक है। जगत तो लड़ता ही रहा है। अगर बुद्ध भी कोढ़ियों के पैर दबाते रहते और महावीर भी अगर अनाथालय खोल कर बैठ गए होते और जीसस भी एक स्कूल चला सकते थे और कबीर और नानक को क्या पड़ी थी, प्याऊ खोल लेते, हजार काम थे सदा--दुनिया और भी बदतर होती। दुनिया इससे भी ज्यादा बदतर होती। क्योंकि बुद्ध के बिना दुनिया इससे बदतर निश्चित होती। ये तर्क तुम्हारे सामने भी उठेंगे, ख्याल रखना।
सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे।।

यह संसार कांट की बारी...
यह संसार तो कांटों की बाड़ी है।
... अरुझि अरुझि के मरने दे।
अब जो मरना ही चाहते हैं इन कांटों में उलझ कर, उनको मरने दो। उनको मर-
मर कर सीखने दो। उनको कांटो में चुभ-चुभ कर ही याद आएगी, और कोई शायद उपाय नहीं है। शायद कांटों में चुभ-चुभ कर ही उनको कभी बोध होगा कि हम क्या कर रहे हैं, तो शायद फूलों की तलाश करें। तुम उन्हें चाहकर भी कांटों में जाने से रोक नहीं सकते। तुम रोकोगे तो वे और उत्सुक हो जाएंगे। तुम बाधा डालोगे तो उनको चुनौती मिलेगी। तुम उन्हें जाने दो। जिसे जो करना है, उसे करने दो। जिसे दुखी होना है वह दुखी होगा। वह उपाय खोज ही लेगा। तुम किसी को सुखी नहीं कर सकते हो, यह स्मरण रखना। और भूलकर इस भ्रांति में मत पड़ना कि किसी को सुखी करने लगो। अपने को ही सुखी कर लो तो पर्याप्त है। और तुम्हारे भीतर सुख हो तो तुमसे जरूर एक सुवास उठेगी। वह सुवास औरों के नासापुटों में भी जाएगी और शायद उनको भी सुगंध दे और शायद सुगंध के स्रोत को खोजने की सुधि दे।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुंकै तो भुंकने दे।
और यह भी ख्याल रखना कि जब तुम हाथी की चाल चलोगे तो हाथी की चाल है। संन्यास यानी हाथी की चाल। यह तो चांद-तारों की चाल है। यह तो मस्ती की चाल है। यह तो मदमस्त जो है उसकी चाल है।
तो ख्याल रखना, दूसरे भौंकेंगे भी। उनको भौंकने देना। हंसेंगे, विरोध करेंगे, उपेक्षा करेंगे--उनको करने देना। उनकी चिंता मत लेना, लौटकर भी मत देखना।
यह संसार भादों की नदिया डूबि मरै तो मरने दे।
कठोर लगते हैं ये वचन, लेकिन बड़े सच हैं। हमें लगता है ऐसा कि नहीं, सदगुरु को ऐसा नहीं कहना चाहिए। लेकिन सद्गुरु को क्या कहना चाहिए, वही सद्गुरु कहता है। कठोर तो कठोर।
सर्जरी है सदगुरु के वचनों में। काटता है। जो अंग व्यर्थ है, काट कर फेंक देना है। यह संसार भादों की नदिया... । अब जिनको इसी में डूबना है, मरना हैष्ठ. पुकार दो, कह दो, मगर इसी में मत उलझे रह जाना। तुम यहीं मत बैठे रहना कि कोई डूबे तो हमें उतर कर उसको बचाना है। तुम अपने को बचा लो तो सबको बचा लिया।
धरमदास के साहेब कबीरा पत्थर पूजै तो पुजने दे।।
और धरमदास कहते हैंः हमें तो मिल गया चिन्मय। अब जो मृण्मय को पूजते हैं, उनको पूजने दो। हमें तो साहब मिल गया। हमें तो कबीर मिल गए! हमें तो सदगुरु मिल गया। हमने तो देख ली झलक परमात्मा की। अब जिनको पत्थर पूजना है, मंदिर जाना है, मस्जिद जाना है, जाने दो। हमें तो दिखाई पड़ गया मार्ग अब हम किसको समझाते रहें! हम किस-किस को बुलाते रहें! हम किस-किस को जाकर कहते रहें कि मंदिर मत जाओ, मस्जिद मत जाओ; यहां कबीर का आगमन हुआ है, आ जाओ। इसमें समय गंवाना भी व्यर्थ है। और इन्हीं के पीछे पड़ जाने में लाभ नहीं है, हानि है।
इसलिए मैं तुमसे निरंतर कहता हूं--अपने संन्यासी को--तुम्हें जो आनंद मिला है, बांटना। तुम्हें जो शांति मिली है, बांटना। मगर भूलकर भी मिशनरी मत बन जाना। किसी को ध्यान में लगाने के पीछे मत पड़ जाना, नहीं तो तुम्हारा ध्यान खो जाएगा। उसका होगा कि नहीं, वह तो दूर बात है। तुम किसी को संन्यासी बनाने के पीछे मत पड़ जाना। तुम्हारा मन भी करेगा। क्योंकि तुम्हें जो सुख मिला है, और को भी मिल जाए; खास कर जिन्हें तुम प्रेम करते हो उनको भी मिल जाए।
कल ही एक युवती पूछ रही थी मुझसे कि बड़ी मुश्किल हो गई है। संन्यस्त हुई। यूरोप से आई। ध्यान में डूबी और रस-मग्न है। और जैसा कभी नहीं हुआ था वैसा कुछ हुआ है। स्वाभाविक भाव उठता है कि उसका पति भी इस रस में डूब जाए, उसके बच्चे भी डूब जाएं। पति को लिखा होगा। पति ने समझा कि पागल हो गई। पति को समझ में ही नहीं आया कि गैरिक वस्त्र का क्या मतलब, नये नाम का क्या मतलब! पति ने क्रोध में पत्र लिखा है कि मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता

और मैं भूलकर भी तुझे कभी तेरे नये नाम से नहीं पुकारूंगा। तेरा पुराना नाम ही मेरे लिए रहेगा। और मैं तुझे संन्यासी मानने को भी तैयार नहीं हूं। मेरे लिए तो तू जैसी थी वैसी ही है।
वह कल महिला रोती थी कि मैं तो सोचती थी कि उन्हें भी ले आऊंगी आपके पास तक, मगर यह तो मुश्किल हो गई। मैंने उससे कहाः तू चिंता न ले। और कनवर्शन की, किसी को बदलने की कभी आकांक्षा मत करना। जाना लौट कर, जितना आनंद दे सके देना; जितना प्रेम दे सके देना। इतना प्रेम देना कि पति ने कभी जाना ही न हो और इतना आनंद देना जितना पति ने कभी जाना ही न हो। घर में एक नई सुगंध और एक नए गीत का वातावरण बनाना। मगर भूल कर मेरी चर्चा मत करना। संन्यास की बात मत उठाना। ध्यान की बात मत करना। ध्यान करना, ध्यान की तरंगें पैदा करना घर में। लेकिन पति को ध्यान के संबंध में समझाना मत; नहीं तो पुरुष के अहंकार की बड़ी जकड़ होती है। जब तक पति स्वयं न पूछने लगे कि तुझे क्या हो गया है; जब तक पति को यह आकांक्षा पैदा न हो जाए कि तुझे कुछ हुआ है, जो मुझे भी होना चाहिए--तब तक चुप रहना।
स्वाभाविक है कि जिसे हम प्रेम करते हैं, उसको भी हम उसकी तरफ ले जाएं, जहां से हमें परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हुई हो।
धरमदास के साहेब कबीर पथरा पूजै तो पुजने दे।।
जो जैसा काम में लगा है, उसे लगा रहने दो। तुम अपनी मस्ती से गाओ, नाचो। तुम हाथी की चाल चलो। तुम्हारा आनंद किसी को खींच ले तो ठीक।
तुम्हारे गीतों में बंधा कोई आ जाए तो ठीक। तर्क मत करना। विवाद मत करना।
क्योंकि विवाद में लोग काफी कुशल हैं। तर्क में लोग काफी निष्णात हैं। और कुछ बातें ऐसी हैं जो अनुभव में तो आती हैं, लेकिन तर्क में नहीं लाई जा सकतीं। अब तुम लाख उनको कहो कि हमें दिखाओ, हाथ में रखो हमारे। क्या हाथ में रखोगे? रोशनियां हाथ में नहीं रखी जा सकतीं। समाधियां हाथ में नहीं रखी जा सकतीं। और अगर कहोगे ध्यान का अनुभव हुआ है, प्रकाश का अनुभव हुआ है, आनंद हुआ--वे कहेंगेः यह सब सम्मोहन है। हेल्यूसिनेशन! संभ्रम हो गया है तुम्हें। तुमने सपना देखना शुरू कर दिया है।
तुम कहोगेः बहुत प्रेम का अनुभव हो रहा है! वे कहेंगे कि ये इन सब बातों से कुछ सार नहीं है। कुछ प्रत्यक्ष दिखलाओ। ये तो सब कविताएं हैं। कविताओं को कोई मानता है! कविता में कोई तर्क होता है!
तो अकसर ऐसा हो जाएगा कि अगर तुम दूसरे को समझाने गए हो तो उसको तो शायद ही समझा पाओ, वह शायद तुम्हारे भीतर उठते गीत की कड़ियों को तोड़ डाले; तुम्हारे भीतर बनते संगीत में विघ्न डाल दे; तुम्हें शक पैदा करवा दे। किसी में श्रद्धा पैदा करवाना बहुत कठिन मामला है और किसी में संदेह पैदा करवाना बहुत सरल मामला है। इसलिए ऐसे कठोर वचन कहे हैं।
सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे।।
जबाने-शौक पै उनका ही नाम रहता है
उन्हीं की याद से हर लहजा काम रहता है
नजर को सागरे-गम में डुबोए रहती हूं
तसव्वुरात की दुनिया में खोए रहती हूं
न होशे-हाल न एहसासे-हाल रहता है
बस एक सिर्प उन्हीं का ख्याल रहता है हजार दिल से हम उनको भुलाए जाते हैं न जाने क्यों वह हमें याद आए जाते हैं अंधेरी रात में भी मंजरे-दरख्शां हैं जिधर निगाह उठाती हूं वोह नुमायां हैं सबा के दोश पै उनके सलाम आते हैं सतारे लेके नया इक पयाम आते हैं सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे।।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
दसवां प्रवचन

अथक श्रम चाहिए

पहला प्रश्नः प्रवचन और दर्शन को छोड़ कर आप सदा-सर्वदा अपने एकांत कमरे में रहते हैं। फिर भी आपको इतनी सारी सूचनाएं कहां से मिलती हैं, कि यू. जी. कृष्णमूर्ति से संबंधित प्रश्न के उत्तर में, आपने उनके बारे में उन सब खबरों की चर्चा की है, जो बहुचर्चित हैं! सी. आई. ए, के. बी. जी. और सी. बी. आई. जैसी कोई गुह्य संस्था भी आपके पास है क्या?

हिम्मत भाई... ! तीनों संस्थाओं का इकट्ठा जोड़!
लेकिन ऐसे व्यर्थ के प्रश्न बार-बार न पूछो। साहब की ही बात करें। साहब में ही मन लगाएं। अगर तुम्हें उत्सुकता भी हो तो सदा मूल-स्रोत पर जाओ। उधार, विचार-चोरों से सावधान रहो। जे. कृष्णमूर्ति की जो दृष्टि है, अगर उसे समझना है, उसमें रस है, तो फिर कृष्णमूर्ति से ही उस रस को उठाओ। फिर यू. जी. कृष्णमूर्ति में रस लेने की कोई जरूरत नहीं है। जब मूल उपलब्ध हो, तो नकल से क्यों उलझना?
कार्बन कापियों से सावधान रहना जरूरी है। और कार्बन कापियां काफी दावेदार होती हैं। चोर को बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है यह सिद्ध करने के लिए कि ये विचार मेरे हैं। उसे अतिशय श्रम उठाना पड़ता है। उसे बहुत तर्क, बहुत प्रमाण जुटाने पड़ते हैं कि ये विचार मेरे हैं। जिसके वस्तुतः विचार अपने होते हैं, वह न तो तर्क जुटाता है, न प्रमाण जुटाता है--विचार उसके हैं ही। फिर यू. जी. कृष्णमूर्ति की कोई भी अवस्था नहीं है चैतन्य की दृष्टि से। और जिसे उन्होंने समाधि समझ रखा है, वह समाधि नहीं है, केवल मूर्च्छा है। इस बात को ख्याल में रखना उचित होगा।
पतंजलि ने समाधि की दो दशाएं कही हैं। चैतन्य समाधि और जड़ समाधि। जड़ समाधि नाम मात्र को समाधि है। समाधि जैसी प्रतीति होती है, पर समाधि नहीं है। जड़ समाधि में, तुम्हारे पास जो थोड़ी-सी चैतन्य की ऊर्जा है, वह भी खो जाती है। तुम मूर्च्छित होकर गिर जाते हो। एक आध्यात्मिक कोमा! तुम मनुष्य से नीचे उतर जाते हो। जरूर शांति मिलेगी, जैसी गहरी नींद में मिलती है।
इसलिए पतंजलि ने यह भी कहा कि समाधि और गहरी नींद में एक समानता है। खूब गहरी नींद आ जाए, स्वप्न भी न हों, तो एक शांति मिलेगी, दूसरे दिन सुबह ताजगी रहेगी। लेकिन उस प्रगाढ़ निद्रा में क्या हुआ था, इसका तो कुछ पता न रहेगा। कहां गए, कहां पहुंचे, क्या अनुभव हुए, कुछ भी पता न होगा। सुबह तुम इतना ही कह सकोगे कि गहरी नींद आई। वह भी सुबह कह सकोगे; उठ आओगे नींद से, तब कह सकोगे।
ऐसी ही जड़ समाधि है। सुगम है, सरल है, आसानी से हो सकती है। इसी जड़ समाधि के कारण ही तो पश्चिम में एल. एस. डी., मारिजुआना, सिलोसायबिन और इस तरह के मादक द्रव्यों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। इसी जड़ समाधि के कारण इस देश का साधु-संन्यासी सदियों से गांजा, भांग, अफीम लेता रहा है। बड़ी सरलता से मन को मूर्च्छित किया जा सकता है। और जब मन मुर्च्छित हो जाता है, तो स्वभावतः सारी चिंता समाप्त हो गई, सारे विचार गए। तुम एक सन्नाटे में छूट गए। लौटकर आओगे। ताजे लगोगे। मगर यह ताजगी महंगी है। यह ताजगी बड़ी कीमत पर तुमने ले ली है। असली समाधि चैतन्य समाधि है। मनुष्य दोनों के मध्य में है।
ऐसा समझो कि मनुष्य पत्थर और परमात्मा के बीच में है, बीच की कड़ी है। पत्थर जड़ है, परमात्मा पूर्ण चेतन है। मनुष्य आधा-आधा--कुछ जड़ है, कुछ चेतन है। यही मनुष्य की चिंता है, यही उसका संताप है। यही उसकी दुविधा, द्वंद्व, यही उसकी पीड़ा, तनाव। आधा हिस्सा खींचता है कि जड़ हो जाओ, आधा हिस्सा खींचता है कि चैतन्य हो जाओ। आधा हिस्सा कहता है कि डूब जाओ संगीत में, शराब में, सेक्स में। आधा हिस्सा कहता हैः उठो--ध्यान में, प्रार्थना में,

पूजा में। और इन दोनों में कहीं तालमेल नहीं होता। ये दोनों एक-दूसरे के विपरीत जुड़े हैं। जैसे एक ही बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जुड़े हैं।
और स्वभावतः, जो पीछे की तरफ जा रहे हैं बैल, वे ज्यादा शक्तिशाली हैं। क्यों? क्योंकि अतीत का इतिहास उनके साथ है। तुम्हारा पूरा अतीत जड़ता का इतिहास है। इसलिए जड़ता का बड़ा वजन है। चैतन्य तो भविष्य है। उसकी तो धीमी-सी किरण उतर रही है अभी। अभी उसका बल बहुत नहीं है। अंधेरे का बल बहुत ज्यादा है।
इसलिए तो ध्यान की कोशिश करो, और विचारों की तरंगें उठती ही चली जाती हैं। विचार अतीत से आते हैं, जड़ता से आते हैं, यांत्रिक हैं। ध्यान भविष्य को लाने का प्रयास है। कठिन है भविष्य को उतार लेना। श्रम चाहिए, सतत श्रम चाहिए। जागरूकता चाहिए। अथक जागरूकता चाहिए!
मनुष्य आसानी से पशु हो सकता है। इसलिए तो जिन-जिन बातों से पशु होने
की सुविधा मिलती है, तुम उनमें बड़े उत्सुक हो जाते हो। राजनीति में तुम्हारी उत्सुकता देखते हो! वह पशु होने का उपाय है; नीचे गिरने का उपाय है। भीड़-भाड़ के साथ तुम्हें भी नशा छा जाता है। जब भीड़ जोर-जोर से नारा लगाने लगती है, तो तुम्हारा कंठ भी खुल जाता है। ऐसे अकेले शायद तुम्हारी बोलती बंद हो जाए, लेकिन भीड़ के साथ तुम्हारा कंठ खुल जाता है। जब भीड़ आग लगाने लगे कहीं, तो तुम भी आग लगाने में संलग्न हो जाते हो।
तुमने देखा, क्रोध में कितना बल आ जाता है! जब तुम क्रोध में होते हो, बड़ी चट्टान सरका देते हो। वही चट्टान साधारण, सामान्य दशा में हिलाते तो हिलती न। पशुता प्रबल है; पीछे से खींच रही है। जो नीचे गिर जाता है, उसे भी एक तरह की शांति मिलती है। वही शांति अपराध का रस है। तुम यह मत समझना कि अपराधी सिर्प धन में उत्सुक है, इसलिए चोरी कर रहा है। अपराध की असली रसवत्ता पशुता है। अपराधी पीछे गिर रहा है। आदमी है उत्तरदायित्व। आदमी है चुनौती। अपराधी पीछे गिर रहा है। वह कहता हैः मुझे चुनौती स्वीकार नहीं करनी।
हत्यारे में, तुम यह मत सोचना कि वह किसी को मार डालना चाहता था, इसलिए मार दिया, कि किसी से दुश्मनी थी। नहीं; मारने का एक रस है। जब तुम किसी की हत्या कर रहे होते हो, तब तुम मनुष्य नहीं रह जाते, सिंह भला हो जाते होओ। इसलिए हत्यारों की जो जातियां हैं, उसमें नाम के पीछे सिंह लगाते हैं। फिर चाहे वे राजपूत हों और चाहे नेपाली हों और चाहे पंजाबी हों। जहां-जहां हत्या को जोर दिया गया है, वहां पीछे "सिंह" जोड़ दिया गया है। वह सूचक है। वह खबर दे रहा है कि आदमी आदमी नहीं रहा।
तुम भी ख्याल करना, अगर तुम किसी का गला दबा रहे हो, उस दबाते क्षण में तुम मनुष्य होते हो? अगर मनुष्य हो तो गला नहीं दबा सकते हो। अगर गला दबाना है तो तुम सरक गए पीछे, तुम मनुष्य नहीं रहे। तुम्हारे भीतर कोई दबी हुई पशुता हावी हो गई। इसलिए तो अकसर हत्यारे अदालतों में कहते हैं कि "हमने यह हत्या जान-बूझ कर नहीं की, हो गई। हम करना नहीं चाहते थे, हो गई। यह हमारे बावजूद हो गई।" हालांकि कोई अदालत उनकी बात मानती नहीं है, लेकिन मनोविज्ञान कहता है वे ठीक कह रहे हैं। वे झूठ नहीं बोल रहे हैं। वे सिर्प अपराध के दंड से बचने के लिए नहीं बोल रहे हैं। इसमें एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। जब उन्होंने की थी, तब वे मनुष्यता से नीचे गिर गए थे, होश में नहीं थे। खून चढ़ गया था उनके ऊपर।
इसलिए अपराध में भी एक तरह का रस है। और उपराधी भी एक तरह की शांति अनुभव करता है। क्रोध के बाद तुमने देखा है? जब क्रोध का तूफान चला जाता है, तो शांति अनुभव होती है। तुमने कुछ चीज तोड़ दी, उसके बाद एक शांति अनुभव होती है। मगर यह शांति बड़ी मंहगी और बड़ी गंदी है।
पागल आदमी कभी-कभी संतों जैसा मालूम होता है और कभी-कभी संत भी पागलों जैसे मालूम होते हैं। दोनों में कुछ तालमेल है। पागल मनुष्य से नीचे गिर गया, संत मनुष्य से ऊपर उठ गया। दोनों मनुष्य नहीं रहे, इतना तालमेल है। अपराधी में और संत में भी एक तरह का तालमेल है--दोनों मनुष्य नहीं हैं। एक मनुष्य के पार उठ गया है और एक मनुष्य से नीचे गिर गया है।

समाधि की भी दो दशाएं हैं। एक--मनुष्य से नीचे गिर जाओ। भांग पी ली, गांजा पी लिया, चरस, शराब--तुम नीचे सरक गए। शराबी को देखते हो, कैसा मस्त मालूम पड़ता है, कैसा डगमगाता चलता है!
यह आकस्मिक नहीं है कि सूफियों ने शराबी से ही ध्यान की परिभाषा की है। और यह भी आश्चर्यजनक नहीं है कि शराबी की मस्ती और ध्यान की, प्रार्थना की मस्ती में, थोड़ा सा तारतम्य है। ध्यानी की आंखों में भी तुम वैसे ही नशे के डोरे पाओगे। उसके चेहरे पर भी तुम वैसा ही आह्लाद पाओगे। उसके पैर भी डगमगाते हैं--कहीं पर रखता है पैर, कहीं पड़ जाते हैं। वह भी एक मस्ती से भरा है। वह भी कुछ पी उठा है। उसने भी कुछ भीतर रस की गागर उंड़ेल ली है। मगर रस की गागर अलग-अलग है। और नशे का तल अलग-अलग है।
बच्चे में और संत में भी एक तरह का तारतम्य होता है। छोटे बच्चों में संतत्व नहीं दिखाई पड़ता? कैसा निर्दोष भाव! और संतों में भी छोटे बच्चों जैसा निर्दोष भाव दिखाई पड़ता है। मगर फिर भी भेद भारी है। बच्चा अभी विकृत होगा, संत विकृति के पार आ गया। बच्चे की अभी यात्रा शुरू नहीं हुई। यात्रा शुरू होने को है, अभी तैयारी कर रहा है। संसार में उतरेगा, भटकेगा, परेशान होगा, टूटेगा, बिखरेगा--और संत उस सारे बिखराव के पार आ गया। संत फिर से बच्चा हो गया है। दोनों में समानता है, दोनों में भेद है।
ऐसी ही जड़ समाधि और चैतन्य समाधि हैं। जड़ समाधि का अर्थ होता हैः हमारे भीतर जो थोड़ा-सा चैतन्य है, उसे भी गंवा दो। एक लाभ है। जैसे ही चैतन्य हमारे भीतर से खो जाता है--थोड़ा ही है हमारे भीतर, कोई ज्यादा है भी नहीं, खोने में कठिनाई भी नहीं होती--जैसे ही चैतन्य हमारे भीतर खो जाता है, वैसे ही हमारे भीतर एक स्वर बजने लगता है। द्वंद्व विदा हो गया, दुई न रही। भेद न रहा हमारे भीतर, खंड न रहे हमारे भीतर। हम अविभाज्य हो गए। अचेतन सही, मगर अविभाज्य हो गए। इकट्ठे हो गए। यही तो नींद का मजा है कि तुम इकट्ठे हो जाते हो। दिन भर टूटते हो, बिखरते हो, रात फिर जुड़ जाते हो। सुबह फिर शक्ति उठ आती है।
ऐसी ही जड़ समाधि की अवस्था है। चैतन्य खो गया, फिर तुम इकट्ठे हो गए।
मगर यह इकट्ठा होना कोई बड़ा बहुमूल्य इकट्ठा होना नहीं है। तुम पत्थर होकर इकट्ठे हुए। इससे तो आदमी होना बेहतर था। याद करो सुकरात का वचन! सुकरात ने कहा है कि "मैं असंतुष्ट रह कर भी सुकरात रहना ही पसंद करूंगा। अगर संतुष्ट होकर मुझे सुअर होने का मौका मिले, तो भी मैं सुअर होना पसंद नहीं करूंगा।" संतोष भी मिलता हो सुअर होने से, तो सुकरात कहता हैः मैं सुअर होना पसंद नहीं करूंगा। और असंतुष्ट ही रहना पड़े मुझे, जलना पड़े असंतोष में, लेकिन सुकरात रह कर, तो मैं यही चुनाव करूंगा।
ठीक कहता है सुकरात। क्योंकि इसी संघर्ष और चुनौती से आगे यात्रा है। पूरा चैतन्य जगाना है। तब फिर एकता सधती है--अविभाज्य एकता। सब अचेतन चला गया, सब अंधेरा चला गया।
जैसे तुम्हारी रात में सब बुझ जाता है, ऐसे ही समाधि में सब जल जाता है। जैसे रात में सारी चेतना अंधेरे में डूब जाती है, ऐसे ही समाधि में सारा अंधेरा प्रकाश में खो जाता है।
बुद्ध की समाधि चैतन्य समाधि है। कृष्णमूर्ति की समाधि चैतन्य समाधि है। महावीर की समाधि चैतन्य समाधि है। यू. जी. कृष्णमूर्ति की समाधि जड़ समाधि है। उसका वे बहुत गौरव करते हैं कि जब उन्हें समाधि लगी, तो उनका शरीर बिल्कुल काष्ठवत हो जाता था। उन्हें उठा-उठा कर ले जाना पड़ता था। वे लाश के जैसे हो जाते थे। अगर बाहर बगीचे में बैठे थे और समाधि लग गई, तो वहीं गिर पड़ते थे फिर उन्हें उठा कर स्ट्रेचर पर अंदर ले जाना पड़ता था। यह कोई समाधि हुई? यह समाधि नहीं है; यह सिर्प मूर्च्छा है। इस मूर्च्छा में रस आ सकता है, रस है; गहरी नींद का रस है--मगर यह रस वरणीय नहीं है। रामकृष्ण को भी ऐसी समाधि लगती थी, वह जड़ समाधि थी। फिर तोतापुरी ने उन्हें चेताया। तोतापुरी ने उन्हें कहा कि यह तो जड़ समाधि है। यह तुम्हारा पड़ जाना मुर्दे के भांति, इससे कुछ सार नहीं। जागो!
तोतापुरी की सतत चेष्टा से रामकृष्ण जागे। और जिस दिन रामकृष्ण को चैतन्य समाधि लगी, उस दिन उन्होंने जाना कि मैं किस भ्रांति में भटका था!

मैं कैसी भूल में चला जा रहा था! मैंने अंधेरे को ही रोशनी समझ लिया था।
मैंने मूर्च्छा को होश समझ लिया था।
यू. जी. कृष्णमूर्ति की समाधि, समाधि नहीं है, सिर्प मूर्च्छा है। एक आध्यात्मिक कोमा! इस तरह के लोगों से सावधान रहना। इस तरह के लोगों से बचना।
मगर आदमी का लोभ ऐसा है कि हर किसी के जाल में पड़ सकता है--लोभ के कारण। कहीं से भी मिल जाए, मिल जाए। और मिलता कहीं से भी नहीं, ख्याल रखना। मिलता सदा अपने भीतर से है। कोई दूसरा तुम्हें दे नहीं सकता। और दूसरे के साथ जितना समय व्यर्थ गंवा रहे हो, पछताओगे पीछे। मिलना अपने भीतर है। लेकिन अपने भीतर पाने के लिए श्रम करना होता है। और श्रम कोई करना नहीं चाहता। लोग आलसी हैं। धन के लिए तो श्रम कर लेते हैं, ध्यान के लिए श्रम नहीं करना चाहते। ध्यान, कहते हैं, प्रसाद-रूप मिल जाए।
मेरे पास एक सज्जन आते हैं। वर्षों से! कोई दस साल से उन्हें जानता हूं। वे जब भी आते हैं, वे कहते हैं कि बस आशीर्वाद दें कि ध्यान मिल जाए। मैंने उनसे कहा कि धन के लिए कभी आशीर्वाद नहीं मांगते हो? उसके लिए तो बंबई में अथक चेष्टा करते रहते हो। ध्यान के लिए आशीर्वाद क्यों मांगते हो? और ध्यान तुम कभी करने आते नहीं।
वे कहते हैं कि क्या करना है? जब आप हैं, आशीर्वाद है, तो ध्यान क्या करना? बस हम तो आपको पकड़ लिए हैं।
अब इनकी चालबाजी समझ रहे हो! धन के लिए मुझको नहीं पकड़ते; क्योंकि जानते हैं, ऐसे धन नहीं मिलता। धन के लिए बंबई में दफ्तर खोल कर मेहनत में लगे रहते हैं। सुबह से सांझ तक! साल में एकाध-दो बार मेरे पास आ जाते हैं-- ध्यान के लिए। आशीर्वाद मांग लेते हैं। मेरे पास आने के लिए भी नहीं आते वे; जब घुड़-दौड़ होती है पूना में, तब आते हैं। बहती गंगा, हाथ धो लिया। आए पूना, चलो मेरे पास भी आ गए। मुफ्त आशीर्वाद का कोई दाम तो लगता नहीं। मैंने उनसे कहाः यह आशीर्वाद मैं दे नहीं सकता, क्योंकि आशीर्वाद से ध्यान मिल नहीं सकता। ध्यान अथक श्रम से मिलता है। लेकिन आदमी--सुस्त! आदमी--बेईमान! लोभी जरूर है, लेकिन ईमान नहीं है। चाहता है कुछ मुफ्त पड़ा कहीं मिल जाए। तो किसी के भी पीछे चला जाता है। कहीं भी हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। कहीं भी भिक्षापात्र फैला देता है। और ख्याल रखना, जहां जितनी सस्ती बात मिल रही हो, उतनी ही आसानी से पहुंच जाता है।
अब यू. जी. कृष्णमूर्ति कहते हैंः "न साधना की जरूरत है, न ध्यान की जरूरत है, न योग की जरूरत है। किसी चीज की कोई जरूरत नहीं।" तुम्हारा मन बड़ा प्रफुल्लित हो जाता है सुन कर कि किसी बात की जरूरत नहीं। यही तो तुम सदा से चाहते थे कि कुछ न करना पड़े, और मिल जाए। तुम बैठ गए कि चलो यह ठीक आदमी मिल गया, जो कहता हैः कुछ करना नहीं है। मगर कुछ नहीं तो तुम पहले से ही कर रहे थेः अब और क्या नया होगा?
और मैं भी तुमसे कहता हूंः करने से ध्यान नहीं मिलता। लेकिन करने से न करने की अवस्था मिलती है। और न करने की अवस्था में ध्यान उमगता है। जो खूब श्रम करता है, अपने को थका डालता है, अपने को पूरा श्रम में लगा देता है--एक दिन ऐसी घड़ी आ जाती है कि श्रम करते-करते शिखर पर पहुंच जाता है श्रम के; और उसके पार जाने का कोई उपाय नहीं होता। सब लगा लिया दांव पर, जो था। अब कौड़ी भी नहीं बचायी, श्वास भी नहीं बचाई, कण भी नहीं बचाया। उसी क्षण क्या होगा? उसके पार तो जाना हो नहीं सकता। आदमी गिर पड़ता है, भूमिसात हो जाता है। उसी भूमिसात हो जाने का नाम समर्पण है। उसी गिरने में परमात्मा का प्रसाद बरस जाता है। लेकिन बरसता उन्हीं पर है, जिन्होंने सारा श्रम लगा दिया, सुस्तों और काहिलों पर नहींं।
लेकिन कभी-कभी अच्छी बातें घातक हो सकती हैं। और अच्छी बातें मोह-जाल बना सकती हैं। इस तरह के लोगों से सावधान रहना! तुम्हें कुछ पता नहीं। तुम अपने अंधेरे में कुछ भी गलत-सलत पकड़ ले सकते हो। सच तो यह है कि जो तुम्हारा मन आसानी से पकड़ने को तैयार हो जाए उसके प्रति थोड़े सावधान रहना। क्योंकि तुम्हारा मन सत्य को आसानी से पकड़ने को तैयार नहीं होता; असत्य को ही आसानी से पकड़ने को तैयार होता है। जो बात आसान हो, जानना कि

उसमें कहीं कुछ असत्य पड़ा हुआ है, नहीं तो आसान न मालूम होती। तुम असत्य में पगे हो। असत्य तुम्हारी जीवन-चर्या है। जब भी कोई बात असत्य होती है, तुम्हें उसमें आकर्षण मालूम होता है, तुम्हारे साथ उसका छंद बैठ जाता है। सत्य तुम्हें चौंकाता है। सत्य तुम्हें झकझोरता है। सत्य तो बिजली का धक्का है। सत्य में तो तुम एकदम अस्तव्यस्त हो जाते हो, अराजक हो जाते हो। जो तुम्हें अराजक कर दे, जो तुम्हें तिलमिला दे, जो तुम्हें चोट और घाव से भर दे, जिसका वजन तुम्हारी छाती में छुरे की भांति चुभ जाए, जो तुम पर इतनी दया करता हो कि दया न करे, जो तुम्हारे प्रति इतना करुणावान हो कि कठोर हो सके, जो तुम्हारी गर्दन काटने में लग जाए--उसी के पास अगर बैठोगे तो कुछ होगा।
अब मेरे दो-चार संन्यासी हैं, जो यू. जी. कृष्णमूर्ति के पास जाते हैं।
वे किसलिए जाते हैं? ... क्योंकि यू. जी. कृष्णमूर्ति से आमने-सामने बैठकर मित्रों जैसी बात हो सकती है। तो उन्होंने मुझे कहा कि बड़े मानवीय हैं। उनके अहंकार को तृप्ति मिलती है। वे चाहते हैं मुझसे भी मित्रों जैसी बातचीत हो। मुझे कुछ अड़चन नहीं है। तुम मित्रों जैसी बातचीत करो। मुझे कोई अड़चन नहीं है लेकिन मैं तुम्हारे किसी काम का न रह जाऊंगा। बातचीत हो जाएगी। लेकिन अगर तुम मुझे मित्र समझ रहे हो, तो तुम मेरी सुनोगे नहीं। और तुम अगर मुझे मित्र समझ रहे हो, तो तुम सुन भी लोगे तो मानोगे नहीं।
वही तो अड़चन कृष्ण और अर्जुन के बीच गीता में खड़ी हुई। अर्जुन ने सदा उनको मित्र की तरह जाना था। वही अड़चन है। इसीलिए इतनी लंबी गीता कहनी पड़ी। वह मित्र की तरह ही जानता था। आज अचानक गुरु की तरह कैसे स्वीकार कर ले? और जो मित्र की तरह जिसे जाना है, वह आज अचानक कहने लगाः सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।... सब छोड़-छाड़ धर्म इत्यादि, और मेरी शरण आ! मैं मुक्तिदायी, मैं मुक्तिदाता! मैं तुझे मोक्ष ले चलूंगा!
अर्जुन चौंका होगा कि यह क्या हुआ कृष्ण के दिमाग को! मित्र हैं, संग-साथ खेले, संग-साथ उठे-बैठे, मेरे सारथी बने हैं मित्रता के ही कारण। अर्जुन ऊपर बैठा है, कृष्ण नीचे हैं। और आज कहते हैंः मामेकं शरणं ब्रज! तो अर्जुन ने कहाः अपना विराट रूप दिखलाओ, तो मानूंगा। यह वह पुराना मित्र दिक्कत दे रहा है।
मैं भी वर्षो तक लोगों के घरों में ठहरता रहा। लोगों से मैंने बहुत मित्रता के संबंध बनाए। लेकिन मैंने देखा, कि मेरी तरफ से तो मित्रता का संबंध ठीक है, मगर उनकी तरफ से घातक हो जाता है। मेरी तरफ से तो तुम मेरे मित्र ही हो, लेकिन तुम्हारी तरफ से अभी जरा देर है मित्र होने में। तुम्हारी तरफ से तो अभी तुम शिष्य हो, तो किसी दिन मित्र हो सकोगे। मित्र तो तुम तभी हो सकोगे, जब तुम वह देख लो जो मैंने देखा है; जब मेरी जैसी आंख तुम्हारे पास हो; जब मेरे जैसी भाव-दशा तुम्हारी हो; जब मेरे जैसा चैतन्य तुम्हारा हो। मित्र तो तुम तब हो सकोगे--तुम्हारी तरफ से।
मेरी तरफ से तो तुम मित्र ही हो। मेरी तरफ से तो तुम सभी बुद्ध पुरुष हो। मेरे प्रति लेकिन तुम्हारी धारणा अगर मित्र की है, तो तुम चूक जाओगे। लेकिन अहंकार को तृप्ति मिलती है। तुम किसी के पास गए। उसने मित्रता से तुमसे बातें कीं। तुम्हारा हाथ पकड़ा। तुमसे इस तरह का व्यवहार किया। तुम्हें खूब तृप्ति मिली। तुम बड़े प्रसन्न हुए कि एक सिद्ध पुरुष और मुझको मित्र मानता है, तो जरूर सिद्ध पुरुष मैं भी होना चाहिए! जब एक जाग्रत पुरुष मुझको मित्र मानता है, तो मैं भी जाग्रत ही हूं।
मेरे पास तुम आते हो तो मैं हजार अड़चनें खड़ी करता हूं। अभी मिलना चाहते हो तो नहीं मिलने देता। प्रयोजन है पीछे। दस दिन प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तब मैं तुम्हें मिलने देता हूं। अभी भी मिल सकता था, कोई अड़चन न थी। मिल ही रहा था वर्षो तक। लेकिन फिर मैंने पायाः समय खो जाएगा, मैं तुम्हारे किसी काम न आ सकूंगा। मुझे तुमसे अपने को दूर कर लेना पड़ा। और मुझे तुम्हारे और अपने बीच दीवालें खड़ी कर देनी पड़ीं, ताकि तुम्हें कीमत चुकानी पड़े पास आने की। और तुम पास तभी आ सको, जब तुम झुकने के लिए राजी होओ। क्योंकि तुम झुको, तो मेरी गागर में जो है, वह मैं तुम में डालूं। तुम खुलो, तो मैं तुम में प्रवेश करूं।

नहीं; तुम्हारी तरफ से मैत्री नहीं चलेगी। मेरी तरफ से मैत्री ठीक है। तुम्हारी तरफ से मैत्री खतरा हो जाएगी, आत्मघाती हो जाएगी।
मगर ये सस्ती बातें प्रभावित कर लेती हैं। और इन्हीं सस्ती बातों में आदमी भटक जाता है।
फिर, दो-चार-पांच लोग जानेवाले हैं उनके पास। कोई अर्थ भी नहीं है। अभी तो बाधाएं कैसी खड़ी करेंगे? अभी तो इसी मित्रता के बहाने सब चलेगा। संख्या क्या है? यू. जी. कृष्णमूर्ति को जानता कौन है? मगर कुछ लोग इसमें भी अर्थ मानते हैं, क्योंकि वे विशिष्ट हो जाते हैं। दो-चार आदमी किसी के पास पहुंच जाते हैं, तो वे दो-चार खास हो जाते हैं न! मेरे पास पचास हजार संन्यासी हैं, अब तुम्हारे खास होने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे खास होने का एक ही ढंग है अब कि तुम बिल्कुल ही साधारण हो जाओ, तो ही तुम यहां विशिष्ट हो पाओगे। यहां तुम विशिष्ट नहीं हो सकते। ये पचास हजार जल्दी ही पांच लाख हो जाएंगे, पचास लाख हो जाएंगे। यह संख्या रुकनेवाली नहीं है। इसमें तुम खोते चले जाओगे।
तो मेरे पास, यह निरंतर मुझे अनुभव हुआ, कई तरह के लोग आते हैं। कुछ अहंकारी आ जाते हैं। उनका मजा इतना ही है कि वे खास थे। जैसी ही मेरे पास लोग बढ़ जाते हैं, और वस्तुतः वैसे लोग आ जाते हैं जो ध्यान कर रहे हैं, समाधि में जा रहे हैं, प्रार्थना में लगे हैं, जो सच में जीवन-रूपांतरण कर रहे हैं--इन अहंकारियों की प्रतिष्ठा कम होने लगती है। इनके बीच और मेरे बीच उनकी संख्या बढ़ने लगती है, जो ध्यान कर रहे हैं। क्योंकि मैं उनके लिए हूं, जो ध्यान कर रहे हैं। तुम ऐसे ही औपचारिक मिलने आ गए। कुछ लोग हैं, वे कहते हैंः बस ऐसे आए थे, तो सोचा आपसे मिल आएं। मेरे पास वे लोग हैं जो अपना जीवन दांव पर लगा रहे हैं। तुम बस आए थे, सोचा कि मिल आएं, कुशल-समाचार पूछ आएं।
मैं कुशल हूं, समाचार क्या? तुम कुशल नहीं हो, समाचार क्या? दोनों बातें जाहिर हैं। न कुछ पूछने को है, न कुछ कहने को है। मैं कुशल हूं--सदा कुशल हूं। और तुम अकुशल हो--और सदा अकुशल हो। अब इसमें क्या पूछना है, क्या तांछना है? समय क्यों खराब करना है?
लेकिन ऐसे लोगों को कष्ट हो जाता है। वे जल्दी से किसी और की तलाश में
लग जाते हैं, कि कोई मिल जाए, जहां वे कुशल-समाचार कर सकें, औपचारिकताएं निभा सकें, जहां बैठ कर व्यर्थ की, फिजूल की बातें कर सकें; और जहां वे प्रमुख हो सकें, खास हो सकें।
मेरे पास खास होने का एक ढंग है कि तुम शून्य हो जाओ। मेरे पास सिद्ध होने का एक ही ढंग है कि तुम मिट जाओ। तुम मिटो तो हो सको।
लेकिन इस तरह के लोगों को अड़चन होती है। इसलिए मेरे अनुभव में यह आया
कि जो लोग अहंकार के कारण आ जाते हैं, वे जल्दी ही मुझसे विदा हो जाते हैं।
उनके अहंकार को कोई तृप्ति नहीं मिलती। उनको बड़ी चोट लगती है। वे चाहते थे कि मेरे कंधे पर हाथ रखते, मित्रता का व्यवहार करते, मैं उनसे मित्रता का व्यवहार करता।
मुझे कुछ अड़चन नहीं है। मेरे कंधे पर हाथ रखो, मुझे कुछ अड़चन नहीं है। मगर तुम मेरे कंधे पर जिस दिन हाथ रख लेते हो, उसी दिन मैं तुम्हारे लिए व्यर्थ हो गया। फिर तुम मुझे देख ही न सकोगे। तुम्हारी आंखें अंधी हो जाएंगी। तुम्हारा सारा परिप्रेक्ष्य खो जाएगा। तुम आओ तो मैं पूछ सकता हूं कि तुम्हारी पत्नी कैसी है, बच्चे कैसे हैं, फलां बीमार, ढिकां ठीक... । और तुम बड़े प्रसन्न होओगे। मगर क्या सार है? सार तो इसमें है कि मैं तुमसे कहूं कि तुम बिल्कुल ठीक नहीं हो! और कुछ करने का समय आ गया है, घड़ी आ गई है। और दिन पके जाते हैं, पीछे पछताओगे!

दूसरा प्रश्नः आपने गायत्री-मंत्र और नमोकार मंत्र के तोता-रटन की कहानी सुनायी। इस तोता-रटन को आप बंद करवाना चाहते हो। क्या यही गायत्री मंत्र है? क्या यही नमोकार मंत्र है?
अच्युत! ऐसा ही है। जहां सारे मंत्र शांत हो जाते हैं, वहीं असली मंत्र पैदा होता है। जो मंत्र तुम दोहराते हो, उस मंत्र का कोई मूल्य नहीं

है। तुम्हारी जबान से दोहराया गया, तुम्हारी जबान से ज्यादा मूल्यवान हो नहीं सकता है।
जिस ओंकार को तुम गुनगुनाते हो, तुम्हारा ओंकार तुमसे छोटा होगा। एक
और ओंकार है, जो तुम्हारे गुनगुनाने से पैदा नहीं होता--जिसकी गुनगुनाहट से तुम पैदा हुए हो। एक और ओंकार है, जिसका नाद सारे जगत को घेरे हुए है; जिससे जगत निर्मित हुआ है। उस ओंकार को सुनने के लिए गुनगुनाने की जरूरत नहीं है। उस ओंकार को सुनने के लिए सब गुनगुनाना बंद हो जाए, वाणी मात्र शांत हो जाए, विचार लीन हो जाएं, मन में कोई तरंग न रहे, तब अचानक तुम चकित होकर सुनोगे--एक संगीत बज रहा है भीतर! सदा से बजता रहा है। मगर तुम अपने शोरगुल से भरे थे और उसे सुन न पाए। और कभी-कभी सांसारिक शोरगुल से छूटते हो तो आध्यात्मिक शोरगुल से भर जाते हो। कोई आदमी बाजार के शोरगुल से भरा था। तेईस घंटे उससे भरा रहता है, फिर मंदिर में बैठ जाता है। वहां जा कर नमोकार पढ़ने लगता है या ओंकार का जाप करने लगता है या राम-राम, राम-राम की धुन लगा देता है। तुम शोरगुल से कब छूटोगे? शोरगुल बदल लिया। पहले सांसारिक शोरगुल था, अब आध्यात्मिक शोरगुल। मगर शोरगुल, शोरगुल है। कोई आध्यात्मिक शोरगुल नहीं होता, कोई सांसारिक शोरगुल नहीं होता। शोरगुल शोरगुल है।
अजपा सीखो। नानक ने कहा, कबीर ने कहाः अजपा सीखो। धरमदास ने कहाः अजपा सीखो। अजपा का अर्थ होता है, जो तुम्हारे जाप से पैदा नहीं होता। लेकिन तुम्हारे जब सब जाप बंद हो जाते हैं, छूट गई हाथ से माला, गिर गए हाथ के फूल, बुझ गई आरती, भूल गई मूर्ति, मंदिर, पूजा, प्रार्थना, शब्द खो गए, सब शांत हो गया। उस क्षण अचानक विस्फोट होता है। और ऐसा नहीं कि उस क्षण विस्फोट होता है। संगीत तो भीतर बज ही रहा था।
परमात्मा तुम्हारी वीणा पर खेल ही रहा है; तुम्हारी वीणा के तार छू ही रहा है। नहीं तो तुम जियोगे कैसे? तुम्हारा जीवन क्या है? जिस क्षण उसकी अंगुलियां तुम्हारी वीणा के तारों से अलग हो गईं, उसी क्षण तुम मर जाते हो। उसकी अंगुलियां तुम्हारी वीणा पर खेल रही हैं। वही तो तुम्हारा जीवन है--जीवन-संगीत है।
मगर एक बार सुनायी पड़ जाए, बस फिर अड़चन नहीं आती। फिर जब चाहो--"जब.जरा गरदन झुकाई, दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।" फिर तो जरा गरदन झुकाई और देख ली। जब मन हुआ, आंख को बंद किया एक क्षण को, और देख ली। बीच बाजार में चलते-चलते एक क्षण को सुनना चाहा, सुन लिया संगीत। फिर तुम कहीं भी रहो, उससे जुड़े हो। अजपा चलता है।
अच्युत! तुम ठीक ही कहते हो। गायत्री-मंत्र जब बंद हो जाते हैं, तभी गायत्री-मंत्र पैदा होता है। नमोकार जब खो जाता है, तभी नमोकार का जन्म है।

तीसरा प्रश्नः आपका प्रवचन सुनते-सुनते कभी-कभी आंखें गीली हो जाती हैं, और आंसू बह जाते हैं। तब मन और तनाव हलका हो जाता है। वैसा ही सक्रिय ध्यान में भी कभी-कभी अनुभव होता है। दोनों स्थितियां आनंदपूर्ण लगती हैं। प्रार्थना और ध्यान, संकल्प और समर्पण, दो अलग-अलग मार्ग में से कौन सा मार्ग चित्त-भंजन करेगा? मैं किस में डूब जाऊं? कृपया समझाएं।

पूछा है चित्तरंजन ने।
और दो ही बातें हैं। एक है जगत चित्तरंजन का, और एक जगत है चित्त-भंजन का। चित्तरंजन का अर्थ हैः मन के खिलावड़ में लगे हो; मन के राग में लगे हो; मन के रंग में लगे हो। चित्त-भंजन का अर्थ हैः मन टूटा, मन गया। मन के जो पार है, उसे उतरने का अवसर दिया।
और चित्तरंजन चेष्टा में लगे हैं। सम्यक उनकी चेष्टा है। और परिणाम
भी आने शुरू हो गए हैं। वसंत दूर नहीं होगा, पहले फूल खिलने लगे हैं। आषाढ़ के मेघ घिर आए हैं, वर्षा जल्दी ही होगी। चित्त-भंजन भी होगा। और आंसू शुभ लक्षण हैं--पहली बूंदाबांदी।

पूछते होः "आपका प्रवचन सुनते-सुनते कभी आंखें गीली हो जाती हैं, आंसू
बह जाते हैं।"
बहो उन आंसुओं में। आंसुओं से ज्यादा पवित्र मनुष्य के पास और कुछ भी नहीं है। आंसुओं से ज्यादा प्रार्थनापूर्ण भी मनुष्य के पास और कुछ नहीं है। तुम्हारे शब्द तो थोथे हैं। तुम्हारे आंसुओं में अमृत है। तुम जब कहते हो, वह तो कही ही बात होती है; तुम जब रोते हो, तब प्राणों की होती है। असल में आंसू आते ही तब हैं, जब तुम्हारे प्राणों में कुछ ऐसे भाव उठते हैं जो शब्दों में नहीं समाते; जिन्हें शब्दों में नहीं कहा जा सकता; जहां शब्द असमर्थ हो जाते हैं। जहां शब्द नपुंसक सिद्ध होते हैं, वहीं तो आंसू बह जाते हैं। भाव की दशा है आंसू।
और भाव विचार से गहरा है। भाव में डूबो! इस भावोन्माद को बढ़ने दो। ये आंसू तुम्हारी बाहर की आंखों को ही स्वच्छ नहीं करेंगे, ये भीतर की आंखों को भी स्वच्छ कर जाएंगे।
धरमदास ने कहा हैः साधारण आदमी तो ऐसा है, जिसकी चारों फूटी हैं। बाहर
की भी दो और भीतर की भी दो। तुम्हारे पास बाहर को देखने वाली आंख ही नहीं है, भीतर को देखनेवाली आंख भी है। लेकिन भीतर की आंख तो बंद पड़ी है सदियों से। उस पर तो ऐसी धूल जमी है कि लगता है अंधी ही हो गई। अब तो बाहर की आंख पर भी धूल जमने लगी है।
अब तो बाहर की आंख से भी कुछ ज्यादा सूझता नहीं है। बस काम चलाने लायक
रह गई है बाहर की आंख भी। पत्थर दिखाई पड़ता है, पत्थर में छिपा परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। तो बाहर की आंख भी कुछ खास नहीं देख रही। क्षुद्र को देखती है, व्यर्थ को देखती है; सार्थक से चूक जाती है।
आंसू, वैज्ञानिक कहते हैं, बाहर की आंख को स्वच्छ रखने की विधि है। धूल न जम पाए, तो आंसू आ जाते हैं। जरा सी एक कंकड़ी चली जाए, आंसू आ जाते हैं। आंसू कंकड़ी को निकालने का उपाय है। और तुम जानकर हैरान होओगे कि आंसू बहते तो कभी-कभी हैं, लेकिन आते चौबीस घंटे हैं। जब भी तुम पलक झपते हो, तब तुम्हारी पलक आर्द्र होती है और आंख को पोंछ जाती है। यह पोंछना चल रहा है।
अगर तुम्हारी पलक गीली न हो, तो तुम्हारी आंख जल्दी ही खराब हो जाएगी। आंसू सूख जाएं तो आंख भी सूख जाएगी।
यह पलक तुम झपते क्यों हो? यह इसलिए झपते हो कि प्रतिपल कुछ न कुछ आंख
पर जम रहा है। हवा में धूल के कण हैं--बड़े सूक्ष्म कण हैं। और आंख दर्पण है।
इसलिए पलक घूमती रहती है। पलक पूरे पल आंख को साफ करती रहती है। पलक गीली है। जैसे गीले कपड़े से कोई आईना पोंछ दे। तो प्रतिपल चौबीस घंटे तुम्हारी पलक गीली है। और गीली पलक काम कर रही है।
यह तो वैज्ञानिक कहता है, शरीर-शास्त्री कहता है कि आंसू का प्रयोजन है। इसलिए स्त्रियों की आंखें तुम्हें ज्यादा ताजी, ज्यादा रसपूर्ण, ज्यादा गहरी मालूम होंगी। क्योंकि स्त्रियां अभी भी आंसुओं की कला भूली नहीं हैं; पुरुष भूल गया है। पुरुष को एक अकड़ छा गयी है। पुरुष को एक भ्रांति पैदा हो गयी है कि पुरुष को रोना नहीं चाहिए। यह एक दुर्भाग्य की बात है। न मालूम किन नासमझों ने पकड़ा दिया है कि पुरुष को रोना नहीं चाहिए। छोटे बच्चे तक को तुम नहीं रोने देते। उससे कहते होः "बंद करो, क्या लड़की है?" और छोटे लड़के को भी अकड़ आ जाती है। लड़की तो वह होना नहीं चाहता। क्योंकि स्त्री की ऐसी दुर्दशा तुमने कर रखी है कि स्त्री होना अपमानजनक मालूम पड़ता है।
मैंने सुना है, एक घर में एक लड़का अपनी मां से बहुत नाराज हो गया। ज्यादा नहीं, कोई नौ साल का था। उसने बाथरूम में अपने को बंद कर लिया और दरवाजा ही न खोले। मां बहुत घबड़ा गई। दरवाजा पीटा मां ने, वह बोले ही नहीं। वह बिल्कुल सन्नाटे में खड़ा हो गया, बिल्कुल ध्यानस्थ हो गया भीतर। मां की घबड़ाहट बढ़ गई। पति दफ्तर गया हुआ है। क्या करे, क्या न करे? उसने पति को फोन किया। उसने कहाः भई समझाओ, निकाल लो। अब मैं आकर भी क्या करूंगा, अगर वह नहीं खोलता? जब कोई उपाय न रहा तो उसे याद आया कि पड़ोस में एक पुलिसवाला रहता है। शायद वह डरा-धमका कर निकाल सके। तो उसने पुलिसवाले को खबर की।

पुलिसवाला आया। वह पास गया, उसने महिला से पूछा कि कौन है? कितनी उमर का है? उसने कहाः मेरा लड़का है, नौ साल का है। पुलिस वाला पास गया। उसने दरवाजे पर दस्तक दी और कहाः बिटिया, बाहर निकल आ।
वह लड़का एकदम दरवाजा खोल कर निकला और उसने कहाः तुमने समझा क्या है? मैं लड़का हूं, लड़की नहीं!
मगर इतनी सी बात उसे बाहर ले आई। पुलिसवाला जानता है लोगों की मूढ़ताएं। उन्हीं से तो उसका चौबीस घंटे काम पड़ता है। उसने तरकीब निकाल ली--एक मनोवैज्ञानिक तरकीब कि बिटिया, बाहर आ जा। लड़का गुस्से में आ गया। उसने कहा, हद हो गई! कौन मुझे बिटिया कह रहा है?
छोटे से छोटे बच्चे को तुम जहर से भर देते हो। तुम उससे कहते होः तुम लड़की थोड़े ही हो!
प्रकृति ने पुरुष और स्त्री की आंख में भेद नहीं किया। दोनों में अश्रु की ग्रंथियां बराबर हैं। इसलिए पुरुष को भी रोना उतना ही आना चाहिए जितना स्त्री को। नहीं तो आंसू की ग्रंथि उतनी न बनाई होती प्रकृति ने, अगर पुरुष को रोना नहीं था। लेकिन पुरुष ने अपने को रोक लिया ह, अपने आंसू घोटकर पी गया है। उसकी वजह से पुरुष की आंख से गरिमा खो गई है--रूखी-रूखी हो गई है; मरुस्थल जैसी हो गई है। गहराई खो गई है। जादू खो गया है। आंख में चमक नहीं रही है, चमत्कार नहीं रहा है।
तुम जानकर चकित होओगे कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में दुगनी संख्या में पुरुष पागल होते हैं स्त्रियों से; और दुगनी संख्या में मानसिक रोगों से ग्रस्त होते हैं; और दुगनी ही संख्या में पुरुष आत्महत्या करते हैं। और इसके बहुत कारण हैं। और उनमें एक कारण यह भी है कि पुरुष रोना भूल गया है। स्त्री को जब कभी कोई भाव बहुत घेर लेता है तो वह रो लेती है। रोकर हलकी हो जाती है। आंसुओं से भाव बह जाता है।
पुरुष के पास भाव को बहाने का कोई उपाय नहीं है। सब भाव इकट्ठे होते जाते हैं, इकट्ठे होते जाते हैं--और एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि झेलना असंभव हो जाता है। फिर कूद पड़े सत्रहवीं मंजिल से। थोड़ा रो लेते तो हलके हो जाते। चित्तरंजन, ठीक हो रहा है।
और मैं तुमसे कहता हूंः जिस तरह बाहर की आंख धुलती है आंसू से, उसी तरह भीतर की आंख भी धुलती है आंसू से। क्योंकि हमारी सब चीजें दोहरी हैं। शरीर बाहर है, आत्मा भीतर है। दो आंखें बाहर हैं, दो आंखें भीतर हैं। दो कान बाहर हैं, दो कान भीतर हैं। और जैसे आंसू का एक बहिरंग रूप है, ऐसे ही आंसू का एक अंतरंग रूप है। प्रत्येक चीज बाहर और भीतर से बनी है। तो बाहर का जो रूप है आंसू का जल, वह तो बाहर की आंख को धोता है। और भीतर का जो रूप है, भाव, वह भीतर की आंख को धोता है।
रो सको अगर दिल खोल कर, तो पर्दे उठ जाएं।
ढलके-ढलके आंसू ढलके
छलके-छलके सागर छलके
दिल के तकाजे उनके इशारे
बोझल-बोझल हलके-हलके
देखो-देखो दामन उलझा
ठहरो-ठहरो सागर झलके
उनका तगाफुल उनकी तवज्जा
इक दिल, उस पर लाख तहलके
उनकी तमन्ना, उनकी मुहब्बत देखो सम्हल के, देखो सम्हल के गम ने उठाए सैकड़ों तूफां दिल ने बसाए लाख महल के
पल में हंसाओ, पल में रुलाओ पल में उजाले, पल में धुंधलके हमने न समझा, तुमने न जाना दिल ने मचाए लाख तहलके
लाख मनाया, लाख भुलाया

नैन कटोरे भर-भर छलके
कितने उलझे कितने सीधे
रस्ते उनके रंगमहल के
कड़ियां झेलीं पापड़ बेले
झलके अब तो मुखड़ा झलके!
कितने उलझे कितने सीधे--रस्ते उनके रंगमहल के!
प्रभु का रास्ता बड़ा सीधा है--और बड़ा उलझा भी। बुद्धि से चलो तो बहुत उलझा, भाव से चलो तो बड़ा सीधा। विचार से चलो तो बहुत दूर, भाव से चलो तो बहुत पास। आंख से तलाशो तो बहुत दूर, आंसुओं से तलाशो तो बहुत निकट। चित्तरंजन, आंसुओं को धन्यभाव समझो। तुम्हारे संस्कार, तुम्हारी आदतें, तुम्हारी अब तक की धारणाएं, आंसुओं को रोकने की चेष्टा करेंगी। तुम धारणाओं की मत सुनना। तुम इन आंसुओं को बरसने देना। इनको तल्लीनता से आने देना। इसके साथ एकात्म हो जाओ। ये आंसू ही नहीं हैं, ये तुम्हारे हृदय से उमगे हुए फूल हैं।
"आपका प्रवचन सुनते-सुनते कभी-कभी आंखें गीली हो जाती हैं और आंसू बह जाते हैं तब तन और मन हल्का हो जाता है। तनाव हल्का हो जाता है। वैसा ही सक्रिय ध्यान में भी कभी-कभी अनुभव होता है। दोनों स्थितियां आनंदपूर्ण लगती हैं। "
इसलिए प्रश्न उठा हैः प्रार्थना और ध्यान, संकल्प और समर्पण, दो अलग-अलग मार्ग में से कौन सा मार्ग चित्त-भंजन करेगा?
कुछ लोग हैं जिन्हें मार्ग चुनना पड़ेगा; कुछ लोग हैं, जिन्हें चुनने
की जरूरत नहीं। कुछ लोग हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से या तो ध्यान का मार्ग चुनना पड़ेगा या प्रार्थना का मार्ग। वे कौन लोग हैं जिन्हें इस तरह का चुनाव करना पड़ता है? और कुछ लोग हैं जिन्हें चुनाव की जरूरत नहीं है--जो दोनों को साथ-साथ आत्मसात कर लेंगे। वे कौन लोग हैं जो दोनों को एक साथ आत्मसात कर सकते हैं?
ख्याल करना, ऐसे लोग हैं जो नब्बे प्रतिशत बौद्धिक हैं, और दस प्रतिशत हार्दिक। इनके लिए तो उचित होगा कि ये ध्यान का मार्ग चुनें। क्योंकि नब्बे प्रतिशत है, वही मार्ग बन सकता है। कुछ लोग हैं जो नब्बे प्रतिशत भाव हैं, और दस प्रतिशत विचार। उनके लिए तो स्पष्ट है कि वे प्रार्थना का मार्ग चुनें। लेकिन ऐसे लोग भी हैं, जो पचास-पचास प्रतिशत हैं, या करीब-करीब पचास-पचास प्रतिशत। इकावन, उनचास प्रतिशत--इस तरह बंटाव है जिनका--कि पचास प्रतिशत बुद्धि और पचास प्रतिशत हृदय। उनके लिए चुनाव उचित नहीं है। उनके लिए चुनाव महंगा पड़ जाएगा। वे जो भी चुनेंगे, वही गलत होगा। क्योंकि अगर उन्होंने ध्यान चुना तो पचास प्रतिशत उनके भीतर अधूरा रह जाएगा। और यह बड़ा अधूरापन है। प्रार्थना चुनी तो भी अधूरा रह जाएगा।
चित्तरंजन उन थोड़े से लोगों में हैं, जो पचास-पचास प्रतिशत बंटे हुए हैं। चुनने की जरूरत नहीं। तुम दोनों में जाओ। तुम ध्यान भी करो, तुम प्रार्थना भी करो। तुम दोनों में एक साथ डूबो, तो ही तुम्हारा परिपूर्ण चित्त-भंजन हो सकेगा।

चौथा प्रश्नः भगवान श्री, धन्यवाद! चैतन्यकीर्ति के प्रणाम!

चैतन्यकीर्ति! धन्यवाद तो प्यारा है, मगर अभी समय आया नहीं। धन्यवाद देने का समय आएगा, अभी आया नहीं। अभी कुछ ही नहीं। अभी धन्यवाद किस बात का दे रहे हो?
मेरी बातों में रस आए, इतने से धन्यवाद देने की कोई जरूरत नहीं। मेरी बातें अच्छी भी लगें, तो क्या होगा? जब तक मेरी बातें तुम्हारे भीतर घट न जाएं... धन्यवाद तो उस दिन देना।
प्रतीक्षा करो अभी। थोड़ी राह देखो। मैं जो कह रहा हूं, उसमें उतरो। इतनी जल्दी धन्यवाद नहीं। यहां कोई औपचारिकता नहीं निभानी है।
"धन्यवाद" मूल्यवाद शब्द है। इसका ऐसे ही उपयोग नहीं करना। अक्सर ऐसा
हो जाता है कि मूल्यवान शब्दों का हम ऐसे ही उपयोग करने लगते हैं, तो उनका

अर्थ ही खो जाता है। हमारे पास जितने मूल्यवान शब्द हैं, हमने सबको खराब कर दिया। प्रेम को खराब कर दिया--इतना बहुमूल्य शब्द! शायद उसके पार परमात्मा ही एक शब्द है, जो उससे ज्यादा बहुमूल्य है। मगर उसको खराब कर दिया। किसी को आईसक्रीम से प्रेम है। किसी को कार से प्रेम है। किसी को कपड़ों से प्रेम है। कोई कहता हैः मुझे मेरे कुत्ते से प्रेम है।
तुमने प्रेम जैसी महत धारणा को कहां जोड़ दिया? पसंदगियों को प्रेम कहने लगे! आईसक्रीम पसंद हो सकती है, मगर प्रेम क्या है? प्रेम तो बड़ा शब्द है, बहुमूल्य शब्द है। अगर इसका ऐसा उपयोग करोगे, तो निश्चित ही यह विकृत हो जाएगा। फिर किसी स्त्री से कहोगे। मुझे तुमसे प्रेम है। वह सोचेगीः होगा वैसे ही, जैसे आईसक्रीम से है। फिर अर्थ कहां रहा प्रेम का? फिर तुम परमात्मा से एक दिन कहोगेः मुझे तुम से प्रेम है। परमात्मा मुंह फेर लेगा। वह कहेगाः होगा उसी तरह, जिस तरह तुम्हें अपने कुत्ते से है। तुम्हारे प्रेम का मूल्य ही कितना है?
ऐसा ही शब्द "ईश्वर" है। बहुमूल्य शब्द है। उसका हमने इतना उपयोग किया कि खराब कर दिया। हर बात में ईश्वर को खींच लाते हैं। छोटी-छोटी बात में उसे खींच लाते हैं। इतने पवित्र शब्दों का उपयोग बहुत सोचकर, समझक र, समय पर करना चाहिए।
यहूदियों की परंपरा ठीक थी। उनकी परंपरा यह थी कि ईश्वर शब्द का उपयोग ही न किया जाए। अब भी अगर वह ईश्वर शब्द का उपयोग करते हैं, अंग्रेजी में गाड लिखते हैं, तो "ओ" छोड़ देते हैं। "जी" हलंत "डी"; "ओ" नहीं लिखते बीच में। सिर्प इशारा, कि ईश्वर की तरफ इशारा कर रहे हैं। पूरे ईश्वर के शब्द को तो कैसे उपयोग करें? अभी हमारी जबान कहां? अभी हमारे पास हृदय कहां कि हम ईश्वर शब्द का उपयोग करें? जिस दिन जानेंगे, उस दिन कर सकेंगे। यहूदियों में एक पुरानी परंपरा थी--बड़ी प्रीतिकर है और बड़ी महत्वपूर्ण है--कि यहूदियों का जो सबसे बड़ा सदगुरु होता था, वर्ष में एक दिन जेरुसलेम के बड़े मंदिर में, एक अंतर-कक्ष था जहां कोई भी नहीं जा सकता था, जो उनके बीच सबसे ज्यादा ज्ञानी और सबसे ज्यादा जाग्रत पुरुष होता था, वर्ष में एक दिन, विशेष दिन पर, सारे यहूदी इकट्ठे होते जेरुसलेम के मंदिर में, लाखों की भीड़ लगती और वह सदगुरु भीतर जाता। सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिए जाते। फिर वह अंतर-कक्ष में जाता, वहां भी द्वार दरवाजे बंद कर दिए जाते और वहां उस एकांत में जहां कोई भी सुन नहीं सकता था, वह ईश्वर नाम का उच्चारण करता। बस एक बार, फिर चुपचाप बाहर आ जाता। बाहर सारे लोग शांति से प्रतीक्षा करते। वह उनकी तरफ से उच्चारण कर रहा था। एक बार वर्ष में! इतना भी हो जाए तो बहुत। और जो कर सके, वही करे।
यह परंपरा महत्त्वपूर्ण है। यह सिर्प इतनी ही बात कह रही है कि इतने परम शब्दों का उपयोग जितना कम हो सके उतना अच्छा।
धन्यवाद कीमती शब्द है। जब तक धन्य न हो जाओ, तब तक कैसे उसका उपयोग करोगे? अंग्रेजी के "थैंक्यू" शब्द का अनुवाद नहीं है "धन्यवाद।" उसके लिए "शुक्रिया" ठीक है। "धन्यवाद" बड़ा कीमती शब्द है।... धन्यता! और धन्यता तो एक ही है, धन्यताएं बहुत नहीं हैं। धन्य तो कोई तभी होता है, जब ध्यान उत्पन्न होता है। धन्य तो कोई तभी होता है, जब भीतर धन उपलब्ध होता है। धन्य तो कोई तभी होता है, जब भीतरी साम्राज्य मिलता है। धन्य तो परमात्मा को पाकर ही कोई होता है, और नहीं होता।
तो चैतन्यकीर्ति! अभी नहीं। तुम तो धन्यवाद करते हो, मैं अभी नहीं लेता। अभी सम्हालो, अभी इसे और गहराओ। अभी इसमें और पूजा जोड़ो, और प्रार्थना डालो। अभी इसमें और प्राण का पसारा करो। अभी इसकी जड़ें और फैलने दो तुम्हारे भीतर। अभी और फूल आने दो। अभी और गंध उठने दो। जब ठीक समय आ जाएगा, तब उसका उपयोग करना। और तब शायद उपयोग कर भी न सको। तब शायद मौन में झुक जाओ। शायद कहना उचित ही न मालूम पड़े।
बोधिधर्म भारत वापिस लौटता था। उसके चार शिष्य थे चीन में। भारत वापिस लौटते वक्त उसने चारों को बुलाया। शिष्य तो उसके लाखों थे, मगर वे विद्यार्थी रहे होंगे। लेकिन शिष्य चार थे, जो सच में झुके थे। उसने चारों

को बुलाया और उनसे पूछा कि अब मैं जा रहा हूं। एक-एक वाक्य में तुमने जो अनुभव किया हो सत्य, वह मुझे कह दो।
पहले शिष्य ने खड़े होकर कुछ कहा। उसने कहा कि सत्य विराट है, असीम है, अव्याख्य है। बड़ी दार्शनिक बातें कहीं। बोधिधर्म ने कहाः तेरे पास मेरा मांस है।
दूसरे ने कहाः सत्य अनुभव है, दर्शन नहीं। न तो व्याख्य कह सकते हैं, न अव्याख्य। प्रतीति है, साक्षात्कार है।
बोधिधर्म ने कहाः तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।
तीसरे ने कहाः सत्य को प्रकट करने का एक ही उपाय है--मौन।
बोधिधर्म ने कहाः तेरे पास मेरा रक्त है।
और चौथी एक स्त्री थी। जब बोधिधर्म ने उसकी तरफ चेहरा किया, वह स्त्री झुकी और बोधिधर्म के चरणों पर गिर पड़ी। कुछ भी उसने कहा नहीं। बोधिधर्म ने उसे उठाया और कहाः तेरे पास मेरी आत्मा है।
कहना क्या है? यह भी कहना कि सत्य अव्याख्य है, व्याख्या हो गई। यह कहना कि सत्य अनुभव है, शब्द हो गया। यह कहना कि सत्य तो मौन में ही कहा जा सकता है, तो फिर इतना भी क्यों कहा? मौन तो खंडित हो गया। चौथे से बोधिधर्म ने कहाः तेरे पास मेरी आत्मा है।
जल्दी न करो चैतन्यकीर्ति। यहां मैं चाहता हूं ऐसे सैकड़ों लोग, जिनसे मैं कह सकूंः तुम्हारे पास मेरी आत्मा है। और यह घटेगा। इसके मार्ग पर लोग चलने शुरू हो गए हैं। मगर प्रतीक्षा करो और धैर्य रखो।
तुम्हारे मन में अभी देखता हूं, तो अभी मैं ऐसा कुछ भी नहीं पाता कि तुम धन्यवाद कर सको। धन्यवाद का कोई कारण नहीं पाता। तुम प्रसन्न हो यहां मेरे पास होकर, मगर यह तो गौण बात है। तुम यहां सुखी हो मेरे पास होकर, मगर इसका कोई मूल्य नहीं है। मैं यहां तुम्हें सुख देने को नहीं हूं। मैं यहां तुम्हें सत्य से कम और कुछ भी नहीं देना चाहता। इससे कम में मैं राजी नहीं होने वाला। इससे कम में मैं राजी हुआ, तो मैंने तुम्हें प्रेम ही नहीं किया। मैं तुम्हें खीचूंगा और खींचूंगा, आखिरी दम तक खींचूंगा। जब तक कि तुम्हारे भीतर से सत्य का ही संगीत न जन्म जाए, तब तक तुम्हारे तारों को कसूंगा। तुम्हें ठोकूंगा, पीटूंगा। तुम्हें बहुत चोटें पहुंचेंगी। तुम बहुत तिलमिलाओगे भी। तुम बहुत बार भाग भी जाना चाहोगे। मगर वह सब करना ही होगा। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। सस्ते में मैं राजी नहीं हो सकता। तुम जरा कठिन आदमी के साथ दोस्ती बना लिए हो।
तुम्हारे भीतर अभी देखता हूं तो अभी तो बहुत विचारों का, वासनाओं का, इच्छाओं का जाल है वहां। अभी तो तुम बहुत छोटी-छोटी बातों से भरे हो। अभी बड़ी बातों की जगह भी नहीं है। अभी धन्यवाद कहां?
देख तू सुर्मई आकाश पै तारों का निखार
रात की देवी के माथे पै चुनी है अफ्शां
या कुछ अश्कों के चराग
हैं किसी राहगुजर में लर्जां
आह यह सुर्मई आकाश, यह तारों के शरार
यह मेरे दिल को ख्याल आता है
दम अंधेरे में घुटा जाता है
क्यों न ईवाने-तसव्वुर में जला लूं शमएं बरबतो-चंगो-रबाब
मुंतजिर हैं मेरे मिजराब की एक जुंबिश के जिंदगी क्यों फकत एक आहे-मुसलसल ही रहे क्यों न बेदार करूं वो नग्मे
वक्त भी सुन के जिन्हें थम जाए
रहगुजारों में ये बहता हुआ खूं
मौत के साए तले सिसकियां भरती है हयात
इस उमड़ते हुए तूफां से किनारा कर लूं
ये सिसकती हुई लाशें, ये हयाते मुर्दा
ये जबीनें जिन्हें सज्दों से नहीं है फुरसत

ये उमंगें जिन्हें फाकों ने कुचल डाला है यह बिलकती हुई रूहें, ये तड़पते हुए दिल इन ढकलते हुए अश्कों को चुरा कर मैं भी अपने ईवाने-तसव्वुर में चरागां कर लूं देखकर रात की देवी का सिंगार
वहम आता है मगर
नग्मः-ओ नै का सहारा लेकर
जिंदगी चल भी सकेगी कि नहीं?
इन सितारों की दमकती हुई कंदीलों से
रात के दिल की सियाही भी मिटेगी कि नहीं?
आकाश को देखा है--तारों से भरा! ऐसे ही तारों से तुम भी भर सकते हो। रात चुनरी देखी आकाश की! ऐसी ही चुनरी तुम्हारा भी परिधान बन सकती है
देख तू सुर्मई आकाश पै तारों का निखार
रात की देवी के माथे पै चुनी है अफ्शां
रात की देवी के माथे पर चुन्नी है तारों की।
या कुछ अश्कों के चराग। या आंसुओं के टिमटिमाते दीपक।
हैं किसी राहगुजर में लर्जा
और यह सुर्मई आकाश यह तारों के शरार
यह मेरे दिल को ख्याल आता है
दम अंधेरे में घुटा जाता है
लेकिन आदमी अंधेरे में रहता है। आकाश को बुलाता नहीं, निमंत्रण नहीं देता। इससे भी बड़ा आकाश तुम्हारे भीतर छिपा है। इससे भी प्यारे तारों का जलसा तुम्हारे भीतर होने को रुका पड़ा है। बगिए हैं बाहर बहुत और फूल हैं बहुत--मगर नहीं कुछ मुकाबले उनके, जो भीतर खिलते हैं। बाहर के कमल सिर्प फीके कमल हैं। कमल हैं भीतर के, जो खिलते हैं तो फिर मुर्झाते नहीं। धन्यवाद तो तब, जब भीतर के कमल खिल जाएं। धन्यवाद तो तब, जब भीतर तुम्हारे प्राण भी तारों से भरी चुनरी को ओढ़ लें।
दम अंधेरे में घुटा जाता है
अभी तो दम अंधेरे में घुट रहा है।
क्यों न ईवाने-तसव्वुर में जला लूं शमाएं
सोचो! क्यों अपने ध्यान-रूपी प्रासाद में हम बोध की, संबोधि की शमाएं
न जला लें, दीए न जला लें?
क्यों न ईवाने-तसव्वुर में जला लूं शमाएं
बरबतो-चंगो-रबाब
और क्यों न उठा लें सितार और खंजड़ी? क्यों न भीतर का सितार छेड़ें? क्यों न भीतर की खंजड़ी बजे!
क्यों न ईवाने-तसव्वुर में जला लूं शमाएं
बरबतों-चंगो-रबाब
मुंतजिर हैं मेरे मिजराब की इक जुंबिश के
.जरा-सा इशारा चाहिए तुम्हारी तरफ से, छिड़ जाएगा संगीत! नृत्य उठ बैठेगा। मदिरालय खुल जाएगा।
मुंतजिर हैं मेरे मिजराब की इक जुंबिश के
जिंदगी क्यों फकत इक आहे-मुसलसल ही रहे
क्यों जिंदगी को एक लंबा सिलसिला बना रखा है--दुख का, आह का, शिकायत का!
और अभी चैतन्यकीर्ति, तुम्हारी जिंदगी एक आह है--एक मुसलसल आह!
क्यों न बेदार करूं वो नग्मे
तुम्हारे भीतर गीत पड़े हैं, जो मुक्त होना चाहते हैं, जागना चहते हैं, सोए हैं जगाओ अपने भीतर पड़े गीतों को।
क्यों न बेदार करूं वो नग्मे
वक्त भी सुन के जिन्हें थम जाए
और निश्चित ऐसा होता है। वक्त को मैंने थमते देखा है, इसलिए तुमसे कहता हूंः वक्त निश्चित थम जाता है। जब भीतर का गीत जगता है, वह भीतर का मंत्र फूटता है, जिसके लिए "अच्युत" ने प्रश्न पूछा है। जब भीतर का नमोकार

फूटता है, ओंकार का नाद होता है, अनाहत की अभिव्यक्ति होती है--वक्त रुक जाता है। सदा के लिए रुक जाता है! फिर वक्त से पहचान मिट जाती है। फिर न कोई अतीत होता है, न कोई भविष्य होता है, न कोई वर्तमान होता है। फिर सिर्प शाश्वतता होती है।
मुंतजिर हैं मेरे मिजराब की इक जुंबिश के
जिंदगी क्यों फक्त इक आहे-मुसलसल ही रहे
क्यों न बेदार करूं वो नग्मे
वक्त भी सुन के जिन्हें थम जाए
रहगुजारों में ये बहता हुआ खूं
मौत के साए तले सिसकियां भरती है हयात
अभी तो जिंदगी मौत के नीचे दबी है। अभी तो मौत से मुक्त नहीं हुई।
इस उमड़ते हुए तूफां से किनारा कर लूं
ये सिसकती हुई लाशें, ये हयाते मुर्दा
यह मृतकों जैसा जीवन! ये रास्तों पर चलते लोग देखते हो? ये चलती हुई लाशें हैं बस। जब तक किसी ने परमात्मा को नहीं जाना, तब तक सब मुर्दा हैं। उसको जाग कर, देख कर, जीकर ही जीवन उपलब्ध होता है। उसके अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं है।
ये जबीनें जिन्हें सज्दों से नहीं है फुरसत
ये उमंगें जिन्हें फाकों ने कुचल डाला है
ये बिलकती हुई रूहें ये तड़पते हुए दिल
इन ढलकते हुए अश्कों को चुराकर मैं भी
अपने ईवाने-तसव्वुर में चरागां कर लूं
देखकर रात की देवी का सिंगार
वहम आता है मगर
ऐसे विचार तुम्हारे भीतर भी उठते हैं। कभी किसी बुद्ध को देखकर तुम्हारे भीतर भी उठता है कि ऐसा आकाश मैं भी सजा लूं। कभी किसी महावीर के पास से गुजर कर, तुम्हें भी उनकी सुगंध पकड़ जाती है। तुम्हारे नासापुट थरथराने लगते हैं। तुम्हारे भीतर भी कोई सोई हुई लहर जग जाती है। किसी क्राइस्ट या मुहम्मद के पास तुम्हारे भीतर सोया हुआ गीत फन उठाने लगता है, सिर उठाने लगता है। मगर तब वहम पकड़ते हैं।
देखकर रात की देवी का सिंगार
वहम आता है मगर,
नगमः-ओ नै का सहारा लेकर
संगीत और वाद्य का सहारा लेकर...
जिंदगी चल भी सकेगी कि नहीं?
यही झंझट है। यह संदेह उठता ही है।
वहम आता है मगर
नगमः-ओ-नै का सहारा लेकर
जिंदगी चल भी सकेगी कि नहीं?
इन सितारों की दमकती हुई कंदीलों से
रात के दिल की सियाही भी मिटेगी कि नहीं?
और यही संदेह अड़चन बन जाते हैं, बाधा बन जाते हैं। मेरे पास हो। रात के आकाश को देखो। तारों-भरे आकाश को देखो। और देखने से ही काम न होगा। दर्शक होने से ही काम न होगा। तुम्हें भी ऐसा आकाश उपलब्ध हो सकता है। तुम भी इसके हकदार हो, इसके मालिक हो। अपने हक का दावा करो। यह तुम्हारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। यह स्वतंत्रता तुम्हारी भी होनी चाहिए। यह गरिमा तुम्हारी भी होनी चाहिए।
देखते हो, मैंने तुम्हें नाम दिया हैः चैतन्यकीर्ति! उसका अर्थ होता हैः चेतना का यश। तुम्हारे भीतर पड़ा है, उठाना है। इसीलिए तो ऐसे आशा से भरे नाम तुम्हें दिए हैं कि तुम्हें याद आती रहे, कि जब तक चैतन्य की कीर्ति उपलब्ध न हो जाए, जब तक वैसा यश न मिले, वैसी गरिमा और गौरव न मिले, तब तक रुकूंगा नहीं।

धन्यवाद का दिन जरूर आएगा, मगर श्रम करना होगा बहुत। पत्थर मार्ग में हैं बहुत, हटाने होंगे। राह तोड़नी होगी। अभी तो गंगा गंगोत्री पर है।
धन्यवाद तो तब देना, जब गंगा सागर पहुंच जाए। अभी तो बहुत यात्रा शेष है।
छोटी-छोटी बातों के लिए धन्यवाद देना ही मत। नहीं तो बड़ी बात का जब समय आएगा, तब धन्यवाद शब्द बड़ा ओछा हो जाएगा, उसमें कुछ अर्थ नहीं रह जाएगा। इसे सम्हाल कर रखो। यह कीमती शब्द है, प्यारा शब्द है।
तुमने ख्याल किया, पश्चिम में एक रिवाज है धन्यवाद देने का--हर छोटी बात में। इतना औपचारिक हो गया है, इतना यांत्रिक हो गया है कि कभी-कभी बेहूदा भी हो गया है। बेटा मां को भी धन्यवाद देता है। बेटा बाप को भी धन्यवाद देता है। छोटी-छोटी बातों के लिए! मां ने एक कप चाय दे दी, और बेटा धन्यवाद देता है। भारत में अड़चन मालूम होती है। यहां तुम्हारी मां ने तुम्हें चाय का एक प्याला दिया, धन्यवाद दो, तो वह चौंक ही जाएगी। शायद उसके हाथ से प्याला ही गिर जाएगा कि तुम क्या कह रहे हो? धन्यवाद! होश में हो?
नहीं; यहां हमने थोड़े ज्यादा नाजुक चीजों को पहचाना है। मां को धन्यवाद नहीं दिया जा सकता। औपचारिकता मां और बेटे के बीच नहीं लायी जा सकती? यह होगी, ठीक है बाजार और दुनिया में ठीक है, लेकिन जहां बहुत गहरे संबंध हैं वहां यह बात नहीं लाई जा सकती। तुम अपनी पत्नी को धन्यवाद दोगे? तो वह सोचेगी कि आज जरूर कुछ गलती हो गई। नहीं तो धन्यवाद क्यों दिया? पत्नी तुम्हें धन्यवाद देगी? तुम अपने बेटे को धन्यवाद दोगे?
नहीं; जितना गहरा प्रेम होता जाता है, उतना धन्यवाद मुश्किल होता जाता है, क्योंकि औपचारिकता मुश्किल होती चली जाती है।
मुझसे तुम्हारा नाता उपचार का नहीं होना चाहिए। यह कोई औपचारिक रिश्ता नहीं है। और धन्यवाद देकर तुम छूट न सकोगे--इतनी आसानी से छूट न सकोगे। तुम क्या समझे कि बात खत्म कर ली, धन्यवाद दे दिया, उऋण हो गए? कोई उपाय नहीं है। इस देश के शास्त्र कहते हैंः कठिन है मां का ऋण चुकाना, लेकिन फिर भी चुकाया जा सकता है। गुरु का ऋण तो चुकाया ही नहीं जा सकता। गुरु का ऋण चुकाने का तो एक ही उपाय शास्त्रों ने कहा है--वह यह कि जो गुरु से पाया है उसे बांटना। जो मिला है, उसे लुटाना। जो तुम्हें मिला है, जब बहुतों को तुम मिला दो, तो समझना कि चलो कुछ गुरु के काम आए।
तो पहले तो स्वयं जागो, फिर जगाओ। धन्यवाद की फिक्र में मत पड़ो। जब घड़ी आएगी उसकी, तब तुम्हारे हृदय का स्वर अपने-आप कह देगा। वाणी भी न आवश्यक होगी। तुम्हारी आंखें कह जाएंगी। मौन में फलित हो जाएगा। शरमिंदगीए-कोशिशे-नाकाम कहां तक?
महरूमिए-तकदीर का इल्जाम कहां तक?
दुनिया को जरूरत है तेरे इज्मे जवां की
सर गुश्ता रहेगा सिफ्ते-जाम कहां तक?
लैला-ए-हकीकत से भी हो जा कभी दो-चार
ख्वाबों की हसीं छांव में आराम कहां तक?
रुख गर्दिशे-दौरां का पलट सकता है तू खुद
नादां गिलए-गर्दिशे-ऐय्याम कहां तक?
जुज-वहम नहीं, कैदे-रहो-रस्मे जमाना
ऐ ताइरे आजाद! तहे-दाम कहां तक?
इस संसार के सारे रस्म-रिवाज, औपचारिकताएं, बस भ्रम है। जुज-वहम नहीं, कैदे-रहो-रस्मे जमाना, ऐ ताइरे आजाद! ... हे स्वतंत्रता-प्रिय पक्षी! ... ऐ ताइरे आजाद! तहे-दाम कहां तक? तू इन छोटे-छोटे जालों में कब तक उलझा रहेगा? हे स्वतंत्रता-प्रिय पक्षी, उड़! सारा आकाश तेरा है। लेकिन बिना उड़े यह आकाश तुम्हारा नहीं हो सकता। लैला-ए-हकीकत से भी हो जा कभी दो-चार। वह जो प्रेयसी है परमात्मा नाम की--लैला-ए-हकीकत वह--जो यथार्थ की लैला है, सत्य की लैला है... लैला-ए-हकीकत से भी हो जा कभी दो-चार... कभी उससे अपनी दो आंखों को चार कर ले।... ख्वाबों की हंसी छांव में आराम कहां तक? ष्ठ कब तक सपने देखते रहोगे?

और चैतन्यकीर्ति काफी सपने देख रहे हैं, इसलिए मैं यह कह रहा हूं। सपने ही सपने हैं। अभी सपनों से छुटकारा नहीं है। अभी सत्य की पहली किरण भी नहीं फूटी।
लैला-ए-हकीकत से भी हो जा कभी दो-चार
ख्वाबों की हंसी छांव में आराम कहां तक?
जुज-वहम नहीं कैदे-रहो-रस्मे जमाना
ऐ ताइरे आजाद! तहे-दाम कहां तक?

पांचवां प्रश्न: जब मैं आपको आंखें बंद करके सुनती हूं, तब बहुत-सी तरंगें शरीर में प्रवेश करती हुई मालूम होती हैं; जब आपको बिना पलक झपके एकटक देखती हूं, तब आपके पास सफेद तेजो-वलय दिखाई पड़ता है। यह आभा कुछ संन्यासियों की आभा से जुड़ी हुई मालूम होती है। कभी प्रवचन के वक्त बिजली के सौम्य झटके जैसा भी अनुभव होता है। आपको दो साल से सुनती हूं, लेकिन ये सब अनुभव पंद्रह दिन से ही हो रहे हैं। आपको कैसे सुनूं? आंखें बंद करके या खोल कर? कृपया मार्गदर्शन करें।

पूछा है सुमन भारती ने।
हर चीज का समय है। हर बात की ऋतु है। वसंत आएगा, तभी कुछ होगा। वह वसंत
कब आए, इसका कुछ पक्का नहीं है। इसलिए प्रतीक्षा करनी होती है।
दो वर्ष सुना और पंद्रह दिन से कुछ होना शुरू हुआ। अब तुम थोड़ा सोचो। अगर दो वर्ष में अधैर्य किया होता... ? कई बार ख्याल आया होगा कि कुछ हो तो नहीं रहा है। काफी हो गया। एक वर्ष बीत गया। डेढ़ वर्ष बीत गया। पौने दो वर्ष बीत गए। एक वर्ष ग्यारह माह बीत गए। अभी तक कुछ हुआ नहीं है। दो वर्ष बीत गए, कुछ हुआ नहीं। कब तक समय गंवाना है? दो वर्ष कोई छोटा समय नहीं होता। लंबा समय है। और कुछ न होता हो तो बहुत लंबा मालूम पड़ता है। क्योंकि दुःख में समय बहुत लंबा मालूम पड़ता है, सुख में छोटा हो जाता है। कुछ हो रहा हो तो दो साल भी यूं बीत जाते हैं जैसे पलक मारी। और कुछ न हो रहा हो, तो दो साल ऐसे लगते हैं कि जन्म-जन्म हो गए बैठे-बैठे। इस च्वांगत्सु भवन में बैठे हैं, दो साल से सुन रहे हैं, कुछ हो नहीं रहा। इस बीच, तुम्हें याद है, कई तुम्हारे पास बैठे थे, अब नहीं हैं? वे थक गए, ऊब गए, छोड़ कर चले गए। कोई नहीं जानता कब घड़ी आएगी। और घड़ी के बिना कुछ भी नहीं होता। सम्यक घड़ी में जब तुम्हारे सब तार मेल खा जाते हैं अस्तित्व से, तब कोई घटना घटती है। घटते ही घटते घटती है।
ऐसा हुआ, कोलरेडो में सोने की खदानें खोजी गईं जब पहली दफा, तो सारी दुनिया कोलरेडो की तरफ चल पड़ी। सारे अमरीका में लोग पागल हो गए। लोगों ने दुकानें बेच दीं, कारखाने बेच दिए। जो पैसा था, लिया, भागे कोलरेडो। सारी ट्रेनें कोलरेडो जाने लगीं, भरने लगीं। लोग जमीनें खरीदने लगे। खेतों में सोना पड़ा था। जहां जमीन ले ली, जिसके पास जितनी जमीन हो गई, एक एकड़ का टुकड़ा मिल गया, तो भी पर्याप्त हो गया। सदा के लिए भर गए खजाने। कोलरेडो में सोना ही सोना था। एक आदमी के पास काफी संपदा थी। उसने सारी संपदा लेकर पूरी पहाड़ी खरीद ली। सब दांव पर लगा दिया। उसने सोचा कि जब एक-एक, दो-दो एकड़ लोगों को धनी बना रही है, तो फिर छोटा काम क्या करना! उसने सब बेच दिया, कुछ बचाया नहीं। मगर चकित हुआ! पहाड़ी बिल्कुल खाली थी।
सोना था ही नहीं। खोद-खोद मर गया। उधार करोड़ों रुपए लेकर बड़े यंत्र लगाए। पहाड़ी की खुदाई करनी थी। मगर खुदाई चलती रही, कुछ हाथ न आया सो न आया। दिवाला सामने आ गया। उस आदमी ने विज्ञापन दिया अखबारों में कि किसी को भी खरीदनी हो तो यह पहाड़ी, मैं खुदाई के सामान, यंत्रों के साथ बेचता हूं। उसके मित्रों ने, साथियों ने कहाः "कौन खरीदेगा? सारा अमरीका तुम्हारे दुर्भाग्य का विचार कर रहा है। कौन खरीदेगा?" उसने कहा कि कोई न कोई खरीदनेवाला शायद मिल जाए। कोई मुझसे भी बड़ा पागल हो सकता है।
और एक आदमी मिल गया, जिसने वह पहाड़ी खरीद ली। जिससे खरीदा वह तो निश्चिंत हुआ कि झंझट मिटी। जितने दाम मिलने थे, उतने तो नहीं मिले, लेकिन जो मिले वे भी काफी थे। दिवाले से बचा। मगर उसको भी चिंता तो पकड़ने लगी मन

में कि यह बेचारा अब मारा गया। जान-बूझ कर। मैं तो खैर अनजान में मरने गया था, अज्ञात में। यह जान-बूझ कर मर रहा है। उसको उस पर दया भी आने लगी। लेकिन चमत्कार हुआ। उस आदमी ने पहले खुदाई की--और सोने की कोलरेडो की सबसे बड़ी खदान मिली! बस एक फीट और, बस एक फीट की पर्त और रह गयी थी खोदने को। तुम सोच सकते हो पहले आदमी पर क्या गुजरी! वह पागल हो गया। दिवाला निकलता तो पागल नहीं होता, अब पागल हो गया। उसने छाती पीट ली। उसकी नींद खो गई। उसने कहा कि मारे गए, हद हो गई। अब उस पर असली दुःख का पहाड़ टूटा। सारी पहाड़ी सोने से भरी थी, बस एक फीट और खुदाई करनी थी।
और ऐसी ही जिंदगी है। पता नहीं तुम कब लौट जाओ। अगर दो साल में कभी भी लौट गयी होती सुमन, लौटने के मौके आए होंगे, तो चूकती, बुरी तरह चूकती। कब होगा, नहीं कहा जा सकता। और इस बीच इन दो साल में सुमन के मन में कई दफे सवाल उठा होगा दूसरों को होता देख कर कि जरूर ये भ्रम में हैं, हेल्यूसिनेशन। इनको विभ्रम हो रहा है। क्योंकि जो हमें नहीं होता, वह जब दूसरे को होता है, तो स्वाभाविक मानने की आकांक्षा यही होती है कि भ्रम हो रहा है। दिमाग इसका अस्तव्यस्त हो गया है। होश में नहीं है। कहां के तेजोवलय, कहां की झंकारें, कहां का संगीत, कहां के बिजली के धक्के! यह सब हो रहा है, तो यह आदमी कुछ रुग्णप्राय है। अगले दिन से इसके पास नहीं बैठना है। क्योंकि रोग संक्रामक होते हैं।
सुमन को कई बार सवाल उठा होगा कि दूसरों को हो रहा है, गलत हो रहा है। लेकिन अब, जो अब तक गलत दिखाई पड़ा था, उसकी सार्थकता दिखाई पड़ेगी।
इसलिए मैं कहता हूंः धीरज रखना, प्रतीक्षा करना। अनंत धैर्य की जरूरत है। कब खदान मिल जाएगी, कोई भी नहीं कह सकता। कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती।
दूसरी बात, जब दूसरे को कुछ हो, तो इस तरह के अहंकारी विचार मत उठाना
कि भ्रम हो रहा है, कि इस आदमी के मन में कुछ विकृति हो गई है। ये तुम्हारे अहंकार के बचाव हैं। क्योंकि तुम्हें नहीं हो रहा है, और दूसरे को हो रहा है, तो अब बचने का एक ही उपाय है। या तो तुम जड़बुद्धि हो, या तो तुम पथरीले हो, तुम्हारे पास पाषाण हृदय है, और या फिर यह दूसरा आदमी पागल है। दूसरी बात माननी ज्यादा सुविधापूर्ण मालूम पड़ती है कि यही पागल होना चाहिए। मैं और पाषाण हृदय! मेरे जैसा प्रेमी, और पाषाण-हृदय! और मेरे जैसा भावुक व्यक्ति--पाषाण हृदय! और मेरे जैसा बुद्धिमान व्यक्ति, और मुझे न हो और इस बुद्धू को हो रहा है, तो गलत हो रहा होगा।
इसलिए दूसरे की अनुभूतियों को स्वीकार करना बड़ा कठिन होता है। तो ख्याल रखना, जब दूसरे को अनुभूतियां होती हों, अगर स्वीकार कर सको तो धन्यभागी हो। क्योंकि उसी स्वीकार से तुम्हारी घड़ी करीब आएगी। अगर स्वीकार न भी कर सको, तो कम से कम इतना तो करना कि विरोध मत करना, इनकार मत करना, निषेध मत करना, निंदा मत करना। कहना कि भाई, मुझे अभी नहीं हो रहा है, इसलिए मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूं। अच्छा या बुरा, मैं कोई वक्तव्य नहीं दे सकता हूं।
जब तुम्हें होगा, तभी पता चलेगा। और हो प्रत्येक को सकता है।
पूछा है सुमन ने कि कैसे सुनूं? क्योंकि आंख खोल कर सुनती है, तो एक तरह के अनुभव होते हैं। आंख बंद करके सुनती है तो दूसरी तरह के अनुभव होते हैं। दोनों अनुभव उपयोगी हैं। कभी आंख खोल कर सुनो, कभी आंखें बंद करके सुनो। दोनों अनुभवों के बीच बहो। इन दोनों को किनारा बना लो, और इनके बीच तुम्हारी जीवन-सरिता को बहने दो। दोनों उचित हैं। दोनों आवश्यक हैं। जब जिसको आकांक्षा हो, उस अनुभव में उतरना। कभी आंख खोल के सुनना। मुझसे लीन होने का वह भी एक उपाय है। कभी आंख बंद करके सुनना, वह भी एक उपाय है।

छठवां प्रश्नः भगवान! मेरी पत्नी, मां आनंद कुमुद, अपने अंतस में बार-बार आपको देखती है और आपसे बातें भी करती है। यह सिलसिला दो वर्षो से जारी है। और इस अंतरंग-वार्ता के अनुसार उसने अपनी जीवन-शैली बदल ली है। उसने बाहर जाना छोड़ दिया है, ध्यान करना भी। और भोजन बिल्कुल कम कर दिया है।

भगवान, कृपा करके बताएं कि यह क्या हो रहा है? क्या आध्यात्मिक दृष्टि से यह शुभ और सही है? यदि नहीं तो छूटने का उपाय बताने की कृपा करें।

आनंद कुमुद को अब तक जो हुआ है, ठीक हुआ है। लेकिन, उससे भी आगे जाना है अभी। उस पर अटक नहीं जाना है, रुक नहीं जाना है।
झेन फकीरों की प्रसिद्ध कहावत हैः ध्यान करने के पहले पहाड़ पहाड़ थे, नदियां नदियां थीं। फिर ध्यान किया--नदियां नदियां न रहीं, पहाड़ पहाड़ न रहे। फिर समाधि उपलब्ध हुई। पहाड़ फिर पहाड़ हो गए, नदियां फिर नदियां हो गईं। ये तीन बातें ख्याल रखना।
जब ध्यान तुम शुरू करोगे तो जीवन-शैली बदलेगी। क्योंकि ध्यान एक बड़ी क्रांतिकारी बात है। एक नया तत्त्व तुम्हारे जीवन में प्रविष्ट हुआ। जो कल तक सार्थक दिखता था, अब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा। उससे ज्यादा सार्थक मिलने लगा, तो तुलना पैदा होगी।
पूछा नहीं है हेमंत ने, लेकिन अड़चन यही है कि पत्नी को अब कामवासना में कोई रस नहीं रहा है। उसी से पति का मन परेशान हो रहा है। डर से पूछा नहीं है कि पता नहीं मैं क्या कहूं! मेरा कुछ भरोसा नहीं है। मगर तुम पूछो कि न पूछो, मुझे जो कहना है, कहना ही है। तुम्हारे प्रश्न की फिक्र कौन करता है?
और तुम्हारी बेचैनी भी मैं समझ सकता हूं। क्योंकि पति का अभी भी रस है काम में, और पत्नी का रस चला गया। अड़चन हो गई। पत्नी ने बाहर जाना भी बंद कर दिया है। पत्नी ने भोजन भी कम कर दिया है। और इतना ही नहीं, पत्नी ने ध्यान भी छोड़ दिया। अब तक जो हुआ, ठीक हुआ। पहाड़ पहाड़ न रहे, नदी नदी न रही। अब एक कदम और उठाओ। पहाड़ को फिर पहाड़ हो जाने दो। नदी को फिर नदी हो जाने दो। अब फिर सामान्य जीवन में लौट आओ।
जब ध्यान तुम्हें फिर से सामान्य जीवन में ले आए, तभी समझना कि परिपूर्णता हुई। जो आदमी हिमालय पर जाकर बैठ गया है, दुकान छोड़ कर, और दुकान पर आने में डरता है, उसका ध्यान अभी पूरा नहीं हुआ। अगर ध्यान पूरा हो गया है, तो अब वहां बैठे क्या कर रहे हो? अब वापस दुकान पर आ जाओ। अब दुकान पर बैठकर भी इस ढंग से बैठो कि हिमालय भी रहे और दुकान भी रहे।
तो मेरी सलाह है कुमुद को कि अब धीरे-धीरे भोजन फिर ठीक से लेना शुरू करो। ऐसा हो जाता है। जब ध्यान बढ़ता है तो भोजन कम हो जाता है। क्योंकि ध्यान इतनी जगह भर देता है भीतर कि भोजन के लिए जगह नहीं रह जाती।
तुमने ख्याल किया, जितना आदमी परेशान, बेचैन होता है, उतना ज्यादा भोजन कर लेता है। ज्यादा भोजन करनेवाले लोग परेशानी की वजह से ज्यादा भोजन करते हैं; बेचैनी, तनाव की वजह से ज्यादा भोजन करते हैं। यह तो अब मनोवैज्ञानिकों की खोज का हिस्सा हो गया है कि ज्यादा भोजन आदमी क्यों करता है? भीतर खाली-खाली लगता है उसको। खालीपन को भरें कैसे? और कोई उपाय नहीं दिखता। सरकाए जाओ भोजन गले से, थोड़ा भराव मालूम पड़ता है। लेकिन यह भी कोई भराव है? यह धोखा है भराव का।
चिंतित आदमी ज्यादा भोजन क्यों करता है? क्योंकि उसे डर है, भय है-- पता नहीं कल भोजन मिले या न मिले! कल का क्या पता, कल हो या न हो! बचपन से ही यह उपद्रव शुरू हो जाता है।
तुमने ख्याल किया, जो मां अपने बच्चे को पूरा-पूरा स्तन देती है, जितना बच्चे को चाहिए... तुमने ख्याल किया, देखा? नहीं देखा हो तो ख्याल करना। ष्ठ वह बच्चा भागता है। वह दूध पीना ही नहीं चाहता। मां उसको दूध पिलाना चाहती है, वह इधर-उधर मुंह करता है। और जो मां बच्चे से स्तन छुड़ाना चाहती है, वह स्तन पकड़ता है। तुमने यह भेद देखा है? जिस घर में बच्चे की चिंता की जाती है, वह भोजन की फिकर ही नहीं करता बच्चा। वह खेलने जा रहा है। उसे भोजन की चिंता ही नहीं है। लेकिन जिस घर में बच्चे की फिकर नहीं की जाती, अनाथालय में, वहां बच्चे चौबीस घंटे भोजन का ही विचार करते हैं। घंटी देखते रहते हैं, कब बजे भोजनालय की। उनको बुलाना नहीं पड़ता। उनको भोजनालय से उठाना पड़ता है, बुलाना नहीं पड़ता।

तुमने कभी अनाथालय जाकर देखा? मैं एक गांव में एक घर में ठहरा। वे एक अनाथालय चलाते थे। मुझे अनाथालय ले गए। मैं देखकर बड़ा हैरान हुआ--सब बच्चों के पेट बड़े हैं। मैंने पूछाः और सब तो ठीक है, मगर यह क्या मामला है? इन सब बच्चों के पेट इतने बड़े क्यों हैं? उन्होंने कहाः ये बच्चे बहुत भोजन करते हैं। जरूरत से ज्यादा भोजन करते हैं। इनको रोकने में भी हमें अच्छा नहीं लगता, क्योंकि अनाथ बच्चे हैं। मगर हमारी समझ में नहीं आता। क्योंकि हमारे घर में भी बच्चे हैं, उनको तो पकड़-पकड़ कर भोजन करवाना पड़ता है। और वे भागते हैं। वे कहते हैंः "हमें भूख ही नहीं है। अभी मुझे खेलने जाना है। अभी और हजार काम हैं। अभी मेरा मित्र आया हुआ।" मगर ये बच्चे भोजन की थाली नहीं छोड़ते।
कारण? --चिंता। अनाथ बच्चा चिंतित है, कल का कोई भरोसा नहीं है। बेचैन है, परेशान है। परेशानी और बेचैनी में आदमी ज्यादा भोजन कर लेता है।
तुम भी ख्याल करना, जब भी तुम प्रसन्न होते हो, भोजन कम करोगे। प्रफुल्लित होओगे, भोजन कम करोगे, हलका होगा भोजन। और जब भी उदास, चिंतित, दुखी होओगे, ज्यादा भोजन कर लोगे। अमरीका में मोटापे की बीमारी जोर से फैल रही है। उसका कुल कारण इतना हैः भारी चिंता पैदा हो गई है। भारी बेचैनी है, घबड़ाहट है। जिंदगी पूरे समय जैसे एक भूकंप पर ठहरी है। तो ध्यान के साथ ऐसा हो जाएगा कि भोजन कम हो जाएगा।
यह ठीक हुआ। और ध्यान के साथ कामवासना में भी रुचि कम हो जाएगी, क्योंकि ऊर्जा ऊपर की तरफ बहने लगेगी। यह भी ठीक हुआ। और ध्यान के साथ ऐसी भी घड़ी आ जाएगी कि जब शांति बनने लगेगी और शांति रहने लगेगी, तो सोच उठता हैः अब ध्यान की क्या जरूरत? तो ध्यान भी छूट जाएगा। यह सब ठीक हुआ। मगर इस पर ही अगर रुकना हो गया, तो खतरा हो जाएगा। अब एक कदम और आगे बढ़ाना है। अब ध्यान बिना जरूरत के करो। क्योंकि जरूरत वाला ध्यान बहुत गहरा नहीं जाता। अब ध्यान गैर-जरूरत के करो। अब ध्यान मौज से करो, आनंद से करो। पहले ध्यान आनंद के लिए करते थे; अब आनंद के कारण करो। और अब भोजन सम्यक ले आओ। क्योंकि कई दफे ऐसा हो जाता है, चिंतित आदमी ज्यादा भोजन करता है, और गैर-चिंतित आदमी जरूरत से कम करने लगता है। वह भी खतरनाक है। वह भी नुकसानदायक है। जरूरत देखो शरीर की। सम्यक भोजन करो।
और पति की अगर जरूरत शेष है तो पहले तो तुम अपनी वासना के कारण पति के साथ संभोग में उतरती थी; अब करुणा के कारण, प्रेम के कारण उतरो। पति की अभी जरूरत शेष है। पति से प्रेम है या नहीं? ध्यानी का प्रेम तो गहरा हो जाएगा। पति की पीड़ा को समझो। और अगर पति के साथ यह पत्नी ध्यानपूर्ण अवस्था में रह कर संभोग में उतरे, तो जल्दी ही पति के जीवन में भी संभोग की गहराई बढ़नी शुरू हो जाएगी। ध्यान की गहराई बढ़नी शुरू हो जाएगी--संभोग की गहराई के साथ-साथ। क्योंकि संभोग के क्षण में ध्यान जितनी आसानी से एक-दूसरे में उतर जाता है, किसी और क्षण में नहीं उतरता।
अब पति पर करुणा करो दया करो। पति को परेशान मत करो। यह इसलिए मैं कह रहा हूं कि यह एक ही जोड़े का मामला नहीं है, और जोड़ों का मामला भी है। पति का ध्यान बढ़ जाता है, तो उसका रस चला जाता है। पत्नी तड़पती है। अक्सर ऐसा होता है कि स्त्रियां यह दिखाती रहती हैं भाव कि उन्हें कोई रस नहीं है। जब तक पति उनके पीछे लगा रहता है, तब तक वे दिखाती रहती हैं कि उन्हें कोई रस नहीं है कामवासना में। लेकिन जैसे ही पति ध्यान में उतरता है और उसका रस जाता है, पत्नी घबड़ाती है। क्योंकि पति से सारा संबंध ही यही था कि पति उसके पीछे चलता था, उसकी जरूरत थी। अब जरूरत खत्म हो रही है, कहीं संबंध ही न टूट जाए! जरूरत ही खत्म हो गई, तो संबंध कैसे होगा?
तो एक बहुत हैरानी की घटना रोज मेरे सामने आती है। पति अगर ध्यान में गहरा उतरता है, पत्नी एकदम कामवासना में उत्सुक हो जाती है, जितनी वह कभी उत्सुक नहीं थी! या उत्सुक तो रही होगी, लेकिन दिखलाती नहीं थी। अब मौका छोड़ने जैसा नहीं है। वह एकदम पति के पीछे पड़ जाती है। और पति को अब रस नहीं है। अब उसको संभोग में उतरना व्यायाम जैसा मालूम पड़ता है। व्यर्थ का व्यायाम। नाहक की परेशानी।

जोड़ों के लिए मैं यह कहना चाहता हूं कि ध्यान में अगर तुम दोनों साथ-साथ बढ़ते रहोगे तो, तो यह अड़चन नहीं आती। मगर ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है कि तुम पति-पत्नी हो, इसलिए ध्यान में तुम्हारी गति समान हो सके। अक्सर तो ऐसा होगाः एक आगे बढ़ जाएगा, दूसरा पीछे रह जाएगा। दूसरे पर दया करना। दूसरे पर प्रेम रखना, करुणा रखना। दूसरे की जरूरत की चिंता करना। यही तो कर्तव्य है। और यही तो ध्यानी का उत्तरदायित्व है।
तो अब कुमुद! भोजन सम्यक करो। ध्यान आनंद के लिए करो। बाहर भी जाओ। क्योंकि बाहर भी परमात्मा है, भीतर ही थोड़े है। पहले भीतर पहचानना पड़ता है। जब भीतर पहचान आ गई, तो फिर बाहर जाकर जगह-जगह पहचानना पड़ता है। इतने रूपों में प्रकट है, भीतर ही क्या बैठे रहना है? भीतर एक रूप देख लिया, अब अनंत रूप देखो! भीतर तो पहचान के लिए जाना पड़ता है। पहचान हो गई, अब बाहर भी जाओ। अब बाहर और भीतर दोनों को जोड़ो। जो आदमी भीतर ही भीतर रहे, वह अधूरा है। और जो आदमी बाहर ही बाहर रहे, वह भी अधूरा है।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने मनोवैज्ञानिक विधि से आदमियों के दो भेद किए हैं--एक्सट्रोवर्ट और इंट्रोवर्ट; बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। दोनों अधूरे हैं। बहिर्मुखी बाहर ही बाहर रहता है। अंतर्मुखी भीतर ही भीतर रहता है। अंतर्मुखी उदास हो जाता है और बहिर्मुखी अशांत हो जाता है। व्यक्ति दोनों का तालमेल होना चाहिए। जैसे तुम अपने घर के बाहर-भीतर आते हो। जब बाहर सुंदर धूप निकली है और फूल खिले हैं, और पक्षी गीत गा रहे हैं, तब तुम भीतर बैठे क्या करते हो? बाहर आओ! धूप के साथ नाचो! वृक्षो से थोड़ी बात करो। फूलों से थोड़ा बोलो, बतियाओ। जब बाहर बहुत धूप घनी हो जाए तो भीतर आओ, विश्राम करो। भीतर विश्राम, बाहर श्रम। भीतर भी डुबकी मारो, बाहर भी डुबकी मारो। परमात्मा को पूरा ही पूरा पियो, अधूरा-अधूरा क्या? इसलिए एक कदम और उठाओ। अब नदी फिर नदी हो जाए, पहाड़ फिर पहाड़ हो जाएं।

अंतिम प्रश्नः प्यारे भगवान! हम धरमदास को सुन रहे हैं। धरमदास के ये शब्द आज भी आपको देख कर जैसे हमारे ही अंतस के भावों को वर्णित कर रहे हैंः का वर्णउ छवि आज तुम्हारी।
संत-समाज विराजमान जिमि,
सुरगन बिच सुरपति अधिकारी।
दिपत दिनेस समान तेज वपु,
मंगल भेष परम सुखकारी।
सुंदर वदन मदन लखि लाजत,
हुलसत मन मुस्काय निहारी।
भृकुटि कुटिल, कपोल मनोहर, चोरत चित चखि चितवन प्यारी।
नासा रुचिर कपोल मनोहर,
चारू-चिबुक अति लागत प्यारी।
श्वेत वसन तन लगत हंसत जिमि,
देखि मंद दुति चंद उजारी।
अशरण शरण हरण भव संकट,
तारण-तरण नाथ बलिहारी।
धरमदास सब करत निछावर,
तन मन धन चरणन पर वारी।

पूछा है आनंद सीता ने। और अंतिम शब्द लिखे हैंः आपकी शिष्या आज सब करत निछावर! तन मन धन प्रभु पर बलिहारी!
शिष्य को धीरे-धीरे गुरु दिखाई पड़ना बंद हो जाता है और परमात्मा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। शिष्यों ने गुरु की प्रशंसा में जो भी कहा है, वह गुरु की प्रशंसा में नहीं कहा है। गुरु तो झरोखा है। झरोखे के पार चांद-तारों से भरी रात, नीला आकाश, उसकी प्रशंसा में ही कहा है। लेकिन गुरु से ही दिखा है, गुरु से ही झरोखा खुला है। इसलिए निमित्त-अर्थ में गुरु की भी प्रशंसा की है। लेकिन वस्तुतः प्रशंसा परमात्मा की है।

यही, जिनको शिष्य होने का अनुभव नहीं है, उनकी समझ में नहीं आता। अब यह कबीरदास का वर्णन समझ में नहीं आता। यह तो ऐसा लगता है जैसे परमात्मा का वर्णन हो रहा हो। जिसने कबीरदास को शिष्य-भाव से नहीं देखा है, उसे लगेगाः यह क्या बकवास है? कबीरदास, यह जुलाहा! यह धरमदास पागल हो गया है।
ठीक ही है! धरमदास पागल ही हो गया है। प्रेम पागल ही कर देता है। मगर धन्यभागी हैं वे, जो पागल हो जाते हैं। क्योंकि उन पागलों के लिए ही परमात्मा मिलता है। समझदार तो चूक जाते हैं। समझदार तो ठीकरे इकट्ठे कर लेते हैं। समझदार तो जिंदगी ऐसे गंवा देते हैं--रेत से जैसे कोई तेल निचोड़ते-निचोड़ते जिंदगी गंवा दे और हाथ कुछ भी न लगे। समझदार तो खाली हाथ जाते हैं--यह धरमदास को जो दिखाई पड़ा हैः का वर्णउ छवि आज तुम्हारी! यह कब कहा होगा धरमदास ने? यह कहा होगा, जिस दिन गुरु में ब्रह्म का दर्शन हुआ होगा। का वर्णउ छवि आज तुम्हारी! कल तक भी देखा था, लेकिन कल तक कबीरदास दिखाई पड़े थे। कबीर साहब दिखाई पड़े थे। आज कबीर तो झरोखा हो गए, सिर्फ "साहब" दिखाई पड़ रहा है।
यह परमात्मा की ही प्रशंसा है। "गुरुर्ब्रह्मा!" लेकिन यह शिष्य की
ही समझ की बात है।
सीता में ऐसा भाव उठ रहा है, इसकी मुझे प्रतीति है। जैसे मैंने अभी- अभी कहा चैतन्यकीर्ति को कि तुम्हारा धन्यवाद देने का दिन नहीं आया, लेकिन सीता से कह सकता हूं कि तेरा दिन बिल्कुल करीब है। जरा और, थोड़ा और, एकाध कदम और कि धन्यवाद की घड़ी करीब है।
मनुष्य की बड़ी क्षमता है, अनंत क्षमता है। परमात्मा को अपने भीतर समा लेने की क्षमता है। हमें अपनी क्षमता का पता नहीं। हम व्यर्थ ही अपने को क्षुद्र समझ कर बैठे हुए हैं।
इन वचनों को स्मरण रखनाः
अगर मैं तिलस्मे-तकल्लुम दिखा दूं
तरानों से बज्मे-सुरैया बना दूं
तरब-आशना तल्ख आहों को कर दूं
कबाए-हवादस के पुर्जे उड़ा दूं
अगर चर्ख को अज्म दूं बंदगी का दरे खाक पर माहे-ताबां झुका दूं अगर नग्लए-सरमदी छेड़ दूं मैं खिजां में गुलों को महकना सिखा दूं अजल भी मेरे गम पै आंसू बहाए
अगर नालए जिंदगानी सुना दूं
अगर छेड़ दूं साज खिलवत में तेरी चिरागों को ताके हरम से गिरा दूं कहो तो बदल दूं निजामे-दो आलम
जहन्नुम में फूलों की जन्नत बसा दूं
गुलिस्तां का हर फूल दिल बन के महके
अगर एक अश्के-तमन्ना गिरा दूं
"शमीम" आह कर दूं तो लौ दे जमाना
फजा मुसकरा दे अगर मुसकरा दूं
मनुष्य की क्षमता अपार है। ये चमत्कार हो सकते हैं--अगर मैं तिलस्मे- तकल्लुम दिखा दूं। अगर मैं वार्तालाप का जादू दिखा दूं।
आदमी के भीतर उस महत शब्द का बीज पड़ा है। अगर प्रकट हो जाए, तो उपनिषद प्रकट हो जाते हैं, वेद जन्म जाते हैं, कुरान उठने लगता है, धम्मपद बोल उठता है।
अगर मैं तिलस्मे-तकल्लुम दिखा दूं। अगर मैं वाणी का चमत्कार दिखा दूं। तरानों से बज्मे-सुरैया बना दूं। तो मेरे शब्द नक्षत्र बनके चमके सदा के लिए। आकाश को नक्षत्रों से भर दूं। तरब-आशना तल्ख आहों को कर दूं। कड़वी से कड़वी अनुभूति को चाहूं तो आनंद बना दूं।
तरब-आशना तल्ख आहों को कर दूं
कबाए-हवादस के पुर्जे उड़ा दूं

मुसीबत का परिधान जार-जार होकर गिर जाए एक इशारे से। अगर चर्ख को अ.ज्म दूं बंदगी का। अगर आकाश को भी निश्चयपूर्वक आज्ञा दे दूं, निस्संदिग्ध आज्ञा दे दूं। दरे खाक पर माहे-ताबां झुका दूं। तो चंद्रमा को जमीन पर झुक जाना पड़े।
अगर नग्लए सरमदी छेड़ दूं मैं। अगर मैं सरमद जैसा नित्यता का संदेश बोल उठूं। अगर नग्लए सरमदी छेड़ दूं मैं, खिजां में गुलों को महकना सिखा दूं। तो पतझड़ में भी फूल खिल उठें। तो रेगिस्तान में भी कमल महक उठें। अजल भी मेरे गम पै आंसू बहाए
अगर नालए-जिंदगानी सुना दूं
मौत भी रोए, अगर मैं जिंदगी का गीत गाऊं।
अगर छेड़ दूं साज खिलवत में तेरी
चिरागों को ताके हरम में गिरा दूं
कहो तो बदल दूं, निजामे-दो आलम
जहन्नुम में फूलों की जन्नत बसा दूं
नरक भी स्वर्ग हो जाए, यह आदमी की संभावना है। आदमी की संभावना विराट है। क्योंकि परमात्मा आदमी की संभावना है।
गुलिस्तां का हर फूल दिल बन के महके
अगर एक अश्के-तमन्ना गिरा दूं
"शमीम" आह कर दूं तो लौ दे जमाना
फजा मुसकरा दे अगर मुसकरा दूं
याद करो, पुनः-पुनः याद करो। तुम छोटे नहीं हो, क्षुद्र नहीं हो। और जिसके पास से तुम्हें अपने विराट होने की खबर मिल जाए, जिसके पास से तुम्हें आकाश का स्मरण आ जाए, जिसके झरोखे से, जिसकी आंखों में झांक कर तुम्हें परमात्मा की पहली छवि दिखाई पड़ जाए, वहीं झुक जाना। तन, मन, प्राण से पूरी तरह झुक जाना। वहां कुछ बचाना मत। वहां हार जाना ही जीत है।

आज इतना ही।

का सोवै दिन रैन
ग्यारहवां प्रवचन

मूल में ही विश्राम है

माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुई चार, अंत लागत है फीको
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर।।
नाम के रंग मजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रह्यो समाय, सार ता में अधिकाई।।
केती बार धुलाइए, दे दे करड़ा धोए।
ज्यों ज्यों भट्ठी पर दिए, त्यों त्यों उज्ज्वल होय।।
सोवत हो केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी।
भोर भए परभात, अबहिं तुम करो पयानी।।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहो या दुक्ख ते, तन सरवर के पार।।
नाम झांझरी साजि, बांधि बैठो बैपारी।
बोझ लद्यो पाषान, मोहि डर लागै भारी।।
मांझ धार भव तखत में, आइ परैगी भीर।
एक नाम केवटिया करि ले, सोई लावै तीर।।
सौ भइया की बांह, तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना।।
जुद्ध रचो कुरुक्षेत्र में, बानन बरसे मेह।
तिनहीं के अभिमान तें, गिधहुं न खायो देह।।
जोधा आगे उलट-पुलट, यह पुहमी करते।
बस नहिं रहते सोय, छिने इक में बल रहते।।
सौ जोजन मरजाद सिंध के, करते एकै फाल।
हाथन पर्वत तौलते, तिन धरि खायो काल।।
ऐसा यह संसार, रहट की जैसे घरियां।
इक रीती फिरि जाय, एक आवै फिरि भरियां।।
उपजि-उपजि विनसत करैं, फिरि जमै गिरास।
यही तमासा देखिकै, मनुवा भयो उदास।।
जैसे कलपि कलपि के, भए हैं गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठी, लपट गई दोनों पांखी।।
पंख लपेटे सिर धुनै, मन ही मन पछिताय।
वह मलयागिरि छांड़ि के, यहां कौन विधि आय।।
खेत बिरानो देखि, मृगा एक बन को रीझेव।
नित प्रति चुनि चुनि खाय, बान में इन दिन बीधेव।।
उचकन चाहै बल करै, मन ही मन पछिताय।
अब सो उचकि न पाइहौं, धनी पहूंचो आय।।

कल भी थीं जहनीयतें मजरूह ओहामो-गुमां कुश्तए-ईहाम है दुनियाए इंसा आज भी
कल भी था चश्मे-बसीरत पर हिजाबे-इफ्तदार
हुर्रियत की रूह है मरिहूने-जिंदा आज भी
कल भी थे जोशो-अनाके वास्ते दारो-रसन
अहले-हक के वास्ते है तेग-बुर्रां आज भी
सीनए-गेती से कल भी उठ रहा था इक धुआं
जर्राहाए-दहर है शोला बदामां आज भी
कल भी ऐसा था--ऐसा ही दुख, ऐसी ही पीड़ा, ऐसा ही संताप। वैसा ही आज भी है।
और कुछ तुमने न किया तो कल भी ऐसा ही होगा। कल भी अंधविश्वास थे और आदमी उनकी जंजीरों में बंधा था--आज भी बंधा है। और अगर सजग न हुए और जंजीरें तोड़ी नहीं, तो कल भी बंधे रहोगे।

कल भी जो सत्य के मार्ग पर चले उन्हें सूली थी आज भी है। लेकिन धन्यभागी हैं वे, जो सत्य के मार्ग पर चल कर सूली पर चढ़ जाते हैं, क्योंकि उन्हीं का असली सिंहासन है।
जो प्रभु के मार्ग पर मिटना जानते हैं, वही जीवन की वास्तविक संपदा के मालिक हो पाते हैं। जो अपने को बचाते हैं, वे अपने को नष्ट कर लेते हैं। जो अपनी सुरक्षा कर रहा है, वह परमात्मा से दूर और दूर पड़ता चला जाएगा। जो साहस करता है दुस्साहस करता है, छलांग लगाता है, वही परमात्मा के पास पहुंच पाता है।
धर्म कायरों की बात नहीं है। और ऐसा मजा हुआ है कि धर्म कायरों की बात
ही हो गया है। मंदिर-मस्जिदों में मिलता कौन है? --कायर और डरे हुए लोग और भयभीत लोग। और धर्म कायर का मामला ही नहीं। वह उसका अभियान है। जो सब दांव पर लगाने को तत्पर है, उसका अभियान है।
कल भी थीं जहनीयतें मजरूह ओहामो-गुमां। अंधविश्वासों से कल भी बुद्धि घायल थी। शकों, और संदेहों, अनास्थाओ से, कल भी मनुष्य की आत्मा पर घाव थे। कुश्तए-ईहाम है दुनियाए इंसा आज भी। और आज भी अंधविश्वासों से बरबाद है।
तुमने जिसे धर्म समझा है, धर्म नहीं है, सिर्प अंधविश्वास है। अंधविश्वास का अर्थ होता है--जाना नहीं और मान लिया; देखा नहीं और मान लिया। देखने में श्रम करना पड़ता है। देखने के लिए आंख मांजनी पड़ती है। देखने के लिए आंख की धूल झाड़नी पड़ती है। देखने के लिए आंख पर नया काजल चढ़ाना होता है। आंख खोलने की झंझट कौन करे! आंख साफ करने का उपद्रव कौन ले! इसलिए लोग आंख बंद किए-किए ही मान लेते हैं कि प्रकाश है। उनका मानना सिर्प झंझट से बचाना है। प्रकाश की खोज में कौन जाए? क्योंकि वहां तो कीमत चुकानी पड़ती है।
इसलिए अकसर ऐसे लोगों की बातें, जो कहते हैं--कुछ करने की जरूरत नहीं है, बस राम-राम जप लो और सब हो जाएगा; कि रोज जाकर मंदिर में सिर झुका लो और सब हो जाएगा; कि सुबह एक प्रार्थना दोहरा लो तोतों की तरह यंत्रवत और सब हो जाएगा। ऐसे लोगों की बातें लोगों को रुच जाती है। मनुष्य के अकर्मण्य स्वभाव से इनका मेल बैठ जाता है।
फिर ये बातें बड़े तार्किक रूप भी ले सकती हैं। ये बातें इतने तार्किक रूप ले सकती हैं कि तुम पहचान भी न पाओ कि इनमें और पुरानी बातों में कोई संबंध है। तर्क यह भी समझा सकता हैः "साधना से क्या होगा? साधना की जरूरत नहीं है। विधि की कोई जरूरत नहीं है। जीवन को अनुशासन देने की कोई जरूरत नहीं है।" तर्क यह भी समझा सकता हैः "सदगुरु की कोई जरूरत नहीं है।" मनुष्य का अहंकार इस तरह की बातें सुनना चाहता है। सुनना चाहता है, तो सुनाने वाले लोग मिल जाते हैं। तुम तो मांगते हो, मिल ही जाएगा।
अर्थशास्त्र का एक सीधा सा नियम है कि जिस बात की मांग होगी उसकी पूर्ति होगी। मांगो भर, कोई न कोई उसे उत्पादन करने के लिए तत्पर हो जाएगा। हर तरह की चीज के उत्पादन हो जाते हैं। बाजार में मांग होनी चाहिए, फिर उत्पादक मिल जाता है।
मनुष्य की सबसे बड़ी मांग यह है कि हमें कुछ करना न पड़े, परमात्मा मुफ्त हो। मोक्ष बस कुछ न किए मिल जाए। इंच भर सरकना न पड़े। एक कदम उठाना न पड़े जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना न पड़े, और सत्य मिल जाए। सत्य मुफ्त मिल जाए।
जब तुम कहते हो, सत्य मुफ्त मिल जाए, तो सत्य मुफ्त देने वाले लोग तुम्हें मिल जाते हैं। पंडित और पुजारी तुम्हें धोखा दे पाए हैं-- तुम्हारे ही कारण। नहीं तो कौन तुम्हें धोखा दे पाएगा? तुम आंख बंद किए प्रकाश देखना चाहते हो, दिखाने वाले मिल जाते हैं। फिर तुम जो देखते हो वह सिर्प सपना है; वह सिर्प तुम्हारी कल्पना है। तुमने जो परमात्मा देखा है, तुमने जो आत्मा देखी है--बस कल्पना का जाल है। यथार्थ को देखने के लिए तो सारे अंधविश्वासों की परिधियां तोड़नी पड़ेंगी, सारे विश्वास छोड़ देने पड़ेंगे। और अथक श्रम करना होगा, ताकि तुम्हारे भीतर पड़ी हुई चेतना सजग हो।

का सोवै दिन-रैन, विरहिनी जाग रे! ... खूब सो लिए। बहुत सो लिए। जागने में श्रम तो होगा ही। क्योंकि नींद की आदतें पुरानी हैं, लंबी हैं, अति प्राचीन हैं। नींद ही तुम्हारा अतीत है--जन्मों-जन्मों का अतीत। तो नींद बड़ी वजनी है, और जागरण की किरण तो बड़ी छोटी होगी। नींद तो तूफान की तरह है, और जागरण तो छोटे से दीये की तरह होगा। अगर तुमने सहारा नहीं दिया जागरण को, तो दीया बुझ जाएगा, कभी भी बुझ जाएगा, जल भी न पाएगा।
और आदमी का अहंकार ऐसा है कि यह मानने का मन नहीं होता कि मेरा दीया जला नहीं है। इसलिए तुम्हें धोखा देने वाले लोग मिल जाते हैं, जो तुमसे कहते हैंः तुम्हारा दीया जला ही हुआ है। तुम्हें कुछ करना नहीं है। तुम्हें कहीं जाना नहीं है। तुम्हें कुछ होना नहीं है। तुम तो बस इस जीवन-दृष्टि को पकड़ लो, इस शास्त्र को पकड़ लो, इस सिद्धांत को पकड़ लो--शेष सब हो जाएगा।
तुम करना नहीं चाहते, इसलिए तुम बदले नहीं। कल भी तुम बंधे थे, आज भी तुम बंधे हो, कल भी तुम बंधे होओगे। सत्य की कीमत चुकानी ही पड़ती है। इस जगत में कुछ भी मुफ्त नहीं है। इस बात को ख्याल में रखो तो आज के अंतिम सूत्र तुम्हारी समझ में आ सकेंगे!
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
इस जगत में तुमने जो भी पाया है, जो भी मिला है या जिसको भी मिलने की तुमने आशा बना रखी है--सब फूल के कच्चे रंग जैसा है। देखने में सुंदर लगता है, दूर से सुहावना मालूम पड़ता है। दूर के ढोल सुहावने हैं। जैसे-जैसे पास आओगे, वैसे-वैसे ही सब व्यर्थ हो जाता है। धन चाहा था, धन मिल गया और पाते ही पाया कि व्यर्थ हो गया। पद चाहा था, पद मिल गया। प्रेम चाहा था, प्रेम मिल गया। घर बसाना था, घर बसा लिया। मिला क्या? सार-निचोड़ क्या है? हाथ में क्या लगा? हाथ खाली के खाली हैं। एक धोखे से दूसरा धोखा, दूसरे धोखे से तीसरा धोखा। धोखे बदलते रहे हो, लेकिन हाथ खाली के खाली हैं। जो सफल हैं उनके हाथ भी खाली हैं। और ऐसा मत सोचना कि तुम असफल हो, इसलिए हाथ खाली हैं। सिकंदरों के हाथ भी खाली हैं।
माया रंग कुसुम्म, महा देखन को नीको! देखने में बड़ा प्यारा लगता है-- इंद्रधनुष जैसा! कितना प्यारा, सतरंगा! आकाश में जैसे सेतु बना हो! लेकिन पास जाओ, मुट्ठी बांधो, तो कुछ भी हाथ न लगेगा। कोई रंग हाथ न लगेगा। कुछ भी हाथ न लगेगा; हाथ खाली का खाली रह जाएगा। इंद्रधनुष सिर्प दिखाई पड़ता है, है नहीं। देखने में ही है जैसे रात के सपने हैं, देखने में ही हैं। देखने के बाहर उनकी कोई और सच्चाई नहीं है। जिसकी सच्चाई सिर्फ देखने में ही है, उसे माया समझना। और जिसकी सच्चाई तुम्हारे देखने के पार है; तुम चाहे देखो और चाहे न देखो, जो है; तुम चाहे मानो और चाहे न मानो, जो है; तुम जानो चाहे न जानो, जो है--जिसकी सच्चाई, जिसका यथार्थ, तुम्हारे जानने पर निर्भर नहीं है, वही सत्य है।
तो माया और सत्य की परिभाषा ख्याल रखो। माया उसे कहते हैं, जो तुम्हें दिखाई पड़ता हैः बस उतना ही है, जितना दिखाई पड़ता है और जब दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा, तो नहीं है। तुम्हारे देखने के बाहर कोई समानांतर यथार्थ नहीं है। बस तुम्हारी मान्यता में है, तुम्हारी धारणा में है। तुमने निर्मित किया है। तुम्हारे मन का ही सृजन है।
तुम्हें किसी चीज में सौंदर्य दिखाई पड़ता है, किसी दूसरे को वहां कोई सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता। तुम जिस स्त्री के प्रेम में पड़ गए दूसरे लोग हंसते हैं। लोगों को भरोसा ही नहीं आता कि तुम इस प्रेम में कैसे पड़ गए! लेकिन कुछ तुम्हें दिखाई पड़ता है। वह तुम्हें ही दिखाई पड़ता है। वह तुम्हारा प्रक्षेपण है।
जैसे रात तुम सिनेमा-गृह में बैठ जाते हो जाकर। जो तुम देखते हो, वह पर्दे पर घट नहीं रहा है, मगर तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। और कभी-कभी जानते हुए, भलीभांति जानते हुए कि जो पर्दे पर हो रहा है, हो नहीं रहा है--तुम प्रभावित हो जाते हो, उससे आच्छादित हो जाते हो। कई बार तुम फिल्म को देखते हुए रो लिए हो या नहीं? असली आंसू बहा दिए हैं या नहीं? एक नकली पर्दे पर चलते खेल को देख कर! न वहां कोई मरता है, न वहां कोई जीता है। वहां

कोरा पर्दा है, उस पर केवल छायाएं घूम रही हैं। लेकिन तुम रो दिए हो कई बार या नहीं? तुमने आंसू से अपनी आंखें भर ली हैं या नहीं? कई बार तुम हंस दिए हो। कई बार तुम उत्तेजित हो गए हो। कई बार तुम क्रुद्ध हो गए हो। कई बार तुम कामुकता से भर गए हो, कई बार करुणा से। और तुम भलीभांति जानते हो कि वहां कुछ भी नहीं है।
माया का अर्थ होता है, हमने अपना ही एक जगत बना लिया है--मनोनिर्मित।
प्यारा लगता है, लेकिन यथार्थ उसमें कुछ भी नहीं है। और जिसमें यथार्थ नहीं है, उसके साथ जितना समय गया, गंवाया।
यथार्थ को खोजो। सत्य को खोजो। जो है, उसे खोजो।
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुई चार, अंत लागत है फीको।।
कितनी बार तुमने यह जाना! कोई धनी धरमदास को कहने की जरूरत है? यह तुम्हारा भी तो अनुभव है। यह सारी मनुष्य-जाति का अनुभव है। इस अनुभव से ज्यादा बड़ा कोई अनुभव नहीं है। मगर आदमी अदभुत धोखेबाज है! इस अनुभव को भी झुठलाए चला जाता है। कितनी बार तुमने जाना नहीं कि दूर से सुंदर लगा था; पास आए, सब फीका हो गया! जब तक अपना नहीं था, सुंदर लगा था; जब अपना हुआ, सब फीका हो गया। जब तक मिला नहीं था, तब तक बड़े सपने जगे थे और जब मिल गया तो सब सपने मर गए।
मीठो दिन दुई चार, अंत लागत है फीको।
और जो अंत में फीका लगता था, वह प्रथम से ही फीका था। अंत में प्रकट हो रहा है वही, जो प्रथम से था। लेकिन प्रथम से तुमने कुछ और मान रखा था। फीका जो लग रहा है अंत में, वह फीका ही था। मिठास तुम्हारी मान्यता थी। तुमने डाल दी थी मिठास। तुमने कल्पना कर ली थी। और स्वभावतः तुम्हारी कल्पना यथार्थ को पराजित नहीं कर सकती। आज नहीं कल, यथार्थ से हारेगी। आज नहीं कल, यथार्थ की टक्कर को टूटना ही पड़ेगा। तुम कितना ही अपनी कल्पना को बल दो और कितनी ही ऊर्जा उसमें डालो, कल्पना टूटेगी ही, टूटेगी ही टूटेगी। कल्पना कल्पना है, कितनी देर तक झुठलाओगे?
और जब टूटती है कल्पना तो विषाद घेर लेता है। उसी विषाद से दो संभावनाएं निकलती हैं। एक संभावना तो यह है कि तुम जल्दी ही, जब तुम्हारा एक कल्पना का जाल टूटने लगे, एक आशा निरस्त हो, एक सपना गिरे, तुम जल्दी से दूसरा सपना बना लेना। वही आम आदमी करता है। सच तो यह है, एक गिर भी नहीं पाता और वह नया बनाने लगता है; ताकि गिरने के पहले ही नया बन जाए। पुराना मकान गिरे, इसके पहले नया बना लेता है; कहीं ऐसा न हो कि छप्पर के बिना छूट जाऊं। इधर एक सपना तिरोहित होने लगता है, उधर वह प्राण अपने दूसरे सपने में डालने लगता है। जब तक एक गिरता है, दूसरा निर्मित हो जाता है। इसलिए तो एक वासना समाप्त नहीं होती कि तुम दूसरी वासना की जकड़ में आ जाते हो। ऐसे वासना से वासना, सपने से सपना, आदमी बदलता चलता है। और इसी बहाने आदमी जीता है। यह जीना बिल्कुल झूठा है। क्योंकि तुम कितने ही सपने बदलो, सब सपने टूट जाएंगे, अंत में फीके हो जाएंगे।
एक और जीवन का ढंग है, जो कभी-कभी सौभाग्यशालियों को उपलब्ध होता है। बार-बार सपनों को टूट कर आदमी यह निर्णय करता है कि अब और नहीं, अब बस काफी है।... का सोवै दिन रैन! बहुत सो लिए और बहुत सपना देख लिए, अब जागने की घड़ी आ गई, अब जागेंगे! अब और सपना नहीं बनाएंगे! और सपना न बनाना ही धर्म है। नई वासना निर्मित न करना ही धर्म है। यही धर्म में दीक्षा है--अब बिना सपने के जिएंगे।
कठिन है बिना सपने के जीना; बहुत कठिन है। वही कीमत है, जो सत्य को पाने के लिए चुकानी पड़ती है। अब बिना आशा के जिएंगे। अब बिना भविष्य के जिएंगे। अब कल की बात ही नहीं सोचेंगे--आज ही जिएंगे, अभी जिएंगे। अब जो परमात्मा करवाएगा वह करेंगे और जो परमात्मा दिखाएगा वह देखेंगे। हम अपनी कोई मंशा न रखेंगे। हम भीतर कोई छिपी आकांक्षा न रखेंगे कि ऐसा हो। जैसा होगा, जैसा है, उसको ही जानेंगे, उसको ही जिएंगे। हम अपनी तरफ से कोई प्रक्षेपण न करेंगे। हम फिल्म को हटा लेंगे। अब हम सूने परदे को देखेंगे,

सफेद परदे को देखेंगे। सफेद परदा है, उस परदे पर चलती हुई रंगीन छायाएं नहीं हैं।
उस सफेद परदे के अनुभव का नाम समाधि है।
जो अपने चित्त से वासनाओं और सपनों की फिल्मों को हटा लेता है और जो
उन फिल्मों के निर्मित करने वाले मूलस्रोत को तोड़ देता है-- जो कह देता है कि अब और नहीं, अब मैं बिना सपने के जिऊंगा, अब मेरी आंख सपने से खाली होगी, अब मैं और सपनों को अपनी आंख में नहीं बसाऊंगा अपनी आंख में डेरा न करने दूंगा, अब मैं सपनों को मेहमानदारी अपने भीतर न करने दूंगा, नमस्कार! सपनों को जो नमस्कार कर लेता है, और आखिरी विदा दे देता है--और आंखें खाली हो जाती हैं, मन भी खाली हो जाता है। क्योंकि मन सपनों से ही भरा है। मन में और भराव क्या है? मन की और संपदा क्या है? --सपने, कल्पनाएं, आकांक्षाएं, वासनाएं, तृष्णाएं। एक शब्द में वे सब सपने का ही नाम है।
जैसे ही मन खाली होता है, परदा सफेद हो जाता है, चित्र खो जाते हैं। फिर न रोना है न हंसना है, न सुख है न दुख है। क्योंकि सुख और दुख उन चित्रों के कारण होते थे। न फिर द्वेष है न राग है। द्वंद्व गया। वे द्वंद्व भी उन चित्रों के कारण होते थे। सफेद परदा रह गया। और सफेद परदे के साथ ही शांति का अनुभव शुरू होता है। एक अपूर्व शांति भीतर सघन हो जाती है! अब सफेद परदा है, न कुछ हिलता है न कुछ डुलता है। पहले भी नहीं हिला था। तुमने ख्याल किया, जब सफेद परदे पर कोई फिल्म चल रही हो... तूफान आया है, भारी तूफान आया है, फिल्म में। झाड़-झंखाड़ गिरे जा रहे हैं, पहाड़ कंप रहे हैं, भूकंप आया है, नावें डूब रही हैं, जहाज पानी में नष्ट हुए जा रहे हैं, भवन गिर रहे हैं--तब भी तुम सोचते हो, परदा कंप रहा होगा इस तूफान के कारण? परदा कंप भी नहीं रहा है। यह सारा तूफान, यह इतने बड़े मकानों का गिरना, यह महलों का भूमिसात हो जाना, यह पहाड़ों का कंपना, ये बड़े-बड़े दरख्त, इनकी जड़ें उखड़ जानीं, यह लोगों का मरना, यह जहाजों का डूबना--यह सब हो रहा है। लेकिन क्या तुम सोचते हो जिस परदे पर यह हो रहा है, वह परदा.जरा भी कंप रहा है? उसमें कंपन भी हो रहा है? उसमें कोई कंपन भी नहीं है। उसे पता ही नहीं है इस तूफान का। यह तूफान सिर्प तुम्हारी कल्पना में हो रहा है। परदे के लिए हुआ ही नहीं।
ऐसा ही एक परदा तुम्हारे भीतर है, जिसको ज्ञानियों ने साक्षी कहा है। सफेद है परदा। उस पर कुछ भी नहीं हुआ, न कभी वहां कुछ हो सकता है। वहां सदा से शांति है। वहां सदा से शून्य विराजमान है। उसको अनुभव कर लेना, सत्य को अनुभव करना है। उसको जानना, ब्रह्मा को जानना है। उसको जानते ही, व्यक्ति ब्राह्मण हो जाता है। सपनों में खोए रहना--शूद्र। सत्य के प्रति जाग जाना ब्रा्रह्मण। जो सपने में खोए हैं, वे सब शूद्र हैं। वे ब्राह्मण-घर में पैदा हुए हों, इससे फर्क नहीं पड़ता। और जो जाग गए हैं, वे चाहे शूद्र-घर में पैदा हुए हैं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, ब्राह्मण हैं।
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुई चार, अंत लागत है फीको।।
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
और लाख उपाय करो... कोटिन जतन रह्यो नहीं... लाख उपाय करो, इस माया में किसी चीज को तुम ठहरा नहीं सकते। यहां सब प्रवाह है--आया और गया! यहां एक क्षण को भी तुम किसी चीज को ठहरा नहीं सकते। हैराक्लतु ठीक है, जिसने कहा है कि एक ही नदी में दुबारा नहीं उतरा जा सकता। एक ही चीज को दुबारा नहीं जाना जा सकता। दुबारा जानने लायक समय कहां है? चीज बह गई। हर चीज बही जा रही है।
लेकिन हमारी पूरी चेष्टा जीवन भर यही होती है कि पकड़ लें, रोक लें। जवानी है तो जवानी को नहीं जाने देते, कि कहीं बुढ़ापा न जाए! किस-किस भांति हम रोकने की कोशिश करते हैं, रुकती है जवानी? जीवन है तो जीवन को पकड़ रखना चाहते हैं, मौत न आ जाए! रुकता है जीवन? मौत आती ही चली जाती है। हमारे सब उपाय हार जाते हैं। हम हर चीज को रोक रखना चाहते हैं और हमें इस बात का ख्याल भी नहीं है कि जिसे हम रोक रखना चाहते हैं, वह रुक नहीं सकती। माया

का स्वभाव रुकना नहीं है। सपने का स्वभाव रुकना नहीं है। सपने का स्वभाव बहाव है।
सत्य ठहरा हुआ है। सत्य शाश्वत है। वहां कोई बहाव नहीं है। वह सदा एक
रस है। सपने को तो बहता ही रहना पड़ता है। बहने में ही उसका जीवन है।
ऐसा समझो कि तुम फिल्म देखते हो, प्रभावित होते हो, आंदोलित हो जाते हो, दुखी-सुखी हो जाते हो; मगर अगर एक ही चित्र तुम्हारे सामने बना रहे परदे पर, तो क्या तुम सुखी-दुखी होओगे? एक ही चित्र बना रहे, चित्र बदले न, तो तुम कितनी देर तक समझोगे कि यह चित्र सही है? ज्यादा देर नहीं समझ पाओगे कि चित्र सही है। थोड़ी देर में ही समझ जाओगे, ऊब जाओगे, कि अब बस उठूं, अब घर जाऊं। अब यह एक ही चित्र है, कुछ हो ही नहीं रहा है।
वह जो कुछ हो रहा है, वही तुम्हें उलझाए रखता है। वह जो परिवर्तन है वही तुम्हें उलझाए रखता है। अगर जगत एक क्षण को भी ठहर जाए, तो तुम जगत से मुक्त हो जाओ। जगत बदलता रहता है--नये नृत्य, नये रंग, नये ढंग, नये परिधान हैं।
तुम देखते हो न, हर चीज की फैशन बदलती रहती है। वह जगत का हिस्सा है। लोग कपड़े बदल लेते हैं, गहने बदल लेते हैं, मकान बदल लेते हैं, नौकरियां बदल लेते हैं, पत्नियां बदल लेते हैं, पति बदल लेते हैं, बदलाहट, बदलाहट... मन कहता है बदलो। मन डरता है किसी चीज से अगर ज्यादा देर साथ रह गए, तो कहीं भ्रम न टूट जाए। तो मन कहता है, बदलते रहो। मन सतत बदलने के लिए प्रेरणा देता रहता है, क्योंकि मन जी ही सकता है बदलाहट में। और माया भी जी सकती है बदलाहट में।
माया यानी मन का विस्तार। मन, जिसको हम भीतर कहते हैं--वह। और माया, मन
का ही बाहर जो विस्तार है--वह। मन भीतर की माया; माया बाहर का मन। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परिवर्तन में सारा खेल है।
इस देश ने एक अनूठा प्रयोग किया था। उस प्रयोग का शायद तुम्हें ख्याल
भी न रहा हो। सदियों तक हमने एक प्रयोग किया था। वह प्रयोग यह था कि जिंदगी को इस तरह रखा था कि उसमें ज्यादा बदलाहट न हो। इसलिए हमने एक स्त्री से विवाह किया, तो उस पर जोर दिया कि बस अब एक ही स्त्री के साथ रहना है। जीवन भर... एक पत्नी, एक पति। लोग एक तरह के कपड़े पहनते थे तो सदियां बीत जाती थीं उसी तरह के कपड़े पहनते थे लोग अपने गांव में रहते थे, तो अपने गांव में ही रहे आते थे।
लाओत्सु ने लिखा है कि मैं जब बच्चा था तो नदी के उस पार दूसरा गांव था। वहां के कुत्ते भौंकते थे तो हमें सुनाई पड़ते थे। और वहा सांझ को भोजन पकाया जाता था तो मकानों के ऊपर से उठता हुआ धुआं भी हमें दिखाई पड़ता था। लेकिन किसी की उत्सुकता नहीं थी कि जाकर देखें कि कौन वहां रहता है। हम अपने गांव में मस्त थे वे अपने गांव में मस्त थे। लोग एक गांव में पैदा होते, वहीं मर जाते थे, वहीं जीते थे।
यह एक अनूठा प्रयोग था। इस प्रयोग के पीछे बुनियादी कारण क्या था? बुनियादी कारण यह थाः अगर जगत में कम से कम परिवर्तन हों तो तुम जल्दी ही जगत से मुक्त होने की आकांक्षा से भर जाते हो। अगर एक ही पत्नी के साथ तुम्हें जिंदगी भर रहना पड़े तो तुम कितनी देर तक चूकोगे, यह बात समझने से-- मीठो दिन दुई चार, अंत लागत है फीको! कैसे बचोगे? तुम चकित होओगे जान कर कि इसके पीछे एक आध्यात्मिक प्रक्रिया थी। अमरीका में बहुत मुश्किल है यह जानना। क्योंकि चार दिन में तो पत्नी बदल जाती है। दो-चार दिन के बाद ही लगेगा न फीका। लेकिन दो-चार दिन फिका लगने के पहले ही पत्नी बदल ली। तो हनीमून चलता ही रहता है। एक हनीमून से दूसरा हनीमून, दूसरे से तीसरा हनीमून। बदलाहट इतनी तेजी से होती रहती है कि भ्रांति टूटती नहीं। अमरीका में लोग औसत रूप से तीन साल से ज्यादा एक धंधे में नहीं रहते।
एक ही धंधे में रहोगे, ऊब ही जाओगे। ऊब बिल्कुल स्वाभाविक है। और जब ऊब होती है तो पता चलना शुरू होता है कि सब फिका है, सब व्यर्थ है। लेकिन धंधा हर तीन साल में बदल लिया। तीन साल ही अमरीका में धंधे बदलने का औसत है और तीन साल ही मकान बदलने का औसत है और तीन ही पत्नी-पति बदलने का औसत है। तीन साल से कुछ संबंध दिखता है मन का। तीन साल के बाद दिखता है, ऊब सघन हो जाती

है और सपना टूटने के करीब आ जाता है। इसके पहले कि सपना टूटे, बदल लो; नया सपना देखना शुरू करो।
वही फिल्म रोज-रोज देखोगे, कितने दिन तक रोओगे? --यह मुझे कहो। पहले दिन रो लोगे, दूसरे दिन रो लोगे, तीसरे दिन रो लोगे--कब तक रोओगे, यह मुझे कहो। दो-चार दिन के बाद तुम कहोगेः "बहुत हो गया। अब क्या रोना है? फिल्म है, कहानी है, ठीक है।" वही उपन्यास पढ़ोगे, कितने दिन तक उत्सुकता रहेगी? हमने जीवन के हर पहलू पर यह प्रयोग किया था। हमने सदियों तक एक ही फिल्म देखी--"रामलीला।" सदियां आईं और गईं--और वही राम, और वही सीता और वही रावण, और फिर वही कहानी, और फिर वही कहानी। और हर वर्ष लोग देखते ही रहे, देखते ही रहे, देखते ही रहे। इसके पीछे कुछ कारण था। हमने चाहा था कि चीजें थोड़ी थिर हो जाएं, ताकि थिरता से भ्रांति साफ हो जाए।
कभी-कभी फिल्म में इंजिन बिगड़ जाए या प्रोजेक्टर खराब हो जाए, और फिल्म रुक जाती है। उसी वक्त तुम्हारी भाव-दशा भी रुक जाएगी। इधर फिल्म रुकी, उधर भाव-दशा रुकी।
बदलाहट के साथ ही मन जी सकता है।
यह आकस्मिक नहीं है कि बुद्ध और महावीर, और बहुत-बहुत ज्ञानी जंगलों में चले गए, पहाड़ों में चले गए। कारण था। जंगल और पहाड़ सदा वैसे के वैसे हैं। आदमी बदलाहटें कर लेता है, जंगल और पहाड़ तो सदा वैसे के वैसे हैं। वही एक-रसता है। महावीर ने तो और हद कर दी! तुमने देखा है, जैनों के जो तीर्थ-स्थान हैं वे जंगलों में नहीं हैं, पहाड़ों पर हैं। और उन पहाड़ों पर हैं, जो बिल्कुल सूखे हैं, जहां वृक्ष नहीं हैं। सुंदर पहाड़ नहीं चुने। क्योंकि जहां वृक्ष हैं, वृक्षों के साथ थोड़ी बदलाहट होती ही रहती है। पतझड़ आएगा, पत्ते गिरेंगे। फिर बसंत आएगा, फूल खिलेंगे। लेकिन खाली पत्थर, सूखे पत्थर--वहां कुछ नहीं बदलता, सब थिर है। कितनी देर तुम बाहर में उत्सुकता रखोगे? देखते रहे चट्टान को, देखते रहे चट्टान को। वहां न कुछ बदलता है कभी, न कभी बदला है, न कभी बदलेगा--तुम समाप्त हो जाओगे, चट्टान जैसी थी वैसी की वैसी है, वैसी की वैसी रहेगी। कितने दिन तक उत्सुकता रहेगी? जल्दी ही उत्सुकता खो जाएगी। बाहर से आंखें भीतर की तरफ मुड़ने लगेंगी। ऊब पैदा हो जाएगी।
मीठो दिन दुई चार... दो-चार दिन जल्दी ही विदा हो जाएंगे।... अंत लागत
है फीको। सब फीका लगने लगेगा। और जब यह संसार फीका लगता है, तो परमात्मा की तलाश शुरू होती है। कोई खोजे क्यों परमात्मा को, अब संसार ही फीका न लगता हो? जब यहां काफी रस ही आ रहा हो, कोई खोजे क्यों जब रस आ रहा हो तो यही परमात्मा मिल रहा है, कोई खोजे क्यों? संसार के फीके अनुभव से आदमी उस तरफ चलना शुरू होता है, जहां वस्तुतः रस होगा।... रसो वै सः! तब असली रस की तलाश शुरू होती है।
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
माया तो बदलती ही रहती है, बदलने में ही जीती है। बदलना उसका सार-सूत्र है, जीवन की आधारशिला है। और तुम लाख उपाय करो, बचा न सकोगे। तुम्हारा किसी से प्रेम हो गया। तुम कितना उपाय करते हो कि अब यह प्रेम बना ही रहे, मगर यह बना नहीं रह सकता। यहां कोई चीज बनी नहीं रह सकती। यहां सब बनता है--मिटने को। यहां सब बसता है--तउजड़ने को। कितने हमने उपाय किए हैं कि पत्थरों के महल बनाएं जो कभी न गिरें; वे भी गिर जाते हैं; वे भी समाप्त हो जाते हैं; वे भी एक दिन धूल हो जाते हैं, रेत हो जाते हैं। हमारा यहां बनाया हुआ कुछ भी टिक नहीं सकता। टिकना यहां स्वभाव नहीं है।
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।... यह हो ही नहीं सकता; क्योंकि माया का स्वभाव ही एक नहीं है, अनेक है। उसके मूल में एक है ही नहीं, अनेकता है। अगर थिर को पाना हो, शाश्वत को पाना हो, तो एक को खोजना पड़ेगा, मूल को खोजना पड़ेगा। उस मूल में ही विश्राम है। जो कभी न बदले, उसी में मुक्ति है। क्योंकि फिर निश्चिंतता है, फिर सुरक्षा है। फिर घर आ गया।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर।
यह माया तो ऐसे उड़ जाएगी जैसे कपूर उड़ जाता है। इसलिए कपूर को मंदिरों में प्रार्थना और पूजा के लिए चुना था। वह प्रतीक था माया का। वह खबर देता

था कि यहां सब चीजें उड़ जानेवाली हैं। कपूर... आरती उतारते हैं कपूर रख कर। क्षण भर को भभक उठती है और सुगंध फैलती है। क्षणभर को लपट और फिर सब सन्नाटा। धुआं भी खो गया, ज्योति भी खो गई, गंध भी खो गई।
इसमें प्रतीक देखते हो? पत्थर की प्रतिमा बनाते हैं, कपूर की आरती उतारते हैं। सूचना इस बात की है कि पत्थर की प्रतिमा--आरती बनी तब भी थी; आरती उतारी तब भी थी; कपूर जला तब भी थी; कपूर भभका तब भी थी; कपूर शांत हो गया तब भी है; कपूर का अब कोई नामोनिशान न रहा तब भी है। ऐसा ही सत्य और माया है। माया कपूर जैसी है।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर
नामक रंग मंजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
एक ही चीज इस जगत में है, उस प्रभु का नाम। उस प्रभु का रंग--जो पक्का है; लग जाए तो फिर छूटता नहीं। जब तक नहीं लगा, तब तक तुम्हें इस बात का पता नहीं होता; जब लग जाता है तभी पता होता है।
नामक रंग मंजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रह्यो समाय, सार ता में अधिकाई।
और अगर कहीं उस प्रभु की स्मृति उठने लगे, अगर किसी सत्संग में उसकी याद आने लगे, उसका भाव जगने लगे, तो फिर कंजूसी मत करना, कृपणता मत करना।
लचपच रह्यो समाय। अगर कहीं यह भाव उठता हो तो डुबकी मार जाना। फिर खड़े मत रहना किनारे पर। अगर कहीं यह गंगा बहती हो, तो चूक मत जाना। मुश्किल से कभी यह संयोग होता है कि कहीं गंगा बहती है उसके नाम की। और कहीं तुम खड़े ही रहे किनारे, और चूक गए और चूक सकते हो।
लचपच रह्यो समाय! धनी धरमदास कहते हैंः फिर चूकना मत। छलांग मार जाना। फिर तो एकरस हो जाना। जहां उसके प्रेम की चर्चा होती हो, जहां उसके नाम का गीत-गायन होता हो, जहां उसकी स्मृति में नृत्य चलता हो, जहां लोग प्रार्थना में लीन हों, जहां लोग परम का उच्चार कर रहे हों, जहां बैठ कर प्रभु की प्रशंसा की जा रही हो--वहां लचपच हो जाना। ऐसे दूर-दूर मत खड़े रहना, बचाए-बचाए मत खड़े रहना। वहां अछूत बने मत खड़े रहना। सम्मिलित हो जाना नृत्य में! डूब जाना संगीत में।
मगर बड़ा कठिन है। लोग हजार बहाने खोज लेते हैं दूर खड़े रहने के। जो लचपच हो गए हैं, उन्हें तो वे पागल समझते हैं। वे सोचते हैंः "इनको क्या हो गया? अच्छा-भला आदमी, इसको क्या हो गया? यह कहां की बातों में पड़ गया! अभी कुछ धन कमाता, अभी कुछ पद बनाता। अभी तो मौके हाथ लगने को थे। अभी तो बाजार की किस्मत बदलने को थी। अभी कहां भागा जा रहा है। अभी तो सौदा कर लेने का समय था। इसे कहां की राम की बात पकड़ गयी? इसे कौन से प्रभु का स्मरण आ गया? सब भ्रांति है। अपने को बचाओ।" आदमी पहले तो ऐसी जगह जाता नहीं। ऐसी जगह खतरनाक है। लोग सत्संग से ऐसे बचते हैं, जैसे लोग प्लेग से भी नहीं बचते। जार्ज गुरजिएफ के संबंध में, उसके एक विरोधी ने यह वक्तव्य फ्रांस में फैला रखा था कि गुरजिएफ से इस तरह बचो जैसे कोई प्लेग से बचता है। और इसमें सच्चाई है; क्योंकि प्लेग का मारा तो शायद बच भी जाए, गुरजिएफ का मारा नहीं बचेगा। सत्संग में जो मारा गया, मारा गया, सदा के लिए मारा गया; फिर वहां से जिंदा लौटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए लोग बचते हैं। या अगर चले भी जाते हैं तो बहरे हो जाते हैं, कठोर हो जाते हैं, पाषाण की तरह हो जाते हैं। अगर चले भी जाते हैं तो हजार तरह की शंकाओं को भीतर उठाते रहते हैं, हजार तरह से मन डांवाडोल करते रहते हैं। अगर कहीं सम्मिलित भी हो जाते हैं, तो भी अधूरे-अधूरे सम्मिलित होते हैं, पूरे नहीं सम्मिलित होते। और जब तक तुम सौ प्रतिशत सम्मिलित नहीं हो, सम्मिलित नहीं हो। क्योंकि सौ प्रतिशत से कम में कोई सम्मिलन होता ही नहीं।
देखा न, पानी जब गरम होता है तो सौ डिग्री पर भाप बनता है। तुम यह मत सोचना कि अट्ठानबे डिग्री पर बनना चाहिए, कुछ तो बनना चाहिए, अट्ठानबे प्रतिशत भाप बनना चाहिए। नहीं, एक प्रतिशत भी नहीं बनता। निन्यानबे डिग्री पर भी नहीं बनता। जरा सी भी कमी रह जाए सौ डिग्री में तो पानी भाप नहीं बनता। भाप तो बनता है ठीक सौ डिग्री पर।

और ऐसे ही उसका रंग लगता है ठीक सौ डिग्री पर। कभी-कभी आदमी बचता है, आता ही नहीं, आ जाता है तो बहरा हो जाता है। ऐसे सुनता है जैसे बिल्कुल वज्र-बहरे! जीसस ने बारबार अपने शिष्यों से कहा है; "कान हों तो सुन लो। आंख हो तो देख लो।" उनके पास तुम जैसे ही कान थे, और तुम जैसी ही आंखें थीं। वे अंधों से और बहरों से नहीं बोल रहे थे। वे कोई अंधे-बहरों के स्कूल में नहीं चले गए थे। फिर क्यों बारबार जीसस कहते हैं, "आंख हों तो देख लो। कान हों तो सुन लो", क्योंकि आंखें भी हैं, लेकिन लोग बंद किए होते हैं; जीसस को देखने में डर लगता है। कहीं यह आदमी दिख जाए, तो फिर हमारी जिंदगी वही की वही नहीं रह जाएगी जैसी थी। एक भूचाल आएगा। एक क्रांति घटेगी। इसका रंग चढ़ जाएगा। कान हैं तो बंद कर लेते हैं। सुनते मालूम पड़ते हैं और सुनते नहीं। फिर सुन भी लें तो भीतर हजार तरह के विवाद करते हैं। सुन भी लें तो कुछ का कुछ अर्थ कर लेते हैं। सुन भी लें, बात कुछ ख्याल में भी आ जाए, तो पूरा नहीं उतरते। होशियारी से चलते हैं। होशियारों का यह काम नहीं। चालाकी से चलते हैं।
यहां मेरे पास लोग हैं; सब तरह के लोग हैं। ऐसे लोग भी हैं जो संन्यस्त
हो गए हैं और फिर भी होशियार हैं। संन्यस्त होकर और होशियार! फिर तुम संन्यस्त हुए ही नहीं। होशियारी! अभी भी तुम अपना हिसाब लगाए रखते हो। मुझे भी धोखा देते रहते हैं। कोई धोखा देने का मौका आ जाए तो नहीं चूकते। फिर यह भी उपाय करते रहते हैं कि धोखा नहीं दिया, इसका पता भी न चल पाए। फिर पकड़े जाते हैं तो क्षमा-याचना कर लेते हैं। मगर वह क्षमा-याचना भी झूठ होती है। वह झूठ इसलिए होती है कि फिर दुबारा वही करते हैं। वह क्षमा- याचना सच कैसे हो सकती है? इस तरह की चालबाजियां! तो फिर यहां रहो ही मत। फिर तुम्हें जहां ठीक लगे वहां जाओ। लेकिन जहां जाओ, वहां सौ प्रतिशत डूबो। कहीं भी डूबो तो!
असली बात डूबने की है; कहां डूबे, यह सवाल नहीं है। किस सत्संग में तुम्हें रंग चढ़ेगा, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि रंगरेज तो एक ही है, उसके हाथ अनेक होंगे। मगर रंग चढ़ने दोगे, तब न! दूर-दूर खड़े रहे, बचाव करते रहे, छाता लगाए रहे कि रंग पड़ न जाए कहीं ऊपर... ।
तुम्हारी हालत वैसी है जैसी कि होली के दिनों में होती है लोगों की। लोग रंग डालने निकलते हैं, डलवाने निकलते हैं; फिर भी उपाय करके निकलते हैं। एक तो साल-भर लोग कपड़े बचा कर रखते हैं फाग के लिए; गंदे-पुराने कपड़े बचा कर रखते हैं। धुलवा कर रखते हैं कि जंचें ऐसे कि बिल्कुल साफ-सुथरे पहने हुए हैं; मगर खराब हो जाएं तो कुछ हर्जा नहीं, कुछ खोता नहीं। तो फिर जरूरत क्या थी रंग डलवाने की और रंग डालने की? किसको धोखा दे रहे हो?
मुझे बचपन की याद है। मेरे घर में भी वही होता था। कोई फटा-पुराना कपड़ा होता, वे सम्हाल कर रख देते कि इसको रख दो, होली पर काम आएगा। मैं उनसे कहताः फिर होली में जाने की जरूरत क्या है? होली के लिए तो तुम अगर ताजे नये कपड़े बनाते हो तो ही मैं जाने वाला हूं, नहीं तो नहीं जानेवाला हूं। फिर गए किसलिए? उनका रंग खराब करवाने को? अपने कपड़े खराब हैं ही, उनका रंग और खराब करवाया। और कपड़े फेंक दिए, झंझट मिटी।
तो मैं होली पर जब जाता था तो ताजे कपड़े ही लेकर जाता था। नहीं तो मैं कहता था कि मैं निकलूंगा ही नहीं घर से, क्योंकि इसका कोई सार ही नहीं है। उनको क्यों धोखा देना? वे बेचारे बड़ी तैयारी किए होंगे। रंग घोल कर रखे होंगे, पिचकारी सजाई होगी। और ये कपड़े तुमने धुलवा कर रख दिए हैं, कलफ चढ़वा कर रख दिए हैं। ये बड़े साफ-सुथरे मालूम हो रहे हैं। मगर मुझे पता है। उनका पता नहीं है, यह ठीक है। मगर उनको भी पता होगा, क्योंकि वे भी ऐसे ही कपड़े पहने हुए हैं।
तुम संन्यस्त भी हो जाते हो, तो भी रंगते नहीं। तुम्हारी चालबाजियां जारी रहती हैं। तुम अपना गणित बिठाए रखते हो। अपना ही गणित बिठाना है, तो फिर मुझसे संबंध नहीं जुड़ा। अपना गणित नहीं जीता है, इसीलिए तो आदमी संबंध जोड़ता है कि अपने सोचने से नहीं हो सका, अब किसी के साथ संबंध जोड़ लें; अब किसी का हाथ पकड़ लें और अब चल पड़ें अज्ञात की दिशा में। मगर सौ प्रतिशत होना चाहिए।... लचपच रह्यो समाय। यह सौ प्रतिशत का अर्थ हैः लचपच रह्यो

समाय। ऐसा नहीं, ऊपर-ऊपर नहीं। रंग ही जाओ--बाहर-भीतर! शरीर भी रंगे और आत्मा भी रंग जाए। फिर यहां-वहां जाने की जरूरत नहीं रह जाती, कोई कारण नहीं रह जाता। जो रंग गया वह रंग गया। और अगर तुम यहां-वहां जाते रहे तो ख्याल रखनाः जिस मात्रा में तुमने मुझे धोखे दिए हैं, उसी मात्रा में तुम मुझे चूक जाओगे। फिर मुझसे मत कहना पीछे। क्योंकि जुम्मेवारी तुम्हारी है। तुम अगर मेरे साथ पूरे नहीं हो तो तुम मुझे अपने साथ कैसे पूरा पाओगे? मैं तुम्हारे साथ उतना ही हो सकता हूं जितना तुम मेरे साथ हो। और उतनी ही तुम्हारी उपलब्धि होगी।
संग-साथ या तो सौ प्रतिशत हो तो बदलाहट लाता है, नहीं तो व्यर्थ चला जाता है। नाहक की मेहनत हो जाती है।
लचपच रह्यो समाय, सार ता में अधिकाई।
धनी धरमदास कहते हैंः उसमें बहुत सार है, अगर पूरी डुबकी लगा लो, अगर लचपच हो जाओ।
केती बार धुलाइए, दे-दे करड़ा धोय।
सौ प्रतिशत डूबो तो फिर कितनी ही धुलाई की जाए और कितने ही कड़ेपन से धुलाई की जाए... ज्यों-ज्यों भट्टी पर दिए त्यों-त्यों उज्ज्वल होय। और फिर तो जैसे-जैसे भट्टी पर चढ़ाए जाओगे, वैसे-वैसे रंग और निखरेगा और सजेगा, संवरेगा।
जीवन की चुनौतियां सत्संग को नष्ट नहीं करतीं। सत्संग हो तो जीवन की चुनौतियां सत्संग को गहराती हैं। भट्टी बन जाती है जिंदगी। वहां हर घटना रंग को और गहन करती है। संसार फिर परमात्मा से छुड़ाता नहीं जब तक परमात्मा से जुड़े नहीं हो, तब तक संसार परमात्मा से छुड़ा सकता है। एक बार जुड़े, एक किरण उतरी, एक आभास हुआ, एक प्रतीति हुई, कि फिर संसार परमात्मा से तुड़वाता नहीं, जुड़वाने लगता है। फिर तो संसार का हर अनुभव उसी की याद दिलाने लगता है। संसार का हर कांटा फिर उस फूल की स्मृति दिलाता है। संसार का सुख उस महासुख की याद दिलाता है। संसार का दुख भी उस महासुख की याद दिलाता है। फिर तो संसार के सब सुख-दुख उसी की याद दिलाते हैं। फिर उसकी याद ही तुम्हारी जीवन-विधि हो जाती है, व्यवस्था हो जाती है। फिर तो कुछ भी हो, उसी की याद आती है। सुबह देखा आकाश में शुभ्र घुमते हुए बादलों को--और उसी की याद आ जाएगी। सूरज निकला--और उसी की याद आ जाएगी! वर्षा हुई--और उसी की याद आ जाएगी पक्षी उड़े--और उसी की याद आ जाएगी! कोई बच्चा हंसा--और उसी की याद आ जाएगी!
यह मस्त फजाएं किसने अनोखी खुशबू से महकाई हैं?
यह कैसी बहिश्तें उल्फत की हर नख्लो-शजर पर छाई हैं?
क्यों आज बहारों की परियां पैगामे-मसर्रत लाई हैं?
फिर आज तुम्हें शायद छूकर यह मस्त हवाएं आई हैं।
फिर तो हर तरफ से उसी की खबर आने लगती है। यह स्वर्ग क्यों उतर रहा आज!
ये आनंद के संदेश हैं आज क्यों आ रहे हैं, कहां से आ रहे हैं!
पहले भी देखा था तुमने सौंदर्य। तब तुमने समझा था, फूल का है। अब फूल गया; अब सब सौंदर्य परमात्मा का है। पहले भी तुमने सौंदर्य देखा था; सोचा था, स्त्री का है, पुरुष का है। अब गए स्त्री-पुरुष; अब सब सौंदर्य उसी का है।
दुनिया पै है तारी रंग नया आलम ने भी बदले है चोले
यह किसने अदाए-खास से फिर रुखसारे-महो-अंजुम खोले
और एक हसीन अंगड़ाई की हर जुंबिश से मोती रोले
फिर आज तुम्हें शायद छूकर यह मस्त हवाएं आई हैं।
कुछ दर्द-सा है दिल वालों में, कुछ सोज भी है अफसानों में एहसासे-गमे-महरूमी लो बेदार हआ दीवानों में
इक लगजिशे-पैहम होने लगी फिकरत के हंसी इवानों में
फिर आज तुम्हें शायद छूकर यह मस्त हवाएं आई हैं।
हर जर्रए-आलम रक्सां है, मुशातिए फितरत जोश में है
इक होश की दुनियां मुजतर-सी हस्ती के दिले-बदहोश में है थी जिसकी तमन्ना मुद्दत से जैसे कि वही आगोश में है

फिर आज तुम्हें शायद छूकर यह मस्त हवाएं आई हैं।
है चाक गरेबां-गुंच-ओ-गुल खंदां है गुलिस्तां एक तरफ
आकाश तले हैं शैखो-बरहमन खुल्दे-बदामा एक तरफ
और आलमे-सरशारी में "हया" है आज गजल ख्वां एक तरफ
फिर आज तुम्हें शायद छूकर यह मस्त हवाएं आई हैं।
फिर सब गीत उसके हैं। सब सौंदर्य उसका, सब सुगंध उसकी, सब रूप उसका। फिर हर रूप में अरूप है और हर आकार में निराकार है। फिर हर आंख में वही झांकता है। वही खोजने वाला है, वही देखने वाला है, वही दृश्य है। वही गंतव्य है, वही गंता, वही गति।
एक बार रंग लगे, संसार विलीन हो जाता है। संसार परमात्मा में लीन हो जाता है। एक बार तुम लचपच हो जाओ परमात्मा में, तो तुम पाओगे परमात्मा संसार में लचपच है। लेकिन यह पहचान जब तक तुम्हारी अपनी न हो, तब तक किसी काम नहीं आती।
लचपच रह्यो समाय, सार ता में अधिकाई।
केती बार धुलाइए, दे दे करड़ा धोय।
ज्यों ज्यों भट्ठी पर दिए त्यों त्यों उज्ज्वल होय।।
सोवत हौ केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी।
अब क्यों सो रहे हो? किसलिए सो रहे हो? यह पीड़ा सदा उनको रही है जिन्होंने जाना। उनकी समझ में यह नहीं आता कि सोने की अब जरूरत क्या है, कारण क्या है? काफी सो लिए हो। और सो कर बहुत दुख-स्वप्न देख लिए हैं, बहुत नरक भोग लिए हैं। सोने में सार भी कुछ नहीं पाया, फिर भी सोए हो?
और अगर धनी धरमदास जैसे व्यक्तियों को इस तरह के कठोर शब्द बोलने पड़े--मूढ़, मूरख, अग्यानी--तो सिर्प करुणा के कारण। ये तीनों शब्द समझने जैसे हैं। सोवत हौ केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी। "मूढ़" सबसे खतरनाक होता है; मूरख उससे थोड़ा कम। अज्ञानी उससे थोड़ा कम। अज्ञानी का अर्थ होता है ज्ञान का अभाव। मूरख का अर्थ होता हैः अज्ञान की आदतें। मूढ़ का अर्थ होता है: अज्ञान की जिद। इस भेद को समझ लेना। अज्ञानी का अर्थ होता हैः बच्चे जैसा; उसे अभी पता नहीं; भोलाभाला। पता हो जाए तो यात्रा पर निकल पड़ेगा। जब यहां कोई अज्ञानी आ जाता है तो ज्यादा देर नहीं लगती उसके लचपच होने में; हो जाता है। क्योंकि उसे कोई अज्ञान की आदत नहीं है; सिर्फ अभाव है ज्ञान का। उसे रोशनी दिखाई नहीं पड़ी कभी; दिखाई पड़ती तो वह पहचान लेता। उसकी कोई ऐसी भीतरी आग्रह की दशा नहीं है, ऐसा कोई पक्षपात नहीं है कि मैं रोशनी को देखूंगा ही नहीं।
इसलिए कभी-कभी तुम हैरान होओगे, अज्ञानी ज्ञान के सर्वाधिक करीब होता है--तुम्हारे पंडितों से भी ज्यादा करीब होता है! पंडित की गिनती मूरख में करनी चाहिए। उसे भ्रांति होती है कि मैं जानता हूं, और जानता नहीं। और जब भ्रांति होती है कि मैं जानता हूं, तो उसके पास आग्रह होता है कि मेरा जानना ठीक होगा। होना ही चाहिए। वह अपनी आदतों को पकड़ता है। अपनी आदतों को सिद्ध करना चाहता है।
अज्ञानी तो छोटे बच्चे की भांति है। धन्यभागी है अज्ञानी, क्योंकि वह सबसे कम अज्ञानी है इन तीन में। फिर मूरख है। मूरख का मतलब यह होता है कि उसने आदतें बना ली हैं, उन आदतों को नहीं छोड़ सकता। उसने अज्ञान की आदतें बना ली हैं। वह उनका आग्रह रखता है। कभी-कभी मान भी लेता है कि छोड़ूंगा, मगर छोड़ नहीं पाता; उनकी पुनरुक्ति करता रहता है। मूर्च्छित है, बेहोश है। जब कोई मूरख आ जाता है, उसके साथ ज्यादा सिर फोड़ना पड़ता है।
फिर मूढ़ भी हैं। वे तो अंतिम शिखर हैं अज्ञान के। मूढ़ का मतलब होता है,
वह तो स्वीकार ही नहीं करता कि मैं और अज्ञानी! कभी नहीं! मैं तो ज्ञानी हूं! मूरख तो थोड़ा डांवाडोल होता है कि पता नहीं, मुझे मालूम हो, न हो। अज्ञानी स्पष्ट होता है कि मुझे मालूम नहीं। मूढ़ कहता हैः मुझे मालूम है और जो मुझे मालूम है वही सही है। और इससे अन्यथा सत्य हो ही नहीं सकता। वह जिद्दी होता है, आग्रही होता है। फिर चाहे वह अपने आग्रह को सत्याग्रह का नाम ही क्यों न दे; मगर सब आग्रह असत्य के होते हैं, सत्य का कोई आग्रह नहीं होता। सत्य तो अनाग्रही होता है। उसमें जिद होती ही नहीं, निवेदन होता है।

मूढ़ सबसे ज्यादा खतरनाक है। वह राजी ही नहीं होता। वह मानता ही नहीं।
वह स्वीकार ही नहीं करता। वह अपने अज्ञान को ही ज्ञान सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न रहता है। उसका अहंकार बड़ा प्रबल है।
इसलिए तीन अलग-अलग शब्दों का उपयोग किया गया--सोवत हौ केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी। खोजना इन तीन में तुम कहां हो। और बड़ी ईमानदारी से। खोजना, क्योंकि वह खोज बड़े काम की होगी।
गुरजिएफ के पास जब भी कोई शिष्य जाता था, तो गुरजिएफ कहता था कि पहली बात खोजने की यही है कि तुम्हारे चरित्र का ढांचा क्या है? तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? तुम्हारी जिंदगी की सबसे बड़ी जिद क्या है? तुम्हारी जिंदगी की बुनियादी भूल क्या है, जिसके आसपास सारी भूलें घूमती हैं, परिभ्रमण करती हैं, परिक्रमा करती हैं। वह कहता था कि महीने दो महीने तुम सिर्प इसी बात पर सोचो, काम इसके बाद शुरू होगा।
अकसर ऐसा हो जाता है कि जो तुम्हारी बीमारी नहीं है वह तुम बताते हो मेरी बीमारी है। लोग बीमारी भी बड़ी सोच-समझ कर बताते हैं कि जिस बीमारी में प्रशंसा हो वह बीमारी बताते हैं। लोग हद के हैं! बीमारी से उनको इसकी फिक्र नहीं कि बीमारी का इलाज करवाना है। इलाज करवाना हो तो बीमारी को ही पकड़े हैं। उनको तो प्रशंसा करवानी है।
मैंने सुना है, एक महिला अस्पताल में आपरेशन करवाने गई थी। कई दिन से जिद में पड़ी थी। पहले आति थी कि मेरा टांसिल निकाल दो। फिर डाक्टर ने कहा कि टांसिल की निकालने की कोई जरूरत नहीं है, तेरे टांसिल बिल्कुल ठीक हैं। फिर आने लगी कि मेरी अपेंडिक्स निकाल दो। डाक्टर ने कहा कि भई, हमें लगे तो निकालें, तेरे मानने से नहीं निकाल सकते। उसने कहाः तो कुछ भी निकाल दो। क्योंकि जब भी मैं क्लब में जाती हूं तो कोई स्त्री कहती है कि मेरी अपेंडिक्स निकली है, कोई कहती है मेरे टांसिल निकले हैं। मेरे पास बात करने तक को कुछ नहीं है।
मैंने एक और स्त्री के संबंध में सुना है कि जब आपरेशन की टेबल पर उसे लिटाया गया तो उसने डाक्टर से कहा कि चीरा.जरा लंबा मारना। अपेंडिक्स निकाली जा रही थी।
उसने कहाः लेकिन चीरा लंबा क्यों मारना? लोग तो कहते हैं कि चीरा जरा छोटा मारना कि पीछे उसका दिखावा न रह जाए, भद्दा न लगे।
उसने कहा कि नहीं, तुम तो जितना बड़ा मार सको उतना मारना। क्योंकि मेरे पति को भी चीरा लगा है, उससे बड़ा होना चाहिए। क्योंकि वह हमेशा अकड़ बताते हैं कि देखो, कितना बड़ा चीरा लगा है! यह अकड़ मुझसे नहीं सही जाती।
आदमी के अहंकार अजीब हैं!
एक महिला मेरे पास आती थी। उसके पति ने मुझे फोन किया कि आप इसकी बातों का भरोसा मत करना। यह बढ़ा-चढ़ा कर बातें करती है। इसको पुंसी हो जाए तो यह बताती है कैंसर हो गया। इसकी बातों का आप भरोसा मत करना। मैं इसके साथ तीस साल से रह रहा हूं।
लोग बीमारियां बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं! फिर बीमारियां भी वे जिनकी प्रशंसा होती हो। लोगों को चिंता नहीं है कि जीवन के असली सवाल क्या हैं। गुरजिएफ कहता थाः पहले अपनी ठीक-ठीक व्यवस्था पकड़ो। तुम्हारे जीवन
की चिंता क्या है? असली सवाल क्या है? और अगर तुम न पकड़ पाओ, तो फिर मुझे कहना।
बड़ा कठिन है पकड़ना कि हमारी बुनियादी भूल क्या है। तुम सोचते हो क्रोध। अकसर क्रोध बुनियादी भूल नहीं होती, क्योंकि क्रोध तो केवल छाया है अहंकार की।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम क्रोध से कैसे मुक्त हों। मैं उनसे पूछता हूंः यह तुम्हारी असली बीमारी है कि लक्षण? वे कहते हैं: यही हमारी बीमारी है। इसीसे हम परेशान हैं। बहुत दुख होता है और बड़ी बेइज्जती भी होती है। और क्रोध आ जाता है तो लोग समझते हैं कि क्रोधी हैं।
तो मैंने कहा, तुम क्रोध से परेशान नहीं हो। एक तो क्रोध होता ही है अहंकार के कारण; फिर यह तुम जो पूछने मुझसे आए हो कि क्रोध न हो, यह भी अहंकार के लिए है--ताकि लोगों में प्रतिष्ठा रहे, कि यह आदमी बड़ा विनम्र,

बड़ा शांत, अक्रोधी, साधु! जिस अहंकार के कारण क्रोध पैदा हो रहा है उसी अहंकार के कारण तुम मेरे पास क्रोध का इलाज खोजने आए हो। और बीमारी दोनों के पीछे एक है। तो बीमारी हल कैसे होगी?
एक सज्जन मेरे पास आए। वे कहने लगेः बहुत चिंता मन में होती है, नींद
भी नहीं आती। किसी तरह मेरी चिंता से मुझे छुटकारा दिलवा दें। मैंने तो सुना है कि ध्यान से चिंताएं मिट जाती हैं।
मैंने उनसे पूछा कि जहां तक मैं समझता हूं, चिंता असली बात नहीं हो सकती। चिंता कभी असली बात नहीं होती। चिंता किस बात की होती है, वह मुझे कहो। चिंता अपने आप तो नहीं होती। कोई चिंता ऐसे आकाश से तो नहीं उतरती। किस बात की है?
उन्होंने कहाः अब आप से क्या छिपाना! पहले डिप्टी मिनिस्टर था, फिर मिनिस्टर हो गया। आज दस साल से मिनिस्टर हूं। चीफ मिनिस्टर... मेरे पीछे के लोग चीफ मिनिस्टर हो गए। और मैं चीफ मिनिस्टर होने के पीछे पड़ा हूं, वह हल नहीं हो रहा है। वही मेरी चिंता है। आप मुझे चिंता से छुड़ा दें। एक दफे मेरी चिंता छूट जाए, तो मैं इन सबको दिखा दूं करके। क्योंकि इसी चिंता की वजह से मैं बीमार भी रहता हूं, अस्वस्थ भी रहता हूं। और जितनी ताकत लगानी चाहिए प्रतिस्पर्धा में, उतनी नहीं लगा पाता। दूसरे जो मेरे पीछे आए, वे आगे निकलते जा रहे हैं। और मैं जेल भी गया, बयालीस में भी गया, और उसके पहले भी गया।
और डंडे भी खाए और सब तरह का कष्ट सहा। और अभी तक चीफ मिनिस्टर नहीं हुआ। और पीछे से लफंगे आए हैं, जो न कभी जेल गए, न कभी डंडे खाए, न कोई कष्ट झेला, वे चीफ मिनिस्टर हो गए हैं। तो मैं क्या करूं?
मैंने उनसे कहा कि देखो, तुम कहीं और जाओ। क्योंकि जो मैं कहूंगा वह तुम झेल न सकोगे। महत्वाकांक्षा न छोड़ोगे तो चिंता नहीं छूट सकती। चिंता महत्वाकांक्षा का हिस्सा है। और महत्वाकांक्षा भी बहुत गहरे में बुनियादी नहीं है, अहंकार ही बुनियादी है।
अपने रोगों को जरा पकड़ना, खोजना। तुम बड़े हैरान हो जाओगे कि तुम्हारे रोग वे नहीं हैं जैसे दिखाई पड़ते हैं। रोग के पीछे रोग हैं। उनके पीछे और रोग हैं। और जब तक बुनियाद न पकड़ ली जाए, तब तक कोई रूपांतरण नहीं होता। ठीक से सोचना कि तुम मूढ़ हो, मूरख हो, अज्ञानी हो--क्या हो? और जहां हो फिर वहां से सरकने की कोशिश करना। अगर मूढ़ हो तो कम से कम मूरख बनो। अगर मूरख हो तो कम से कम अज्ञानी बनो। अगर अज्ञानी हो तो फिर देर क्या कर रहे हो? ज्ञानी बनो। फिर जागो! सोबत हौ केहि नींद?
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।
अब तो सुबह भी हो गई, जागने का समय भी हो गया। अब तो यात्रा की तैयारी करो!
किस यात्रा की बात कर रहे हैं धनी धरमदास? उसी यात्रा की, जिस यात्रा
की मैं तुमसे रोज बात कर रहा हूं। और प्रभात कब की हो गई है! प्रभात सदा से ही है। रात कभी हुई नहीं। तुम्हारी नींद के कारण रात है। तुम सोए हो तो रात है। जो जागा है उसके लिए दिन है। तुम्हारे पास ही जो जाग कर बैठा है उसके लिए दिन है, और तुम सोए हो तो रात है। कुछ ऐसा नहीं है कि सूरज अभी निकला है। सूरज निकला ही हुआ है। परमात्मा का सूरज न तो कभी उगता और न कभी डूबता है। उसका कोई सूर्योदय नहीं है और न कोई सूर्यास्त है। जाग गए, सबेरा। सो गए, रात।
ऐसा समझो कि साधारण जीवन में जैसा है, उससे उलटा आध्यात्मिक जीवन में है। साधारण जीवन में क्या है? जब रात होती है जब तुम सोते हो। जब सुबह होती है तब तुम जागते हो। आध्यात्मिक जीवन में ऐसा हैः जब तुम सो जाते हो, रात हो जाती है। जब तुम जाग जाते हो, सुबह हो जाती है।
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।
अब समय आ गया है यात्रा पर निकल जाने का। तीर्थ-यात्रा का समय आ गया है। अब परमात्मा को खोजने का वक्त आ गया है। आया ही हुआ है। बहुत तुमने गंवाया है, अब और समय गंवाने को नहीं है। जितने जल्दी जाग जाओ और चल पड़ो, उतना ही अच्छा है, क्योंकि उतने जल्दी सुख का सागर मिले।

डबरे बन गए हैं लोग। उनके जीवन में यात्रा नहीं है।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार
सुनते हो यह वचन! अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।... पंख खोलो और उड़ो! पंख तुम्हारे पास हैं। तुम भूल ही गए हो कि तुम्हारे पास पंख हैं। तुम्हें याद ही नहीं रही पंखों की। रहे भी कैसे? जन्मों-जन्मों से उड़े नहीं, खुले आकाश में पंख फैलाए नहीं। कारागृहों में रहने के आदी हो गए हो। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, हिंदुस्तानी, पाकिस्तानी, शूद्र, ब्राह्मण... न मालूम कितने कारागृहों के भीतर तुम रहने के आदी हो गए हो! पंख फड़फड़ाने की भी जगह नहीं है। सींकचे ही सींकचे हैं। और धीरे-धीरे तुम भूल गए हो। भूलना ही पड़ा है। नहीं तो अहंकार को बड़ी चोट लगती है कि मैं कारागृह में पड़ा हूं! अहंकार के लिए यही सुविधापूर्ण है कि पंख ही नहीं हैं मेरे पास, मैं उड़ूं भी तो कैसे उड़ूं?
और तुम बातें भी करते रहते हो कि मैं उड़ना चाहता हूं। तुम मुक्ति की चर्चा भी चलाते हो। वह भी धोखा है, वह सिर्प बातचीत है। वह असलियत से बचने का उपाय है।
इसलिए कहते हैं धनी धरमदासः अब हम सांची कहत है। धनी धरमदास कहते हैं
कि तुम्हें भली लगे चाहे बुरी लगे, अब हम सांची ही कह रहे हैं कि पंख तुम्हारे पास हैं। पूछो मत कि हमारे पास पंख कैसे उग आएं पंख तुम्हारे पास हैं। आकाश मौजूद है। पैर तुम्हारे पास हैं। सुबह हो गई। आंख तुम्हारे पास है, खोलो तो प्रकाश है। परमात्मा एक क्षण को दूर नहीं है, पीठ किए खड़े हो। अब हम सांची कहते हैं।
सांची बात ठीक नहीं लगती। आदमी चाहता है कुछ ऐसी बात कहो जिससे मैं यह समझ पाऊं कि जो मुझसे भूल हुई, होनी ही थी, मजबूरी थी। अब भी हो रही है तो आवश्यक है, अनिवार्य है। कहावतें लोगों ने बना ली हैं। टु इर्र इ.ज ह्यूमन, भूल करना आदमी का स्वभाव है। इससे राहत मिलती है। तो हमसे भूल हो रही है, तो बिल्कुल स्वभाव हो रहा है, स्वाभाविक हो रहा है।
जब भी कोई तुमसे सांची बात कहेगा, चोट लगेगी। सांच में आंच है। जलाएगी आंच, भभकाएगी अग्नि तुम्हारे भीतर। झूठे आदमी अच्छे लगते हैं। क्योंकि झूठे आदमी तुम जैसे हो वैसे ही रहो, इसका तुम्हें आश्वासन देते हैं। वे कहते हैं, तुम बिल्कुल भले हो। वे तुम्हें सांत्वना देते हैं। झूठे आदमी लौरी गाते हैं तुम्हारे आसपास। वे तुम्हारी नींद को और गहरा करवाते हैं। वे कहते हैंः भइया, करवट बदल लो, और कम्बल हम ओढ़ाए देते हैं। और अभी तो बड़ा अंधेरा है, मजे से साओ।
तुम उनके पास जाते हो जो तुम्हें सोने की विधियां देते हैं, जो तुम्हें नींद के उपाय बताते हैं; जो तुमसे कहते हैं कि अच्छे सपने कैसे देखो। हजारों किताबें लिखी जाती है इस संबंध में। डेल कारनेगी की बड़ी प्रसिद्ध किताबें हैं--हाउ टू विन फ्रेंड्स एण्ड इनफ्लूएंस पीपल? मित्रता कैसे बढ़े, लोग कैसे जीते जाएं? अभी अपने को जीता नहीं है, लोगों को जीतने चले! मगर लोग पढ़ते हैं। कहते हैं बाइबिल के बाद सबसे ज्यादा दुनिया में जो किताब बिकी है, वह यही है--डेल कारनेगी की किताब। बाइबिल के बाद! मतलब साफ है कि बाइबिल से ज्यादा बिक गई, क्योंकि बाइबिल खरीदता कौन है, मुफ्त बांटी जाती है। लोग बांटते ही रहते हैं बाइबिल। फिर हर ईसाई को रखनी ही पड़ती है घर में। न तो कोई कभी पढ़ता है, न कोई कभी पन्ने उलटता है। कौन पढ़ता है?
एक छोटे बच्चे से उसके पादरी ने पूछा कि तुमने अपना पाठ पूरा किया? बाइबिल पढ़ कर आए हो? क्या है बाइबिल में?
उस बच्चे ने कहाः सब मुझे मालूम है कि बाइबिल में क्या है।
उस पादरी ने कहाः सब तुम्हें मालूम है! सब तो मुझे भी नहीं मालूम।
क्या तुम्हें मालूम है?
उसने कहा कि मेरे पिता जी की लाटरी की टिकट है उसमें। मेरे छोटे भाई
के बालों का गुच्छा है उसमें। मेरी मां ने एक ताबीज भी रखा हुआ है उसमें किसी हिमालय के आए हुए महात्मा ने दिया है। मुझे सब चीजें पता हैं कि उसमें क्या-क्या है।

कौन बाइबिल को देखता है! कौन बाइबिल को पढ़ता है! कौन खरीदता है! इस तरह
की किताबें बिकती हैंः जीवन में सफल कैसे हों? सम्मान कैसे पाएं? धन कैसे पाएं? नेपोलियन हिल की प्रसिद्ध किताब हैः हाउ टु ग्रो रिच। लाखों प्रतियां बिकी हैं।
ये सारे के सारे लोग तुम्हें विधियां दे रहे हैं कि और गहरी नींद कैसे सोओ, और मजे से कैसे सोओ, सेज फूलों की कैसे बने, सपने मधुर कैसे आएं, सपने रंगीन और टेक्नीकलर कैसे हों? अब ब्लैक और व्हाइट सपने बहुत देख चुके, अब सपनों में थोड़ा रंग डालो! थोड़े सपनों की कुशलता और कला सीखो। ये लौरियां गाने वाले लोग हैं।
इसलिए धनी धरमदास कहते हैंः अब हम सांची कहत हैं। अब तुम्हें भला लगे
या बुरा, हम सच बात ही कह देते हैं कि तुम चाहो तो इसी वक्त, इसी क्षण... उड़ियो पंख पसार। पंख तुम्हारे पास हैं। कारागृह किसी और की बनाई हुई नहीं है! तुम्हारी अपनी बनाई हुई है। कोई पहरेदार नहीं है। तुम्हीं कैदी हो, और तुम्हीं पहरेदार हो। तुम जब तक अपने को गुलाम रखना चाहते हो रहोगे। जब तक अंधे रहना चाहते हो, रहोगे। जिस दिन निर्णय करोगे कि अब नहीं अंधे रहना है, उसी क्षण क्रांति शुरू हो जाएगी। सिफ तुम्हारे निर्णय की देर है। सिर्प तुम्हारे संकल्प के जगने की देर है। और किसी चीज की कमी नहीं है।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहो या दुक्ख ते, तन सरवर के पार।।
और अगर उड़ सको, पंख फैला सको, अगर उसके आकाश को स्वीकार कर सको, अगर उसमें लचपच हो सको, अगर उसके रंग में पूरे सौ प्रतिशत रंगने का साहस हो, तो छुटि जैहो या दुख ते... तो सारे दुखों से मुक्त हो जाओगे।... तन सरवर के पार। तन के पार, सीमाओं के पार, देह के पार, मिट्टी के पार, मृण्मय के पार--चिंमय की उपलब्धि हो जाएगी!
नाम झांझरी साजि, बांधि बैठो बैपारी
बोझ लद्यो पाषान, मोहि डर लागै भारी।।
और तुम इतने डर क्यों रहे हो? बैठ क्यों नहीं जाते, नाव तो किनारे आ लगी है।
जब भी कोई सदगुरु, कबीर, नानक, दादू या धनी धरमदास जैसा सद्गुरु जब खड़ा होता है तुम्हारे किनारे पर, तो वह यही कह रहा है कि अब तुम रुके क्यों हो? अब डर क्यों रहे हो? नाव तो किनारे पर लग गई है।
नाम झांझरी साजि...
नाम की नाव किनारे लगी है। नानक ने कहा हैः नानक नाम जहाज। नाम जहाज है। यह किनारे आ लगा है। नाम झांझरी साजि।... और सब सज कर तैयार हो गई है। ... बांधि बैठो बैपारी।
जल्दी बांधो अपनी गठरी और बैठ जाओ। क्या घबड़ा रहे हो? घबड़ाहट हैः बोझ लद्यो पाषान, मोहि डर लागै भारी। लेकिन डर है, क्योंकि तुम्हारी गठरी में सिर्प पत्थर हैं; बोझ है। कहीं नाव डूब न जाए! और इन पत्थरों को तुम छोड़ने को राजी नहीं हो। उस पार भी जाना चाहते हो और पत्थर भी साथ ले जाना चाहते हो!
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि अगर हम रोज एक घंटा ध्यान करते रहें तो सब ठीक हो जाएगा? मैं उनसे कहता हूंः सब गड़बड़ हो जाएगा। क्योंकि एक घंटा ध्यान, और तेईस घंटे क्या करोगे। तेईस घंटे ध्यान के विपरीत करोगे, जो भी करोगे। और एक घंटा ध्यान करोगे। सब गड़बड़ हो जाएगा। सब अस्त-व्यस्त हो जाएगा। यह तो ऐसे ही हुआ कि एक घंटे वृक्ष को उखाड़ लिया जमीन से, फिर तेईस घंटे गड़ाया। सब जड़ें टूट जाएंगी।
अगर ध्यान ही करना हो तो घंटों में नहीं किया जाता, अनुपात से नहीं किया जाता, तराजुओं पर तौल कर नहीं किया जाता... । बिना तौले किया जाता है। घंटों से नहीं होता हिसाब। ध्यान का रस चौबीस घंटे पर फैलना चाहिए। दुकान पर बैठे तो भी ध्यान। बाजार में चले तो भी ध्यान। भोजन किया तो भी ध्यान।
रात सोए तो भी ध्यान, उठे तो भी ध्यान। ध्यान तुम्हारी श्वास बन जानी चाहिए।

आदमी चाहता है ध्यान भी सम्हाल लूं और इस संसार में जो मिलता है वह भी संभाल लूं। पद भी मिल जाए, धन भी मिल जाए, प्रतिष्ठा भी मिल जाए, ध्यान भी मिल जाए--कुछ मेरे हाथ से चूक न जाए। दोनों दुनियाओं को सम्हाल लूं। फिर अड़चन खड़ी होती है। बोझ लद्यो पाषान, मोहि डर लागै भारी। डर लगता है फिर, क्योंकि बोझ भारी है। ये पत्थरों को लेकर बैठे, तो तुम तो डूबोगे ही, नाव भी डूबेगी। तुम पार न हो पाओगे। ये पत्थर छोड़ने होंगे।
और पत्थर को पकड़े क्यों हो? निश्चित ही तुम्हें अब भी पत्थरों में हीरे दिखाई पड़ते हैं, इसलिए पकड़े हो। पत्थर को कोई पत्थर सोच कर थोड़े ही पकड़ता है; पत्थर जान कर थोड़े ही पकड़ता है! पत्थर को हीरा जानता है, तो पकड़ता है।
मंझ धार भव तखत में आइ परैगी भीर।
बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। मंझधार में जब नाव डूबने लगेगी और पानी भरेगा नाव में, तब बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। इसलिए डर लगता है।
एक नाम केवटिया कर ले सोइ लावै तीर। इन पत्थरों की गठरी को छोड़। एक नाम को केवटिया कर ले। बस एक उसके नाम को मांझी बना ले।
एक नाम केवटिया कर ले सोइ लावै तीर। उतना पर्याप्त है। प्रवास के लिए उतना पाथेय पूरा है। उसका एक नाम ही भोजन बन जाता है, वही मांझी हो जाता है, वही नाव हो जाता है, वही पहुंचा देता है। सच तो यह हैः जिसने उसके नाम को समग्रता से पकड़ लिया, कहीं जाना ही नहीं होता; इसी किनारे पर वह किनारा मिल जाता है। ये तो सब प्रतीक हैं। जहां बैठे हो वहीं बैठे-बैठे, मोक्ष उतर आता है। बीच बाजार में सन्नाटा हो जाता है।
सौ भइया की बांह, तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना।।
जुद्ध रचो कुरुक्षेत्र में बानन बरसे मेह।
तिनहीं के अभिमान तें गिधहुं न खायो देह।।
कहते हैंः जरा सोचो, जरा देखो! लौट कर पीछे देखो, क्या-क्या गुजरती रही? दुर्योधन ने कृष्ण के बीच में पड़ने पर भी, जरा सी जमीन न दी, पांच डग जमीन न दी! ऐसा मोह पत्थरों का कि परमात्मा सामने खड़ा हो तो भी लोग पत्थर चुनते हैं, परमात्मा नहीं चुनते!
सौ भइया की बांह तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना।।
लेकिन भूमि देने में अहंकार आ गया। उसने कहा कि एक इंच जमीन नहीं दूंगा। एक सूई की नोक-भर जमीन नहीं दूंगा।
तुम भी क्या कर रहे हो? किसकी जमीन? कहां से लाए? कहां ले जाओगे? क्यों इतने लड़े-मरे जा रहे हो?
ये कथाएं ऐतिहासिक नहीं हैं। इन कथाओं का मौलिक आधार मनोवैज्ञानिक है। इन सारी कथाओं के पीछे मनोविज्ञान के आधार हैं। यही तो हम कर रहे हैं। यही तो सारी दुनिया कर रही है: कैसे हमारी जमीन बढ़े, कैसे धन बढ़े, कैसे बैंक में बैलेंस बढ़े! और अगर राम भी बीच में आकर खड़ा हो जाए, और कहे कि भई इतना नहीं, इतना ज्यादा न करो, इतना मत चूसो, इतने अहंकार से मत भरो, इस पद-प्रतिष्ठा में कुछ सार नहीं है, यह सब पड़ा रह जाएगा, जब बांध चलेगा बंजारा! सब पड़ा रह जाएगा! ... मगर कौन सुनता है, कब सुनता है? बुद्ध आए और कहते रहे, महावीर आए और कहते रहे। कौन सुनता है? हम अपनी धुन में लगे रहते हैं। हम पत्थर ही इकट्ठे करते रहते हैं। यही पत्थर हमें बार-बार डुबाते हैं। जुद्ध रचो कुरुक्षेत्र में बानन बरसे मेह। जरा सी जमीन के ऊपर... पांडव पांच गांव लेने को राजी थे... जरा सी जमीन के ऊपर भयंकर युद्ध हुआ। आकाश से जैसे वर्षा होती है जल की, ऐसे बाण बरसे, ऐसी मृत्यु बरसी।
तिनहीं के अभिमान तें गिधहुं न खायो देह।
और वे जो इतनी अकड़ से भरे थे, जब गिरे जमीन पर, तो इतनी लाशें पट गई थीं महाभारत के युद्ध में कि गिद्धों को भी खाने में रस नहीं रहा था, उत्सुकता नहीं रही थी।
तिनहीं के अभिमान तें गिधहुं न खायो देह।

जो इतने अहंकारी थे, ऐसा सिर उठा कर चले थे, गिद्धों ने भी उनके सिर को खाने योग्य न समझा।
यही पत्थर हम इकट्ठे कर रहे हैं।
नाम झांझरी साजि बांधि बैठो बैपारी।
बोझ लद्यो पाषान मोहि डर लागै भारी।।
एक नाम केवटिया कर ले सोइ लावै तीर।
मांझ धार भव-तखत में आइ परैगी भीर।।
जोधा आगे उलट पुलट यह पुहमी करते।
देखते हो, युद्ध चलते हैं! युद्ध हैं क्या? बस उन्हीं पत्थरों के लिए संघर्ष चल रहा है।
जोधा आगे उलट-पुलट यह पुहमी करते। ऐसे बड़े योद्धा, जो पृथ्वी को उलट-पुलट देते हैं। बस नहिं रहते सोय, छिने इक बल में रहते। और जब मौत आती है, तो सारा वश खो जाता है, सारी सामर्थ्य खो जाती है।
मैंने सुना है, नेपोलियन जब हार गया तो सेंट हेलेना के द्वीप में उसे कैदी किया गया। पहले ही दिन सुबह नेपोलियन अपने डाक्टर को लेकर घूमने निकला है, और एक घसियारिन औरत अपना बड़ा घास का गट्ठर लिए पगडंडी पर चली आ रही है। डाक्टर ने चिल्ला कर कहा कि ऐ स्त्री, हट जा रास्ते से! देखती नहीं, कौन आ रहा है! सम्राट नेपोलियन आ रहे हैं!
नेपोलियन ने डाक्टर का हाथ खींच कर रास्ते से नीचे उतर गया। और कहाः तुम भूलते हो। तुम चूकते। अब वे दिन गए, जब नेपोलियन पहाड़ से कहता कि हट जा रास्ते से, तो पहाड़ हटता। अब तो घसियारिन भी हम से कह सकती है--हट जाओ रास्ते से! ... वक्त आ ही जाता है।
जोधो आगे उलट-पुलट यह पुहमी करते।
बस नहिं रहते सोय, छिने इक बल में रहते।।
सौ जोजन मरजाद सिंध के करते एकै फाल।
और जो समुद्रों को एक छलांग में लांघ जाते हैं, ऐसे बलशाली! हाथन पर्वत तौलते... हाथ पर जो पर्वतों को तौल लेते हैं... तिन धरि खायो काल... मौत जब आती है, तो पता नहीं चलता कि मौत के दांतों में कहां खो जाते हैं!
मत इकट्ठे करो पत्थर।
अब हम सांची कहत हैं उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहो या दुख ते तन सरवर के पार।।
ऐसा यह संसार रहट की जैसी घरियां।
कुएं पर चलती रहट देखी है--घरियों से बनी रहट!
ऐसा यह संसार रहट की जैसे घरियां।
इक रीती फिरि जाय एक आवै फिरि भरियां।।
एक खाली होती है, दूसरी भरी आ जाती है। फिर एक खाली होती है, दूसरी भरी
आ जाती है। ऐसा यह संसार... । एक वासना चुकी कि दूसरी आई। एक जन्म चुका कि दूसरा जन्म आया। एक संबंध टूटा कि दूसरा संबंध बना। एक मूढ़ता से बचे कि दूसरी मूढ़ता आई।
ऐसा यह संसार रहट की जैसे घरियां।
इक रीती फिरि जाय एक आवै फिरि भरियां।।
उपजि उपजि विनसत करै फिरि फिरि जमै गिरास।
और कितनी बार तुम उठ चुके और कितनी बार तुम गिर चुके! अंत है कुछ? गणना
की जा सकती है कुछ? कितनी बार तुम जन्मे और कितनी बार तुम मरे! हिसाब तो करो! लौट कर थोड़ा सोचो तो!
उपजि उपजि विनसत करै फिरि फिरि जमै गिरास।
बारबार जन्म और बार-बार मृत्यु! सार क्या पाया? हाथ क्या लगा?
यही तमासा देखि कै मनुवा भयो उदास।
धनी धरमदास कहते हैंः यह तमाशा देख कर ही तो हम जीवन से उदास हुए। यह देख कर ही, यह तमाशा देख कर ही तो हम दूर हुए जीवन से और हमने उसकी तलाश करनी शुरू की जो अमृत है--जहां न जन्म है, न मृत्यु है, जो आवागमन के पार है! जैसे कलपि कलपि के भए हैं गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठि, लपट गई दोनों पांखी।।

देखते हैं, स्वाद के लोभ में मक्खी गुड़ पर बैठ जाती है!
जैसे कलपि कलपि के भये हैं गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठि लपट गई दोनों पांखी।।
बैठी थी चखने, गुड़ लग जाता है दोनों पंखों में, फिर उड़ना मुश्किल हो जाता है। जकड़ गई, फंस गई। लोभ ही फंदा बन गया। स्वाद ही कारागृह है। वासना ही पकड़े है हमें। पंख लपेटे सिर धुनै... अब सिर धुनती है।
पंख लपेटे सिर धुनै मन ही मन पछिताय।
वह मलयागिरि छांड़ि के यहां कौन विधि आय।
कैसी मूढ़ता की! वह मलयगिरि, वह पवित्रता, वह शांति, वह आनंद, वे हवाएं,
वह सूरज, वे फूल, वे सुगंधें--उनको छोड़ कर मैं इस गंदे गुड़ के चक्कर में पड़ी!
ऐसे ही तुम भी आए हो किसी और देश से। यह देश तुम्हारा नहीं। यह परदेश है। तुम आए हो किसी दूर आकाश से! यह पृथ्वी पड़ाव है, मंजिल नहीं। यहां से उठ ही जाना है।
जाने के पहले जो जाग जाएगा, उसे फिर लौटना नहीं होगा। जो जाने के पहले नहीं जागेगा, फिर-फिर लौटेगा, फिर-फिर इस गुड़ की ढेली पर गिरेगा, फिर-फिर पंखों में गुड़ चिपटेगा, फिर-फिर बंधन होगा।
खेत बिरानो देखि मृगा एक बन को रीझेव।
नित प्रति चुनि चुनि खाय बान में इक दिन बीधेव।।
उचकन चाहै बल करै मन ही मन पछिताय।
अब सो उचकि न पाइहौं धनी पहूंचो आय।।
जैसे हिरन रोज-रोज आकर किसी जंगल में फल खा जाता है, कि किसी खेत में; फिर एक दिन बिंध गया। अब बहुत उचकना चाहता है, बल करना चाहता है कि निकल जाए, अब बहुत पछताता है कि मैं कहां फंस गया! छोटे से लोभ में अपनी स्वतंत्रता खोई, अपना जीवन खोया! ... अब सो उचकि न पाइहौं, धनी पहूंचो आय।
लेकिन अब खेत का मालिक आ गया है, अब भाग न पाऊंगा।
मौत ऐसे ही आती है--खेत के मालिक की तरह। इस पृथ्वी पर मौत मालिक है यह उसी का खेत है। इसमें दो चार दिन तुम मजा ले सकते हो।
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुई चार अंत लागत है फीको।।
अखीर में तो मौत का ही स्वाद जीभ पर रह जाता है, सब स्वाद खो जाते हैं,
सब विनष्ट हो जाता है। अंत में तो मौत ही मुंह में रह जाती है। यह पृथ्वी तो मृत्यु का खेत है। वही धनी है यहां। इसलिए कोई लाख उपाय करे, उससे बच नहीं पाता।
जाग जाओ इसके पहले कि धनी आ जाए। जाग जाओ--उस बड़े धनी के प्रति, जो जीवन
का धनी है, जो शाश्वत है, जो सनातन है, जो नित्य है। और उससे ही हम आए हैं और उसमें ही हमें वापस जाना है। मूलस्रोत ही गंतव्य है।
सोवत हो केहि नींद मूढ़ मूरख अग्यानी।
भोर भए परभात अबहिं तुम करो पयानी।।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहो या दुख ते, तन सरवर के पार।।
संभावना है अनंत तुम्हारी। अपनी संभावना को सत्य बनाया जा सकता है।
संकल्प करो! इस अभीप्सा को उठने दो! इस अभीप्सा पर सब निछावर करो, तो देर नहीं लगेगी। और एक बार स्वाद आ जाए उस मलयगिरि की सुगंध का, उस पवन का, तब तुम हैरान होओगे कि कैसे इतने दिन उलझे रहे! कैसे इतने दिन छोटे-छोटे खेल-खिलौनों में पड़े रहे! कैसे पत्थर इकट्ठे करते रहे! तुम्हें हैरानी होगी-- अपने पर हैरानी होगी, अपने अतीत पर हैरानी होगी। और तुम्हें चारों तरफ लोगों को देख कर हैरानी होगी कि लोग क्यों उलझे हैं!
ज्ञानियों को यही सबसे बड़ी हैरानी रही है। खुद अपना अतीत बेबूझ हो गया कि हम इतने दिन तक कैसे चूके! और फिर चारों तरफ लोगों को चूकते देखते हैं, उन्हें भरोसा ही नहीं आता! समझ में नहीं पड़ता कि लोग कैसे चूके जा रहे हैं! जिसको खोजते हैं, उसी को चूक रहे हैं--और अपने ही कारण चूक रहे हैं!

कौन है ऐसा इस जगत में, जो आनंद नहीं चाहता? और कौन है ऐसा इस जगत में
जो आनंद उपलब्ध कर पाता है? बड़ी मुश्किल से कभी एकाध--करोड़ में। क्या हो जाता है? आनंद सब चाहते हैं, मगर जो करते हैं वह आनंद के विपरीत है। पश्चिम जाना चाहते हैं और पूरब जाते हैं। दिन को लाना चाहते हैं और रात को बनाते हैं।
ऐसा कौन है इस जगत में जो अमृत नहीं पाना चाहता हैं अमृत बनाना चाहते हैं; और जहर ढालते हैं, जहर निचोड़ते हैं। कौन है इस जगत में जो शाश्वत शांति में डूब नहीं जाना चाहता? मगर सारी चेष्टा अशांति और अशांति को पैदा करती है।
जरा अपने जीवन के विरोधाभास को देखो--तुम जो चाहते हो वही कर रहे हो? तुम जो चाहते हो उससे विपरीत कर रहे हो। यह विपरीत ही माया है। जिस दिन तुम जो चाहते हो वही करने लगो, उसी दिन जीवन में धर्म का प्रवेश हुआ; तुम संन्यस्त हुए; तुम दीक्षित हुए।... सोचना!
धनी धरमदास के पद बड़े प्यारे हैं। और प्यारे ऐसे नहीं हैं जैसे लौरी होती है, जो नींद में डुबा दे। प्यारे ऐसे हैं कि कांटों की तरह चुभेंगे और जगाएंगे।
का सोवै दिन रैन, विरहिनी जाग रे!

आज इतना ही।